ऐसे जीयें

□

प्रवचनकार

आचार्य श्री नानेश

□

सम्पादक

मुनि ज्ञान

□

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

[आचार्य प्रवर श्री नानेश के आचार्य पद के पच्चीसवें वर्ष के उपलक्ष्य में]

• ऐसे जीयें

• प्रवचनकार
आचार्य श्री नानेश

• सम्पादक
मुनि ज्ञान

• प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग
बीकानेर–३३४ ००१ (राजस्थान)

• प्रथम संस्करण १९८६

• मूल्य बीस रुपये (लागत मूल्य का दो तिहाई)

• मुद्रक
फ्रैण्डस प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
जौहरी बाजार, जयपुर–३०२ ००३

प्रकाशकीय

दुग्ध के साथ धवलता कब से चली आ रही है ? अग्नि के साथ उष्णता का सम्बन्ध कब से है ? इन विषयो की प्रादुर्भूति के विषय मे कुछ भी नही कहा जा सकता । जब से दुग्ध है, तभी से उसकी धवलता है । जब से अग्नि है तभी से उसके साथ उष्णता का सम्बन्ध बना हुआ है । ठीक इसी प्रकार जब से भू, तोय, अनल, अनिल आदि प्राणी समूह एव जड तत्त्व चले आ रहे है, तभी से धर्म एव सस्कृति भी चली आ रही है । साधुमार्ग का इतिहास भी उतनी ही प्राचीनता को लिये हुए है ।

साधुमार्ग की इस पवित्र पावन-धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए बडे-बडे आचार्यो ने अपना-अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । भगवान् महावीर के बाद अनेक बार आगमिक-धरातल पर क्रान्ति का प्रसग आया है । इस क्राति के द्वारा श्रमण सस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने का प्रयास किया जाता रहा । ऐसी क्रान्ति की धारा मे क्रियोद्धारक महान् आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म सा का नाम विशेष रूप से उभर कर सामने आता है । तत्कालीन युग मे जहाँ शिथिलाचार व्यापक तौर पर फैलता जा रहा था, शुद्ध साधुत्व की स्थिति विरल ही परिलक्षित होती थी । बडे-बडे साधु भी मठो की तरह उपाश्रयो मे अपना स्थान जमाए हुए थे । चेलो के पीछे साधुता बिखरती चली जा रही थी । ऐसे युग मे आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म० सा० ने उपदेशो से ही नही अपितु अपने विशुद्ध एव उत्कृष्ट सयममय जीवन से जनमानस को प्रभावित किया था । तप के साथ क्षमा एव उत्कृष्ट सयम के साथ उत्कृष्ट सम्यक्ज्ञान का सयोग दुर्लभ ही देखने को मिलता है । किन्तु आचार्य प्रवर मे ऐसे दुर्लभ सयोग सहज सुलभ थे । आपके जीवन का ही प्रभाव था कि हजारो स्त्री-पुरुष आपके चरण सान्निध्य को पाने के लिए लालायित रहने लगे । तब "तिन्नाण तारयाण" के आदर्श आचार्यप्रवर ने योग्य मुमुक्षुओ को दीक्षित किया,

और जो देशव्रती बनना चाहते थे उन्हे, देशव्रती बनाया। इस प्रकार सहज रूप से ही चतुर्विध सघ का प्रवर्तन हो गया।

समुद्र मे जिस प्रकार दूर तक गगा का पाट दिखलाई देता है वैसे ही जैन धर्म के समुद्र मे आचार्य प्रवर को यह धारा एकदम अलग-थलग सी परिलक्षित होने लगी। यहाँ से फिर साधुमार्ग मे एक क्रान्ति घटित हुई। जिस क्रान्ति की धारा को पश्चातवर्ती आचार्यो ने निरन्तर आगे बढाया। आज हमे परम प्रसन्नता है कि समता विभूति विद्वद् शिरोमणि, जिन शासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक आचार्य श्री नानेश के सान्निध्य मे साधुमार्ग की वह धारा विकसित रूप मे उभर कर आ रही है। सघ के एकमात्र अनुशास्ता आचार्य श्री नानेश के सान्निध्य मे हुई एक साथ २५ दीक्षाओं ने सैकडो वर्षो के अतीत के इतिहास को प्रत्यक्ष कर दिखाया है। ऐसी एक नही अनेक क्रान्तियाँ आचार्य-प्रवर के सान्निध्य मे घटित हो रही है। सयम पालन के साथ हर साधु-साध्वी वर्ग ने आचार्य प्रवर के सान्निध्य को पाकर सम्यक् ज्ञान की दिशा मे भी आश्चर्यजनक विकास किया है।

"ऐसे जीयें" नामक प्रस्तुत पुस्तक मे आचार्य प्रवर के घाटकोपर, बम्बई के ५२ प्रवचनो का सकलन किया गया है। दिनाक १६-८-८५ को पर्युषण के चतुर्थ दिवस पर आचार्य श्री अस्वस्थता के कारण प्रवचन नही दे सके, अत उस दिन के प्रवचन का समावेश नही किया जा सका है। 'जी' तो सभी रहे हैं पर 'जीना' किस प्रकार चाहिये, मानव की इस ज्वलन्त समस्या का समाधान आचार्य प्रवर ने अपने प्रस्तुत प्रवचनो मे बहुत ही सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया है। इन प्रवचनो का सुन्दर सम्पादन आचार्य प्रवर के ही अन्तेवासी सुशिष्य विद्वद्वर्य श्री ज्ञानमुनिजी म० सा० ने किया है। घाटकोपर के प्रवचनो को किसी शॉर्ट-हैण्ड लिपिकार ने सकलित नही किया था, बल्कि शासन प्रभाविका विदुषी महासती श्री इन्द्रकवरजी म० सा० के समीपस्थ तपस्विनी विदुषी महासती श्री अजना श्रीजी म० सा० एव विदुषी महासती श्री सुलोचना श्रीजी म० सा० ने सकलित करने का अच्छा प्रयास किया है। महासतीवर्ग आचार्य प्रवर के प्रवचनो को सुनने के साथ अपने उपयोग के लिये सकलित भी कर लेती है। घाटकोपर के इन सकलित प्रवचनो का विद्वद्वर्य श्री ज्ञानमुनिजी म० सा० द्वारा सम्पादन हो जाने पर पाडुलिपि बनाने का कार्य प्रतिभा-सम्पन्न वैराग्यवती बहिन प्रिया एव पद्मा ने किया है।

हमारा सघ सत्साहित्य एव जीवन विकासोन्मुखी कृतियो के प्रकाशन के लिए कृत सकल्प है।

शान्त-क्रान्ति के अग्रदूत स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० की स्मृति मे श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ ने श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार की स्थापना की। ज्ञान भण्डार मे अनेकानेक प्रकाशित एव हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह हुआ है। हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्थो का सचयन कर उन्हे श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन साहित्य समिति सर्वजनहितार्थ प्रकाशन कर रही है। इसी सकल्प की क्रियान्विति मे इस कृति को भी श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार से प्राप्त कर प्रकाशित करने मे सघ हार्दिक आत्म-सतुष्टि का अनुभव कर रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक के हमारे प्रमुख अर्थ सहयोगी है—श्री अखिल भारत-वर्षीय साधुमार्गी जैन सघ के नव निर्वाचित अध्यक्ष उदारमना श्रेष्ठीवर्य श्री चुन्नीलालजी सा० मेहता, जिन्होने अनेक प्रवृत्तियो, सस्थाओ मे उदारता से अर्थ सहयोग कर अपनी दानवीरता का सराहनीय परिचय दिया है। संघ को आपसे अनेक आशाएँ है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन-सम्बन्धित प्रबन्धन-सम्पादन मे डॉ० नरेन्द्र भानावत ने जो महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, उसके लिए हम उनका हृदय से आभार मानते है।

—गुमानमल चौरड़िया
सयोजक
श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन साहित्य समिति

प्रमुख अर्थ-सहयोगी
सहृदय समाजसेवी
श्री चुन्नीलालजी मेहता, बम्बई

आपका जन्म ३१ जुलाई, १९२६ को सोजत (राजस्थान) मे हुआ । आपने अपना व्यवसाय बेलगाव, अहमदाबाद एव बम्बई मे आरभ किया । लगन, निष्ठा, साहस, परिश्रम एव ईमानदारीपूर्वक सतत कर्तव्यशील वने रहने के कारण आपने शीघ्र ही देश के प्रमुख व्यवसायियो मे अपना उल्लेखनीय स्थान बना लिया ।

अर्जित सम्पत्ति का समाज-सेवा मे अधिकाधिक सदुपयोग करना आपका स्वभाव है । आप अपनी सहृदयता, करुणशीलता एव दानवीरता के लिए प्रसिद्ध है । आपके कार्यालय मे रोजाना सुबह से शाम तक दीन दुखियारे रोगियो, असहाय वृद्धो, नेत्रहीनो आदि की लाइन लगी रहती है जिन्हे आप मुक्त हस्त से दान देते रहते हैं, अन्न, वस्त्र और औषध वितरण करते रहते है । आप राष्ट्रीय विचारधारा के प्रगतिशील सामाजिक कार्यकर्ता एव कर्मठ समाजसेवी है । शिक्षा, चिकित्सा, वाणिज्य-व्यवसाय, राष्ट्र-एकता, सामाजिक उत्कर्ष सम्बन्धी सैकडो सस्थाओ से आप सक्रिय रूप से जुडे हुए है । समता-विभूति आचार्य श्री नानेश के आप अनन्य भक्त एव निष्ठावान श्रावक है । आचार्य श्री का बोरीवली-बम्बई का चातुर्मास कराने मे आपका विशेष योगदान रहा । श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ के आप अध्यक्ष है । सघ की धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक एव साहित्यिक प्रवृत्तियो को अधिकाधिक गतिशील एव सुदृढ करने मे आप निरन्तर सजग एव सचेष्ट है । सत् साहित्य के प्रकाशन मे आपके प्रशस्त और उदात्त सहयोग के लिए हार्दिक आभार ।

□□

कैसे जीयें ?

यह अखिल विश्व, अनन्तानन्त प्राणियो से सकुलित है। जिस प्रकार काजल की डिबिया मे काजल भरा रहता है, उसी प्रकार पूरे विश्व मे आत्माएँ खचाखच भरी हुई है। वे सभी आत्माएँ, अपने-अपने रूप मे जीवन जी रही है। क्योकि जिसने भी जन्म लिया है, वह जब तक मृत्यु को प्राप्त न करे, तब तक जीता है और मृत्यु प्राप्त करके भी अन्य भव मे जाकर, वहा भी जीता है। अत जीने की स्थिति तो निरन्तर चल ही रही है, पर जिया कैसे जाय, जिससे आत्मा को परम शाति एव सुख की उपलब्धि हो सके, यह समस्या प्राय सभी प्राणियो के सामने खडी है। जब तक इस समस्या का सही रूप मे समाधान नही होता, तब तक जीवन की प्रणालिका सही रूप मे नही चल सकती। बिना सही प्रणाली के वास्तविक सुख की उपलब्धि नही हो सकती। अनन्तानन्त प्राणियो मे जो अमनस्क प्राणी हैं, वे तो इस तथ्य को समझ ही नही पाते और जो समनस्क प्राणी है, उन्हे भी ऐसा ज्ञान प्राप्त करने का सयोग बहुत कम मिलता है। पशु-पक्षी भी समनस्क प्राणी हैं, पर उन्हे ऐसा सयोग कहाँ मिलता है ? नारकी के नैरियक समनस्क होते हुए भी प्रतिक्षण दु ख से इतने अधिक सतप्त होते है कि उन्हे दूसरी बात सोचने का अवकाश ही कहाँ मिलता है। देवताओ के पास जीवन जीने की कला का बोध पाने की क्षमता तो है पर वे अपने जीवन को सही रूप मे अध्यात्म-जागरण के लिए नियोजित नही कर पाते।

एक मानव ही ऐसा प्राणी है कि वह अपने मस्तिष्क से सही ज्ञान करके अपने जीवन को उसी रूप मे नियोजित भी कर सकता है, पर आज तो वह जीवन को सही रूप मे जीने के लिए अपनी मनकल्पित बातो को लेकर ही चल रहा है। वह चाहता अवश्य है कि मैं सही रूप मे जीऊँ, उसके लिए वह विभिन्न तरीके से पुरुषार्थ भी कर रहा है। जीवन को सही ढग से जीने की कला को पाने के लिए मानव निरन्तर पुरुषार्थ कर रहा है। अतीत के इतिहास को देखते हुए ज्ञात होता है कि मानव ने भौतिक दृष्टि से अचिन्त्य विकास किया है। कहाँ तो मानव के पास खाने के लिए रोटी, पहनने के लिए वस्त्र और रहने के लिए मकान भी नही था और कहाँ आज के मानव की स्थिति है। उसके पास खाने के लिए अच्छा से अच्छा स्वादिष्ट। पकवान है पहनने के लिए तरह-तरह के कीमती वस्त्र (वेश) है और रहने के लिए सुविधापूर्ण बगले हैं। यही नही आकाश मे उडने के लिए भी उसके पास हवाई जहाज है, तो समुद्र मे पैठ करने के लिए बडे-बडे स्टीमर हैं। आज के मानव ने ऐसे-ऐसे साधनो को ईजाद कर लिया है कि जिसकी सैकडो वर्ष पूर्व कल्पना भी नही की जा सकती थी। इतना

सब कुछ प्राप्त कर लेने पर भी मानव को न तो जीने की सही कला ही आयी है और न ही यथार्थ शाति की उपलब्धि ही हो पाई है। बल्कि इन भौतिक साधनो को प्राप्त करने के बाद उसका मन और अधिक अशान्त एव उद्विग्न बनता चला गया है। शाति के स्थान पर अशान्ति बढी है। सुख के स्थान पर दु ख बढा है।

विचार आता है कि मानव जब इतना पुरुषार्थ कर रहा है। रात-दिन सुख पाने के लिए बेचैन हो रहा है फिर भी सुख को प्राप्त नही कर पा रहा है तो इसका कुछ न कुछ कारण अवश्य होना चाहिये। लगता है कि कही मूल मे ही भूल हो रही है। जब तक मूल की भूल का सुधार नही होगा, तब तक जीवन को सही रूप मे नही जीया जा सकेगा और जीवन को सही रूप मे जीये बिना सुख की प्राप्ति नही हो सकती। जिस प्रकार भोजन बनाने वाली बहिन भोजन-सामग्री बहुत ही सुन्दर रीति से तैयार करती है, किन्तु उसके द्वारा एक ही भूल हो जाती है, कि सब्जी मे नमक के स्थान पर शक्कर और मिठाई मे शक्कर के स्थान पर नमक डाल देती है। बस, यह मूलभूत—भूल ही उसके सारे भोजन को बिगाड देती है। ठीक इसी प्रकार आज का मानव भी पुरुषार्थ बहुत कर रहा है, बहुत प्रयत्न कर रहा है, पर वह कही न कही ऐसी भूल अवश्य कर रहा है कि जिससे उसका सारा पुरुषार्थ सुख के स्थान पर दु ख की ही अभिवृद्धि करने वाला हो रहा है।

आज के युग मे प्राय सभी मानवो के पास यही बहुत बडी समस्या खडी है कि हम कैसे जीये ताकि सुख-शाति का उपवन महक उठे। इसी समस्या का मौलिक समाधान समता विभूति, समीक्षण ध्यान योगी, विद्वद् शिरोमणि आचार्य प्रवर श्री १००८ श्री नानालालजी म० सा० ने घाटकोपर, बम्बई के प्रवचनो मे विभिन्न रूप से आगमिक धरातल पर अत्यन्त ही समीचीन रीति से प्रस्तुत किया है जिसमे मानव की मूलभूत समस्याओ का समाधान देकर मानसिक, वाचिक एव आध्यात्मिक कायिक रूप से किस प्रकार जीना चाहिये, इसका सयुक्तिक ढग से विधान किया है।

इन प्रवचनो के सम्पादन मे आचार्य प्रवर की भाव-भाषा को अक्षुण्ण बनाये रखने का विशेष ख्याल रखा गया है ताकि अध्येता आचार्य प्रवर की वाणी का साक्षात् रसास्वादन कर अपनी मूलभूत समस्याओ का समाधान कर सकें। इसी शुभ मगलमय भावना के साथ।

मोटा उपाश्रय,
घाटकोपर, बम्बई
५-९-८५, गुरुवार

—मुनि ज्ञान

अनुक्रमणिका

☐ **सम्यक्त्व के लक्षण—प्रशात जीवन जीने की कला**

☐ **सम्यक् दर्शन—जीवन जीने की सुदृढ़ नींव**

□ **सम्यक् ज्ञान—वैचारिक जीवन जीने की कला**

□ **सम्यक् चरित्र—जीवन के विशुद्ध आचारण की विधि**

□ **साधना ऐसे करें**

सम्यक्त्व के लक्षण

(प्रशांत जीवन जीने की कला)

- ☐ सम
- ☐ संवेग
- ☐ निर्वेद
- ☐ अनुकम्पा
- ☐ आस्था

१ चातुर्मास स्वयं के लिए उपयोगी बने

इस विराट् विश्व मे यदि कोई श्रेष्ठतम मार्ग है तो वह है, सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप मोक्ष मार्ग। इस मार्ग पर चलकर आत्मा ऐसे स्थान पर पहुँच सकती है जहाँ वह अनन्त-अनन्त सुख मे तल्लीन हो जाती है। इस मार्ग का अतीव सरस-वर्णन तीर्थंकर महापुरुषो ने अपनी अमृतोपम वाचा के माध्यम से किया था। अनन्त उपकारी गणधारो ने उसे सूत्र रूप मे गूथा और वह आचार्यो की परम्परा से सुरक्षित रहा।

आज हमारा अहोभाग्य है कि हमे वही अमूल्य वाणी श्रवण करने को मिल रही है, पर हम सिर्फ उस वाणी के श्रवण तक ही सीमित न रहे, बल्कि गहन चिंतन मनन की स्थिति से उस आनन्ददायिनी सरिता मे अवगाहन करने की कोशिश करे। शास्त्रो मे जो वाक्यावलिया होती है, वे गहन अर्थ से परिपूरित होती हैं। शास्त्रीय शब्दो को याद कर लेना एक बात है, और उसके अर्थ मे अवगाहन करते हुए अपनी आचरण भूमि को सम्यक् बनाना, आत्म गुणो मे अपने आपको रमण करना दूसरी बात है।

आनन्द रस प्रवाहिनी वीतराग वाणी का महत्त्व यदि जानना है, तो श्रुति को अनुभूति का रूप प्रदान करे। शास्त्रीय वाक्यार्थ को जीवन मे उतारे। आपने कभी गन्ना चूसा होगा, गन्ना चूसते समय आप रस-रस तो चूस लेते है, और निस्सार को फेंक देते हैं, ठीक इसी प्रकार शास्त्र मे हेय, ज्ञेय, उपादेय तीनो ही विषयो का प्रतिपादन होता है, आप ज्ञेय की जानकारी करें, हेय को निस्सार समझ कर छोड दें, और उपादेय रूपी मधुर रस को जीवन में उतार ले, तो आपका जीवन अतीव मधुर बन सकता है।

मै शास्त्रीय विषय के साथ-साथ कुछ बाते आध्यात्मिक जीवन सम्बन्धी भी कहना चाह रहा हूँ। अध्यात्म क्या है? भीतर की प्रकृति का अवलोकन करे कि मेरे जीवन मे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की वृत्ति है, या इससे विपरीत वृत्तियाँ मेरे जीवन मे उभर रही हैं। जिसके जीवन मे राग-द्वेष की वृत्तियाँ उभर रही है, तो उसका जीवन पशु से भी वदतर है। पशु मे कम समझ होने से वह इतना खरतनाक कभी नही हो सकता जितना कि मनुष्य वन जाता है। मनुष्य यह विचार करे कि मै पशु से निम्न

स्थिति मे हूँ या उच्च स्थिति मे ? चिन्तन करने की यह धारा जब सम्यक् दिशा मे गतिशील बनेगी, तब यह स्वत ही स्पष्ट हो जायेगा कि हमारी प्रत्येक की आत्मा अरिहन्त सिद्ध के समान है। इस प्रकार सम्यक् बोध होने के बाद प्रत्येक मनुष्य के अन्तर मे "मुझे अरिहन्त और सिद्ध तुल्य बनना है" यह दिव्य भावना जागृत हो एव तदनुरूप साधना मे उसका जीवन समर्पित बने, तब अशाति की स्थिति उसके जीवन मे कभी भी प्रवेश नही कर सकेगी।

अशाति के झूले मे झूलते हुए अधिकाश व्यक्ति शाति प्राप्ति के उपाय के खोजी बने हुए है, वे चाहते है कि हमे कोई ऐसा मत्र मिल जाय, जिसको आजमाने से हमारा जीवन शातिमय बन जाय, पर वे नही जानते कि शाति का सृजन करने वाला मत्र कौनसा है ? दुनिया का सर्वश्रेष्ठ मत्र नवकार है। पर यह ध्यान रखना है कि अन्दर मे यदि विषय-कषाय की आग जलती रहे, और ऊपर से मत्र का जाप करते रहे, तो उससे कभी शाति नही मिल सकेगी।

एक रूपक है—एक भाई महाराज के पास गया, और अपनी समस्या का समाधान करने के लिए कहा, तब महाराज ने कहा भाई ! तुम जिस समस्या का समाधान चाह रहे हो, मैं उसका समाधान कर सकता हूँ। लेकिन मैं पूछता हूँ कि इस समस्या के समाधान के बाद कोई दूसरी समस्या तो नही उठेगी। तो वह बोला, उठेगी और फिर उसका समाधान करने के लिए आऊँगा ! तब योगी ने समझाया इससे तो अच्छा है कि तुम सभी समस्याओ का समाधान कैसे किया जाय, यही जानलो तो फिर तुम अपनी समस्याओ का समाधान स्वय ही कर सकोगे। अधे को एक स्थान से दूसरे स्थान से जाने के लिये बार-बार सहारा देने की बजाय उसके आँखे लगादी जाय तो वह स्वत. ही चल लेगा। वैसे ही तुम समस्या के समाधान का मूल ही पकड लो और वह है शरीर के भीतर मे रहने वाली आत्मा की सम्यक् निर्णायक शक्ति।

अध्यात्म जीवन मे अपना चरण क्षेप करो, यह मानकर चलो कि हर आत्मा मे अनन्त ज्ञान शक्ति है, पर वह ज्ञान चेतना ज्ञानावरणीय कर्म से आवृत्त है। इससे ही वह अपनी ज्ञान शक्ति का रसपान नही कर पा रहा है, पर जैन दर्शन मानता है कि बन्धन की निर्मात्री आत्मा है तो बन्धन को तोडने वाली भी आत्मा ही है। अत· आत्मा सत्पुरुषार्थ के माध्यम से बन्धन से मुक्ति की प्रक्रिया को समझकर अपने आवृत्त ज्ञान को अनावृत्त करने का प्रयास करती है, तो उसके जीवन की समस्त समस्याओ का समाधान हो सकता है। वह अनन्त शाति की अभिव्यक्ति कर सकती है, कारण कि केवलज्ञान पाने की क्षमता प्रत्येक मुमुक्षु आत्मा मे है।

प्रभु महावीर का गरिमामय जैन धर्म हमे बता रहा है कि हमारे भीतर भी महावीरत्व छिपा हुआ है। उसे सद्प्रयत्नो से, सयम निष्ठ आचरण से

उजागर कर सकते हैं, उस महावीरत्व को उजागर करने मे सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान माता, पिता एव गुरु का होता है, पर आज के माता-पिताओ की स्थिति बडी विचित्र होती जा रही है। जब मै अमरावती से राजस्थान की ओर विहार कर रहा था, तब बीच रास्ते मे एक ऐसा गाँव आया, जहाँ—गोचरी के घर बहुत कम होने से ज्यादा रुकने का प्रसग नही बना, वहाँ से जल्दी ही विहार कर दिया, जो लोग पहुँचाने के लिये आये थे उनमे एक १२, १३ वर्षीय बालक भी था, जिसके पिताजी ने कहा—म० सा० इस बालक को आप अपने साथ ले जाओ और दीक्षा दे दो। तब मैंने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कुछ सोचा और पूछा कि आप इतने उदार कैसे बन रहे है, जिससे इस नन्हे से बच्चे को दीक्षा देने के लिये तैयार हो गये ? तब उन्होने कहा कि यह लडका बडा नटखट उद्दण्ड एव चंचल है, कभी तो मेरे ऊपर और कभी अपनी माँ के ऊपर भी यह हाथ उठा लेता है। तब मैंने पूछा कि—कभी आप पति-पत्नी मे भी लडाई होती है क्या ? तब वह बोला हाँ कभी-कभी हो जाती है। तब मैंने कहा आपके ही सस्कारो का परिणाम है कि बच्चा उद्दड बन गया है। जब तक माता-पिता नही सुधरेंगे, तब तक बच्चे को सुधारना व्यर्थ है। शिशु जीवन को सौम्य बनाने के लिये माता-पिता के सुन्दर कर्तव्य ही बच्चो मे सस्कार का रूप लेते हैं। **जीवन दीप की ज्योति प्रज्वलित रखने के लिये संस्कार स्नेह (तेल) का कार्य करता है।** शिशु जीवन मे पडे सुन्दर या असुन्दर प्रभाव उसके पूरे जीवन को बनाने या बिगाडने के उत्तरदायी होते है। **सस्कार बीज है जीवन वृक्ष को पल्लवित करने के लिये।** बालक को जन्म देने मात्र से ही माता-पिता के कर्तव्य की इतिश्री नही हो जाती, वरन् उसके जीवन को सुसस्कारित बनाने का उत्तरदायित्व भी उन्ही पर है। शैशव मे ही उदारता, वीरता, विनम्रता, धार्मिकता का गुण उसे माता के दूध के साथ मिलते रहना चाहिये। माता चाहे तो अपने बालक को कर्ण या भामाशाह बना सकती है। बालक को महावीर या भरत बनाना भी माता के हाथ मे ही है। और चूहे की खडखडाहट मे घर छोडकर भाग जाने वाला बुजदिल बनाना भी माता के हाथ मे है। ब्रह्मचर्य के प्रज्ञापुंज से दीप्तिमान भीष्म भी उसे माता बना सकती है, और रावण बनाना भी उसी के हाथ है। बालक के जीवन पर एक सुशिक्षिता माता जो प्रभाव डाल सकती है, वहाँ सौ मास्टरो का प्रयास भी उसमे असफल रहेगा। माता का वीरत्व बालक को विश्व-विजयी बना सकता है। बन्धुओ ! जो बात मैं आपको बतला रहा था, उस नटखट बालक को दीक्षा देने के लिये कहने वाले पिता को मैंने कहा कि "ऐसे बच्चे को आप हमे देना चाहते है, यह यहाँ आकर भी क्या करेगा, कही गुस्से मे आकर हमारे पात्रे फोड बैठेगा।" तो वह बोला—आप तो उसे सुधार सकते हैं। तो मैने कहा सुधार सकते हैं, पर कठिनाई यह है कि साधना के लिए तो सबसे पहले स्वभाव मे सौम्यता आना जरूरी है।

साधना मे बढने वाले जिज्ञासुओ को चाहिये कि आज से वे अपनी आत्म

स्थिति मे हूँ या उच्च स्थिति मे ? चिन्तन करने की यह धारा जब सम्यक् दिशा मे गतिशील बनेगी, तब यह स्वत ही स्पष्ट हो जायेगा कि हमारी प्रत्येक की आत्मा अरिहन्त सिद्ध के समान है । इस प्रकार सम्यक् बोध होने के बाद प्रत्येक मनुष्य के अन्तर मे "मुझे अरिहन्त और सिद्ध तुल्य बनना है" यह दिव्य भावना जागृत हो एव तदनुरूप साधना मे उसका जीवन समर्पित बने, तब अशाति की स्थिति उसके जीवन मे कभी भी प्रवेश नही कर सकेगी ।

अशाति के झूले मे झूलते हुए अधिकाश व्यक्ति शाति प्राप्ति के उपाय के खोजी बने हुए है, वे चाहते है कि हमे कोई ऐसा मत्र मिल जाय, जिसको आजमाने से हमारा जीवन शातिमय बन जाय, पर वे नही जानते कि शाति का सृजन करने वाला मत्र कौनसा है ? दुनिया का सर्वश्रेष्ठ मत्र नवकार है । पर यह ध्यान रखना है कि अन्दर मे यदि विषय-कषाय की आग जलती रहे, और ऊपर से मत्र का जाप करते रहे, तो उससे कभी शाति नही मिल सकेगी ।

एक रूपक है—एक भाई महाराज के पास गया, और अपनी समस्या का समाधान करने के लिए कहा, तब महाराज ने कहा भाई ! तुम जिस समस्या का समाधान चाह रहे हो, मै उसका समाधान कर सकता हूँ । लेकिन मैं पूछता हूँ कि इस समस्या के समाधान के बाद कोई दूसरी समस्या तो नही उठेगी । तो वह बोला, उठेगी और फिर उसका समाधान करने के लिए आऊँगा ! तब योगी ने समझाया इससे तो अच्छा है कि तुम सभी समस्याओ का समाधान कैसे किया जाय, यही जानलो तो फिर तुम अपनी समस्याओ का समाधान स्वय ही कर सकोगे । अधे को एक स्थान से दूसरे स्थान से जाने के लिये बार-बार सहारा देने की बजाय उसके आँखें लगादी जाय तो वह स्वत ही चल लेगा । वैसे ही तुम समस्या के समाधान का मूल ही पकड लो और वह है शरीर के भीतर मे रहने वाली आत्मा की सम्यक् निर्णायक शक्ति ।

अध्यात्म जीवन मे अपना चरण क्षेप करो, यह मानकर चलो कि हर आत्मा मे अनन्त ज्ञान शक्ति है, पर वह ज्ञान चेतना ज्ञानावरणीय कर्म से आवृत्त है । इससे ही वह अपनी ज्ञान शक्ति का रसपान नही कर पा रहा है, पर जैन दर्शन मानता है कि बन्धन की निर्मात्री आत्मा है तो बन्धन को तोडने वाली भी आत्मा ही है । अत. आत्मा सत्पुरुषार्थ के माध्यम से बन्धन से मुक्ति की प्रक्रिया को समझकर अपने आवृत्त ज्ञान को अनावृत्त करने का प्रयास करती है, तो उसके जीवन की समस्त समस्याओ का समाधान हो सकता है । वह अनन्त शाति की अभिव्यक्ति कर सकती है, कारण कि केवलज्ञान पाने की क्षमता प्रत्येक मुमुक्षु आत्मा मे है ।

प्रभु महावीर का गरिमामय जैन धर्म हमे बता रहा है कि हमारे भीतर भी महावीरत्व छिपा हुआ है । उसे सद्प्रयत्नो से, सयम निष्ठ आचरण से

उजागर कर सकते है, उस महावीरत्व को उजागर करने मे सवसे महत्त्वपूर्ण योगदान माता, पिता एव गुरु का होता है, पर आज के माता-पिताओ की स्थिति बडी विचित्र होती जा रही है। जव मैं अमरावती से राजस्थान की ओर विहार कर रहा था, तब बीच रास्ते मे एक ऐसा गाँव आया, जहाँ—गोचरी के घर बहुत कम होने से ज्यादा रुकने का प्रसग नही वना, वहाँ से जल्दी ही विहार कर दिया, जो लोग पहुँचाने के लिये आये थे उनमे एक १२, १३ वर्षीय बालक भी था, जिसके पिताजी ने कहा—म० सा० इस वालक को आप अपने साथ ले जाओ और दीक्षा दे दो। तव मैंने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कुछ सोचा और पूछा कि आप इतने उदार कैसे वन रहे है, जिससे इस नन्हे से वच्चे को दीक्षा देने के लिये तैयार हो गये ? तव उन्होने कहा कि यह लडका वडा नटखट उद्दण्ड एव चचल है, कभी तो मेरे ऊपर और कभी अपनी माँ के ऊपर भी यह हाथ उठा लेता है। तब मैंने पूछा कि—कभी आप पति-पत्नी मे भी लड़ाई होती है क्या ? तब वह वोला हाँ कभी-कभी हो जाती है। तव मैंने कहा आपके ही सस्कारो का परिणाम है कि बच्चा उद्दड वन गया है। जव तक माता-पिता नही सुधरेगे, तब तक बच्चे को सुधारना व्यर्थ है। शिशु जीवन को सौम्य वनाने के लिये माता-पिता के सुन्दर कर्तव्य ही बच्चो मे सस्कार का रूप लेते है। **जीवन दीप की ज्योति प्रज्वलित रखने के लिये संस्कार स्नेह (तेल) का कार्य करता है।** शिशु जीवन मे पडे सुन्दर या असुन्दर प्रभाव उसके पूरे जीवन को बनाने या बिगाडने के उत्तरदायी होते हैं। **संस्कार बीज है जीवन वृक्ष को पल्लवित करने के लिये।** बालक को जन्म देने मात्र से ही माता-पिता के कर्तव्य की इतिश्री नही हो जाती, वरन् उसके जीवन को सुसस्कारित बनाने का उत्तर-दायित्व भी उन्ही पर है। शैशव मे ही उदारता, वीरता, विनम्रता, धार्मिकता का गुण उसे माता के दूध के साथ मिलते रहना चाहिये। माता चाहे तो अपने बालक को कर्ण या भामाशाह बना सकती है। बालक को महावीर या भरत बनाना भी माता के हाथ मे ही है। और चूहे की खडखडाहट मे घर छोड़कर भाग जाने वाला बुजदिल बनाना भी माता के हाथ मे है। ब्रह्मचर्य के प्रज्ञापु ज से दीप्तिमान भीष्म भी उसे माता वना सकती है, और रावण बनाना भी उसी के हाथ है। बालक के जीवन पर एक सुशिक्षिता माता जो प्रभाव डाल सकती है, वहाँ सौ मास्टरो का प्रयास भी उसमे असफल रहेगा। माता का वीरत्व वालक को विश्व-विजयी बना सकता है। बन्धुओ ! जो बात मैं आपको बतला रहा था, उस नटखट वालक को दीक्षा देने के लिये कहने वाले पिता को मैंने कहा कि "ऐसे वच्चे को आप हमे देना चाहते हैं, यह यहाँ आकर भी क्या करेगा, कही गुस्से मे आकर हमारे पात्रे फोड वैठेगा।" तो वह वोला—आप तो उसे सुधार सकते है। तो मैने कहा सुधार सकते हैं, पर कठिनाई यह है कि साधना के लिए तो सवसे पहले स्वभाव मे सौम्यता आना जरूरी है।

साधना मे वढने वाले जिज्ञासुओ को चाहिये कि आज से वे अपनी आत्म

स्थिति मे हूँ या उच्च स्थिति मे ? चिन्तन करने की यह धारा जव सम्यक् दिशा मे गतिशील वनेगी, तव यह स्वत ही स्पष्ट हो जायेगा कि हमारी प्रत्येक की आत्मा अरिहन्त सिद्ध के समान है। इस प्रकार सम्यक् बोध होने के वाद प्रत्येक मनुष्य के अन्तर मे "मुझे अरिहन्त और सिद्ध तुल्य वनना है" यह दिव्य भावना जागृत हो एव तदनुरूप साधना मे उसका जीवन समर्पित वने, तव अशाति की स्थिति उसके जीवन मे कभी भी प्रवेश नही कर सकेगी।

अशाति के झूले मे झूलते हुए अधिकाश व्यक्ति शाति प्राप्ति के उपाय के खोजी बने हुए हैं, वे चाहते है कि हमे कोई ऐसा मत्र मिल जाय, जिसको आजमाने से हमारा जीवन शातिमय वन जाय, पर वे नही जानते कि शाति का सृजन करने वाला मत्र कौनसा है ? दुनिया का सर्वश्रेष्ठ मत्र नवकार है। पर यह ध्यान रखना है कि अन्दर मे यदि विषय-कषाय की आग जलती रहे, और ऊपर से मत्र का जाप करते रहे, तो उससे कभी शाति नही मिल सकेगी।

एक रूपक है—एक भाई महाराज के पास गया, और अपनी समस्या का समाधान करने के लिए कहा, तव महाराज ने कहा भाई ! तुम जिस समस्या का समाधान चाह रहे हो, मैं उसका समाधान कर सकता हूँ। लेकिन मैं पूछता हूँ कि इस समस्या के समाधान के बाद कोई दूसरी समस्या तो नही उठेगी। तो वह बोला, उठेगी और फिर उसका समाधान करने के लिए आऊँगा ! तव योगी ने समझाया इससे तो अच्छा है कि तुम सभी समस्याओ का समाधान कैसे किया जाय, यही जानलो तो फिर तुम अपनी समस्याओ का समाधान स्वय ही कर सकोगे। अधे को एक स्थान से दूसरे स्थान से जाने के लिये बार-बार सहारा देने की बजाय उसके आँखें लगादी जाय तो वह स्वत ही चल लेगा। वैसे ही तुम समस्या के समाधान का मूल ही पकड लो और वह है शरीर के भीतर मे रहने वाली आत्मा की सम्यक् निर्णायिक शक्ति।

अध्यात्म जीवन मे अपना चरण क्षेप करो, यह मानकर चलो कि हर आत्मा मे अनन्त ज्ञान शक्ति है, पर वह ज्ञान चेतना ज्ञानावरणीय कर्म से आवृत्त है। इससे ही वह अपनी ज्ञान शक्ति का रसपान नही कर पा रहा है, पर जैन दर्शन मानता है कि बन्धन की निर्मात्री आत्मा है तो बन्धन को तोडने वाली भी आत्मा ही है। अत. आत्मा सत्पुरुषार्थ के माध्यम से बन्धन से मुक्ति की प्रक्रिया को समझकर अपने आवृत्त ज्ञान को अनावृत्त करने का प्रयास करती है, तो उसके जीवन की समस्त समस्याओ का समाधान हो सकता है। वह अनन्त शाति की अभिव्यक्ति कर सकती है, कारण कि केवलज्ञान पाने की क्षमता प्रत्येक मुमुक्षु आत्मा मे है।

प्रभु महावीर का गरिमामय जैन धर्म हमे वता रहा है कि हमारे भीतर भी महावीरत्व छिपा हुआ है। उसे सद्प्रयत्नो से, सयम निष्ठ आचरण से

उजागर कर सकते हैं, उस महावीरत्व को उजागर करने मे सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान माता, पिता एव गुरु का होता है, पर आज के माता-पिताओ की स्थिति बडी विचित्र होती जा रही है। जब मैं अमरावती से राजस्थान की ओर विहार कर रहा था, तब बीच रास्ते मे एक ऐसा गाँव आया, जहाँ—गोचरी के घर बहुत कम होने से ज्यादा रुकने का प्रसग नही बना, वहाँ से जल्दी ही विहार कर दिया, जो लोग पहुँचाने के लिये आये थे उनमे एक १२, १३ वर्षीय बालक भी था, जिसके पिताजी ने कहा—म० सा० इस बालक को आप अपने साथ ले जाओ और दीक्षा दे दो। तब मैंने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कुछ सोचा और पूछा कि आप इतने उदार कैसे बन रहे हैं, जिससे इस नन्हे से बच्चे को दीक्षा देने के लिये तैयार हो गये ? तब उन्होने कहा कि यह लडका बडा नटखट उद्दण्ड एव चचल है, कभी तो मेरे ऊपर और कभी अपनी माँ के ऊपर भी यह हाथ उठा लेता है। तब मैंने पूछा कि—कभी आप पति-पत्नी मे भी लडाई होती है क्या ? तब वह बोला हाँ कभी-कभी हो जाती है। तब मैंने कहा आपके ही सस्कारो का परिणाम है कि बच्चा उद्दड बन गया है। जब तक माता-पिता नही सुधरेंगे, तब तक बच्चे को सुधारना व्यर्थ है। शिशु जीवन को सौम्य बनाने के लिये माता-पिता के सुन्दर कर्तव्य ही बच्चो मे सस्कार का रूप लेते हैं। **जीवन दीप की ज्योति प्रज्वलित रखने के लिये संस्कार स्नेह (तेल) का कार्य करता है।** शिशु जीवन मे पडे सुन्दर या असुन्दर प्रभाव उसके पूरे जीवन को बनाने या बिगाडने के उत्तरदायी होते है। **संस्कार बीज है जीवन वृक्ष को पल्लवित करने के लिये।** बालक को जन्म देने मात्र से ही माता-पिता के कर्तव्य की इतिश्री नही हो जाती, वरन् उसके जीवन को सुसस्कारित बनाने का उत्तर-दायित्व भी उन्ही पर है। शैशव मे ही उदारता, वीरता, विनम्रता, धार्मिकता का गुण उसे माता के दूध के साथ मिलते रहना चाहिये। माता चाहे तो अपने बालक को कर्ण या भामाशाह बना सकती है। बालक को महावीर या भरत बनाना भी माता के हाथ मे ही है। और चूहे की खड़खड़ाहट मे घर छोडकर भाग जाने वाला बुजदिल बनाना भी माता के हाथ मे है। ब्रह्मचर्य के प्रज्ञापु ज से दीप्तिमान भीष्म भी उसे माता बना सकती है, और रावण बनाना भी उसी के हाथ है। बालक के जीवन पर एक सुशिक्षिता माता जो प्रभाव डाल सकती है, वहाँ सौ मास्टरो का प्रयास भी उसमे असफल रहेगा। माता का वीरत्व बालक को विश्व-विजयी बना सकता है। बन्धुओ ! जो बात मैं आपको बतला रहा था, उस नटखट बालक को दीक्षा देने के लिये कहने वाले पिता को मैंने कहा कि "ऐसे बच्चे को आप हमे देना चाहते है, यह यहाँ आकर भी क्या करेगा, कही गुस्से मे आकर हमारे पात्रे फोड बैठेगा।" तो वह बोला—आप तो उसे सुधार सकते है। तो मैंने कहा सुधार सकते हैं, पर कठिनाई यह है कि साधना के लिए तो सबसे पहले स्वभाव मे सौम्यता आना जरूरी है।

साधना मे बढने वाले जिज्ञासुओ को चाहिये कि आज से वे अपनी आत्म

साधना मे विशेष रूप से तल्लीन बन जाय। आत्मा के कर्म कलिमल को प्रक्षालित करने का सुन्दर अवसर प्राप्त हो गया है। सत-सतियो का समागम एव वीर-वाणी का अनवरत प्रवाह पुण्यशाली पुरुषो को ही मिलता है, ऐसे दुर्लभ अवसर को सार्थक बनाना है।

आज चातुर्मासिक पक्खी के प्रसग से सत-सतियाँ जिन विशेष नियमो मे आबद्ध हो जायेगे, उनका चातुर्मास पर्यन्त पालन करेगे। पक्खी की दृष्टि से आपको यह चितन करना चाहिये कि सत-सती वर्ग तो वर्षा ऋतु के कारण अपनी सारी प्रवृत्तियो मे कितनी यतना बरतते है, अपने सयमी-जीवन को सुरक्षित रखने के लिये। वहाँ आप श्रावक-श्राविकाओ को भी "अहिसा परमोधर्म" का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये। रात्रि भोजन करने वाला व्यक्ति कभी-कभी अपने जीवन को भी समाप्त कर देता है। अत रात्रि भोजन नही करना चाहिये। कच्चा पानी, जिसके अदर सात प्रकार के जीवो की नियमा बताई है। वे सात प्रकार के जीव ये है—पानी का मूल जीव, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पचेन्द्रिय, लीलन फूलन के जीव तथा समुर्च्छिम का जीव अत पीने के प्रसग से कच्चा पानी चातुर्मास मे काम मे नही लाना चाहिये। धोवन पानी पिये जो हर क्षेत्र मे सुलभता से मिल सकता है। सिर्फ विवेक रखने की आवश्यकता है। सचित पदार्थों का भी बनती कोशिश त्याग करना चाहिये। इस चातुर्मासिक अवधि मे ब्रह्मचर्य व्रत का सद् अनुष्ठान जीवन मे अपनाना चाहिये तथा परिग्रह वृत्ति का सकोच करना चाहिये। पुद्गलो से ममता हटाकर आत्मोन्मुखी बने। क्रोधादि चार कषाय, अनन्त ससार वर्धक है। शास्त्रकारो ने कहा है।

"सिंचन्ति मूलाइ पुणअब्भवस्स"

ये कषाय भव-भवान्तरो के मूल का सिंचन करने वाले है। इनको जितनी मात्रा मे जीतने का प्रयास करेगे, उतनी ही आत्मिक शक्तियो का अभिवर्धन होगा। बनती कोशिश असत्य वचनो का प्रयोग नही करना, किसी को धोखा नही देना। अपनी श्रद्धा कैसी है? इसका विचार करना और सुश्रद्धा को मजबूत बनाना। इन चन्द बातो को आप चिन्तन मनन के साथ आत्मलक्ष्यी बनकर जीवन मे अपनावे तो आपके लिए चातुर्मास की सार्थकता सिद्ध होगी।

चातुर्मास काल मे साधु-साध्वी वर्ग को एक स्थान पर रहने का यही उद्देश्य है कि जीवो की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए आत्म आराधना मे तन्मय वनकर आध्यात्मिक जीवन की साधना सम्यक् रूपेण कर सके। आध्यात्मिक जीवन की धार्मिक खेती को पनपाने का यह सौम्य प्रसग है, आध्यात्मिक जीवन की खेती अच्छी तरह करने के लिये आप कटिवद्ध वन जाय। चाहे कोई आपको कितना ही उत्तेजित करे, पर आप अपने क्षमा गुण से विचलित न होवे। चाँटा

का उत्तर चाँटे से नही देवे, यह बात आपके जीवन को आदर्शमय वनाने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। रतलाम मे चातुर्मास का प्रसग आया, वहाँ सुनने को मिला कि व्याख्यान मडप मे व्यवस्था करने वाले भाई कन्हैयालालजी सा. वोथरा, जिनको एक भाई ने आवेश मे आकर भरी सभा के बीच चाँटा मार दिया। हालाकि वे स्वय स्वभाव के तेज वतलाते है, पर आध्यात्मिक वायु मडल का अनुपम प्रभाव कि उन्होने किसी भी रूप से कुछ भी प्रतिकार नही करते हुए हाथ जोडकर अपने क्षमा गुण का परिचय दिया। जीवन को सही ढग से जीने के लिये इस क्षमा को अपनावे।

बन्धुओ ! क्षमा से बढकर अपेक्षा से कोई तप नही है। आप अन्य कुछ भी नही कर सके तो कम-से-कम क्षमा-वृत्ति का अधिकाधिक अपने जीवन मे विकास करने का लक्ष्य बनावे। क्रोध का निमित्त उपस्थित होने पर क्षमा के गुणो का चिंतन करने से क्रोध का निग्रह हो सकता है। क्षमा अमृत की धारा है जो क्रोध के विष को समाप्त कर देती है, अन्त करण को शाति से आप्लावित कर देती है। हमारी चित्तवृत्तियो को स्वस्थ बनाये रखती है। अत. इस गरिमामय चातुर्मासिक अवधि को क्षमा गुण के विकास के साथ सुसफल बनावे, इन्ही मगलमय शुभ भावनाओ के साथ—

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

चातुर्मासिक चतुर्दशी
१-७-८५, सोमवार

२ | जिनवाणी को समझें और स्वीकारें

आत्म-पवित्रता के लिए वीतराग देव का स्मरण मनो-मस्तिष्क मे लेकर उनके द्वारा प्रवाहित ज्ञान-गगा मे अवगाहन करने का सुप्रसग चल रहा है। यह अमूल्य जीवन और दुर्लभ मानव जन्म, आत्म स्वरूप की अवाप्ति के लिए अत्युत्तम है।

लक्ष्य निर्धारण करके लक्ष्य को साधने के लिए साधना के मार्ग विषयक चिन्तन, अतीव अपेक्षणीय है। साध्य का स्वरूप समझने हेतु प्रभु ने नय और निक्षेप का विधान किया है। साध्य ही नही वरन् साधना मे प्रगति हेतु भी नय और निक्षेपो का विधान अति आवश्यक है। नयो के मूल सात भेद है—जैसे १—नैगम नय, २—सग्रह नय, ३—व्यवहार नय, ४ --ऋजु सूत्र नय, ५—शब्द नय, ६—समभिरूढ नय एव ७—भूत नय, ये दार्शनिक दृष्टिकोण से हैं। सक्षिप्त मे नय के दो ही भेद बताये हैं—निश्चय नय, व्यवहार नय, अर्थात्—द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय। उनमे प्रारम्भ के तीन नय द्रव्यार्थिक नय की कोटि मे लिये जाते हैं, अवशेष चार नय पर्यायार्थिक की कोटि मे गिने जाते हैं, द्रव्यार्थिक नय मे जो सग्रहनय है, उसे अपेक्षा से निश्चय नय भी कहते हैं और व्यवहार नय को व्यवहार नय मे से लिया जाता है। आगे के नय पर्यायार्थिक नय मे आ जाते है, यह एक अपेक्षा है। दूसरी अपेक्षा से सातो नय व्यवहार भी है और निश्चय नय भी हैं, क्योकि गुणपर्यायवद् द्रव्य को सभी नय ग्रहण करते हैं। जो गुण-पर्यायवद् द्रव्य है, वह शाश्वत है, अतएव वह निश्चित ही नित्य है। इस दृष्टि से सातो सुनय निश्चय नय माने जाते हैं, और उसका जब पर्याय की दृष्टि से विवेचन किया जाता है तब उस विवेचना मे सातो नयो को व्यवहार नय के साथ बतलाया जाता है। जिससे सातो नय व्यवहार नय मे भी कहे जाते है।

जिस प्रकार विश्व की प्रत्येक वस्तु द्रव्य और पर्याय से युक्त होती है, वस्तु मे से द्रव्य और पर्याय को त्रिकाल मे भी अलग नही किया जा सकता, उसी प्रकार वस्तु के यथा तथ्य विवेचन करने मे निश्चय नय और व्यवहार नय को अलग-अलग नही किया जा सकता, जिस प्रकार एक सिक्के के दो पहलू होते हैं, उसी प्रकार हर वस्तु की विवेचना मे निश्चय नय और व्यवहार नय दोनो पहलू अनिवार्य है। आज के कई बुद्धिवादी कहलाने वाले व्यक्ति केवल निश्चय को ही लेकर चलते है, उनकी अवधारणा है कि व्यवहार की कोई आवश्यकता नही है।

निश्चय ही वस्तु के यथातथ्य स्वरूप को स्पष्ट करता है, उनका यह मानना सत्य नही है। जिस प्रकार एक ही तरफ से मुद्रांकित सिक्का खोटा माना जाता है और बाजार मे नही चलता है, उसी प्रकार केवल निश्चय नय से मुद्रांकित नय का सिक्का खोटा होता है और विश्व की वस्तु विवेचना मे यथार्थ रूप मे खरा नही उतरता।

जिस प्रकार रथ के दो पहिये होने पर रथ चलता है, दिन रात से समय का विभाग किया जाता है, उसी प्रकार निश्चय और व्यवहार से वस्तु स्वरूप की विवेचना की जाती है। इसी प्रकार सातो नय भी परस्पर सापेक्ष है, उसमे किसी भी एक नय को निरपेक्ष करने पर और दूसरे नय को मान लेने पर वे सुनय न रहकर दुर्नय हो जाते है। इन दोनो मे से किसी एक का आग्रह करना दुर्नय है। और वह मिथ्यात्व की कोटि मे आ जाता है। अब मैं निश्चय और व्यवहार का विस्तृत विवेचन न कर सक्षेप में इतना ही कहना चाहूँगा कि ये दोनो नय, वाणी से सत्य की किस प्रकार अभिव्यक्ति हो सकती है, इसका विधान करते है। प्रत्येक वस्तु अनत धर्मात्मक है, उन्हे किसी एक पहलू से नही समझा जा सकता। एकागी दृष्टि वस्तु को सही रूप मे देखने मे असमर्थ है, इसलिये जैन दर्शन मे नयो का विवेचन है। जैन दर्शन के नयवाद को ठीक ढग से समझ लेने पर समस्त विवादो का समाधान हो जाता है। नयवाद की यही उपयोगिता है।

अनेकान्तमय जैन दर्शन की आधारशिला इस नयवाद को, सम्यक् रूपेण समझने के लिये सम्यग्दर्शन की नितान्त आवश्यकता है। बन्धुओ! **"सद्धा परम दुल्लहा"** महामूल्यवान श्रद्धारूपी रत्न बहुत दुर्लभ है। जो वस्तु दुर्लभ होती है वह अनमोल एव महत्त्वपूर्ण होती है। नवतत्त्व प्रकरण मे बताया है कि "जो जीवादि तत्त्वो का यथार्थ मे ज्ञाता होता है, उसे सम्यक्त्व होती है। कदाचित् क्षयोपशम की तरतमता से कोई पूर्णरूप से उन तत्त्वो को नही जानता है, किन्तु उसको "तचेव सच्च नीशकज जिणेहि पवेयय" जो जिनेश्वर देव ने कहा है, वही सत्य है। जिनेश्वर भगवन्तो के वचन अन्यथा कदापि नही होते, ऐसी दृढ आस्था जिसको प्राप्त है, उसका सम्यक्त्व निश्चल है।"

जो आत्मा अन्तर्मुहूर्त भाव के लिए भी सम्यक्त्व का स्पर्श कर लेती है। उसका अनन्त ससार परिभ्रमण परिमित हो जाता है, अपार्ध पुद्गल परावर्तन से अधिक वह ससार मे परिभ्रमण नही करता, उसकी मुक्ति सुनिश्चित हो जाती है।

इस महिमामय सम्यक्त्व का प्रथम लक्षण "सम" है। जो गुण सम्यग्दृष्टि आत्मा मे अवश्य पाये जाते हैं, वे गुण सम्यक्त्व के लक्षण कहलाते हैं। सम्यग्दृष्टि

आत्मा "आत्मवत् सर्वभूतेषु" की दृष्टि को अपने जीवन मे प्रमुख रूप से स्थान देकर चलती है। वह यह मानती है कि जैसे सुख दु ख की अनुभूतियो का मैं अनुभव कर रहा हूँ वैसे ही सभी ससारी आत्माएँ सुख दु ख की अनुभूतियाँ करती है। अत जो दूसरो का व्यवहार मुझे अपने लिए अच्छा नही लगता है, वैसा व्यवहार मैं अन्यो के साथ कभी नही करू । 'सम' लक्षण जब अन्तर चेतना मे विकसित हो जाता है तो जीवन समुज्ज्वल बनते कोई देरी नही लगती।

सम्यक्त्व का दूसरा लक्षण है 'सवेग' जिसका तात्पर्य है, सम पूर्वक वेग अर्थात् गति। अपने जीवन की गति को सौम्य बनाना चाहते हो तो सर्व प्रथम अपने जीवन मे समता भावो का सृजन करे। मन ड्राईवर है, शरीर रूपी गाडी हाकने के लिये। मन से गति हो रही है, पर यह विचारना है कि मन की यह गति समभाव से हो रही है या विषम भाव से हो रही है ?

जब मैं सवाईमाधोपुर मे गया, वहाँ लगभग सवा सौ घर थे, बहुत से सामायिक, पौषध वगैरह हुए। व्याख्यान के प्रसग से मैंने जब वहाँ 'सम' शब्द की व्याख्या की, तब एक परिवार जहाँ देवरानी, जेठानी के बीच झगडा हो रहा था, मेरे कहने से भाई तो परस्पर झगडा समाप्त करने के लिए तैयार थे, पर उनकी पत्नियाँ सहमत नही हो रही थी, जब मैंने उन बहिनो को समझाया तब जेठानी ने कहा कि मैं तेले की, अठाई की तपस्या कर सकती हूँ, पर देवरानी के घर नही जाऊँगी। तब मैंने समझाया कि तुम तेला क्या मासखमण भी करलो, परन्तु जब तक प्रत्येक आत्मा को अपनी आत्मा के समान देखने की भावना व सम्यक्त्व का भाव नही बनेगा, तब तक तुम्हारी तपस्या का विशेष कुछ भी फल नही मिलने वाला है। 'उत्तराध्यन' सूत्र मे प्रभु महावीर ने बताया है कि—

> "मासे मासे जो बालो, कुसग्गेण तुभुंजई ।
> न सो सुयक्खाय धम्मरस, कल अग्घइ सोलसिं ।।"

अर्थात् "जो बालक अर्थात् अज्ञानी जीव प्रति मास तपश्चर्या करके पारणे मे कुशाग्र-मात्र आहार करता है, वह तीर्थंकर देव के कहे हुए सुविख्यात धर्म की सोलहवी कला को भी प्राप्त नही होता है।"

सम्यक्त्व विहीन तपस्या का कुछ भी महत्त्व नही है। और समभाव की सर्जना के बिना सम्यक्त्व की स्थिति जीवन मे नही रह पाती है। यह सुनकर वह बहिन जल्दी से सरल भावो के साथ सारा झगडा समेट लेती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक समभाव की वृत्ति जीवन मे नही आयेगी, तब तक सम्यक् वेग की स्थिति भी जीवन मे प्राप्त नही कर सकोगे। आत्म शक्ति, जो तीन योग मे सम्बन्धित है। जब मन, वचन और काया मे सम्यक् वेग आजाएगा

तो आत्म-शक्ति की अनूठी अपूर्व उपलब्धि हो जायेगी। मिथ्यात्व को जड मूल से उखाडने के लिए सवेग अति आवश्यक है। विभाव वृत्तियो से जितनी विषमता जीवन मे व्याप्त है, उसे स्वभाव वृत्तियो मे आकर समता मे बदलने का यह दुर्लभ मनुष्य जन्म का भव्य प्रसग मिला है।

जिसमे ज्ञान नही, उपयोग नही वह जड तत्त्व है, जो जड है, उसमे चेतना नही होने से राग-द्वेषादि कुछ भी वृत्तियाँ नही होती है, राग-द्वेष सकल्प-विकल्प की स्थितियाँ चैतन्य मे बनती है। वह चैतन्य अपने-अपने निज स्वरूप को छोड-कर राग-द्वेषादि विभाव वृत्तियो मे बह रहा है। उसे विभाव से हटाकर स्वभाव मे लाना है। जब आत्मा स्वरूप मे पूर्ण विकसित हो जाती है, अर्थात् वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन जाती है, उस अवस्था मे, उसमे, राग-द्वेष नही रहते हैं। वह चेतना राग-द्वेष रहित बन जाती है। वर्तमान मे इस ससार मे रह रहे व्यक्ति बध से जकडे हुए हैं और दु ख भोग रहे है।

यह चतुर्गति रूप ससार एक तरह से जेल ही है। जहाँ यह जीवात्मा कर्म बेडियो मे बधी विविध यातनाएँ सहन कर रही है, पर आज भौतिक-ऐश्वर्य-विलास को प्राप्त मानव कहाँ मान रहा है कि मैं जेल मे हूँ ? यही नही अनन्त शक्तिमय आत्म स्वरूप से अनभिज्ञ बन, राग द्वेष आदि वृत्तियो को विकसित करता हुआ इस पवित्र आत्मा को ससार रूपी जेल मे लम्बी स्थिति तक रखने का कार्य कर रहा है। यह मानकर चलिये कि राग, द्वेष, आसक्ति, मोह आदि-आदि जो आत्मा को मलिन बनाने वाली विभाव-वृत्तियाँ है, उनसे यह आत्मा जितनी-जितनी परे हटती है—उतनी-उतनी अपने निजी आनन्दमय स्वरूप की अभिव्यक्ति प्राप्त करती है। जितनी-जितनी त्याग वृत्ति जीवन मे पनपती है, उतनी-उतनी बधन से आत्मा मुक्त होती है।

तपश्चर्या शरीर से ममत्व हटाने पर ही हो सकती है। जब तक शरीर पर मूर्च्छा भाव है, तब तक आप तपश्चर्या मे अपना कदम आगे नही बढा सकोगे। आज कई व्यक्ति स्वय तो आसक्ति को नही छोडते पर जो अन्य आसक्ति छोड़कर तपोमार्ग मे आगे बढना चाहते हैं, उसमे भी बाधक बनते है। मैं आपसे यही कहना चाहूँगा कि आप तपस्या न भी कर सके, तो कोई बात नही, पर अन्य-अन्य भी बहुत सी ऐसी बातें है, जिनसे आसक्ति हटाकर अपनी आत्मा को कर्म से हल्का बना सकते हैं। जैसे व्याख्यान स्थल मे हो तो जीमन की आसक्ति को छोडे, स्वधर्मी अन्य भाइयो को भी बैठने का बराबर स्थान देवे, किसी के द्वारा धक्का लग जाय तो क्षमा गुण प्रगट करे।

आज के लोग, किसको महत्त्व दे रहे हैं, भौतिक सम्पत्ति को या आध्या-त्मिक सम्पत्ति को ? पैसो का मूल्याकन करना है, अथवा भगवान् की आज्ञा का

मूल्याकन करना है ? यदि आज आपके आमदनी ज्यादा होने वाली है और आप धार्मिक स्थल मे आने के समय मे अर्थात् व्याख्यान मे आने के समय मे भी दुकान मे बैठे हो तो किसका आप मूल्याकन कर रहे है ? पैसो का या आत्मिक भाव की आराधना का ? आपकी आत्मा ऐसी वीर वन जाय कि पैसो से, भौतिकता से, आसक्ति छोड सवेग की स्थिति से मोक्ष प्राप्ति के तीव्र अभिलाषी बनकर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो जाय ।

आत्म रमण रूप सामायिक का महत्त्व भी समझे । आपको ज्ञात होगा कि जब राजा श्रेणिक ने पूर्व निबद्ध नरक के आयुष्य को विफल करने का उपाय पूछा तब भगवान ने कहा कि--यदि तुम श्रमणोपासक पूणिया श्रावक की एक सामायिक खरीद सको तो नरक से अपना बचाव कर सकते हो । दूसरे दिन प्रात काल ही राजा श्रेणिक पूणिया श्रावक के आगन मे पहुँचा । राजा का बिना किसी कारण और बिना निमन्त्रण अपने आगन मे देख पूणिया श्रावक हर्ष विभोर हो उठा । प्रसन्नता के साथ राजा के आगमन को प्रश्न चिह्न बनाये खडा रहा । पूणिया श्रावक की प्रश्नायित आँखो पर गौरव और याचना भरी एक निगाह डालते हुए श्रेणिक महाराज ने पूछा "क्या तुम प्रतिदिन सामायिक करते हो ?" पूणिया श्रावक ने प्रत्युत्तर दिया कि—हाँ राजन् ! **सामायिक मेरी जीवन यात्रा का प्रथम चरण है ।**

तब श्रेणिक महाराज ने कहा—तुमने तो बहुत सामायिके की है और कर रहे हो । क्या तुम मुझे अपनी एक सामायिक दे सकते हो ? यह सुनकर पूणिया श्रावक कहने लगा– स्वामिन् । मेरे पास जो कुछ है, वह आपका ही है, मैं आपके किसी काम आ सकू तो उससे बढकर और क्या बात होगी ? और जब श्रेणिक महाराज एवं पूणिया श्रावक लेने देने के लिए तत्पर हो गये । तब भगवान् महावीर से सामायिक की कीमत पूछी, तो भगवान् ने फरमाया कि—राजन् ! तुम्हारे भण्डार मे कितनी सम्पत्ति है ? सम्राट् ने प्रत्युत्तर दिया—भगवन् ! बावन डूंगरिया खडी हो जाय इतनी सम्पत्ति है, तब भगवान् ने कहा कि— राजन् ! आपकी यह सम्पत्ति तो पूणिया श्रावक की सामायिक की दलाली के लिये भी पर्याप्त नही है । तो फिर सामायिक का मूल्य कहा से दोगे ?

बन्धुओ ! सामायिक की दलाली का महत्त्व तो आप समझ ही गये होगे, तो फिर विचार करिये कि सामायिक का कितना क्या महत्त्व है ? आप स्वय अनुमान लगा सकते हैं । आप सामायिक की आराधना करते हुए वीतराग वाणी का श्रवण करे, और इस बात का ज्ञान करें कि भगवान् की किस विषय मे क्या-क्या आज्ञाएँ है और उसका मूल्याकन कितना कर रहे हैं ?

भगवान् ने 'स्थानाङ्ग' सूत्र मे वताया है कि सयमी वस्त्र क्यो रखता है ? इसके तीन कारण है, जैसे कि इस विषयक मूल पाठ है—

"तिहिं ठाणेहि वत्थ धरेज्जा, तजहा हिरिवत्तिय,
दुगु छावत्तिय, परिसहवत्तिय"

अर्थात् तीन कारणो से साधु साध्वी वस्त्र को धारण करे, जैसे—१ लज्जा के कारण, २. लोग जुगुप्सा न करे इसलिए तथा ३ शीत आदि परिषहो को रोकने के लिये। (स्थानाङ्ग सूत्र, तीसरा स्थान, तीसरा उद्देशक)

बन्धुओ! साधु जो वस्त्र ग्रहण करता है, उसमे मैल तो हो ही जाता है, और यदि उसमे जू पड जाय तो उसकी सुरक्षा करना, खून पिलाना इत्यादि सारी यातना की वृत्ति भगवान् ने बताई है, पर जू आदि न पडे इसके लिये वस्त्र धोवन का, वह वस्त्र किन पात्रो मे धोये इसके लिए साधु को विवेक बताया है। साधु को वस्त्र लेने के तीन कारणो मे से एक कारण—न दुगु छा, जुगुप्सा न करे, यह भी बतलाया है, जब जुगुप्सा मिटाने के लिए वस्त्र का विधान प्रभु ने किया, तो जो वस्त्र पहना जा रहा हो यदि वह इतना मलिन एव दुर्गन्धमय हो जाय कि जिससे जूए पडने लग जाय। प्रथम महाव्रत मे दोष का प्रसग आ जाय, लोग दुगु छा करने लगे तो फिर क्या यह भगवान् की आज्ञा होगी? नही। अत वस्त्र भी ऐसा हो कि न लोग दुगु छा करे और न ही वह चाक चिक्य से युक्त हो। ऐसा वस्त्र पहनना भगवान् की आज्ञा मे है, इस आज्ञा को पालने के लिए यदि वस्त्र इतना मलिन हो रहा हो कि उसमे फूलन या जूए पडने की सम्भावना है तो साधु विवेक के साथ उसे धो ले, ताकि प्रथम महाव्रत की सुरक्षापूर्वक भगवान् की आज्ञा का भी पालन हो जाय।

महाप्रभु ने साधु को तीन तरह के पात्र रखने का भी विधान किया है।

"कप्पइ णिग्गथाण वा, णिग्गथीण वा तओ पत्याइ, धारित्तए वा,
परिहस्तिए वा, तजहा लाउयपाए वा दारुयपाए वा महियापाए वा॥"

अर्थात् साधु और साध्वियो को तुम्बी के, काष्ट के और मिट्टी के बने हुए तीन प्रकार के पात्रो को ही ग्रहण करना और उनका उपयोग करना कल्पता है। (स्थानाङ्ग सूत्र, तीसरा स्थान, तीसरा उद्देशक)

अत मिट्टी का बर्तन जो पुराना है, गृहस्थो के अब काम का नही है, उसे लेकर वस्त्र धोवन योग्य बना कर उसमे साधु यदि विवेक के साथ वस्त्र धोता है, तो वह भगवान् की आज्ञा की आराधना करता है।

यह तो आपको जानकारी के लिए साधु जीवन सम्बन्धी बात भी बतला गया हूँ। अगर आप लोगो को पूर्ण आत्म-प्रकाश उजागर करना है तो जैसे—आप लोग शरीर की बाह्य मिट्टी को हटाने के लिए स्नान करते हो, साबुन लगाते हो, उसी प्रकार आत्मा को साफ करने के लिये सामायिक की स्नान

करिये। ध्यान का साबुन लगाइये। यह स्नान महत्त्वपूर्ण है। इससे आपको आत्मा की उज्ज्वलता प्राप्त हो सकती है। आप यह हर समय ध्यान रखे कि मैं इस प्रकार के चिन्तन के साथ सम्यक् श्रद्धा मे मजबूत रहते हुए जितना तप, त्याग, तिविहार, चौविहार, सामायिक, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, ध्यान कर सकूँ करूँ, इस प्रकार करने से आपकी आत्मा पवित्र बनेगी, जीवन सफल बनेगा।

बन्धन से मुक्त होने के लिए स्वदार-मर्यादा और परदार का त्याग एव परिग्रह वृत्ति को सकुचित करिये। सम्पत्ति की मर्यादा कर विवेकपूर्वक उस प्रतिज्ञा की परिपालना करना। कषाय पतला करने मे यत्नशील रहना, दान, शील, तप, भावना मे अधिक से अधिक अपनी आत्मा को जोडना। उत्तेजना वाचक शब्दो को सुनकर भी क्षमाशील बन क्षमा गुण का विकास करना, आत्मपोषक है, इसके लिए विशेष रूप से आप सभी को चेतावनी है।

चातुर्मास काल मे प्रत्येक भाई बहिनो को अत्यधिक उदारता का व्यवहार करना चाहिये। मेघकुमार के पूर्व भव का जीव हाथी, शशक का उदाहरण समक्ष रखकर हर आत्मा को साता पहुँचाये। ज्ञान, दर्शन चारित्र की वृद्धि के लिए चातुर्मास काल प्रारम्भ हो चुका है। अत रत्नत्रय की आराधना मे सलग्न हो जाये।

प्रत्येक आत्मा निश्चय और व्यवहार दोनो नयो को सम्बन्धित करके अपनी आत्मोन्नति का लक्ष्य प्रमुख रूप से निर्धारित कर वीतराग भगवान् की आज्ञा की आराधना करेगी तो अवश्यमेव उस आत्मा के लिए वर्षावास के ये दिन सार्थक बनेंगे।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२-७-८५
मगलवार

३ ऐसे जियें

जिन आत्माओ ने, अनादि अनन्त कारण से आ रहे कर्मप्रवाह को अपुनर्भाव से व्यवच्छिन्न कर दिया है। विभाव मे भटक रही आत्मा के स्वभाव को अभिव्यक्त कर दिया है। चेतना का भौतिक स्वरूप प्रकट कर दिया है। जिनके ज्ञान मे लोकालोक हस्तामलकवत् स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। जिनके किसी भी प्रकार का राग-द्वेष अवशेष नही रहा है। मोह की दुर्भेद जडो को जिन्होने जड मूल से उखाडकर फेंक दिया है। विचारो के प्रवाह को सर्वथा रूप से सशोधित कर दिया है। ऐसी वीतराग दशा प्राप्त आत्मा का, भव्यात्माओ को प्रति समय स्मरण करते रहना चाहिये।

यह स्पष्ट सत्य है कि जिसका आकार मन मे बसाया जाता है, वह आदमी भी एक दिन उसी रूप मे बन सकता है। जिस प्रकार दर्पण के सामने जैसा बिम्ब होगा वैसा ही उसमे प्रतिबिम्ब पडता है। यदि सामने राक्षस का बिम्ब होगा तो दर्पण मे भी राक्षस का ही प्रतिबिम्ब पडेगा। इसी प्रकार जिस व्यक्ति का मन जिसके प्रति सर्वथा रूप से अनुरक्त होता है तो उससे उस व्यक्ति की आत्मा प्रभावित हुए बिना नही रहती है। ध्यान साधना का महत्त्व भी इसलिए है कि जिस साध्य को हमे पाना है उसका मन मे ध्यान किया जाय, मन को वह साध्य पाने के लिए मजबूत किया जाय, यदि मन उस साध्य को पाने के लिए मजबूत हो जाता है तो आत्मा की शक्ति मन से प्रवाहित हो मजबूत होकर वचन और काया मे भी परिणत होने लग जाती है। इसका आप व्यावहारिक अनुभव कर सकते हैं। कोई भी कार्य यदि आपको करना है तो उसका नक्शा पहले मन मे तैयार होगा। जब मन मे अच्छी तरह नक्शा जम जायेगा, तभी अस्खलित रूप से, उसी मन के विचारो के अनुरूप वचन प्रयोग होगा और वही काया मे भी परिणित होने लगेगा।

जब आज के वैज्ञानिक मन की कोशिश से हजारो मील दूर रहने वाले व्यक्ति को प्रभावित कर सकते है तो क्या उस शक्ति से आत्मा प्रभावित नही होती ? बल्कि यो कहना चाहिए कि दूसरा व्यक्ति बाद मे प्रभावित होगा, पहले उसकी खुद की आत्मा प्रभावित होगी। जिस मालिक के लिए नौकर फूल तोडकर ले जा रहा है, वह मालिक तो फूल को हाथ मे आने पर ही सू घ सकेगा, पर उसके पहले वह नौकर सुगन्ध को ले लेता है। वैसे ही हमारे विचारो

से सबसे पहले हम ही प्रभावित होते हैं। यदि हमारे विचार अच्छे होगे तो हमारा चैतन्य देव भी पवित्र रहेगा और हमारे विचार बुरे होगे तो हमारी चेतना भी बुरी होगी।

जिस प्रकार क्रोध करने वाला व्यक्ति जिस पर क्रोध कर रहा है, गुस्से मे उबल कर अनर्गल बोल रहा है। वह व्यक्ति उस सामने वाले व्यक्ति के क्रोध को शात भाव से सहन कर लेता है, तो उसका तो कुछ नही बिकता, बल्कि उसके तो शक्ति सचित होती है पर क्रोध करने वाले व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी तरफ से हानि होती है।

आज के युग मे मन की धारणाओ से होने वाले अनेक प्रयोग सामने आ चुके हैं। वैज्ञानिको ने प्रत्यक्ष कर दिखला दिया है कि मन के प्रयोग से कैसे विचित्र कार्य सघटित किये जा सकते हैं। चेकोस्लावाकिया की राजधानी प्राह के अन्दर घटित बेटिस्लावकापका का घटनाक्रम पढने को मिला था। उसमे बतलाया गया है कि वह 'प्राह' के बाहर बैठकर सकल्प करके वृक्ष पर बैठे पक्षियो को नीचे गिराकर खत्म कर देता था। जिसके इस प्रयोग को देखने व जानने के लिए योरोप के लगभग २०० वैज्ञानिक उसके पास आये थे। उन्हें देखकर बडा आश्चर्य हुआ था, खोजने पर ज्ञात हुआ कि वह व्यक्ति अपनी सकल्प शक्ति से उन पक्षियो की प्राण ऊर्जा को खेच लेता था, इस प्रकार उन्हे खत्म कर देता था। सकल्प शक्ति के ऐसे अनेक परिणाम सामने आये है।

आगम के धरातल पर तो मन के विचारो का प्रभाव किस प्रकार पडता है, यह स्पष्ट ही है। प्रसन्नचद्र राजर्षि के विचारो द्वारा आने वाला उतार-चढाव इसका पुष्ट प्रमाण है। तदुलमत्स्य द्वारा हिंसक मनोवृत्ति से होने वाली सातवी नरक के बधन की स्थिति भी विचारो के परिणाम को स्पष्ट करती है। इस प्रकार जब अशुभ विचार अपनी आत्मा को एव बाहरी आत्माओ को प्रभावित करने मे इतने समर्थ हैं तो शुभ विचार अपनी आत्मा को शुभ रूप मे प्रभावित करने मे कैसे नही समर्थ होगे ? अवश्य समर्थ होगे।

बन्धुओ ! इसलिए मैं प्रार्थना के माध्यम से अपने आप मे प्रभु का स्मरण करने के लिए कह रहा था। जब स्वय की सकल्प शक्ति, महाप्रभु के स्वरूप की ओर नियोजित होगी और उधर ही निरन्तर लगती जायेगी तो एक न एक दिन वह परम स्वरूप को प्राप्त करने के लिए भी समर्थ हो जायेगी। जैसा कि नीतिकार कहते है कि—

"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी"

जैसी जिसकी भावना होती है, उसी रूप मे सिद्ध भी होती है। किन्तु जो आत्माए महाप्रभु के स्वरूप को स्मरण न कर इन्द्रियो की आसक्ति मे रत

रहती हैं, भौतिक तत्त्वो को ही महत्त्वपूर्ण समझ कर चलती है। ऐसी आत्माए कभी भी अपने आत्मिक स्वरूप को निखार नही पाती है। और जब तक आत्मा का भौतिक स्वरूप नही निखरता तब तक वह सही रूप मे सुखी भी नही बन सकती।

जीवन तो सभी जी रहे है पर जीना कैसे चाहिये इसका बहुत कम लोगो को भान होता है। वे तो केवल एक हेबिट से जी रहे है। खाना,खाना है,इसलिए खा लेते है, पानी, पीना है इसलिए पी लेते है, सोना है इसलिए सो लेते है किन्तु इन सब कार्यो को किस प्रकार किया जाय, इसे करते हुए मनोयोग की स्थिति कैसी होनी चाहिये। इन सब बातो की ओर आज के मानव का ध्यान बहुत कम जाता है। इसी का परिणाम यह है कि वह शारीरिक, मानसिक एव आध्यात्मिक किसी भी ढग से सुख की वास्तविक खोज नही कर पाता।

सुख से जीने के लिए सबसे पहले अपने विचारो को परिष्कृत करने की नितान्त आवश्यकता है। जब पानी की टकी मे रहने वाला पानी फिल्टर होगा, तभी नलो के माध्यम से आने वाला पानी भी साफ स्वच्छ आयेगा। यदि टकी का पानी साफ नही है तो नलो मे आने वाले पानी मे तो स्वच्छता आ ही नही सकती। क्योकि नलो मे वही पानी आता है, जो टकी मे है। ठीक इसी प्रकार जब मानसिक जीवन स्वच्छ, नैतिक एव धार्मिक नही बनता तब तक व्यावहारिक जीवन मे नैतिकता, प्रामाणिकता एव सुख की वास्तविक स्थिति नही आ सकती। यदि ऊपरी सुख की स्थिति परिलक्षित भी हो तो वह चमकता हुआ काच का टुकडा जो हीरे का आभास करा देता है, उसी रूप मे ही वह बाह्य स्थिति, सुख का आभास कराने वाली होगी। इसलिए भव्यात्माओ को ऐसी बाहरी सजावट से हटकर अन्तर की सजावट को करने के लिए प्रयास करना चाहिये। सुख से जीने के लिए सबसे पहले मानसिक सतुलन आवश्यक है।

आज के कई भाई सुख पाने के लिए धन सपत्ति को महत्त्वपूर्ण समझते है, वे धन से ही सुखपूर्वक जीने का प्रयास करते हैं। पर उनका यह मानना निरीह भ्रान्ति भूल है। केवल धन से कोई भी व्यक्ति सुख से जी नही सकता। एक पशु जिसे यह ज्ञात है कि इस जमीन के नीचे करोडो की सम्पत्ति है। वह उसका सरक्षण करके भी चलता है। ध्यान भी रखता है कि कोई उसे उठाकर न ले जाय। किन्तु क्या वह पशु उस धन से सुख पा सकता है। शाति से जी सकता है ? कदापि नही। बल्कि उसके सरक्षण के लिए चिन्तित होने से और अधिक दु खी बन जाता है। यही हाल मानव का भी हो रहा है। वह भी धन-दौलत के पीछे बेतहाशा भागता हुआ नजर आ रहा है। उसे यही लग रहा है मैं धन पाकर शाति से जी सकू गा। पर जब पा लेता है तो उसे ज्ञात होता है कि जो मैं सोच रहा था, वह बिल्कुल गलत साबित हुआ। अत यह स्पष्ट है कि धन से सुख पाने के लिए भी मन को साफ करना होगा।

जीवन के किसी भी क्षेत्र मे जाकर जीने का प्रयास किया जाय, सभी जगह यह आवश्यक है कि मन का प्रयोग सही रूप मे हो। कहते है कि एक सन्यासी थे। जो सुबह शाम भोजन करते थे और दिन मे हल चलाया करते थे। ध्यान जप आदि वे कभी नही करते थे। उनकी यह स्थिति देखकर एक सुज्ञ व्यक्ति ने उनसे यह पूछ ही लिया कि आप यह सब क्या करते है ? सुबह-शाम भोजन कर लेते है और पूरे दिन खेत मे हल चलाते है। तो फिर आप सन्यासी कैसे ? यह सब तो गृहस्थ के कार्य है और वे ही आप करते है तो आप और हमारे मे अन्तर ही क्या रह जाता है।

सन्यासी उसकी बात को सुनकर मुस्कराये और शात भाव से बोले—हाँ भाई ! बाहरी दृष्टि से कोई अन्तर नही है और आत्मा की मौलिक दृष्टि से भी कोई अन्तर नही है, मैं भी भोजन करता हूँ और तुम भी भोजन करते हो, लेकिन मैं जब भोजन कर रहा होता हूँ तब मैं केवल भोजन ही करता हूँ और कुछ कार्य नही करता और जब मैं हल चला रहा होता हूँ तो मैं केवल हल चला रहा होता हूँ इसके अलावा और कुछ कार्य नही करता और जब मैं सो रहा होता हूँ तब केवल सोता हूँ, इसके अलावा कुछ भी कार्य नही करता हूँ।

तब वह सुज्ञ व्यक्ति बोला– हम भी तो यही करते है, दूसरे कार्य हम भी उस समय कहाँ करते है ?

तब सन्यासी ने कहा—विचार करो, जिस समय तुम भोजन कर रहे हो, उस समय जब तुम्हारा हाथ रोटी से साग को लेने के लिए कटोरी मे जाता है उस समय तुम्हारा ध्यान कहाँ जाता है ? और जब तुम उस ग्रास को मुँह मे रखकर चबाते हो तब तुम्हारा ध्यान कहाँ जाता है ? और जब तुम उसे पेट में उतारते हो उस समय क्या सोचते हो ?

यह सुनकर वह बोला—यह सब तो हमे ध्यान मे भी नही रहता कि कब रोटी तोडी, कब चबाई और कब पेट मे उतारी।

सन्यासी ने कहा बस यही तो अन्तर आता है। तुम्हारा ध्यान, जिस कार्य को तुम करने जा रहे हो उस ओर नही रह पाता। इसीलिए तुम साधना भी नही कर पाते।

साधना करने वालो को सबसे पहले व्यावहारिक जीवन को जीने के लिए अपना ध्यान व्यावहारिक कार्यो मे केन्द्रित करना होता है।

यह तो रूपक है, यह इस बात को भलीभाँति स्पष्ट करता है कि आप साधना का परिपूर्ण स्वरूप जो जीवन के लिए आवश्यक है, वह नही अपना सकते तो कम से कम गृहस्थ जीवन मे भी सही ढग से जीने के लिए मन मस्तिष्क

को सब से पहले तीव्र रोष अभिमान, छल-छद्म, लोभ आदि से हटाने का प्रयास करे। मस्तिष्क का सतुलन किसी भी हालत मे न खोये। जो भी काम करे, चाहे वह छोटा से छोटा भी क्यो न हो, उसे मनोयोग पूर्वक सपन्न करने का प्रयास करे, जिससे कि आपको सही ढग से जीने की कला प्राप्त हो सके।

मनोयोग से किये जाने वाला कार्य अच्छा होगा और साथ ही मन की साधना भी सधेगी और एक दिन वह इस जीवन और पर जीवन दोनो को पवित्र बनाने मे भी समर्थ हो जायेगी।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

३-७-८५
बुधवार

४ वेग हो संवेग का

सकल विश्व मे श्रेष्ठतम परम सिद्ध स्वरूप, यदि किसी का है तो वह परमात्मा का ही है। **परमश्चासौ आत्मा-परमात्मा।** सबसे ऊँची आत्मा अर्थात् गुणो से जो परिपूर्ण हो गई है, परम पद को प्राप्त हो गई है, वह आत्मा परमात्मा है। ज्ञानीजन सम्बोधित कर रहे है कि तुम मनुष्य जीवन मे रहकर ऐसी शक्ति प्राप्त करो कि तुम भी सत्पुरुषार्थ से अपनी आत्मा को परमात्मा बना सको। प्रत्येक आत्मा यही इच्छा रखती है कि मुझे परमात्मा पद मिले। परमात्मा का पद, भक्त को कोई प्राप्त करा सके ऐसी शक्ति किसो ससारी प्राणी मे नही है। भक्त स्वय ही स्व पुरुषार्थ से महान् बन सकता है। प्रत्येक मनुष्य को ऐसे महान् पद की प्राप्ति हेतु सद्पुरुषार्थ अपनाना अतिआवश्यक है। वह सबसे पहले इस जीवन मे समता की भूमिका अपनाकर वेग अर्थात मन मे उत्साह पैदा करके परम पद पाने के लिए सत्पुरुषार्थ मे लग जाय। अपने जीवन से सम्बन्धित जितनी भी क्रियाये है। उन सबमे विवेक रखकर आगे बढता जाए।

गौतम स्वामी ने प्रभु से पूछा—सवेगेण भते जीवे कि जणयई ? इस प्रश्न के उत्तर मे प्रभु ने यह सकेत दिया कि—**संवेगेणं अणुत्तरं धम्मं सद्धं जणयई।** सवेग से अनुत्तर धर्म की अवाप्ति होती है। जैसे—राष्ट्रपति के सिहासन पर बैठने की कोई इच्छा करता है, तो उसके योग्य पुरुषार्थ करना पडता है, जनता की सेवा करनी पडती है। तब कही जाकर उसे राष्ट्रपति पद मिलता है। वैसे ही आध्यात्मिक जीवन का राष्ट्रपति पद परमात्म पद है। उसे सत्पुरुषार्थ जगाकर तदनुरूप साधना करके हो प्राप्त किया जा सकता है। मन की क्रिया का हमारे पुरुषार्थ के साथ बहुत सम्बन्ध है। कभी-कभी रोष मे आकर भी मन की प्रतिक्रिया होती है, और कभी शात मन से भी। जैसे कि कभी कभी रोष मे आकर कोई व्यक्ति भूखा रह जाता है। तो उसमे तपश्चर्या का नाम भले दे दिया जाय पर वह क्रिया ससारवर्द्धक होती है। वैज्ञानिको का अनुमान है कि एक वार के क्रोध से दो पौड खून जल जाता है तथा अवशेष खून मे पॉइजन उत्पन्न हो जाता है। जिस पॉइजन का प्रयोग करने पर अनुमानत. ८० व्यक्तियो का खात्मा भी हो सकता है। क्रोध के आवेश मे कभी-कभी मनुष्य के ज्ञान तन्तु भी फट जाते है, जिससे वह लकवा जैसी भयकर व मरणात बीमारियो का भी शिकार हो जाता है, इस प्रकार शारीरिक हानि तो होती है पर मानसिक हानि भी कुछ कम नही होती है। क्रोध के आवेग से मन की कोमलता नष्ट हो जाती

है और वह कठोर बन जाता है । पर यदि मन का वह आवेग सवेग मे बदल जाय तो वही आत्मा अपना ससार परिमित कर लेती है । शास्त्रकारो का कहना है कि—

"कोहो य माणो य अणिग्गहीया, माया य लोभो य पवड्ढमाणा ।
चत्तारि ए ए कसिणा कसाया, सिचति मूलाइ पुणब्भवस्सा ॥"

क्रोध, मान, माया और लोभ का जब तक सम्यक् निग्रह का प्रयत्न नही किया, तब तक सारी क्रियाये ससार वर्धक ही होगी । पर सवेग की प्रवृत्ति जीवन मे आ जाये तो अनन्तानुबन्धी आदि अतिशय ससार वर्धक कषाय का निग्रह सरलता से किया जा सकता है ।

अपनी आत्मा को साधने के लिए जो क्रिया की जाती है, वह अध्यात्म है और जो चारो गति को साधने के लिए क्रिया की जा रही है, वह अध्यात्म नही है । जरा आप विचार करे, राम, सीता, लक्ष्मण ये तीनो वन मे थे । उस समय राम अन्य की भलाई की प्रवृत्ति मे सलग्न थे । लक्ष्मण भी उन्ही का अनुकरण कर रहे थे, और सीता जो कि पतिव्रता नारी थी, जिसकी पतिव्रता की भावना से ही क्रियाये चल रही थी । उस समय रावण की भी क्रिया हो रही थी । वह सोच रहा था कि महारानी सीता मेरी रानी बन जाय, यह उसकी मन की क्रिया थी । वह विचार कर रहा था कि सीता धार्मिक प्रवृत्ति वाली है । मैं इसे जगल से उठाकर लाऊँ पर लाऊँ कैसे ? उसके मन मे मेरे प्रति जब तक अनुराग न हो तब तक वह मेरी होने वाली नही है । अत. मुझे क्या करना चाहिये ? उसके मन मे उस समय विषम वेग था, विचार करते-करते उसके मन मे यह भावना हुई कि सीता आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाली है । उसे धार्मिक पोशाक से, धार्मिक अभिनय करके ही लाया जा सकता है । बताते है, उसने योगी की पोशाक बनाई । ससार बढाने वाली इस क्रिया का आश्रय लेकर कपट वेश से सीता के नजदीक पहुँचा । तब सीता को बहुत प्रफुल्लता हुई, पर विचार आया कि यह योगी एकाकी कैसे ? फिर भी शिष्टाचार वश उसे सत्कार देने की भावना से सीताजी कहने लगी—लो, मै आपको दान देती हूँ । लगभग ऐसा वर्णन तुलसीकृत रामायण मे मिलता है । जब वह कार (मर्यादा) के भीतर रहकर दान देने लगी—तब रावण ने कहा कि कार से बाहर आकर दान दो और जब वह बाहर आयी तो रावण उसे उठाकर ले गया । यह तुलसीकृत रामायण की बात शिक्षा दे रही है कि इस कलियुग मे ऐसा रावण न हो, जो जोगी के वेष मे आकर तुम्हारी सीता को- उठाकर ले जाये । अर्थात् एकाकी फिरने वालो से सावधान रहने की आवश्यकता है । साधु जीवन की चर्या का पूरा ज्ञान आपको रखना है । आध्यात्मिक वेष पहनकर धोखा देने वालो से सावधान रहना है । ध्यान और साधना के नाम से अनर्गल प्रलाप करने वाले तथाकथित साधुओ से भी सावधान रहना अत्यावश्यक है ।

४ | वेग हो संवेग का

सकल विश्व मे श्रेष्ठतम परम सिद्ध स्वरूप, यदि किसी का है तो वह परमात्मा का ही है। परमश्चासौ आत्मा-परमात्मा। सबसे ऊँची आत्मा अर्थात् गुणो से जो परिपूर्ण हो गई है, परम पद को प्राप्त हो गई है, वह आत्मा परमात्मा है। ज्ञानीजन सम्बोधित कर रहे है कि तुम मनुष्य जीवन मे रहकर ऐसी शक्ति प्राप्त करो कि तुम भी सत्पुरुषार्थ से अपनी आत्मा को परमात्मा बना सको। प्रत्येक आत्मा यही इच्छा रखती है कि मुझे परमात्मा पद मिले। परमात्मा का पद, भक्त को कोई प्राप्त करा सके ऐसी शक्ति किसी ससारी प्राणी मे नही है। भक्त स्वय ही स्व पुरुषार्थ से महान् बन सकता है। प्रत्येक मनुष्य को ऐसे महान् पद की प्राप्ति हेतु सद्पुरुषार्थ अपनाना अतिआवश्यक है। वह सबसे पहले इस जीवन मे समता की भूमिका अपनाकर वेग अर्थात् मन मे उत्साह पैदा करके परम पद पाने के लिए सत्पुरुषार्थ मे लग जाय। अपने जीवन से सम्बन्धित जितनी भी क्रियाये है। उन सबमे विवेक रखकर आगे बढता जाए।

गौतम स्वामी ने प्रभु से पूछा—सवेगेण भते जीवे कि जणयई ? इस प्रश्न के उत्तर मे प्रभु ने यह सकेत दिया कि—**संवेगेणं अणुत्तरं धम्मं सद्धं जणयई।** सवेग से अनुत्तर धर्म की अवाप्ति होती है। जैसे—राष्ट्रपति के सिहासन पर बैठने की कोई इच्छा करता है, तो उसके योग्य पुरुषार्थ करना पडता है, जनता की सेवा करनी पडती है। तब कही जाकर उसे राष्ट्रपति पद मिलता है। वैसे ही आध्यात्मिक जीवन का राष्ट्रपति पद परमात्म पद है। उसे सत्पुरुषार्थ जगाकर तदनुरूप साधना करके ही प्राप्त किया जा सकता है। मन की क्रिया का हमारे पुरुषार्थ के साथ बहुत सम्बन्ध है। कभी-कभी रोष मे आकर भी मन की प्रतिक्रिया होती है, और कभी शात मन से भी। जैसे कि कभी कभी रोष मे आकर कोई व्यक्ति भूखा रह जाता है। तो उसमे तपश्चर्या का नाम भले दे दिया जाय पर वह क्रिया ससारवर्द्धक होती है। वैज्ञानिको का अनुमान है कि एक बार के क्रोध से दो पौंड खून जल जाता है तथा अवशेष खून मे पॉइजन उत्पन्न हो जाता है। जिस पॉइजन का प्रयोग करने पर अनुमानत. ८० व्यक्तियो का खात्मा भी हो सकता है। क्रोध के आवेश मे कभी-कभी मनुष्य के ज्ञान तन्तु भी फट जाते है, जिससे वह लकवा जैसी भयकर व मरणात बीमारियो का भी शिकार हो जाता है, इस प्रकार शारीरिक हानि तो होती है पर मानसिक हानि भी कुछ कम नही होती है। क्रोध के आवेग से मन की कोमलता नष्ट हो जाती

है और वह कठोर बन जाता है। पर यदि मन का वह आवेग सवेग मे बदल जाय तो वही आत्मा अपना ससार परिमित कर लेती है। शास्त्रकारो का कहना है कि—

"कोहो य माणो य अणिग्गहीया, माया य लोभो य पवड्ढमाणा ।
चत्तारि ए ए कसिणा कसाया, सिंचति मूलाइ पुणब्भवस्सा ।।"

क्रोध, मान, माया और लोभ का जब तक सम्यक् निग्रह का प्रयत्न नही किया, तब तक सारी क्रियाये ससार वर्धक ही होगी। पर सवेग की प्रवृत्ति जीवन मे आ जाये तो अनन्तानुबन्धी आदि अतिशय ससार वर्धक कषाय का निग्रह सरलता से किया जा सकता है।

अपनी आत्मा को साधने के लिए जो क्रिया की जाती है, वह अध्यात्म है और जो चारो गति को साधने के लिए क्रिया की जा रही है, वह अध्यात्म नही है। जरा आप विचार करे, राम, सीता, लक्ष्मण ये तीनो वन मे थे। उस समय राम अन्य की भलाई की प्रवृत्ति मे सलग्न थे। लक्ष्मण भी उन्ही का अनुकरण कर रहे थे, और सीता जो कि पतिव्रता नारी थी, जिसकी पतिव्रता की भावना से ही क्रियाये चल रही थी। उस समय रावण की भी क्रिया हो रही थी। वह सोच रहा था कि महारानी सीता मेरी रानी बन जाय, यह उसकी मन की क्रिया थी। वह विचार कर रहा था कि सीता धार्मिक प्रवृत्ति वाली है। मैं इसे जगल से उठाकर लाऊँ पर लाऊँ कैसे ? उसके मन मे मेरे प्रति जब तक अनुराग न हो तब तक वह मेरी होने वाली नही है। अत. मुझे क्या करना चाहिये ? उसके मन मे उस समय विषम वेग था, विचार करते-करते उसके मन मे यह भावना हुई कि सीता आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाली है। उसे धार्मिक पोशाक से, धार्मिक अभिनय करके ही लाया जा सकता है। बताते है, उसने योगी की पोशाक बनाई। ससार बढाने वाली इस क्रिया का आश्रय लेकर कपट वेश से सीता के नजदीक पहुँचा। तब सीता को बहुत प्रफुल्लता हुई, पर विचार आया कि यह योगी एकाकी कैसे ? फिर भी शिष्टाचार वश उसे सत्कार देने की भावना से सीताजी कहने लगी—लो, मैं आपको दान देती हूँ। लगभग ऐसा वर्णन तुलसीकृत रामायण मे मिलता है। जब वह कार (मर्यादा) के भीतर रहकर दान देने लगी—तब रावण ने कहा कि कार से बाहर आकर दान दो और जब वह बाहर आयी तो रावण उसे उठाकर ले गया। यह तुलसीकृत रामायण की बात शिक्षा दे रही है कि इस कलियुग मे ऐसा रावण न हो, जो जोगी के वेष मे आकर तुम्हारी सीता को उठाकर ले जाये। अर्थात् एकाकी फिरने वालो से सावधान रहने की आवश्यकता है। साधु जीवन की चर्या का पूरा ज्ञान आपको रखना है। आध्यात्मिक वेष पहनकर धोखा देने वालो से सावधान रहना है। ध्यान और साधना के नाम से अनर्गल प्रलाप करने वाले तथाकथित साधुओ से भी सावधान रहना अत्यावश्यक है।

एक दिन मदोदरी रावण से कहने लगी कि—आप इस महान् सती नारी को उठाकर ले आये हो, पर इसका परिणाम वहुत खराव होगा। आप इस अनीति का परित्याग करो। जाओ, राम से क्षमा मागलो, जिससे आपके जीवन मे चार चाँद लग जायेंगे, और सारी कपट क्रियाओ से आपको मुक्ति मिल जायेगी। पर वार-वार कहने पर भी रावण ने मना कर दिया। रावण के यह तीव्र कषाय मोह की स्थिति थी। इसलिए अपराध की माफी मागने के लिए तैयार नही हुआ। गल्ती होने के वाद गल्ती को गल्ती मानकर क्षमा माग लेना श्रेष्ठ मानव का काम है।

गाव मे झगडा हुआ, झगडे का कारण मामूली सा था। एक व्यक्ति के कारण झगडा शान्त नही हो रहा था, वह व्यक्ति वीमार था। मैं दर्शन देने के लिए गया तव मैने कहा कि यह आयुष्य अव कितने समय का है, कौन जानता ? तुम क्षमायाचना करलो, पर उस मनुष्य के मन मे ऐसी अनन्तानुवन्धी कषाय की स्थिति थी, कि उसने कितनी ही प्रेरणा देने पर खमत खामणा नही किया, उसकी गति तो क्या हुई यह तो ज्ञानी की दृष्टि मे है, पर रावण की गति तो आप जान रहे है। वात-वात मे कषाय करने वाले का जीवन कभी भी अध्यात्म की स्थिति मे प्रवेश नही कर सकता है। अत कषाय को वशीभूत कर लेना चाहिये। इससे कोई कमी नही आती है। गगाशहर, भीनासर की घटना है, दो भाई प्रमुख समाजसेवी थे, जीवराजजी और झूमरमलजी, पर दोनो भाई कभी परस्पर नही मिलते थे। चातुर्मास समाप्ति का प्रसग आया, मैंने प्रवचन मे सामान्य रूप से वैर-विरोध विसारने की भिक्षा मागी कि किसी मे भी वैर-विरोध है, तो वह मेरी झोली मे डाल दे। व्याख्यान उठने के वाद दोनो भाई मेरे पास अलग-अलग आये और कहने लगे कि म सा मैं जा रहा हूँ। बस इतना कहकर चले गये। बडे भाई के पास कार थी, छोटा भाई पैदल जा रहा था। बडा भाई छोटे भाई के घर पहले ही पहुँच गया। बडे प्रेम से नाश्ता, पानी कर सारा वैर-विरोध विसराया, क्षमा याचना करते हुए प्रेम स्नेह की गगा बहा दी।

बन्धुओ! अग्नि सम मन का वेग ससार को बढाने वाला होता है, जब कषाय सीमा से अधिक समय तक रह जाती है, तो उससे सम्यक्त्व गुण का नाश हो जाता है। साधु मे यदि परस्पर कुछ हो जाय तो उसे वीतराग देव ने आज्ञा दी कि जब तक क्षमायाचना नही करो तब तक थूक भी गले से नीचे मत उतारो। श्रावक भी साधु के छोटे भाई है भगवान के वचनो का आपको भी खयाल रखना है। यदि आप अपने जीवन मे सयम की स्थिति अपनाओगे और विषमवेग को दूर हटाओगे तो आपका जीवन जरूर मगलमय वन जायेगा। इन्ही शुभ भावनाओ के साथ !

मोटा उपाश्रय ४—७—८५
घाटकोपर, वम्बई गुरुवार

५ आत्मा ही आत्मा का कर्त्ता और भोक्ता

अंतिम तीर्थंकर प्रभु महावीर की वाणी श्रोतागण 'सुखविपाक' के माध्यम से सुन रहे हैं। इस 'सुखविपाक' विषयक वर्णन से बहुत प्रेरणा मिलती है। मनुष्य का जीवन कैसा होना चाहिये ? इस मनुष्य जीवन रूपी रत्न का उपयोग किस रीति से करना चाहिये ?

'सुखविपाक' सूत्र मे गौतम स्वामी प्रभु महावीर से पूछते है कि सुबाहु कुमार ने यह जीवन कैसे प्राप्त किया ? उसने पूर्वभव मे क्या-क्या ऐसे सुकार्य किये, आदि इसी प्रकार के बहुत से प्रश्न पूछे।

जिन मनुष्यो को वीतराग वाणी श्रवण करने को बहुत कम मिलती अथवा मिलती ही नही है। वे प्रायः किसी रूपवान, गुणवान आत्मा को देखकर यह कह देते हैं कि भगवान् ने इसे कैसा सौम्य रूप प्रदान किया है। पर गौतम स्वामी ज्ञानवान थे, उन्होने ऐसा नही कहा कि भगवान् ने इनको यह रूप सम्पदा प्रदान की। प्रभु महावीर से प्रश्न करके यह ज्ञान दृष्टि दी कि तुम्हारी आत्म सम्पदा स्व मे ही स्वतन्त्र रूप से रही हुई है। तुम जैसा पुरुषार्थ करोगे, वैसा ही फल तुम प्राप्त करोगे। शारीरिक सौन्दर्य भी आत्म पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त होता है। इस आत्मा को सारा अधिकार प्राप्त है। पर यह आत्मा अपने स्वरूप को न जानने से दीन-हीन बनी हुई है। अपने आपको कठपुतली सम मानती है। जिस प्रकार कठपुतलियाँ अन्य के जरिये नाचती है। पर खयाल रखिये कठ-पुतलियाँ तो निर्जीव हैं। वे परतन्त्र हैं। पर चेतना निर्जीव नही है। अत जागृत बने। जीवन की बागडोर हमारे ही हाथ मे है। हमे नचाने वाला अन्य कोई दूसरा नही है। हमारी आत्मा ही कर्त्ता और भोक्ता है। वह स्वतन्त्र है। जैसा कर्म करती है, वैसा ही फल उसी के द्वारा उसको प्राप्त होता है। मेरी आत्मा को सुखी-दु.खी बनाने वाला मैं स्वय ही हूँ। मेरे स्वय के विचार ही मुझे सुखी-दु खी बनाते हैं। यह ज्ञान जब किसी को हो जाये तो फिर क्यो वह अपनी आत्मा को दु खी बनायेगा ? कहा भी है—

"बोवोगे जैसा बीज, तरु वैसा ही लहरायेगा।
जैसा करोगे वैसा ही, फल आगे आयेगा ।।
कुए में एक बार, कुछ भी बोल देखिये ।
जैसा कहोगे वैसा ही, वह भी सुनायेगा ।।"

वन्धुओ ! जीवन मे जैसा वीज वोओगे, वैसा ही फल प्राप्त होगा । आम वोने से आम और ववूल वोने से ववूल ही प्राप्त होगा । इसलिये आप ऐसा ही वीज बोये जिससे आपका यह भव भी सुखी वन जाये और आगे के लिये भी पुण्य की जहाज तैयार कर ले । भगवान् महावीर के आप मेहमान वनकर आये हो और मेरी इच्छा हो रही है कि मै आपको अच्छा से अच्छा पकवान परोसू । वर्तमान मे जो शुभाशुभ कार्य किये जाते है उनसे जो कर्म-वन्ध का प्रसग आता है, अथवा आत्मशुद्धि का प्रसग वनता है । उसका भूत-भविष्य दोनो ही स्थितियो मे प्रभाव पडता है । यदि हम अच्छा अनुष्ठान कर रहे है तो भूतकाल मे वे पाप यदि निकाचित नही है तो वे पाप अच्छे अनुष्ठानो को करने से पुण्य मे परिर्वतित हो जाते है और भविष्य उज्ज्वल बन जाता है । प्रसन्न चन्द्र राजर्षि का उदाहरण मिलता है कि प्रसन्न चन्द्र राजर्षि को जव निर्वेद की भावना वनी, तब विचार करने लगे कि ये तो ससार के कार्य है, चलते रहेगे । मुझे तो अपनी आत्म शुद्धि की ऐसी करणी करनी है जिससे इस जन्म मे ही अमित सुख की उपलब्धि कर सकू । तव पत्नी अपने नन्हे पुत्र को सम्मुख करके कर्त्तव्य का बोध कराती हुई मना करने लगी । तब राजन् कहने लगे—प्रिये ! तुम मेरी धर्मपत्नी हो । धर्म सहायिका हो । तुम मुझे धर्म मे सहायता प्रदान करो । पुत्र के विषय मे कह रही हो सो यह पुत्र स्वय पुण्यवान है । जिसके पिता बचपन मे ही गुजर जाये, विचार करो, उसका लालन-पालन कौन करता है ? यही नही अपना पुत्र स्वय पुण्यवानी लेकर आया है । अत इसकी चिन्ता मत करो । फिर इसकी सुरक्षा हेतु ५०० मत्री इसकी सेवा मे रहेगे ।

भगवान् महावीर ने कहा कि शक्ति रहते हुए सद्नुष्ठान मे प्रवृत्ति करे । अत मै अभी ही आत्मानुष्ठान मे प्रवृत्त होना चाहता हूँ । इस प्रकार समझा कर सारे ससारी कार्य से निवृत्त होकर प्रभु महावीर के चरणो मे दीक्षित होकर विशेष पराक्रम करने की दृष्टि से प्रभु की आज्ञा लेकर समवसरण भूमिका से कुछ दूर जाकर दोनो हाथ ऊपर करके सूर्याभिमुख हो ध्यानावस्था मे खडे हो गए । इधर राजा श्रेणिक अपनी चतुरङ्गिनी सेना से प्रभु महावीर के दर्शनार्थ जा रहे थे ।

दो मनुष्य सुमुख और दुर्मुख रास्ते की सफाई का ध्यान रखते हुए उस चतुरगिनी सेना के आगे चल रहे थे । वे परस्पर बातचीत कर रहे थे । सुमुख ने प्रसन्नचन्द्र राजर्षि की भूरि-भूरि प्रशसा की तो दुर्मुख ने उनकी निन्दा की । मुनि ध्यान मे दोनो की बाते सुन रहे थे । सुमुख मुनि की प्रशसा करता हुआ कहता है कि धन्य है ये मुनिराज जो सब कुछ वैभव का त्याग कर सयम अगीकार कर चुके है । तब दुर्मुख ने कहा कि अरे क्या कहते हो तुम, यह तो कायर है । अपने पुत्र का भी पालन नही कर सका । उसे पाँच सौ मन्त्रियो के हाथ मे सौप कर चला आया है । पर मन्त्री उसे मारने का षडयन्त्र बना रहे है ।

ये शब्द जब प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के कानो मे पडे तो वे विचारने लगे कि क्या मेरे मत्री नमकहराम हो गये हैं ? क्या वे मेरे बच्चे को मार कर राज्य हथिया लेंगे ? विचारो का वेग तीव्रता के साथ बढने लगा । वे भूल गये कि मैं तो साधु बन चुका हूँ । उसे तो 'समो निंदा पससासु' अर्थात् हर समय निंदा और प्रशसा मे समभाव रखना चाहिये ।

प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के विचार इतने ओजस् हो गये कि वे खडे तो ध्यान मे थे पर अन्दर में विचारो से ही मत्रियो से युद्ध करने लगे और ४९९ मन्त्रियो को मार गिराया । एक मत्री बच गया । इसे मारने के लिये उनके पास कोई वैचारिक तीर नही बचा, तो वे सोचने लगे कि इसे कैसे मारा जाये । फिर सोचा—मेरे मुकुट है । मै मुकुट को भी इस तरह फेंकूँ कि वह मर जाये । इधर तो प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के विचारो मे इतनी हिंसात्मक उत्तेजना आई हुई थी और उधर उसी समय श्रेणिक महाराज महाप्रभु के समवसरण मे पहुँचकर महाप्रभु से पूछने लगे—भगवन् ! आपके अन्तेवासी शिष्य जो शहर के बाहर ध्यानस्थ हैं । वे यदि इस समय कालधर्म को प्राप्त हो तो कहाँ जाय ? महाप्रभु ने स्पष्ट फरमाया कि श्रेणिक ! यदि वह इस समय मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो सातवी नरक मे जायेगा ।

इसे सुनकर राजा श्रेणिक विचार करने लगे कि—अहो ! इतने बडे योगी की भी यह गति हो सकती है ? उधर जब प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का हाथ मस्तक पर पहुँचा और उन्हे ज्ञात हुआ कि मुकुट कहाँ है ? सिर तो मुँडा हुआ है । मैं तो साधु हो चुका हूँ । मुझे ससार से क्या मतलब ? विचारो ने मोड खाया और वे अपने इस कुकृत्य के प्रति 'निंदामि, गर्हामि अप्पाण वोसिरामि' करने लगे । ठीक इसी समय इधर फिर श्रेणिक ने पूछा यह कैसे हो सकता है भगवन् । तो भगवान् ने फरमाया कि यदि वह मुनिराज इस समय मृत्यु को प्राप्त हो तो स्वर्ग मे जाये । इससे श्रेणिक की जिज्ञासा और बढ गई । इधर राजर्षि के विचारो मे समीक्षणता आई और वे निरन्तर ऊर्ध्वता की ओर बढने लगे । थोडे ही समय के बाद सभी घनघातिक कर्म क्षय करके केवली भी हो गये । देवदुंदुभि का निनाद हुआ और महाप्रभु ने श्रेणिक को बताया कि वे ही मुनिराज सर्वज्ञ हो गये है । तो सम्राट को बहुत आश्चर्य हुआ । पर सर्व सशय हर्ता महाप्रभु ने उसका समाधान कर दिया ।

बन्धुओ ! यह तो एक रूपक है । जिसके भाव मैं आपको बतला गया हूँ । इस रूपक को सुनकर विचार करे कि विचारो का यह परिवर्तन जीवन मे कितना मोड़ ला सकता है ? जब विचारो को कार्य रूप मे परिणत करने की शक्ति आ जाती है तो उसी प्रकार के कर्म बन्धन हो जाते है । शुभ-भावनाएँ व्यक्ति को उन्नत बनाने वाली है तो अशुभ भावनाएँ गिराने वाली होती है ।

उन्नति और अवनति दोनो उसी के हाथ मे है। इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए एक छोटा सा रूपक और देता हूँ।

एक व्यापारी जिसे सेव की आवश्यकता थी। उसने जाकर कदोई से कहा कि मेरे यहाँ विवाह का प्रसग है और बहुत सारी सेव की आवश्यकता है तो उस कदोई ने बहुत सारा बेसन लिया और उसको घोलकर उसमे नमक व मिर्च डालने वाला ही था कि एक दूसरा व्यापारी आया और कहने लगा कि मुझे जल्दी से जल्दी बेसन की चक्कियाँ चाहिये, मै तुझे दुगुने पैसे दूँगा तो उसने उस बेसन मे नमक मिर्च की जगह बेसन की प्रक्रिया करके चासनी डाल कर चक्कियाँ बना दी। ठीक वैसे ही पाप-अनुष्ठान मे प्रवृत्त व्यक्ति घोलन जैसी अनिकाचित कर्मों की स्थिति तक सम्भल जाये तो वह उस पाप रूपी घोल से पुण्य रूपी चक्कियाँ प्राप्त कर सकता है।

मोटा उपाश्रय, ५–७–८५
घाटकोपर, बम्बई शुक्रवार

६ वेद हो निर्वेद का

अनत स्वरूप वाले प्रशात रस मे निमग्न वीतराग प्रभु को नमन करके उनके सिद्धान्त का चिन्तन किया जा रहा है, मोक्ष का प्रथम सोपान सम्यक्त्व है।

जब आत्मा अपने स्वरूप को क्षायिक सम्यक्त्व के साथ जान लेती हैं, और एक बार भी उसे आत्मशक्ति की अनुभूति हो जाती है, आत्मरस मे वह अवगाहन कर लेती है, तब वह तीन काल मे भी अपने आत्मिक स्वरूप को भूल नही सकती है।

आत्मा-परमात्मा का वर्णन कर लेना एक बात है, और उसकी अनुभूति करना दूसरी बात है। शरीर मे अनेक तत्त्व है, उनमे अनन्त ज्ञान राशि भी भरी हुई है जो कि इसी शरीर पिंड मे विद्यमान आत्मा मे है। शरीर तो एक मात्र माध्यम है। पर सारी शक्तिया आत्मा की स्व की है। अनुभूति का आनन्द जुदा होता है, अनुभूतियो से ही निज स्वरूप की अभिव्यक्ति सम्यक् रूपेण हो सकती है।

एक जगली मनुष्य बडे शहर मे पहुँचा, बम्बई शहर जैसा, उसकी हवेलियाँ वगैरह देखकर आश्चर्य करने लगा। वहाँ की सर्वश्रेष्ठ मिठाई का स्वाद लिया, और पुन जगल मे गया तब किसी ने पूछा कि बम्बई कैसी है, तो वह वृक्षादि की उपमा से बम्बई की हवेलियो की मोटाई बताने लगा तो कोई उसकी बात पर विश्वास नही करता, यही नही मिठाई का स्वाद लोगो द्वारा पूछने पर भी उसका स्वाद कैसा है, यह वह नही बतला पाता, लेकिन यहाँ के मनुष्य जिन्हे अपनी हवेलियाँ और खाई हुई मिठाई वगैरह के स्वाद की भलीभाँति अनुभूति होने से क्या वैसे लोगो को सम्यक् प्रकार से बता सकते है। उत्तर होगा, नही क्योकि अन्यों को वैसी अनुभूति नही है, और यह अवस्था अनुभूतिगम्य ही हो सकती है।

मैं जो आपको सम्यक्त्व के लक्षण बता रहा था, कि सम्यक्त्व के पाच लक्षण है, सम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा एव आस्था। वास्तव मे अपने आप मे सम्यक्त्व है या नही, इसकी पहचान, ये पूर्वोक्त पाँच लक्षण करा देते है। सम और सवेग की सक्षिप्त विवेचना हो चुकी है, अब निर्वेद का प्रसग चल रहा है।

उन्नति और अवनति दोनो उसी के हाथ मे है। इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए एक छोटा सा रूपक और देता हूँ।

एक व्यापारी जिसे सेव की आवश्यकता थी। उसने जाकर कदोई से कहा कि मेरे यहाँ विवाह का प्रसग है और बहुत सारी सेव की आवश्यकता है तो उस कदोई ने बहुत सारा बेसन लिया और उसको घोलकर उसमे नमक व मिर्च डालने वाला ही था कि एक दूसरा व्यापारी आया और कहने लगा कि मुझे जल्दी से जल्दी बेसन की चक्कियाँ चाहिये, मै तुझे दुगुने पैसे दूँगा तो उसने उस बेसन मे नमक मिर्च की जगह बेसन की प्रक्रिया करके चासनी डाल कर चक्कियाँ बना दी। ठीक वैसे ही पाप-अनुष्ठान मे प्रवृत्त व्यक्ति घोलन जैसी अनिकाचित कर्मो की स्थिति तक सम्भल जाये तो वह उस पाप रूपी घोल से पुण्य रूपी चक्कियाँ प्राप्त कर सकता है।

मोटा उपाश्रय,
घाटकोपर, बम्बई

५-७-८५
शुक्रवार

६ वेद हो निर्वेद का

अनत स्वरूप वाले प्रशांत रस मे निमग्न वीतराग प्रभु को नमन करके उनके सिद्धान्त का चिन्तन किया जा रहा है, मोक्ष का प्रथम सोपान सम्यक्त्व है।

जब आत्मा अपने स्वरूप को क्षायिक सम्यक्त्व के साथ जान लेती हैं, और एक बार भी उसे आत्मशक्ति की अनुभूति हो जाती है, आत्मरस मे वह अवगाहन कर लेती है, तब वह तीन काल मे भी अपने आत्मिक स्वरूप को भूल नही सकती है।

आत्मा-परमात्मा का वर्णन कर लेना एक बात है, और उसकी अनुभूति करना दूसरी बात है। शरीर मे अनेक तत्त्व है, उनमे अनन्त ज्ञान राशि भी भरी हुई है जो कि इसी शरीर पिंड मे विद्यमान आत्मा मे है। शरीर तो एक मात्र माध्यम है। पर सारी शक्तिया आत्मा की स्व की है। अनुभूति का आनन्द जुदा होता है, अनुभूतियो से ही निज स्वरूप की अभिव्यक्ति सम्यक् रूपेण हो सकती है।

एक जगली मनुष्य बडे शहर मे पहुँचा, बम्बई शहर जैसा, उसकी हवेलियाँ वगैरह देखकर आश्चर्य करने लगा। वहाँ की सर्वश्रेष्ठ मिठाई का स्वाद लिया, और पुन जगल मे गया तब किसी ने पूछा कि बम्बई कैसी है, तो वह वृक्षादि की उपमा से बम्बई की हवेलियो की मोटाई बताने लगा तो कोई उसकी बात पर विश्वास नही करता, यही नही मिठाई का स्वाद लोगो द्वारा पूछने पर भी उसका स्वाद कैसा है, यह वह नही बतला पाता, लेकिन यहाँ के मनुष्य जिन्हे अपनी हवेलियाँ और खाई हुई मिठाई वगैरह के स्वाद की भलीभाँति अनुभूति होने से क्या वैसे लोगो को सम्यक् प्रकार से बता सकते हैं। उत्तर होगा, नही क्योकि अन्यो को वैसी अनुभूति नही है, और यह अवस्था अनुभूतिगम्य ही हो सकती है।

मै जो आपको सम्यक्त्व के लक्षण बता रहा था, कि सम्यक्त्व के पाच लक्षण है, सम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा एव आस्था। वास्तव मे अपने आप मे सम्यक्त्व है या नही, इसकी पहचान, ये पूर्वोक्त पाँच लक्षण करा देते है। सम और सवेग की सक्षिप्त विवेचना हो चुकी है, अब निर्वेद का प्रसग चल रहा है।

एन्द्रियक विषयो से उदासीन होकर सिर्फ आत्मानन्द की प्राप्ति की तीव्र उत्कठा होना निर्वेद है, निर्वेद की स्थिति मे भी जब तक आत्मा ससार मे रहती है, तब तक जल कमलवत् निर्लिप्त रूप मे रहती है। जैसे 'उत्तराध्ययन' सूत्र के २९ वे अध्याय मे बतलाया है।

"निव्वेदेणं भन्ते! जीवे किं जणयइ? निव्वेदेण दिव्व माणुस तेरिच्छि-एसु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ। सव्वविसएसु विरज्जइ। सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरम्भपरिच्चाय करेई। आरम्भपरिच्चाय करेमाणे ससारमग्गे वोच्छिन्दई सिद्धिमग्गं पडिवन्ने य हवई।"

गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन्! निर्वेद भाव से जीव क्या प्राप्त करता है?

भगवान् ने फरमाया—गौतम! निर्वेद भाव से जीव, देव, मानव एव तिर्यच सबधी विषयो से शीघ्र ही निर्वेद प्राप्त हो जाता है। सभी विषयो मे विरक्त हो जाता है, सभी विषयो से विरक्त होता हुआ आरम्भादि से भी विरक्त हो जाता है, आरम्भादि का त्याग करता है, ससार व्यवच्छित कर लेता है, और एक दिन सिद्धि मार्ग को प्राप्त हो जाता है।

ससार से कितनी मात्रा मे उदासीनता आयी है, इसका मापदण्ड कैसे किया जाय, इसके लिए एक उदाहरण देता हूँ।

एक मनुष्य को जहरीले सर्प ने डक मारा और जहर उस व्यक्ति को भरपूर चढ गया, तब वह मत्र जानने वाले के पास गया, और जहर उतारने के लिए कहा तब वह कडवे नीम के पत्ते उसे खिलाता है, उस समय उस व्यक्ति को वे कडवे पत्ते भी मीठे लगते है, तब उसने यह जाना कि इसको जहर काफी मात्रा मे चढा हुआ है। तब उसने जहर उतारने का प्रयत्न प्रारम्भ किया, जैसे-जैसे प्रयत्न सफल होता है, जहर उतरते जाता है, वैसे-वैसे उसको नीम के पत्ते कडवे लगने लग जाते हैं। इसी तरह निर्वेद आपके जीवन मे है या नही, इसका परीक्षण करने की विधि अपनाये कि सासारिक पाच इन्द्रियो का विषय जब तक आपको मधुर-मधुर महसूस होता है, तब तक समझना चाहिये कि अभी मोह रूपी सर्प का डक पूरे जोर से आपके भीतर मे विष व्याप्त कर रहा है, पर यह वीतराग वाणी रूपी मत्र उस जहर को उतारने मे सक्षम है।

इस वीतरागवाणी रूपी मत्र श्रवण से, पाचो इन्द्रियो का कटुक फल अतीव बिपाक रूप मे महसूस हो रहा है और आप ससार के प्रपचो से उदासीन बन रहे हैं, तो समझना चाहिये कि मोह रूपी सर्प के डक से व्याप्त विष उतर रहा है, और आप अपने निज स्वरूप मे प्रवेश कर रहे है। आप जरा सोचिये—कितना लम्बा समय हो गया है कि यह मोह का पॉइजन आपकी आत्म-शक्तियो

पर छाया हुआ है, अत जो भी क्रिया करें, वह सभी आत्म-स्वरूप की अवाप्ति के लिए ही हो। जब लडका माता के गर्भ से बाहर आता है, तब वह रोता है, और सकेत करता है कि मैं भूखा हूँ, मुझे दूध पिलाओ, जब उसकी क्षुधा की पूर्ति हो जाती है तो वह सतुष्ट हो जाता है। इसके बाद जैसे-जैसे बडा होता जाता है, वसे-वैसे वह माता के दूध से निर्वेद को पाकर अपनी आवश्यकतानुसार क्रिया करता रहता है। उसी प्रकार जब भव्य पुरुष ससार मे निर्वेद को पा जाते है, तब वे विषयादि से निरपेक्ष होकर शाश्वत शाति की ओर प्रगति करने लगते हैं। प्राय. प्रत्येक मानव पुण्य-पाप दोनो का उपार्जन करता रहता है। जैसा कि बतलाया है कि वह सात-आठ कर्म का बधन प्रति समय करता रहता है। अब आप चाहे कि हमारी पुण्यवानी ही अधिक से अधिक बढती रहे, पर यह चाहने मात्र से पुण्यवानी प्राप्त नही हो सकती है। गौतम स्वामी ने जो यह प्रश्न पूछा कि—भगवन्! सुबाहुकुमार ने क्या खाया?

यह प्रश्न क्यो और किस लिए किया गया है? चितन करने पर आप जान पायेंगे कि—यह प्रश्न भी आत्म-चितन की खुराक दे रहा है। क्योकि भोजन करते समय मे भी पुण्यवानी बाध सकते है। आप भोजन करते समय यही आत्म चिंतन करे।

मैं भोजन सिर्फ धर्म साधन मे निमित्त इस शरीर के स्वास्थ्य को सुरक्षित और तन्दुरस्त रखने के लिए कर रहा हूँ ताकि यह शरीर मुझे आत्म-साधना मे सहायक बन सके। इस प्रकार के प्रशस्त चिंतन से जो भोजन करता है, वीतराग भगवान् ने बताया कि वह खाता-खाता भी सात-आठ कर्मों को तोड सकता है।

आप ज्यादा-ज्यादा ससार का वैभव चाहते हो या आत्मा का वैभव? यदि आत्म-वैभव की इच्छा रखते हो और प्रयत्नरत रहते हो, तो आत्म वैभव के साथ ससार का वैभव तो आपको मिल ही जायेगा। गृहस्थ हो या साधु, जो भी प्रशस्त आत्म चितन की स्थिति से भव्य भावना भाते-भाते भोजन करते हैं तो अष्ट कर्म बधन से हल्के बन जाते हैं।

"नमो अरिहताण" इस पद का उच्चारण करते हुए चिंतन करे कि अरिहत प्रभु भी भोजन करते थे। प्रभु महावीर को जब तीन दिन के वासी बाकुले चन्दनबाला ने बहरायें। तो महाप्रभु ने उन्हे समभाव के साथ ग्रहण किया था। इसी प्रकार की समभाव की स्थिति लाने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये।

साधु-साध्वियो का सयोग मिलने पर विशुद्ध भावो के साथ उन्हे प्रति-पालित भी करना चाहिये। कभी-कभी भावो की विशुद्धि नही होने पर महा-

एन्द्रियक विषयो से उदासीन होकर सिर्फ आत्मानन्द की प्राप्ति की तीव्र उत्कठा होना निर्वेद है, निर्वेद की स्थिति मे भी जव तक आत्मा ससार मे रहती है, तब तक जल कमलवत् निर्लिप्त रूप मे रहती है। जैसे 'उत्तराध्ययन' सूत्र के २९ वे अध्याय मे बतलाया है।

"निव्वेदेण भन्ते! जीवे किं जणयइ? निव्वेदेण दिव्व माणुस तेरिच्छि-एसु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ। सव्वविसएसु विरज्जइ। सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरम्भपरिच्चायं करेई। आरम्भपरिच्चाय करेमाणे ससारमग्गे वोच्छिन्दई सिद्धिमग्गं पडिवन्ने य हवई।"

गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन्! निर्वेद भाव से जीव क्या प्राप्त करता है?

भगवान् ने फरमाया—गौतम! निर्वेद भाव से जीव, देव, मानव एव तिर्यच सबधी विषयो से शीघ्र ही निर्वेद प्राप्त हो जाता है। सभी विषयो मे विरक्त हो जाता है, सभी विषयो से विरक्त होता हुआ आरम्भादि से भी विरक्त हो जाता है, आरम्भादि का त्याग करता है, ससार व्यवच्छित कर लेता है, और एक दिन सिद्धि मार्ग को प्राप्त हो जाता है।

ससार से कितनी मात्रा मे उदासीनता आयी है, इसका मापदण्ड कैसे किया जाय, इसके लिए एक उदाहरण देता हूँ।

एक मनुष्य को जहरीले सर्प ने डक मारा और जहर उस व्यक्ति को भरपूर चढ गया, तब वह मत्र जानने वाले के पास गया, और जहर उतारने के लिए कहा तब वह कडवे नीम के पत्ते उसे खिलाता है, उस समय उस व्यक्ति को वे कडवे पत्ते भी मीठे लगते हैं, तब उसने यह जाना कि इसको जहर काफी मात्रा मे चढा हुआ है। तब उसने जहर उतारने का प्रयत्न प्रारम्भ किया, जैसे-जैसे प्रयत्न सफल होता है, जहर उतरते जाता है, वैसे-वैसे उसको नीम के पत्ते कडवे लगने लग जाते हैं। इसी तरह निर्वेद आपके जीवन मे है या नही, इसका परीक्षण करने की विधि अपनाये कि सासारिक पाच इन्द्रियो का विषय जब तक आपको मधुर-मधुर महसूस होता है, तब तक समझना चाहिये कि अभी मोह रूपी सर्प का डक पूरे जोर से आपके भीतर मे विष व्याप्त कर रहा है, पर यह वीतराग वाणी रूपी मत्र उस जहर को उतारने मे सक्षम है।

इस वीतरागवाणी रूपी मत्र श्रवण से, पाचो इन्द्रियो का कटुक फल अतीव बिपाक रूप मे महसूस हो रहा है और आप ससार के प्रपचो से उदासोन बन रहे हैं, तो समझना चाहिये कि मोह रूपी सर्प के डक से व्याप्त विष उतर रहा है, और आप अपने निज स्वरूप मे प्रवेश कर रहे है। आप जरा सोचिये—कितना लम्बा समय हो गया है कि यह मोह का पॉइजन आपकी आत्म-शक्तियो

पर छाया हुआ है, अत जो भी क्रिया करे, वह सभी आत्म-स्वरूप की अवाप्ति के लिए ही हो। जब लडका माता के गर्भ से बाहर आता है, तब वह रोता है, और सकेत करता है कि मैं भूखा हूँ, मुझे दूध पिलाओ, जब उसकी क्षुधा की पूर्ति हो जाती है तो वह सतुष्ट हो जाता है। इसके बाद जैसे-जैसे बडा होता जाता है, वसे-वैसे वह माता के दूध से निर्वेद को पाकर अपनी आवश्यकतानुसार क्रिया करता रहता है। उसी प्रकार जब भव्य पुरुष ससार मे निर्वेद को पा जाते है, तब वे विषयादि से निरपेक्ष होकर शाश्वत शाति की ओर प्रगति करने लगते है। प्राय. प्रत्येक मानव पुण्य-पाप दोनो का उपार्जन करता रहता है। जैसा कि बतलाया है कि वह सात-आठ कर्म का बधन प्रति समय करता रहता है। अब आप चाहे कि हमारी पुण्यवानी ही अधिक से अधिक बढती रहे, पर यह चाहने मात्र से पुण्यवानी प्राप्त नही हो सकती है। गौतम स्वामी ने जो यह प्रश्न पूछा कि—भगवन्! सुबाहुकुमार ने क्या खाया ?

यह प्रश्न क्यो और किस लिए किया गया है ? चितन करने पर आप जान पायेंगे कि—यह प्रश्न भी आत्म-चितन की खुराक दे रहा है। क्योकि भोजन करते समय मे भी पुण्यवानी बाध सकते है। आप भोजन करते समय यही आत्म चितन करे।

मैं भोजन सिर्फ धर्म साधन मे निमित्त इस शरीर के स्वास्थ्य को सुरक्षित और तन्दुरस्त रखने के लिए कर रहा हूँ ताकि यह शरीर मुझे आत्म-साधना मे सहायक बन सके। इस प्रकार के प्रशस्त चिंतन से जो भोजन करता है, वीतराग भगवान् ने बताया कि वह खाता-खाता भी सात-आठ कर्मो को तोड सकता है।

आप ज्यादा-ज्यादा संसार का वैभव चाहते हो या आत्मा का वैभव ? यदि आत्म-वैभव की इच्छा रखते हो और प्रयत्नरत रहते हो, तो आत्म वैभव के साथ ससार का वैभव तो आपको मिल ही जायेगा। गृहस्थ हो या साधु, जो भी प्रशस्त आत्म चितन की स्थिति से भव्य भावना भाते-भाते भोजन करते हैं तो अष्ट कर्म बंधन से हल्के बन जाते है।

"नमो अरिहताण" इस पद का उच्चारण करते हुए चितन करे कि अरिहत प्रभु भी भोजन करते थे। प्रभु महावीर को जब तीन दिन के बासी बाकुले चन्दनबाला ने बहराये। तो महाप्रभु ने उन्हे समभाव के साथ ग्रहण किया था। इसी प्रकार की समभाव की स्थिति लाने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये।

साधु-साध्वियो का सयोग मिलने पर विशुद्ध भावो के साथ उन्हे प्रतिपालित भी करना चाहिये। कभी-कभी भावो की विशुद्धि नही होने पर महा-

पुरुषो को बहराते-दान देने से भी आत्म शुद्धि नही होती और भावो की विशुद्धि होने पर वहराने का निमित्त न मिलने पर भी आत्म शुद्धि का प्रसग बन जाता है ।

जीर्ण सेठ जो चार माह पर्यन्त प्रभु को आहार वहराने की भावना भा रहा था। भगवान् के चार माह की तपश्चर्या थी। पारणे के दिवस पर भावना भाते-भाते जो पुण्यवानी जीर्ण सेठ ने वाधी, जो प्रशस्त निर्जरा की, वह तो उनके चालू ही थी, पर प्रभु महावीर जव पूरण सेठ, जो कृपण था, उसके द्वार पर पहुँचे और दासी के हाथ से वाकला वहर कर पारणा किया, पारणा होते ही देव दु दु भी वजी, देव दु दु भी वजते ही जीर्ण सेठ की भव्य भावना पर ब्रेक लग गया। क्योकि उसे यह ज्ञात हो गया कि अव भगवान मेरे यहाँ नही पधारने वाले है। फिर भी भावना भाता-भाता देवलोक की पुण्यवली वाध ली। किन्तु पूरण सेठ अपनी गलत भावना के कारण दान देकर भी विशिष्ट पुण्यवानी नही बांध सके।

पुण्य-पाप हर आत्मा वाध रही है, पर पाप को पुण्य मे और पुण्य को परिवर्तन करने की स्थितियाँ कैसी क्या जीवन मे बनती है, इसे आप शनै-शनै सम्यक् प्रकार से जानते हुए सम्यक्त्व के लक्षणो का वोध प्राप्त कर उन्हे क्रियान्वयन की दृष्टि से जीवन मे स्थान देते हुए आगे बढे तो निश्चय ही जीवन मगलमय बनेगा। इसी मगलमय शुभ भावना के साथ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

६–७–८५
शनिवार

□□□

७ परम शांति का महाद्वार—सम्यग् दर्शन

परम पवित्र परमात्मा का स्वरूप, अपनी आत्मा को पवित्र करने के लिए स्मृति पटल पर उभारने का प्रयास करना है, क्योकि आज के लोगो की आत्माएँ प्राय. कर्मो से आवद्ध होकर हिताहित के विवेक से विकल वन रही है, इस विकलता से विलग होने के लिए वीतराग वाणी को सुनने एव जीवन मे उतारने का प्रसग प्राप्त हो रहा है। यह वीतराग देव की वाणी किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित न होकर सम्पूर्ण प्राणी वर्ग के लिए है। जिस प्रकार पानी किसी व्यक्ति विशेष का न होकर सम्पूर्ण प्राणी वर्ग के लिए होता है, वह सभी की प्यास बुझाता है, उसी प्रकार वीतराग वाणी भी सभी भव्यात्माओ की अन्तर की आत्मिक प्यास बुझाने मे समर्थ है, किन्तु आज के मानव इस वाणी को उपेक्षित कर एक बहुत वडी भूल कर रहे है, इस भूल के कारण ही वे आज तक ससार मे भटकते आ रहे है। इस भूल को हटाने के लिए सम्यग्दर्शन की अत्यन्त आवश्यकता है।

सम्यग्दर्शन के बिना ससार मे अधकार ही अधकार दिखाई देता है। जिस प्रकार कि हॉल मे सभी प्रकार की वस्तुएँ होते हुए भी बिना प्रकाश कुछ भी दिखाई नही देता है, वैसे ही सम्यग्दर्शन रूप प्रकाश के बिना ससार को वस्तुओं का यथातथ्य ज्ञान नही हो सकता। इस सम्यग्दर्शन का महत्त्व बतलाने के लिए आचार्य उमास्वाति ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' के पहले अध्ययन के प्रथम सूत्र मे कहा है **"सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि-मोक्षमार्ग."** इस सम्यग्दर्शन का ज्ञान केवल मस्तिष्क से कर लेने मात्र से आत्मशुद्धि नही हो सकती। आत्म विशुद्धि हेतु उसका ज्ञान हृदय से करना तथा आचरण की भूमिका पर उस ज्ञान को रूपातरित करना अतीव आवश्यक है। जैसे—विक्षेप, आवरण व्यक्ति के सद् विवेक को लुप्त कर देते है, उसी प्रकार मिथ्यात्व का आवरण भी व्यक्ति के अन्तरग ज्ञान को विलुप्त कर देता है। जैसे विक्षेप से मन चचल बनता है, वैसे ही मिथ्यात्व के कारण मन रूप सरोवर मे चचलता की तरगे उठने लगती है। जैसे कि लखपति, अरवपति वनने की और अरबपति, खरवपति वनने की भावना रखता है। इसी भावना के वर्द्धन मे, धन के सरक्षण मे ही उसका जीवन समाप्त हो जाता है। यह तो एक देशीय भावना का रूपक है, किन्तु ऐसी अनेक भौतिकी भावनाओ को लेकर चलने वाले प्राणियो का जीवन बीच मे ही समाप्त हो जाता

है। और वह आत्मज्ञान किवा अध्यात्म सुख से वचित रह जाता है। अपने अमूल्य जीवन को निरर्थक खो बैठता है तथा जन्ममरण की लम्बी परम्परा मे भटक जाता है।

स्थिति को स्पष्ट करने के लिए मैं एक प्रचलित रूपक सुना देता हूँ। एक अरबपति सेठ के मन मे आया कि मेरे पास मे कितनी सम्पत्ति है। इसकी जरा लिस्ट बनवा कर देखू ? मुनीमो को आदेश दिया गया, पाच मुनीमो ने मिलकर लिस्ट बनाई और कहा कि "आठ पीढी खाये, इतना धन आपकी तिजोरी मे है।" यह सुनकर सेठ के मन मे प्रसन्नता तो नही आई, किन्तु और अधिक चिन्ता व्याप्त हो गई कि आठ पोढी तक तो खाने के लिए सम्पत्ति है, पर नवी पीढी क्या खायेगी ? यही चिन्ता उन्हे सताने लगी, वे दु खो हो गये। और चित्त विक्षेप से दिन प्रतिदिन रुग्णता को प्राप्त होते गये। डॉक्टर, वैद्य, हकीम आने लगे, किन्तु इस मानसिक रोग को मिटाने के लिये कोई भी समर्थ नही हुआ।

एक दिन एक मानसिक चिकित्सक आया और उसने मनोवैज्ञानिक ढग से सेठ के मन की बात भाँप ली तथा उनके मुँह से यह बात कहलवा दी कि आठ पीढी खाये इतना धन तो मेरे पास है। पर नवी पीढी का क्या होगा ? बस मुझे यही चिंता खा रही है। तब मनोवैज्ञानिक ने कहा कि पहले मुझे तुम यह बताओ कि तुम्हारे लडके कितने है। तो सेठ कहने लगा कि—लडका तो मेरे एक भी नही है, और अब होने की आशा भी नही है, तब उस चिकित्सक ने कहा कि तो फिर तुम किसकी चिन्ता कर रहे हो ? कहाँ नवी पीढी आने वाली है ? जबकि तुम्हारे बाद भी तुम्हारे इतने धन का उपभोग करने वाला कोई नही है। सेठ के बात समझ मे आ गई, उसकी सारी बीमारी नौ दो ग्यारह हो गई। तो बन्धुओ, यह विचारने की बात है। आज का व्यक्ति भी क्या सोच रहा है, बस एक अपनी इच्छापूर्ति मे सलग्न बना भौतिकता मे रमण करता हुआ, भौतिकता मे ही भटकता हुआ सम्यग्दर्शन को भी खो बैठता है और जिन्दगी को विनाश के कगार पर ला खडा कर देता है।

जीवन को शातिमय बनाने के लिये सम्यग्दर्शन के गुणो को अपनाना ही होगा, इन गुणो मे महत्त्वपूर्ण गुण है—अनुकम्पा का "अनुकूल कम्पन इति अनुकम्पा" दूसरे के दु ख को अपना दु ख समझ कर आत्मीय भावना से उसे दूर करने की अतीव तीव्र [उत्कट्] भावना अनुकम्पा है। भाई-भाई के साथ, प्राणी प्राणी के साथ आत्मीय भावना रखी जाय, "आत्मन् प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्" आत्मा से प्रतिकूल आचरण दूसरो के लिए नही करना सम्यग्दर्शन का मूल है।

सज्जनो ! आज के इस आधुनिक युग मे क्या-क्या देखने को मिल रहा है, देखिये इस बम्बई शहर को ही, जहाँ वर्षा की बाढ मे हजारो प्राणी बेघरबार

हो रहे है और इधर वे रईस लोग अपनी इम्पोर्टेड (Imported) कारो को लेकर वर्षा का मौसम देखने के लिए फाइव-स्टार होटलो मे ऐश करने के लिए हजारो-लाखो रुपये खर्च कर रहे है। कहाँ है आज के लोगो मे अनुकम्पा ? कहाँ है आज साधर्मी भाइयो के प्रति वात्सल्य ? अधिकाश लोग अपने स्वार्थ मे डूबे हैं। जहाँ हजारो लोग मर रहे है, वहाँ चन्द लोग गुलछर्रे उडा रहे है और यह सोचते है "मरे वो दूजा हम कराये पूजा" लेकिन यह कब तक चलने वाला है ? आत्मीयता के प्रतिकूल यह आचरण कितना भयानक, घातक परिणाम दिखला सकता है, शाति पाने के लिए सम्यग्दर्शन का विशिष्ट लक्षण अनुकम्पा को जीवन मे उतारना होगा।

जिसे आप अनार्य देश समझते हैं, उस अमेरिका के प्रेसिडेट (president) अब्राहम लिंकन की बात सुनी होगी, जब वे एसेम्बली (S M L) जा रहे थे, उस समय रास्ते मे उन्होने कीचड मे एक सुअर को छटपटाते देखा तो उनके मन मे अनुकम्पा जागृत हुई। और वे स्वय ही बग्घी से नीचे उतरे तथा उस कीचड मे से सुअर को निकालने का प्रयत्न करने लगे। सुअर के पैर पछाडने से उनके कपडे खराब होने लगे तो भी वे अपने कपडो की चिन्ता किए बिना उस सुअर को निकालने मे प्रयत्नशील रहे। आखिर उन्होने उसे बाहर निकाल ही दिया। एसेम्बली का टाईम हो जाने से, वे टाईम के पक्के, अब्राहम लिंकन उन्ही कपडो मे एसेम्बली पहुँच गये। सभी को उनके कपडे देखकर आश्चर्य हुआ। लोगो ने उनसे पूछने का तो साहस नही किया, पर उनके नौकर से पूछा—तब उनके नौकर ने सारी घटना सुना दी।

एसेम्बली के सदस्यो का मस्तिष्क लिंकन के प्रति श्रद्धा से झुक गया, किन्तु लिंकन ने तो यह साफ कहा कि यह तो मैने किसी पर उपकार नही किया है। मैने तो मेरी तडफन ही मिटाई थी। देखिये, एक तो लिंकन की भावना और एक आज के सस्कृति निष्ठ भारत मे रहने वाले साधन सम्पन्न श्रेष्ठियो का रूप। मै सब की बात तो नही कहता, किन्तु अधिकाश लोग तो सुअर के छट-पटाने की बात तो जाने दो, आदमियो के प्राण छटपटा रहे होगे तो भी उस ओर देखने का भी प्रयास नही करते।

एक भाई जहा साधन सम्पन्न है तो वह भी अपने साधनहीन विपन्न भाई की ओर भी देखने की कोशिश नहीं करता। यदि ऐसी ही स्थिति बनी रही तो आत्मिक शाति मिलने वाली नही है, सुख पाने के लिए सम्यक् दर्शन के लक्षणो को जीवन मे अपनाना ही होगा।

कई बार मेरे भाई विचार करते है कि हम इतनी बार यानी वर्षो तक प्रवचन सुनते आ रहे है, किन्तु जीवन मे तो परिवर्तन नही आया। इसमें बाधकता क्या है ? क्या प्रवचन मे ही कुछ कमी है ? बन्धुओ ! यहाँ पर विचारने

की बात यह है कि जिस घडे को उल्टा रख छोडा है, उसमे पानी भरने के लिए कितना ही पानी उडेला जाय, पर घडे मे एक बूद भी पानी नही आता, क्योकि घडा उल्टा पडा है। ठीक इसी प्रकार यदि श्रोता अपने हृदय के कपाट को वन्द करके सुनता है, तो उसमे गल्ती उसकी है। वीतराग वाणी तो निरन्तर प्रवाहित हो रही है, किन्तु यदि हार्दिक भावो के साथ न सुनी जाए तो परिवर्तन नही आ सकता। इस बडी गल्ती को सुधारा जाय। हृदय के पट को खोलकर सुना जाय। मै यह तो नही कहता कि सभी श्रोता लोग अपने हृदय के पट को बद करके ही सुनते है। किन्तु जिन व्यक्तियो के जीवन मे वर्षो से परिवर्तन नही आया है, जिनका शरीर वदल गया है, किन्तु उनकी आत्मा नही वदली, उनके लिए यह मानना होगा कि वे अपने हृदय के पट को वद करके सुन रहे है।

अन्त मे यही कहना है—जीवन को साफ और स्वच्छ बनाने के लिए, सम्यग्दर्शन के लक्षणो को समझपूर्वक जीवन मे उतारने के लिए हृदय पट को खोलकर वीतराग वाणी सुनी जाय, अवश्य ही जीवन मे परिवर्तन आएगा।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

७-७-८५
रविवार

८ | आस्था का सुमेरु

अनत-२ उपकृति के केन्द्र वीतराग भगवान् और उनकी परम्परा को सुरक्षित रखने वाले महापुरुषो ने मोक्षगामी भव्यो के लिये अतीव उपकार किया है। वीतराग भगवान् के द्वारा प्रतिपादित जो सिद्धान्त है, उपदेश है, उस पर प्रगाढ आस्था बन जाय, विश्वास हो जाय, तो हमारी आत्मोन्नति का द्वार खुल सकता है। सिर्फ जानकारी ही न हो वरन् सम्यक्त्व का लक्षण जिन वचनो के प्रति, अचल आस्था निरन्तर उसकी प्रवाहित बनती रहे। सम्यग्दृष्टि जीव को जीव, अजीव, नवतत्त्व, पच्चीस क्रिया का ज्ञान भी होना चाहिये तथा वह यह ज्ञान भी करे कि हमारी आत्मा किन-२ कारणो से बधन को प्राप्त हो रही है, और किन-२ क्रियाओ से, किन-२ उपायो से बन्धन से मुक्त हो सकती है।

क्रिया शुभाशुभ दोनो प्रकार की, पुण्य पाप कर्म बाँधनेवाली होती है। पुण्य-पाप ये दोनो तत्त्व है। पुण्य के उदय से आत्मा की कैसी दशा होती है, और पाप के उदय से कैसी होती है ? इसके कई उदाहरण शास्त्रों मे आते है। जो इस विषयक अपनी रुचि रखता है, जिन वचनो पर आस्था रखता है, वह ज्ञान हासिल कर अपने को पाप से पृथक् कर पुण्य के जहाज मे बैठ सकता है।

एक पौराणिक आख्यान है—एक व्यक्ति जिसने बहुत अधिक पुण्यवानी का सचय किया, और मृत्यु के प्रसग पर यम के समक्ष यह श्रवण करने को मिला कि तुम्हारे पुण्य का सचय अत्यधिक है, और पाप बहुत कम है, अत. किसका उपभोग पहले करना है, तब कर्म फिलोसोफी से अनभिज्ञ वह कहने लगा कि पहले मुझे पाप का उपभोग करना है, क्योकि पाप भोग लू गा तो बाद मे सारी पुण्यवानी ही अवशेष रह जायेगी। तो यम ने उसे एक प्रकार के गिरगिट की अवस्था प्रदान करा दी, वह वहाँ पाप का उपभोग करते-२ अपनी अज्ञानता से, बहुत सारी हिंसात्मक मनोवृत्ति से पाप का सचय कर गया, और अनिकाचित पुण्य प्रकृति को भी पाप में परिवर्तित कर दी। यह तो एक दृष्टान्त है, पर आज कौन ऐसा मनुष्य होगा जो पाप का उपभोग करना चाहेगा ? पर वीतराग भगवान् की वाणी है कि जो पाप करता है, उसका फल उसको ही भोगना पडता है, अन्य उसे नही भोग सकते है। एक नन्हा बालक मिर्ची का बीज खाता

है तो मुँह भी उसी का जलने लगता है, ठीक इसी प्रकार पाप के वीज मोह के अधीन हो जो बोता है, तो उसका फल समय आने पर उसे ही भोगना पडता है, पुण्य-पाप का फल भुगतने के लिए कोई अन्य ईश्वर आदि की कल्पना उपयुक्त नही, जो कर्त्ता है, वही भोक्ता भी है। जैसे कि—

एक डॉक्टर, किसी रोगी के पास पहुँचा और देखा कि उस रोगी के शरीर मे कई प्रकार के रोग के कीटाणु कार्य कर रहे थे। अत डॉक्टर ने कहा कि मै सभी प्रकार के रोगो की गोलियाँ देता हूँ। मलेरिया, टाइफाइड, नमोनिया तथा सन्निपात सभी की गोलियाँ डॉक्टर ने दी, और मरीज ने सभी गोलियाँ पेट मे डाल दी। अब आप बताओ कि अन्दर कौन बैठा है, जो उन गोलियो का अलग-२ रोग पर अलग-२ असर कराता है। इसी प्रकार व्यक्ति शुभाशुभ कर्म करता है, जिससे कर्म वर्गणा आती रहती है, और अलग-२ रूप मे उनका स्वभाव भीतर बनता रहता है, और अलग-२ फल देने की शक्ति उनमे उत्पन्न हो जाती है, इन सबमे मुख्य कार्यकारी शक्ति आत्मा ही है। यह विषय अत्य-धिक सूक्ष्मता से, गहराई से जो भव्य मनुष्य जान लेता है तो वह पाप का क्षय कर पुण्य का बन्ध कर निर्जरा के प्रशस्त मार्ग पर आगे बढ सकता है। इसके लिये धैर्य और साहसादि आत्मिक गुणो के विकास की अति आवश्यकता है। चाहे गृहस्थाश्रम मे हो या साधुता की साधना पर आरूढ हो, सभी को धर्म करणी करते हुए धैर्य और आस्था अतीव अपेक्षित है, कर्म सिद्धान्त का आत्मा पर कैसे प्रभाव पडता है ? इसका भावात्मक अध्ययन करने के लिये भगवान् ने चार अनुयोग का स्वरूप बतलाया है। उसमे चरितानुयोग से हर गूढ तत्त्व को समझने मे सहूलियत रहती है। एक रूपक है—

एक चित्रकार एक रगीन डिब्बिया लेकर बालको को कहे कि इसमे हाथी, घोडा, हवाईजहाज आदि है। इस प्रकार कहने पर क्या कोई विश्वास कर सकता है ? पर जब वह सलाई लेकर उसी रग से चित्र चित्रित कर दे तो उसे सब ही मान लेते हैं। वैसे ही आत्मा मे भी सब प्रकार की शक्तियाँ समाहित है, आवश्यकता है सत्पुरुषार्थ द्वारा उन्हे जागृत करने की। धैर्य और साहस का मधुर फल इसी जीवन मे और अगले जीवन मे दोनो ही जीवन मे मिलता है।

वह पुरुषार्थ आगमानुसार है या नही ? यहाँ यह भी जान लेना योग्य है। आगम मे सभी तरह का विषय आता है। उसमे हेय, ज्ञेय, उपादेय तीनो ही तरह के विषय आते है। उन सभी विषयो मे जो विशेष रूप मे उपयोग योग्य बतलाया जाता है, वह पालनीय होता है। वैसे शास्त्रो मे द्रौपदी का कथन भी आया है और उसके पाँच पति भी बतलाये हैं। इस पर कोई यह सोचते हो कि द्रौपदी ने पॉच पति किये तो अच्छा किया है और वह सती कहलाती है तो हम भी ऐसा

करे, तो वह सही नही होगा। द्रौपदी को पाँच पति होने से सती नही कहा है। अपितु पातिव्रत धर्म पर एकनिष्ठ होने से तथा दीक्षित होने से महासती कहा है। पाँच का प्रसग उसके पूर्व कर्मोदय का परिणाम था, जो सभी के लिए ग्राह्य नही हो सकता। यह ज्ञेय विषय है, उपादेय नही। पुराण मे द्रौपदी को लेकर उसके सतीत्व की अवस्था बतलाते हुए एक रूपक दिया है—

एक बार श्रीकृष्ण के साथ पाँचो पाण्डव और सती द्रौपदी एक बगीचे मे जा रहे थे, प्रवेश के साथ ही सबको फल तोडने का निषेध कर दिया गया था, पर सब तो आगे-२ चल रहे थे, और भीम जो भारी शरीर के कारण पीछे चल रहा था, उसने देखा कि वृक्ष पर एक सुन्दर फल लगा है तो उसे देखकर मन चलायमान होने से भीम ने फल तोड लिया और श्रीकृष्ण ने उसे देख लिया। तब श्रीकृष्ण ने उसे प्रायश्चित करने के लिये कहा—प्रायश्चित कर लेने पर ही आगे बढेगे। घर मे जितने सदस्य होते है, और जो पाप घर मे होता है, उसके भागी घर के सभी सदस्य होते है। श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम सभी इस भीम के द्वारा कृत पाप के भागीरत हो, अत धर्मराज तुम सर्वप्रथम प्रायश्चित करो कि "आज दिन तक मेरा जीवन पवित्र रहा हो, अन्य स्त्री की तरफ मेरी भावना नही गई हो तो हे फल तू मेरी पवित्र स्थिति के बलबूते से पुन डाली पर लग जा।" कृष्ण महाराज के कहने के अनुसार, धर्मराज के कहने पर फल एक हाथ ऊपर उठ गया। इसी प्रकार सभी भाइयो ने कहा और वह फल एक हाथ ऊपर चढता गया। जब द्रौपदी ने कहा कि यदि मैंने अन्य पुरुष की आकाक्षा नही की हो तो फल तुरन्त डाली के ऊपर लग जा। तो हुआ क्या ? वह फल जो पाँच हाथ ऊपर उठा हुआ था, धडाम से पृथ्वी पर गिर गया। द्रौपदी लज्जाशील बनी, एकदम मूक बन गयी, पाण्डवो को भी आश्चर्य हुआ। तब कृष्ण ने कहा कि तुमने पूरा प्रायश्चित नही किया। तब द्रौपदी ने अपने सारे जीवन का प्रत्यावलोकन कर अपना प्रायश्चित किया और कहा कि जब मैं एक बार व्यायामशाला के पास मे होकर जा रही थी, उस समय कर्ण को व्यायाम करते देखकर मेरे मन मे विचार आया कि क्या ही अच्छा होता पाँच पाण्डवो के साथ कर्ण भी होता तो मेरे पाँच पति के साथ छ पति हो जाते, बस इस भावना के अलावा मेरे मन मे कोई भावना नही आयी थी। अत हे फलराज ! मेरी इस अभिवृत्ति मे कुछ भी कमी न हो तो शीघ्रता से वृक्ष पर लग जाओ, इतना कहते ही फल झट से डाली पर लग गया।

कहने का तात्पर्य यह है कि भव्यात्माओ ! सुदेव, सुगुरु, सुधर्म के प्रति अविचल श्रद्धा होनी चाहिये, इसी के साथ वीतराग प्ररूपित आगमो पर भी आस्था हो लेकिन उन वीतराग प्ररूपित सिद्धान्तो को वह समझे और छोडने योग्य को छोड़कर उपादेय को ही ग्रहण करे और उपादेय मे भी कभी दोष लग

है तो मुँह भी उसी का जलने लगता है, ठीक इसी प्रकार पाप के बीज मोह के अधीन हो जो बोता है, तो उसका फल समय आने पर उसे ही भोगना पडता है, पुण्य-पाप का फल भुगतने के लिए कोई अन्य ईश्वर आदि की कल्पना उपयुक्त नही, जो कर्त्ता है, वही भोक्ता भी है । जैसे कि—

एक डॉक्टर, किसी रोगी के पास पहुँचा और देखा कि उस रोगी के शरीर मे कई प्रकार के रोग के कीटाणु कार्य कर रहे थे । अत डॉक्टर ने कहा कि मै सभी प्रकार के रोगो की गोलियाँ देता हूँ । मलेरिया, टाइफाइड, नमोनिया तथा सन्निपात सभी की गोलियाँ डॉक्टर ने दी, और मरीज ने सभी गोलियाँ पेट मे डाल दी । अब आप बताओ कि अन्दर कौन बैठा है, जो उन गोलियो का अलग-२ रोग पर अलग-२ असर कराता है । इसी प्रकार व्यक्ति शुभाशुभ कर्म करता है, जिससे कर्म वर्गणा आती रहती है, और अलग-२ रूप मे उनका स्वभाव भीतर बनता रहता है, और अलग-२ फल देने की शक्ति उनमे उत्पन्न हो जाती है, इन सबमे मुख्य कार्यकारी शक्ति आत्मा ही है । यह विषय अत्य-धिक सूक्ष्मता से, गहराई से जो भव्य मनुष्य जान लेता है तो वह पाप का क्षय कर पुण्य का बन्ध कर निर्जरा के प्रशस्त मार्ग पर आगे बढ सकता है । इसके लिये धैर्य और साहसादि आत्मिक गुणो के विकास की अति आवश्यकता है । चाहे गृहस्थाश्रम मे हो या साधुता की साधना पर आरूढ हो, सभी को धर्म करणी करते हुए धैर्य और आस्था अतीव अपेक्षित है, कर्म सिद्धान्त का आत्मा पर कैसे प्रभाव पडता है ? इसका भावात्मक अध्ययन करने के लिये भगवान् ने चार अनुयोग का स्वरूप बतलाया है । उसमे चरितानुयोग से हर गूढ तत्त्व को समझने मे सहूलियत रहती है । एक रूपक है—

एक चित्रकार एक रगीन डिब्बिया लेकर बालको को कहे कि इसमे हाथी, घोडा, हवाईजहाज आदि हैं । इस प्रकार कहने पर क्या कोई विश्वास कर सकता है ? पर जब वह सलाई लेकर उसी रग से चित्र चित्रित कर दे तो उसे सब ही मान लेते हैं । वैसे ही आत्मा मे भी सब प्रकार की शक्तियाँ समाहित है, आवश्यकता है सत्पुरुषार्थ द्वारा उन्हे जागृत करने की । धैर्य और साहस का मधुर फल इसी जीवन मे और अगले जीवन मे दोनो ही जीवन मे मिलता है ।

वह पुरुषार्थ आगमानुसार है या नही ? यहाँ यह भी जान लेना योग्य है । आगम मे सभी तरह का विषय आता है । उसमे हेय, ज्ञेय, उपादेय तीनो ही तरह के विषय आते है । उन सभी विषयो मे जो विशेष रूप मे उपयोग योग्य बतलाया जाता है, वह पालनीय होता है । वैसे शास्त्रो मे द्रौपदी का कथन भी आया है और उसके पाँच पति भी बतलाये है । इस पर कोई यह सोचते हो कि द्रौपदी ने पाँच पति किये तो अच्छा किया है और वह सती कहलाती है तो हम भी ऐसा

करे, तो वह सही नही होगा । द्रौपदी को पाँच पति होने से सती नही कहा है । अपितु पातिव्रत धर्म पर एकनिष्ठ होने से तथा दीक्षित होने से महासती कहा है । पाँच का प्रसग उसके पूर्व कर्मोदय का परिणाम था, जो सभी के लिए ग्राह्य नही हो सकता । यह ज्ञेय विषय है, उपादेय नही । पुराण मे द्रौपदी को लेकर उसके सतीत्व की अवस्था बतलाते हुए एक रूपक दिया है—

एक बार श्रीकृष्ण के साथ पाँचो पाण्डव और सती द्रौपदी एक बगीचे मे जा रहे थे, प्रवेश के साथ ही सबको फल तोडने का निषेध कर दिया गया था, पर सब तो आगे-२ चल रहे थे, और भीम जो भारी शरीर के कारण पीछे चल रहा था, उसने देखा कि वृक्ष पर एक सुन्दर फल लगा है तो उसे देखकर मन चलायमान होने से भीम ने फल तोड लिया और श्रीकृष्ण ने उसे देख लिया । तब श्रीकृष्ण ने उसे प्रायश्चित करने के लिये कहा—प्रायश्चित कर लेने पर ही आगे बढेंगे । घर मे जितने सदस्य होते है, और जो पाप घर मे होता है, उसके भागी घर के सभी सदस्य होते है । श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम सभी इस भीम के द्वारा कृत पाप के भागीरत हो, अत धर्मराज तुम सर्वप्रथम प्रायश्चित करो कि "आज दिन तक मेरा जीवन पवित्र रहा हो, अन्य स्त्री की तरफ मेरी भावना नही गई हो तो हे फल तू मेरी पवित्र स्थिति के बलबूते से पुन डाली पर लग जा । "कृष्ण महाराज के कहने के अनुसार, धर्मराज के कहने पर फल एक हाथ ऊपर उठ गया । इसी प्रकार सभी भाइयो ने कहा और वह फल एक हाथ ऊपर चढता गया । जब द्रौपदी ने कहा कि यदि मैंने अन्य पुरुष की आकाक्षा नही की हो तो फल तुरन्त डाली के ऊपर लग जा । तो हुआ क्या ? वह फल जो पाँच हाथ ऊपर उठा हुआ था, धडाम से पृथ्वी पर गिर गया । द्रौपदी लज्जाशील बनी, एकदम मूक बन गयी, पाण्डवो को भी आश्चर्य हुआ । तब कृष्ण ने कहा कि तुमने पूरा प्रायश्चित नही किया । तब द्रौपदी ने अपने सारे जीवन का प्रत्यावलोकन कर अपना प्रायश्चित किया और कहा कि जब मैं एक बार व्यायामशाला के पास मे होकर जा रही थी, उस समय कर्ण को व्यायाम करते देखकर मेरे मन मे विचार आया कि क्या ही अच्छा होता पाँच पाण्डवो के साथ कर्ण भी होता तो मेरे पाँच पति के साथ छ पति हो जाते, बस इस भावना के अलावा मेरे मन मे कोई भावना नही आयी थी । अत हे फलराज ! मेरी इस अभिवृत्ति मे कुछ भी कमी न हो तो शीघ्रता से वृक्ष पर लग जाओ, इतना कहते ही फल झट से डाली पर लग गया ।

कहने का तात्पर्य यह है कि भव्यात्माओ ! सुदेव, सुगुरु, सुधर्म के प्रति अविचल श्रद्धा होनी चाहिये, इसी के साथ वीतराग प्ररूपित आगमो पर भी आस्था हो लेकिन उन वीतराग प्ररूपित सिद्धान्तो को वह समझे और छोडने योग्य को छोडकर उपादेय को ही ग्रहण करे और उपादेय मे भी कभी दोष लग

जाय तो द्रौपदी की तरह आलोचना कर शुद्धि करले ।

शास्त्र मे तो पुण्य का भी वर्णन आता है तो पाप का भी आता है। इसका मतलब पाप उपादेय नही हो जाता, पाप तो सर्वथा त्याज्य हो होता है।

आगमो पर आस्था रखकर क्षीर-नीर विवेक बुद्धि के साथ भव्यात्माएँ आगे बढे, तो मगलमय दशा को प्राप्त कर सकेगी। इसी मगलमय शुभ भावना के साथ—

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

८-७-८५
सोमवार

६ एकनिष्ठ आस्था का चमत्कारिक प्रभाव

अनिर्वचनीय उपकार करने वाले तीर्थंकर भगवान् ने अपनी आन्तरिक शुद्धि से जो उपदेश प्रदान किया, वह उपदेश आज के भव्य मुमुक्षुओं के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कारण कि वर्तमान मे जो जीवन प्राप्त है, उस जीवन की सार्थकता एव विकासशीलता उस उपदेश से ही उपलब्ध हो सकती है। प्रत्येक आत्मा सुख की अभिलाषिणी है, पर सुख किस रीति से प्राप्त हो सकता है? इसका ज्ञान बहुत कम मनुष्यो को है, जैसे—पानी-पानी की रट लगाने वाला पानी का स्वरूप न समझने के कारण अन्य घासतेल आदि-आदि तरल पदार्थ यदि पी लेता है, तो उससे उसकी प्यास बुझ नही सकती। ठीक, इसी प्रकार अन्तरनाद को मिटाने मे यह भौतिकता, यह पच विषयो मे प्रवृत्ति समर्थ नही है, यदि इनसे अन्तर लालसा की पूर्ति होती तो फिर मनुष्य सुख की दौड मे इधर-उधर नही भटकता। क्योकि यह तो आज के युग मे प्रचुर है, फिर भी इन भौतिक तत्त्वो से शाति प्राप्त नही हो पा रही है।

आत्मा की सच्ची तृषा भौतिकता से त्रिकाल मे भी न कभी बुझी है, न बुझेगी। आत्म-शाति पाने के लिए, आत्मा को पहचानने के लिए जो प्रयत्नशील बनता है वह उसमे विद्यमान शुद्ध पर्याय को जानकर उसे प्राप्त करने मे पुरुषार्थरत हो सकता है। अपने स्वरूप को जानने के लिये हमेशा स्वाध्याय के साथ-साथ स्व का अध्ययन भी करना चाहिये। पुस्तक से जो स्वाध्याय होता है, वह तो श्रुतज्ञान मे आता है, पर उसकी गहराइयो मे उतरने के लिये तथा आगे बढने के लिये वीतराग वाणी के रहस्य को जानना आवश्यक है।

आत्म पुस्तक से श्रोता को जो ज्ञान होता है, वह जीवन्त ज्ञान है। केवल पुस्तको से आन्तरिक अनुभव प्राप्त नही हो सकता। अनुभवो की उपलब्धि कराने वाला हमारा ही चैतन्य है।

मगध सम्राट ने जब बगीचे मे आन्तरिक अनुभूतियो से ओतप्रोत अनाथी-मुनि का आभा-मडल देखा तो वह आश्चर्यचकित सुख की अनुभूति करने लगा। जब सम्राट श्रेणिक ने अनाथीमुनि से सनाथ-अनाथ को लेकर चर्चा की तो अनाथीमुनि ने बतलाया कि सनाथ-अनाथ का स्वरूप बाहरी उपाधियो एव परिधियो से नही समझा जा सकता है, इसके लिए आत्मिक धरातल पर आन्तरिक अनुभूति होना आवश्यक है। क्योकि वही विशेष लाभदायक है।

जाय तो द्रौपदी की तरह आलोचना कर शुद्धि करले ।

शास्त्र मे तो पुण्य का भी वर्णन आता है तो पाप का भी आता है। इसका मतलब पाप उपादेय नही हो जाता, पाप तो सर्वथा त्याज्य हो होता है ।

आगमो पर आस्था रखकर क्षीर-नीर विवेक बुद्धि के साथ भव्यात्माएँ आगे बढे, तो मगलमय दशा को प्राप्त कर सकेगी । इसी मंगलमय शुभ भावना के साथ—

मोटा उपाश्रय ८-७-८५
घाटकोपर, बम्बई सोमवार

करो, यदि वह तुम्हारे सारे शरीर पर माँ की ममता भरी दृष्टि प्रक्षेप करे तो तुम्हारा सारा शरीर वज्रमय बन जायेगा।" दुर्योधन फूला नही समाया और धर्मराज से स्वीकृति प्राप्त कर बाहर निकलने लगा, पर इधर कृष्ण महाराज को पता चल गया था। अत उन्होने आगे-पीछे की सारी बात का ख्याल करके दुर्योधन से कहा कि तुम अपनी जीत के लिये धर्मराज के पास गये थे ना, उन्होने क्या उपाय बताया, देखो मुझसे मत छिपाना, मुझसे कुछ भी छिपा हुआ नही है, तब दुर्योधन ने सारी हकीकत कह दी। तब कृष्ण महाराज ने सलाह दी कि तुम इतने बडे राजनपतिराजा होकर अपनी माँ के सामने सारा बदन खुला कर कैसे जाओगे, कम से कम गोपनीय स्थान पर वस्त्र रखकर जाना, गदा का प्रहार वहाँ तो होगा नही, तब दुर्योधन इस बात को स्वीकार कर, उसी तरह माँ के सामने आकर खड़ा हुआ। माँ की जहाँ-जहाँ दृष्टि पडी वह भाग तो वज्रमय बन गया, लेकिन वस्त्र से अनावृत अग कच्चा रह गया। खैर यह कहानी तो बहुत बडी है, मैं जो सम्यक्त्व की बात कह रहा था, और इस कथा भाग से हमे बहुत तरह से पुष्टि मिल रही है, यदि आप निर्मल दृष्टा है तो आपकी दृष्टि मे वह तेज प्राप्त हो सकता है। चेतना मे इतनी शक्ति है कि हमारी सारी समस्याओ का हल हमारी चेतना से, हमारी सम्यक्त्व स्थिति से ही हो सकता है।

जब पति के प्रति एकनिष्ठा प्राप्त हो जाने पर गाधारी मे भी दुर्योधन को वज्रमय बनाने की शक्ति आ सकती है, तो जो भव्यात्मा परमपिता परमात्मा के प्रति अचल आस्था एव एकनिष्ठा रखती है उसमे कितनी शक्ति आ सकती है? यह चिन्तन करिये। यह आस्था सम्यक्त्व से ही आ सकती है। दृढ सम्यक्त्वी के सामने मानव की तो बात जाने दो, देवता भी झुक जाते है। उनकी शक्ति भी सम्यक्त्वी के सामने फीकी पड जाती है। उदाहरण के रूप मे "ज्ञाताधर्मकथाङ्ग" सूत्र मे वर्णित अरणक श्रावक की धर्म-निष्ठा के सामने देव झुक गया था। श्रेणिक राजा की अचल आस्था के सामने भी देव प्रणत हो गया था। अतः यह स्पष्ट है कि दृढ सम्यक्त्वी मे सम्यक्त्व तेज से विशेषता आ जाती है।

आत्म शक्ति को जागृत करने के लिये सबसे पहले सम्यक्त्व का जागरण आवश्यक है। वह सम्यक्त्व का जागरण गाधारी की तरह, वीतराग देव के प्रति एकनिष्ठ बने। इसके लिए सम्यक्त्व के आठ आचार हैं। उनका ज्ञान होना भी अतीव आवश्यक है।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

९-७-८५
मगलवार

□ □ □

बन्धुओ ! यह स्पष्ट है कि जगत् के सभी प्राणियो के साथ आन्तरिक अनुभूति एक-दूसरे के साथ अनुरजित हो। सहृदयता रखते हुए एक-दूसरे के सहयोग एव उनकी अनुभूतियो से अपने जीवन का विकास करने का यदि प्रयत्न किया जाय, तो सफलता श्रीचरणो मे चेरी वनकर खड़ी रह सकती है।

एक पतिव्रत धर्म को लेकर चलने वाली सती मे भी कितनी शक्ति आ सकती है, यह गाधारी के उदाहरण से समझा जा सकता है तो परिपूर्ण आत्मा-राधना करने वाले मे कितनी शक्ति आयेगी ? यह अवक्तव्य है।

महाभारत का युद्ध, जिसमे युद्ध करते-करते कौरव पक्ष जो कि प्राय: समाप्त सा होने लग गया, तब दुर्योधन मन मे विचार करने लगा कि मै कितनी-कितनी भावना लेकर चल रहा था, पर वह सब मटियामेट होने जा रही है। अब अतिम समय युद्ध भीम के साथ सम्पन्न होने वाला है। उसी से विजय का निर्णय होने वाला है। अब मैं क्या करूँ ? किसके पास जाऊँ ? किससे ऐसा उपाय प्राप्त करूँ ? चाहे मैं कितनी ही नीति शास्त्रों की बाते पढलूँ, पर मक्खन निकालने की सक्षमता मुझमे नही आ सकेगी ? मैं क्यो न चैतन्य देव की चौपडी से इसका हल निकाल लूँ ? चैतन्य देव की चौपडी युधिष्ठर धर्मराज है। हालाकि वे मेरे प्रतिपक्षी हैं, फिर भी उनका व्यवहार बहुत तटस्थ है। वे सत्य-निष्ठ हैं। अत दुर्योधन को यह बात जँच गई कि मैं युधिष्ठर के पास जाऊँ और उनसे हल पूछूँ, जरूर मुझे हल मिलेगा और मेरा सारा कार्य सिद्ध हो जायेगा। देखिये—शत्रु पर अटल विश्वास कर दुर्योधन जहाँ युधिष्ठर थे, वहाँ पहुँचे। पूर्व के युद्धो मे नैतिकता की स्थिति रहती थी, जब युद्ध का समय पूर्ण हो जाता था, तब एक-दूसरे के नजदीक जाकर उनकी सारसभाल करते थे। दुर्योधन ने जाकर धर्मराज को नमस्कार किया, धर्मराज बडे प्रेम से उनकी तरफ दृष्टि डालते हैं और मधुर शब्दो से सत्कार-सम्मान करते हैं। बहुत प्रसन्न भावो से धर्मराज ने दुर्योधन से आगमन विषयक कारण पूछा, तब दुर्योधन ने कहा कि अब मेरा भीम के साथ गदा युद्ध होगा, इसमे मैं कैसे विजय प्राप्त करूँ, इस समस्या का हल प्राप्त करने के लिये आपके पास आया हूँ। अत. कृपा करके मुझे वह उपाय बताओ।

बन्धुओ ! यदि आपके समक्ष ऐसा प्रसग आ जाय तो आप क्या करोगे ? आप अपने शत्रु का हित चाहे या न चाहे, पर धर्मराज विचार करने लगे कि "इनकी विजय से पाडवो की हार होगी, पर जो मुझसे सलाह लेने मेरे द्वार आया है तो मुझे इसे अनुभूति के आधार से सही उपाय ही बताना है", वे कहने लगे कि "दुर्योधन ! तुम्हारे घर मे ही इसका उपाय विद्यमान है जिससे तुम अपना शरीर वज्रमय वना सकते हो, इसका उपाय तुम्हारी माँ गाधारी है, जो शुद्ध शीलवती पतिव्रता नारी है, उसके पास जाकर तुम नम्रतापूर्वक निवेदन

सकता हूँ कि बालक की सृष्टि का कर्ता माँ है। उसमे वह ईश्वरीय शक्ति है कि वह कुम्भकारवत् अपने बच्चे को सस्कारित कर अपने मनोभावो के अनुरूप बना सकती है। महाराजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित जिसे माता तारा के ऐसे सुसस्कार मिले कि वह देव के प्रलोभन मे आकर भी अपनी क्षुधा शात करने को तैयार नही हुआ, कारण उसकी अपनी ममतामयी माता के प्रति परिपूर्ण-रूपेण समर्पणा थी और उस समर्पणा का ही पुण्य प्रसाद था कि उसका जीवन बचपन से सुसस्कारित, उच्च कुल का प्रतीक था। इसी प्रकार वीतराग के मार्ग पर वीतराग की आज्ञाओ पर यदि परिपूर्णरूपेण समर्पणा हमारी हो जाती है तो हमारी आत्मा का विकास परिपूर्णरूपेण सम्भवित है। यदि हमे वीतराग की आज्ञा का सम्यक् बोध नही है और हम चारो तरफ के तथाकथित धर्मो को अपना कर ससार के प्रवाह मे बह रहे है, तो जैसे कहावत है कि "सात मामा का भाणजा भूखा ही रह जाता है"—वही हालत हमारी हो सकती है। अतएव वीतराग की आज्ञाओ का सम्यक् बोध करके उसी पर परिपूर्ण समर्पणा, कृष्ण के प्रति रुक्मणी की तरह हमारी प्रभु के प्रति बन जाय तो जैसे कृष्ण महाराज रुक्मणी की सर्वतोभावेन समर्पणा से उसे सप्राप्त हो गये, ठीक वैसे ही वीतराग की आज्ञा के प्रति हमारी परिपूर्णरूपेण समर्पणा से हमे अपनी आत्मिक उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकती है।

कई शाति इच्छुक लोग मत्र के विषय मे प्रश्न करते हैं और जब नवकार मत्र उनको बताया जाता है तो वे उसके महत्त्व को नही पहचान पाते है और अन्य मन्त्रो को जानने की आकाक्षा करते रहते है, पर आप नवकार मत्र के प्रति समर्पणा और उस समर्पणा से होने वाली उपलब्धि को समझने के लिए एक छोटा सा रूपक ध्यान मे ले। जैसे कि एक व्यक्ति राष्ट्रपति के प्रति समर्पित है और एक व्यक्ति साधारण सिपाही के प्रति। जो राष्ट्रपति के प्रति समर्पित होकर उसकी उपासना करने वाला व्यक्ति है, वह यदि ठोकर खाकर कही गिर जाता है तो उसकी सारसभाल करने वाले कितने उपस्थित हो जायेंगे ? जबकि सिपाही की उपासना करने वाले की यह स्थिति बनने पर अर्थात् ठोकर खाकर गिर जाने पर उसकी सारसभाल करने वाले कितने लोग उपस्थित होंगे ? यदि मान लो उसका इष्ट वह सिपाही उसको सहायता दे भी दे तो भी अन्य सिपाही उसमे बाधक भी बन सकते हैं। ठीक इसी प्रकार ६४ इन्द्रो से वदनीय नमस्कार मंत्र है और सिपाही की उपासना करने वाले व्यक्ति के समान अन्य मत्र है। नमस्कार मत्र की उपासना, जो व्यक्ति परिपूर्ण समर्पणा के साथ करते हैं उनकी उपासना राष्ट्रपति की उपासना करने वाले व्यक्ति के समान हर समय, हर परिस्थिति मे कामयाब हो सकती है। आपत्ति से हमे उबारने के लिए आत्मबल प्रदान करने मे समर्थ हो सकती है। पर अन्य मत्रो पर समर्पणा जिनकी होती है उनकी उपासना सिपाही की उपासना करने वाले व्यक्ति के समान ही होती है। अर्थात् अन्य मत्रो के अधिष्ठातृ देव-देवियाँ है वे भले ही अपनी स्तुतिपरक मत्र

सकता हूँ कि बालक की सृष्टि का कर्ता माँ है। उसमे वह ईश्वरीय शक्ति है कि वह कुम्भकारवत् अपने बच्चे को सस्कारित कर अपने मनोभावो के अनुरूप बना सकती है। महाराजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित जिसे माता तारा के ऐसे सुसस्कार मिले कि वह देव के प्रलोभन मे आकर भी अपनी क्षुधा शात करने को तैयार नही हुआ, कारण उसकी अपनी ममतामयी माता के प्रति परिपूर्ण-रूपेण समर्पणा थी और उस समर्पणा का ही पुण्य प्रसाद था कि उसका जीवन बचपन से सुसस्कारित, उच्च कुल का प्रतीक था। इसी प्रकार वीतराग के मार्ग पर वीतराग की आज्ञाओ पर यदि परिपूर्णरूपेण समर्पणा हमारी हो जाती है तो हमारी आत्मा का विकास परिपूर्णरूपेण सम्भवित है। यदि हमे वीतराग की आज्ञा का सम्यक् बोध नही है और हम चारो तरफ के तथाकथित धर्मो को अपना कर ससार के प्रवाह मे बह रहे है, तो जैसे कहावत है कि "सात मामा का भाणजा भूखा ही रह जाता है"—वही हालत हमारी हो सकती है। अतएव वीतराग की आज्ञाओ का सम्यक् बोध करके उसी पर परिपूर्ण समर्पणा, कृष्ण के प्रति रुक्मणी की तरह हमारी प्रभु के प्रति बन जाय तो जैसे कृष्ण महाराज रुक्मणी की सर्वतोभावेन समर्पणा से उसे सप्राप्त हो गये, ठीक वैसे ही वीतराग की आज्ञा के प्रति हमारी परिपूर्णरूपेण समर्पणा से हमे अपनी आत्मिक उप-लब्धियाँ प्राप्त हो सकती है।

कई शाति इच्छुक लोग मत्र के विषय मे प्रश्न करते है और जब नवकार मत्र उनको बताया जाता है तो वे उसके महत्त्व को नही पहचान पाते है और अन्य मन्त्रो को जानने की आकाक्षा करते रहते है, पर आप नवकार मत्र के प्रति समर्पणा और उस समर्पणा से होने वाली उपलब्धि को समझने के लिए एक छोटा सा रूपक ध्यान मे ले। जैसे कि एक व्यक्ति राष्ट्रपति के प्रति समर्पित है और एक व्यक्ति साधारण सिपाही के प्रति। जो राष्ट्रपति के प्रति समर्पित होकर उसकी उपासना करने वाला व्यक्ति है, वह यदि ठोकर खाकर कही गिर जाता है तो उसकी सारसभाल करने वाले कितने उपस्थित हो जायेंगे? जबकि सिपाही की उपासना करने वाले की यह स्थिति बनने पर अर्थात्-ठोकर खाकर गिर जाने पर उसकी सारसभाल करने वाले कितने लोग उपस्थित होगे? यदि मान लो उसका इष्ट वह सिपाही उसको सहायता दे भी दे तो भी अन्य सिपाही उसमे बाधक भी बन सकते है। ठीक इसी प्रकार ६४ इन्द्रो से वदनीय नमस्कार मत्र है और सिपाही की उपासना करने वाले व्यक्ति के समान अन्य मत्र है। नमस्कार मत्र की उपासना, जो व्यक्ति परिपूर्ण समर्पणा के साथ करते है उनकी उपासना राष्ट्रपति की उपासना करने वाले व्यक्ति के समान हर समय, हर परिस्थिति मे कामयाब हो सकती है। आपत्ति से हमे उबारने के लिए आत्मबल प्रदान करने में समर्थ हो सकती है। पर अन्य मत्रो पर समर्पणा जिनकी होती है उनकी उपासना सिपाही की उपासना करने वाले व्यक्ति के समान ही होती है। अर्थात् अन्य मत्रो के अधिष्ठातृ देव-देवियाँ हैं वे भले ही अपनी स्तुतिपरक मत्र

से प्रसन्न हो जाय और अपना कार्य सिद्ध कर दे पर उनके द्वारा होने वाली कार्य सिद्धि मे भी भजना है क्योकि उनका कोई विरोधी देव है तो वह उस समय बाधक बन सकता है। जैसे जो व्यक्ति राष्ट्रपति को प्रसन्न कर लेता है उसका कोई बाधक नही बन सकता है, ठीक वैसे हो नमस्कार मत्र की आराधना करने वाला नमस्कार मत्र मे जिनको नमन किया जा रहा है उन परमात्मा एव महानात्माओ की सेवा मे तत्पर रहने वाले जो सम्यग्दृष्टि ६४ इन्द्र देवादि है उनको प्रसन्न कर लेता है अथवा वे इन्द्रादि ही जव उस नमस्कार मत्र की आराधना, साधना करने वाले व्यक्ति के प्रति प्रसन्न हो जाते हैं अथवा प्रभावित हो जाते है तो उस साधक के कार्य सिद्ध होने मे कोई देरी नही हो सकती है और उन चौसठ इन्द्रो के अधीनस्थ सम्यग्दृष्टि हो अथवा मिथ्यादृष्टि कोई भी देव क्यो न हो, वह उस कार्य सिद्धि मे बाधक नही बन सकता है।

समर्पणा के लिए एक रूपक और ले सकते हैं। अपने घर मे जन्मे हुए लडके और जन्मी हुई लडकी इन दोनो मे घर का मालिक कौन होता है ? उत्तर होगा लडका। इसका कारण लडकी की पिता के प्रति समर्पणा, उस घर के प्रति समर्पणा नही होती है और लडके की अपने पिता के और अपने घर के प्रति परिपूर्ण समर्पणा होती है, अत वह उस घर का मालिक बन जाता है। उसी प्रकार वीतराग देव के घर का मालिक यदि हमे बनना है तो परमपिता महाप्रभु की आज्ञा के प्रति हमारी परिपूर्ण समर्पणा होनी चाहिये और परिपूर्ण समर्पणा के लिये आत्मिक गुणो का विकास भी अति आवश्यक है—आत्मिक गुण, सयमानुरजित धैर्य और साहस से अपने जीवन मे जो मनुष्य गतिशील है, उसका जीवन निरन्तर सुसफल बनता जाता है। और वीतरागदेव की आज्ञा का अन्तरग स्थिति के साथ परिपूर्ण समर्पणा के साथ पालन करने का आत्म पुरुषार्थ जागृत होकर अन्त मे परमात्म स्वरूप को अभिव्यक्त कर देता है। महाप्रभु के प्रति हमारी समर्पणा, नि स्वार्थ होती है तो वह निश्चय ही प्रभावशाली बनती है। स्वार्थ युक्त समर्पणा विशेष प्रभावशाली नही बनती। इसके ऊपर एक छोटा सा आख्यान है—एक राजा तीव्र वेगगामी घोडे पर बैठकर जगल मे शिकार खेलने गया तथा सभी साथियो से बिछुडकर किसी कृषक के कुए पर पहुँच गया। वहाँ एक बुढिया बैठी हुई थी, उसने उस राजा का हृदय से सत्कार किया, उसे चटाई पर बिठाया और गन्ने के खेत मे जाकर एक गन्ने को लाई और उसका एक लोटा रस निकालकर उसे पिलाया बडे स्नेहभावपूर्वक, उस राजा की भूख और प्यास दोनो ही शात हो गई। तब राजा विचार करने लगा कि यह बुढिया बहुत शक्तिशाली है। शक्तिशाली क्यो न हो ? इतना विस्तृत गन्ने का खेत है, कितना गुड बनता होगा ? इस पर मुझे जरूर अधिक कर लगाना चाहिए। ऐसा विचार कर वह राजा उस बुढिया के आदर सत्कार को लेकर रवाना हुआ और राज्य मे जाकर उसके गन्ने के जितने भी खेत थे उन सब पर कर लगा दिया। कुछ अर्से बाद पुन कुछ ऐसा प्रसग बना कि वह

राजा उसी बुढिया के आगन मे गया और उसका वही पूर्ववत् आदर सत्कार हुआ । बुढिया जब गन्ने का रस लायी तो उसने देखा कि पाँच-छ गन्ने का रस निकालने पर भी उसका लोटा नही भरा तो राजा ने स्वाभाविक रूप से पूछ लिया कि पहले तो सिर्फ एक गन्ने से ही लोटा रस से लवालव भर गया और आज पाँच-छ गन्ने के रस से भी यह लोटा क्यो नही भर पाया ? तब बुढिया जो कि अनभिज्ञ थी कहने लगी कि 'यही मेरा राजा है' और यहाँ का राजा इतना निष्ठुर बन गया है कि उसने कृषको के खेत पर वहुत अधिक कर लगा दिये है । इसी निष्ठुरता का परिणाम आप देख ही रहे है 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत यहाँ प्रचलित है ।

जैसे राजा की निष्ठुरता ने गन्ने के रस पर अपना प्रभाव दर्शाया क्योकि राजा के निजी जीवन का, व्यावहारिक धरातल का प्रजा पर प्रभाव पडता है । ठीक इसी प्रकार जिस प्रकार की हमारी प्रभु के प्रति समर्पणा होती है, उसी प्रकार का प्रभाव हमारी आत्मा को जागृत करने मे सहयोगी बनता है । यदि राग-द्वेष मुक्त नि स्वार्थ हमारी समर्पणा है तो हमारी आत्मा भी समर्पणा के अनुरूप बनने मे सक्षम बन जाती है ।

आचरण युक्त समर्पणा ही आत्मिक शुद्धि मे विशेष प्रभावी होती है । आचरण शून्य जीवन का जनमानस पर भी विशेष प्रभाव नही पडता । इसके लिये एक छोटा सा रूपक और दे देता हूँ । एक बार एक त्यागी महात्मा के पास एक बहिन आई और कहने लगी कि मुझे गुड का त्याग करा दो तो उन्होने पहली बार तो नही कराया, दूसरी बार पुन आई तो त्याग करा दिया । जब उस बहिन ने इसका कारण पूछा कि मुझे उस दिन त्याग क्यो नही कराया और आज करा दिया इसका क्या कारण है ? तो महात्मा ने कहा कि उस दिन मैंने स्वय ने गुड खाया था । अत तुझे प्रत्याख्यान नही कराया और अब मैंने खाना बन्द कर दिया अत प्रत्याख्यान करा दिया । कहने का तात्पर्य यह है कि आचार युक्त कथन का ही प्रभाव पडता है । जब हमारे जीवन की समर्पणा भी जीवन मे आचार-प्रणाली को महाप्रभु की आराधना के अनुरूप बनाकर ही होती है, तब ही उसका विशेष प्रभाव पड सकता है । हम मुख से तो वीतराग प्रभु के प्रति समर्पणा के गीत अलापें और जीवन का व्यवहार, हमारा ठीक उससे विपरीत हो तो ऐसी समर्पणा से कुछ भी नही होने वाला है । यह तो मात्र एक प्रवचना ही होगी, जो ससार घटाने के स्थान पर ससार बढा देगी ।

अत आत्म-जिज्ञासु साधक निज मे परमात्म स्वरूप की अभिव्यक्ति करना चाहे तो उसके लिए प्रभु के प्रति सर्वात्मना समर्पण आवश्यक है ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

१०–७–८५
बुधवार

से प्रसन्न हो जाय और अपना कार्य सिद्ध कर दे पर उनके द्वारा होने वाली कार्य सिद्धि मे भी भजना है क्योकि उनका कोई विरोधी देव है तो वह उस समय बाधक बन सकता है। जैसे जो व्यक्ति राष्ट्रपति को प्रसन्न कर लेता है उसका कोई बाधक नही बन सकता है, ठीक वैसे ही नमस्कार मत्र की आराधना करने वाला नमस्कार मत्र मे जिनको नमन किया जा रहा है उन परमात्मा एव महानात्माओ की सेवा मे तत्पर रहने वाले जो सम्यग्दृष्टि ६४ इन्द्र देवादि है उनको प्रसन्न कर लेता है अथवा वे इन्द्रादि ही जब उस नमस्कार मत्र की आराधना, साधना करने वाले व्यक्ति के प्रति प्रसन्न हो जाते है अथवा प्रभावित हो जाते है तो उस साधक के कार्य सिद्ध होने मे कोई देरी नही हो सकती है और उन चौसठ इन्द्रो के अधीनस्थ सम्यग्दृष्टि हो अथवा मिथ्यादृष्टि कोई भी देव क्यो न हो, वह उस कार्य सिद्धि मे बाधक नही बन सकता है।

समर्पणा के लिए एक रूपक और ले सकते है। अपने घर मे जन्मे हुए लडके और जन्मी हुई लडकी इन दोनो मे घर का मालिक कौन होता है ? उत्तर होगा लडका। इसका कारण लडकी की पिता के प्रति समर्पणा, उस घर के प्रति समर्पणा नही होती है और लडके की अपने पिता के और अपने घर के प्रति परिपूर्ण समर्पणा होती है, अत वह उस घर का मालिक बन जाता है। उसी प्रकार वीतराग देव के घर का मालिक यदि हमे बनना है तो परमपिता महाप्रभु की आज्ञा के प्रति हमारी परिपूर्ण समर्पणा होनी चाहिये और परिपूर्ण समर्पणा के लिये आत्मिक गुणो का विकास भी अति आवश्यक है—आत्मिक गुण, सयमानुरजित धैर्य और साहस से अपने जीवन मे जो मनुष्य गतिशील है, उसका जीवन निरन्तर सुसफल बनता जाता है। और वीतरागदेव की आज्ञा का अन्तरग स्थिति के साथ परिपूर्ण समर्पणा के साथ पालन करने का आत्म पुरुषार्थ जागृत होकर अन्त मे परमात्म स्वरूप को अभिव्यक्त कर देता है। महाप्रभु के प्रति हमारी समर्पणा, नि स्वार्थ होती है तो वह निश्चय ही प्रभावशाली बनती है। स्वार्थ युक्त समर्पणा विशेष प्रभावशाली नही बनती। इसके ऊपर एक छोटा सा आख्यान है—एक राजा तीव्र वेगगामी घोडे पर बैठकर जगल मे शिकार खेलने गया तथा सभी साथियो से बिछुडकर किसी कृषक के कुए पर पहुँच गया। वहाँ एक बुढिया बैठी हुई थी, उसने उस राजा का हृदय से सत्कार किया, उसे चटाई पर बिठाया और गन्ने के खेत मे जाकर एक गन्ने को लाई और उसका एक लोटा रस निकालकर उसे पिलाया बडे स्नेहभावपूर्वक, उस राजा की भूख और प्यास दोनो ही शात हो गई। तब राजा विचार करने लगा कि यह बुढिया बहुत शक्तिशाली है। शक्तिशाली क्यो न हो ? इतना विस्तृत गन्ने का खेत है, कितना गुड बनता होगा ? इस पर मुझे जरूर अधिक कर लगाना चाहिए। ऐसा विचार कर वह राजा उस बुढिया के आदर सत्कार को लेकर रवाना हुआ और राज्य मे जाकर उसके गन्ने के जितने भी खेत थे उन सब पर कर लगा दिया। कुछ अर्से बाद पुन कुछ ऐसा प्रसग बना कि वह

लक्ष्य की आवाप्ति मे सुसफल बन सकता है। बचपन मे माता-पिता के प्रति बच्चे की समर्पणा कैसी होनी चाहिये और उसका उत्तरदायित्व किसके ऊपर है ये सारी बाते चिन्तन की स्थिति मे लेते हुए यदि माता-पिता अपने अगाध अपनत्व को निभाते हुए बच्चे की सच्ची समर्पणा को प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त करे और बच्चे माता-पिता के साथ सच्ची समर्पणा रखे तो आज के युग मे बहुताश रूप मे जो माता-पिता का सन्तान के साथ और सन्तान का माता-पिता के साथ अपने-अपने उत्तरदायित्व से परे व्यवहार चल रहा है, वह समाप्त हो जायेगा। आज तो तन, मन से सेवा करना तो दूर रहा, पुत्र मा-बाप को मारने के लिये भी तत्पर हो जाता है तो वहाँ पुत्र की समर्पणा के सुसस्कारो का अभाव नही तो और क्या है ? मैं क्या कहूँ—अमरावती का एक प्रसग है—अमेरिका जाकर आया हुआ डॉक्टर अपनी बूढी मा की बीमार अवस्था मे सेवा न कर उसे पोयजन (Poison) का इजेक्शन देने को तैयार हो गया था। अत माता का कर्तव्य है कि बचपन से ही अपना यथोचित्त उत्तरदायित्व निभाती हुई अपनत्व एव वात्सल्य भावो के साथ अपनी सन्तान मे समर्पणा के सुसस्कार, समर्पणा की सजीवनी, धार्मिक पुट के साथ समर्पणा का बीज वपित करे, ताकि भविष्य मे कभी अपनी सन्तान के प्रति कठोर व्यवहार की अधिकारिणी वह नही बने, बचपन से ही समर्पणा के सुसस्कारो मे पलने वाली आत्मा अध्यापक आदि के साथ समर्पणा का पार्ट अदा करती हुई यदि वीतराग देव की आज्ञा के प्रति निष्ठा पूर्वक सर्मपित हो जाती है तो ऐसी आत्मा स्व के साथ अन्य आत्मा का भी उद्धार कर सकती है।

एक आख्यान सुनने को मिलता है—एक चोर जिसे फासी की सजा मिली थी उसे देखने के लिये बडी सख्या मे जनता एकत्रित हुई। फासी लगने से पूर्व उस चोर को बहुत जोर से प्यास लगी, पर राजा के प्रति, राजा की आज्ञा के प्रति सर्मपित वह जनता, वह प्रजा, उसका एक भी सदस्य उसे पानी पिलाने के लिए तैयार नही हुआ, पर उसी भीड मे वीतराग भगवान् की आज्ञा मे सर्मपित जिनदास सेठ जो कि सम्यग्दृष्टिपने का आराधक था। अनुकम्पा बुद्धि से वह चोर के नजदीक पहुँचा, और कहने लगा कि तुम्हारे मृत्यु के क्षण नजदीक आ चुके है पर भाई यदि प्यास से छटपटाते हुए पानी-पानी की रट लगाते हुए आर्त्तध्यान (अपध्यान) करते हुए मरोगे तो पानी के अन्दर ही जीव रूप से उत्पन्न हो जाओगे और यदि फासी देने वाले पर रोष करोगे, और यदि तुम्हारे विचारो मे द्वेष की उत्कृष्ट रसायन आ जायेगी तो रौद्र नरको मे जन्म लेना पडेगा जहाँ घोरातिघोर दुख हैं। अत भाई तुम—अपने पाप का पश्चाताप करते हुए नमस्कार मन्त्र का जाप शुरू कर दो, इधर मैं तुम्हारी प्यास बुझाने के लिए पानी लाता हूँ। यदि मैं पहुँचू उससे पहले तुम्हारी मृत्यु हो जाय तो इस मन्त्र का जाप, इसके प्रति पूर्ण समर्पणा रख कर उच्चारण

११ समर्पणा हो नवकार के प्रति

अनिर्वचनीय शाति के सागर, शाति के आकाश महाप्रभु वीतराग देव है। आकाश जिसका कभी अन्त नही आता है। सागर जिसकी हम थाह नही प्राप्त कर सकते हैं। वैसे ही तीर्थंकर भगवान् ने साधना कर जिस अगाध अमाप शाति की प्राप्ति की है, जिसकी कोई थाह नही, सीमा नही है। उस शाति मे अनन्तानन्त ज्ञान का खजाना भरा पडा है। उस ज्ञान खजाने मे से कुछ ज्ञान भी यदि मनुष्य ले लेता है, तो वह एक न एक दिन स्वय सम्पूर्ण ज्ञान का खजाना भी प्राप्त कर सकता है।

लोक मे भी देखते हैं कि सेठ के नीचे रहने वाला नौकर भी अपने पुरुषार्थ से एक-न-एक दिन सेठ बन जाता है, वैसे ही वीतराग भगवान् की साधना को निरन्तर अपनाने वाले वीतराग बन जाते है। इसमे कुछ भी आश्चर्य नही है।

हमारा कितना अहोभाग्य है कि हमे यह अमूल्य वीतराग वाणी श्रवण करने को मिल रही है। जब जीवन मे वीतराग वाणी के प्रति हमारी समर्पणा होती है, तभी वीतराग वाणी का श्रवण हमारे लिये समुचित रूप से सफलीभूत बन सकता है। जैसे कि जो विद्यार्थी स्कूल मे जाकर अध्यापक के प्रति समर्पणा करके चलता है, उनके द्वारा प्रदत्त शिक्षाओ को अचल विश्वास एव विनय श्रद्धा के साथ ग्रहण करता है तो उसका समुज्ज्वल विकास सभवित हो सकता है, अन्यथा नही। जहाँ बाह्य क्षेत्र मे भी समर्पणा की इतनी आवश्यकता है अर्थात् अक्षरीय ज्ञान उपलब्ध करने मे भी समर्पणा आवश्यक है तो आत्मोन्नति की आकाक्षा लेकर चलने वालो की वीतराग वाणी के प्रति कितनी निष्ठा, समर्पणा एव श्रद्धा की आवश्यकता रहती है ? यह विचारणीय है। यदि हमारी वीतराग वाणी के प्रति, नमस्कार मन्त्र के प्रति परिपूर्णरूपेण समर्पणा बन जाये तो आत्मा की अनन्त शक्तियो का अनुभव होते देर नही लगेगी।

समर्पणा का यह सूत्र सर्व प्रथम माता-पिता के द्वारा बचपन मे ही प्रदत्त सुसस्कारो से जीवन मे पनपता है। यदि बचपन मे माता-पिता के प्रति जो बालक समर्पित होता है, वह अपनी समर्पणा की सच्ची फलानुभूति जीवन मे करता हुआ उस समर्पणा का हर क्षेत्र मे विस्तार कर अपने जीवन मे निर्धारित

लक्ष्य की आवाप्ति मे सुसफल बन सकता है। बचपन मे माता-पिता के प्रति बच्चे की समर्पणा कैसी होनी चाहिये और उसका उत्तरदायित्व किसके ऊपर है ये सारी बाते चिन्तन की स्थिति मे लेते हुए यदि माता-पिता अपने अगाध अपनत्व को निभाते हुए बच्चे की सच्ची समर्पणा को प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त करे और बच्चे माता-पिता के साथ सच्ची समर्पणा रखे तो आज के युग मे बहुताश रूप मे जो माता-पिता का सन्तान के साथ और सन्तान का माता-पिता के साथ अपने-अपने उत्तरदायित्व से परे व्यवहार चल रहा है, वह समाप्त हो जायेगा। आज तो तन, मन से सेवा करना तो दूर रहा, पुत्र मा-बाप को मारने के लिये भी तत्पर हो जाता है तो वहाँ पुत्र की समर्पणा के सुसस्कारो का अभाव नही तो और क्या है ? मै क्या कहूँ—अमरावती का एक प्रसग है—अमेरिका जाकर आया हुआ डॉक्टर अपनी बूढी मा की बीमार अवस्था मे सेवा न कर उसे पोयजन (Poison) का इजेक्शन देने को तैयार हो गया था। अत माता का कर्तव्य है कि बचपन से ही अपना यथोचित्त उत्तरदायित्व निभाती हुई अपनत्व एव वात्सल्य भावो के साथ अपनी सन्तान मे समर्पणा के सुसस्कार, समर्पणा की सजीवनी, धार्मिक पुट के साथ समर्पणा का बीज वपित करे, ताकि भविष्य मे कभी अपनी सन्तान के प्रति कठोर व्यवहार की अधिकारिणी वह नही बने, बचपन से ही समर्पणा के सुसस्कारो मे पलने वाली आत्मा अध्यापक आदि के साथ समर्पणा का पार्ट अदा करती हुई यदि वीतराग देव की आज्ञा के प्रति निष्ठा पूर्वक समर्पित हो जाती है तो ऐसी आत्मा स्व के साथ अन्य आत्मा का भी उद्धार कर सकती है।

एक आख्यान सुनने को मिलता है—एक चोर जिसे फासी की सजा मिली थी उसे देखने के लिये बडी सख्या मे जनता एकत्रित हुई। फासी लगने से पूर्व उस चोर को बहुत जोर से प्यास लगी, पर राजा के प्रति, राजा की आज्ञा के प्रति समर्पित वह जनता, वह प्रजा, उसका एक भी सदस्य उसे पानी पिलाने के लिए तैयार नही हुआ, पर उसी भीड मे वीतराग भगवान् की आज्ञा मे समर्पित जिनदास सेठ जो कि सम्यग्दृष्टिपने का आराधक था। अनुकम्पा बुद्धि से वह चोर के नजदीक पहुँचा, और कहने लगा कि तुम्हारे मृत्यु के क्षण नजदीक आ चुके है पर भाई यदि प्यास से छटपटाते हुए पानी-पानी की रट लगाते हुए आर्त्तध्यान (अपध्यान) करते हुए मरोगे तो पानी के अन्दर ही जीव रूप से उत्पन्न हो जाओगे और यदि फासी देने वाले पर रोष करोगे, और यदि तुम्हारे विचारो मे द्वेप की उत्कृष्ट रसायन आ जायेगी तो रौद्र नरको मे जन्म लेना पडेगा जहाँ घोरातिघोर दु ख हैं। अत भाई तुम—अपने पाप का पश्चाताप करते हुए नमस्कार मन्त्र का जाप शुरू कर दो, इधर मैं तुम्हारी प्यास बुझाने के लिए पानी लाता हूँ। यदि मैं पहुँचू उससे पहले तुम्हारी मृत्यु हो जाय तो इस मन्त्र का जाप, इसके प्रति पूर्ण समर्पणा रख कर उच्चारण

करते रहना, इससे तुम्हारी सुगति हो जायेगी, तुम्हारे सारे पाप एक-न-एक भव मे भस्मीभूत हो जायेंगे ।

उस सेठ की बात को वह अत्यन्त श्रद्धा से सुन रहा था, आचारवान उस श्रावक की वाणी का अद्भुत प्रभाव पडा, उस चोर ने नवकार मन्त्र कौनसा है जानने की जिज्ञासा की, और नवकार मन्त्र का श्रवण कर उसका श्रद्धा के साथ जाप चालू कर दिया । किन्तु मृत्यु का भयानक आतक सामने होने से चोर, मन्त्र याद नही रख सका पर वह शुद्ध भाव से इतना ही उच्चारण कर पाया कि—"आणू-ताणू कुछ नही जाणू सेठ वचन परमाणू" अर्थात् जिन वीतराग वचनो पर सेठ समर्पित है मै भी उन्ही वचनो पर समर्पित हूँ । उसके मुँह से, भीतर मे, श्रद्धा मे अवगाहन करती हुई वचन वर्गणा से निसृत शब्द, पूर्ण श्रद्धा के साथ थे ।

नवकार मन्त्र के प्रति अतिम घडियो मे चोर की जो आन्तरिक समर्पणा बनी इससे उसको देवलोक की सप्राप्ति हुई । निष्कर्ष यह निकलता है कि वीतराग भगवन्तो की वाणी के प्रति जो समर्पणा वन जाती है तो उसके, सुमधुर फल से पुण्यात्म का सम्यक् रूपेण उद्धार होता ही है पर पापात्म भी उन भावनाओ से आत्म शुद्धि करता हुआ पुण्यार्जन के साथ-साथ निर्जरा के प्रशस्त मार्ग पर आगे वढ जाता है । और अज्ञानतावश बान्धी हुई अनिकाचित् अशुभ पाप प्रकृतियो को शुभ पुण्य प्रकृतियो मे परिवर्तन कर लेता है ।

अन्त मे निष्कर्ष यही है—कि पहली समर्पणा माता-पिता, दूसरी समर्पणा अध्यापक के प्रति, तीसरी समर्पणा वीतराग भगवान् की आज्ञा के प्रति होनी चाहिये । यदि दो प्रकार की समर्पणा जीवन मे है पर वीतराग भगवान् की आज्ञा के प्रति समर्पणा जब तक नही होती है, तब तक सच्ची शान्ति प्राप्त नही कर सकते हैं, जीवन का सही रूपेण विकास नही कर सकते है । अत. शाश्वत शाति के लिए वीतराग देव के प्रति समर्पणा आवश्यक है ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

११-७-८५
गुरुवार

१२ निःशंक समर्पणा बने—जिनवाणी पर

अतिम तीर्थंकर प्रभु महावीर की अमोघ वाचना का प्रसग यहाँ चल रहा है। जिस वाणी मे आत्मा की समग्र ऋद्धि-समृद्धि का अखूट खजाना भरा हुआ है, उस वाणी मे से यदि उस शाश्वत सुख और आध्यात्मिक लक्ष्मी को पाना है तो ग्रहण करने के लिए दत्तचित्त बन जाना है। दत्तचित्त का तात्पर्य है कि श्रेष्ठ वस्तु को ग्रहण करने मे एकाग्रता के साथ विनम्र भाव रखना है। वीतराग वाणी के ग्रहण मे विनम्रता अति आवश्यक है। आप सन्तो के ज्ञान दर्शन और चारित्र को वदन करते है, उस समय भावना यही बनती है कि आप महान् हैं, गुणो के भण्डार है, आप जैसे गुण मुझमे भी आ जाये, अतएव मैं आपको अन्तर समर्पणा के साथ हार्दिक भाव से वन्दन करता हूँ। आप मुनियो के पैर मे अपना मस्तक लगाते है, कारण कि मुनि के समग्र शरीर मे गुण व्याप्त हैं अत चरण मे व्याप्त गुण ही यदि मुझमे आ जाय तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ। यही आपकी भावना बनती है।

दशवैकालिक सूत्र मे कहा है कि "हत्थ सजए, पाय सजए, वाय सजए" इत्यादि सूत्र से यह ज्ञात होता है कि सयमी आत्मा के समग्र अवयव उनके हाथ, उनके पैर, उनकी वाणी, आत्म गुणो से, सयम से परिपूरित होती है। अत हम समर्पणा की भावना से उन गुणो को विनय भाव से वन्दन करते हुए अपने मे भी उजागर कर सकते है।

समर्पणा दो तरह की है—एक तो सासारिक कृत्यो के प्रति समर्पणा

१२ निःशंक समर्पणा बने—जिनवाणी पर

अतिम तीर्थंकर प्रभु महावीर की अमोघ वाचना का प्रसग यहाँ चल रहा है। जिस वाणी मे आत्मा की समग्र ऋद्धि-समृद्धि का अखूट खजाना भरा हुआ है, उस वाणी मे से यदि उस शाश्वत सुख और आध्यात्मिक लक्ष्मी को पाना है तो ग्रहण करने के लिए दत्तचित्त बन जाना है। दत्तचित्त का तात्पर्य है कि श्रेष्ठ वस्तु को ग्रहण करने मे एकाग्रता के साथ विनम्र भाव रखना है। वीतराग वाणी के ग्रहण मे विनम्रता अति आवश्यक है। आप सन्तो के ज्ञान दर्शन और चारित्र को वदन करते है, उस समय भावना यही बनती है कि आप महान् है, गुणो के भण्डार है, आप जैसे गुण मुझमे भी आ जाये, अतएव मैं आपको अन्तर समर्पणा के साथ हार्दिक भाव से वन्दन करता हूँ। आप मुनियो के पैर मे अपना मस्तक लगाते हैं, कारण कि मुनि के समग्र शरीर मे गुण व्याप्त हैं अत चरण मे व्याप्त गुण ही यदि मुझमे आ जाय तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ। यही आपकी भावना बनती है।

दशवैकालिक सूत्र मे कहा है कि "हत्थ सजए, पाय सजए, वाय सजए" इत्यादि सूत्र से यह ज्ञात होता है कि सयमी आत्मा के समग्र अवयव उनके हाथ, उनके पैर, उनकी वाणी, आत्म गुणो से, सयम से परिपूरित होती है। अत हम समर्पणा की भावना से उन गुणो को विनय भाव से वन्दन करते हुए अपने मे भी उजागर कर सकते है।

समर्पणा दो तरह की है—एक तो सासारिक कृत्यो के प्रति समर्पणा बनती है। जैसे माता-पिता के प्रति, अध्यापक के प्रति आदि-२ और दूसरी आध्यात्म के प्रति समर्पणा। जो सम्यग्दर्शन के प्रति समर्पित हो जाता है उसको आध्यात्म के प्रति समर्पणा भली-भाँति सम्यक्रूपेण बन जाती है। कोई व्यक्ति किसी के यहाँ नौकरी करता है तो उसे सेठ के प्रति नम्र होकर रहना पडता है। नेताओ के अधीनस्थ रहने वालो को नेताओ के प्रति समर्पित होकर रहना पड़ता है तभी उनका काम चलता है। तो आध्यात्म साधना के लिए अपने जीवन मे सुषुप्त आध्यात्मिक लक्ष्मी को जागृत करना है तो वीतराग प्रभु की अमोघ वाग् धारा के प्रति, उनकी आत्म हितैषी आज्ञाओ के प्रति नि.शक समर्पित होकर चलना अतीव आवश्यक है। सम्यग्दर्शन के आठ आचार जो प्रभु ने बतलाए है, उनमे भी समर्पणा की बात, समर्पणा की शर्त समाहित है।

सम्यक्त्व के आठ आचारो के प्रति हमारा जीवन सर्वतोभावेन समर्पित बन जाय तो आत्म वैभव का अखूट खजाना प्राप्त होते कोई देरी नही लगे।

सम्यग्दर्शन जिसके आठ आचार—उनमे सर्वप्रथम आचार है निशकित वीतराग भगवान के वचनो मे किसी प्रकार की शका नही करना, इससे निशकित आचार की परिपालना होती है। जैसा कि शास्त्र का वाक्य है—"तमेव सच्च णीसक, ज जिणेहि पवेइय" वही सत्य निशक है, जो जिनेश्वरो द्वारा प्रवेचित है, ऐसा विश्वास बने। उसमे कुतर्क-वितर्क नही करना, इससे वीतराग वाणी के प्रति समर्पणा उत्पन्न होती है और अन्तर की शक्ति ऊर्ध्वगामी बनती है। जो सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान और चारित्र के राकेट मे बैठ जाते है, और सम्यक् उडान भरते हैं तो उन भव्यात्माओ को सिर्फ एक समय लगता है, अपने अष्ट कर्म क्षय होने के बाद, मुक्तिपुरी मे पहुँचने के लिए। अत हमे धर्म करणी करते हुए उसके शुभ फल की प्राप्ति तत्काल यदि न भी हो, तो भी कभी भी जिन बचनो मे, धर्म की अनन्त शक्ति मे शका नही करनी चाहिये। प्राप्त दु ख को निकाचित कर्मो का उपभोग समझकर अन्तर ज्ञान के चक्षु उद्घाटित करते हुए कर्म फिलो-सोफी का ज्ञान समकक्ष रखकर, शात भावो से सहन करना चाहिये, ताकि पूर्वबद्ध कर्म निर्जरित हो जायेगे और धर्मकरणी का, प्रशस्त भावनाओ का, सुफल शब्द द्वारा अकथनीय अनुभवगम्य आत्मऋद्धि के रूप मे उपलब्ध होगा।

आपने कई बार सुना होगा कि—गौतम स्वामी जिनको आत्मा विषयक शका थी कि "आत्मा है या नही"? पर कुछ बनाव ऐसा बना जिससे वे जब प्रभु महावीर के नजदीक पहुँचे और सर्वज्ञ सर्वदर्शी, घट-२ के अन्तर्यामी प्रभु महावीर के द्वारा यह पूछने पर कि "गौतम! क्या तुमको यह शका है कि—आत्मा है या नही?" सिर्फ इतने से शब्दो को श्रवण करते ही, सत्यद्रष्टा केवल-ज्ञानी के वचन वर्गणाओ का, वचन शक्ति का, अद्भुत प्रभाव पडा कि गौतम स्वामी की अन्तर आत्मा जागृत हो गई और अभिमान के शिखर से उतरकर वे श्रद्धाभिभूत हृदय से, गद्गद भावो के साथ प्रभु महावीर के चरणो मे समर्पित हो गये। इतने अधिक विनम्र बन गये कि उतना प्रशान्त विनय आज के साधकों के लिए आदर्श दर्पण बन गया और उसी विनय गुण की स्थिति से, प्रभु महावीर के प्रति, उन तीर्थेश्वर के वचनो के प्रति, सर्वतोभावेन समर्पणा के कारण ही गौतम स्वामी ने सिर्फ त्रिपदी "उप्पेइवा विगमेइवा धुवेइवा" सुनकर द्वादशागी का ज्ञान प्राप्त कर लिया प्रथम गणधर की पदवी सप्राप्त करली और सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक लक्ष्मी का वरण कर मोक्षगामी बन गये। उन महापुरुषो के जीवन विषयक शास्त्रीय आख्यानो का श्रवण करते हुए यह विचारना है कि सत मुनि-राजो द्वारा कथित वीतराग वचनो के प्रति अर्थात् सम्यक्-दर्शन के प्रति हमारी समर्पणा है या नही? यदि नही है तो सम्यक् दर्शन का प्रथम आचार हमारे जीवन की पृष्ठभूमि पर नही उतर सकता।

वीतराग वचन के प्रति दृढ आस्था रूप श्रद्धान करो, पर कैसे ? इसे एक दृष्टान्त द्वारा समझिये – एक बहुत बड़े सेठ थे, जिनके पास करोडो की सम्पत्ति थी। साथ ही उनके जीवन मे यह बहुत बडा सद्गुण भी था कि वे नित्य प्रतिदिन संत-सगति किया करते थे। ये विचार उनके मानस मे उभरते रहते थे कि मेरे पास तो यह भौतिक सम्पत्ति है पर इन महान् आत्माओ के पास जो आध्यात्मिक सम्पत्ति है, क्या ही अच्छा हो कि मै भी इस नश्वर भौतिकता से परे हटकर आध्यात्मिक लक्ष्मी का मालिक बनूँ। उन्ही शुभ भावो से उनके जीवन मे महात्माओ के प्रति अन्तर मे समर्पणा बनी। बिना समर्पणा के तो कुछ भी उपलब्ध नही होता है। जैसे—गाय के बछडे की गाय के प्रति समर्पणा होती है इसलिए वह गाय अपने मालिक को तब तक दूध नही निकालने देती जब तक कि अपने बछड़े को दूध नही पिला देती है, और यदि वह छूटकर गाय के पास कभी पहुँच जाता है, तो गाय उसे पूरा का पूरा दूध पिला देती है। इसी प्रकार तुम भी वीतराग भगवान के ज्ञान खजाने के प्रति गाय के बछड़े की तरह दत्तचित्त होकर समर्पित हो जाओगे तो तुम्हे पूरा का पूरा ज्ञान खजाना मिल जायेगा।

समर्पणा से उस सेठ को एक सन्यासी से मत्र की उपलब्धि हुई। मत्र की साधना विषयक प्रश्न पूछने पर बताया कि—घर मे बैठकर तो साधना नही हो सकती है, अत जगल मे जाकर एक वृक्ष की डाली पर कच्चे धागे से छीका बाँध दो और नीचे चूल्हे को खोदकर उस पर कडाह रखकर तेल गर्म करने के लिये रख दो, जब तेल बहुत उबलने लग जाय तब तक तुम उस छीके पर बैठकर मत्र पढते-२ क्रमश. एक-२ धागा तोडकर नीचे डालते रहो। इस क्रम से सब धागे टूटने के साथ तुम्हारी मत्र की परिपूर्णरूपेण साधना सफल होते ही तुम आकाश मे उडने की विद्या प्राप्त कर लोगे और उसी क्षण आकाश मे उड भी जाओगे। पर सेठ के मन मे शका हुई कि कही मेरी साधना सफल नही हुई और मैं आकाश मे उडने के बजाय इस उबलते तेल से लबालब भरे गर्म कडाह मे गिर गया तो प्राणो से भी हाथ धोना पडेगा। अत. उसने वह मन्त्र नही साधा वरन् उस मन्त्र को तिजोरी मे सुरक्षित रख दिया और उसके साथ उस सन्यासी के द्वारा बताई गई सारी मन्त्र साधने की विधि भी लिखकर रखदी, कुछ समय बाद सेठ तो काल कर गये और उनका पुत्र जो पिता की पदवी प्राप्त कर सेठ बना उसे पिताजी की चौपडियो (बहियो) मे वही मन्त्र और उसको पाने की सारी विधि लिखी हुई मिली। उसे पढकर लडके की इच्छा उस मन्त्र को साधने की हुई। वह विधि के अनुरूप जगल मे जाकर वृक्ष के नीचे चूल्हा खोदकर कडाह रखकर तेल उबालने के लिए उसमे डाल दिया तथा डाली पर कच्चे सूत का छीका लटका दिया, जैसे-२ तेल उबलने लगा वैसे-२ उसके मन मे डाली पर चढने की तत्परता तो हुई पर मन ही मन शका भी हुई कि मेरी यह साधना सफल होगी या नही ? कही मैं कड़ाह मे गिर गया तो...। इस अविश्वास के

सम्यक्त्व के ग्राठ ग्राचारो के प्रति हमारा जीवन सर्वतोभावेन समर्पित वन जाय तो ग्रात्म वैभव का ग्रखूट खजाना प्राप्त होते कोई देरी नही लगे ।

सम्यग्दर्शन जिसके ग्राठ ग्राचार—उनमे सर्वप्रथम ग्राचार है निशकित वीतराग भगवान के वचनो मे किसी प्रकार की शका नही करना, इससे निशकित ग्राचार की परिपालना होती है । जैसा कि शास्त्र का वाक्य है—"तमेव सच्च णीसक, ज जिणेहि पवेइय" वही सत्य निशक है, जो जिनेश्वरो द्वारा प्रवेचित है, ऐसा विश्वास बने । उसमे कुतर्क-वितर्क नही करना, इससे वीतराग वाणी के प्रति समर्पणा उत्पन्न होती है ग्रौर ग्रन्तर की शक्ति ऊर्ध्वगामी बनती है । जो सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान ग्रौर चारित्र के राकेट मे बैठ जाते है, ग्रौर सम्यक् उडान भरते है तो उन भव्यात्माग्रो को सिर्फ एक समय लगता है, ग्रपने ग्रष्ट कर्म क्षय होने के बाद, मुक्तिपुरी मे पहुँचने के लिए । ग्रत हमे धर्म करणी करते हुए उसके शुभ फल की प्राप्ति तत्काल यदि न भी हो, तो भी कभी भी जिन बचनो मे, धर्म की ग्रनन्त शक्ति मे शका नही करनी चाहिये । प्राप्त दु ख को निकाचित कर्मो का उपभोग समझकर ग्रन्तर ज्ञान के चक्षु उद्घाटित करते हुए कर्म फिलो-सोफी का ज्ञान समकक्ष रखकर, शात भावो से सहन करना चाहिये, ताकि पूर्वबद्ध कर्म निर्जरित हो जायेगे ग्रौर धर्मकरणी का, प्रशस्त भावनाग्रो का, सुफल शब्द द्वारा ग्रकथनीय ग्रनुभवगम्य ग्रात्मऋद्धि के रूप मे उपलब्ध होगा ।

ग्रापने कई बार सुना होगा कि—गौतम स्वामी जिनको ग्रात्मा विषयक शका थी कि "ग्रात्मा है या नही" ? पर कुछ बनाव ऐसा बना जिससे वे जब प्रभु महावीर के नजदीक पहुँचे ग्रौर सर्वज्ञ सर्वदर्शी, घट-२ के ग्रन्तर्यामी प्रभु महावीर के द्वारा यह पूछने पर कि "गौतम ! क्या तुमको यह शका है कि—ग्रात्मा है या नही ?" सिर्फ इतने से शब्दो को श्रवण करते ही, सत्यद्रष्टा केवल-ज्ञानी के वचन वर्गणाग्रो का, वचन शक्ति का, ग्रद्भुत प्रभाव पडा कि गौतम स्वामी की ग्रन्तर ग्रात्मा जागृत हो गई ग्रौर ग्रभिमान के शिखर से उतरकर वे श्रद्धाभिभूत हृदय से, गद्गद भावो के साथ प्रभु महावीर के चरणो मे समर्पित हो गये । इतने ग्रधिक विनम्र बन गये कि उतना प्रशान्त विनय ग्राज के साधको के लिए ग्रादर्श दर्पण बन गया ग्रौर उसी विनय गुण की स्थिति से, प्रभु महावीर के प्रति, उन तीर्थेश्वर के वचनो के प्रति, सर्वतोभावेन समर्पणा के कारण ही गौतम स्वामी ने सिर्फ त्रिपदी "उप्पेइवा विगमेइवा धुवेइवा" सुनकर द्वादशागी का ज्ञान प्राप्त कर लिया प्रथम गणधर की पदवी सप्राप्त करली ग्रौर सर्वोत्कृष्ट ग्राध्यात्मिक लक्ष्मी का वरण कर मोक्षगामी बन गये । उन महापुरुषो के जीवन विषयक शास्त्रीय ग्राख्यानो का श्रवण करते हुए यह विचारना है कि सत मुनि-राजो द्वारा कथित वीतराग वचनो के प्रति ग्रर्थात् सम्यक्-दर्शन के प्रति हमारी समर्पणा है या नही ? यदि नही है तो सम्यक् दर्शन का प्रथम ग्राचार हमारे जीवन की पृष्ठभूमि पर नही उतर सकता ।

वीतराग वचन के प्रति दृढ आस्था रूप श्रद्धान करो, पर कैसे ? इसे एक दृष्टान्त द्वारा समझिये– एक बहुत बडे सेठ थे, जिनके पास करोडो की सम्पत्ति थी। साथ ही उनके जीवन मे यह बहुत बडा सद्‌गुण भी था कि वे नित्य प्रतिदिन सत-सगति किया करते थे। ये विचार उनके मानस मे उभरते रहते थे कि मेरे पास तो यह भौतिक सम्पत्ति है पर इन महान् आत्माओ के पास जो आध्यात्मिक सम्पत्ति है, क्या ही अच्छा हो कि मैं भी इस नश्वर भौतिकता से परे हटकर आध्यात्मिक लक्ष्मी का मालिक बनूँ। उन्ही शुभ भावो से उनके जीवन मे महात्माओ के प्रति अन्तर मे समर्पणा बनी। बिना समर्पणा के तो कुछ भी उपलब्ध नही होता है। जैसे—गाय के बछडे की गाय के प्रति समर्पणा होती है इसलिए वह गाय अपने मालिक को तब तक दूध नही निकालने देती जब तक कि अपने बछडे को दूध नही पिला देती है, और यदि वह छूटकर गाय के पास कभी पहुँच जाता है, तो गाय उसे पूरा का पूरा दूध पिला देती है। इसी प्रकार तुम भी वीतराग भगवान के ज्ञान खजाने के प्रति गाय के बछडे की तरह दत्तचित्त होकर समर्पित हो जाओगे तो तुम्हे पूरा का पूरा ज्ञान खजाना मिल जायेगा।

समर्पणा से उस सेठ को एक सन्यासी से मत्र की उपलब्धि हुई। मत्र की साधना विषयक प्रश्न पूछने पर बताया कि—घर मे बैठकर तो साधना नही हो सकती है, अत जगल मे जाकर एक वृक्ष की डाली पर कच्चे धागे से छीका बाँध दो और नीचे चूल्हे को खोदकर उस पर कडाह रखकर तेल गर्म करने के लिये रख दो, जब तेल बहुत उबलने लग जाय तब तक तुम उस छीके पर बैठकर मत्र पढते-२ क्रमश एक-२ धागा तोडकर नीचे डालते रहो। इस क्रम से सब धागे टूटने के साथ तुम्हारी मत्र की परिपूर्णरूपेण साधना सफल होते ही तुम आकाश मे उडने की विद्या प्राप्त कर लोगे और उसी क्षण आकाश मे उड़ भी जाओगे। पर सेठ के मन मे शका हुई कि कही मेरी साधना सफल नही हुई और मैं आकाश मे उडने के बजाय इस उबलते तेल से लबालब भरे गर्म कडाह मे गिर गया तो प्राणो से भी हाथ धोना पडेगा। अत: उसने वह मन्त्र नही साधा वरन् उस मन्त्र को तिजोरी मे सुरक्षित रख दिया और उसके साथ उस सन्यासी के द्वारा बताई गई सारी मन्त्र साधने की विधि भी लिखकर रखदी, कुछ समय बाद सेठ तो काल कर गये और उनका पुत्र जो पिता की पदवी प्राप्त कर सेठ बना उसे पिताजी की चौपडियो (बहियो) मे वही मन्त्र और उसको पाने की सारी विधि लिखी हुई मिली। उसे पढकर लडके की इच्छा उस मन्त्र को साधने की हुई। वह विधि के अनुरूप जगल मे जाकर वृक्ष के नीचे चूल्हा खोदकर कडाह रखकर तेल उबालने के लिए उसमे डाल दिया तथा डाली पर कच्चे सूत का छीका लटका दिया, जैसे-२ तेल उबलने लगा वैसे-२ उसके मन मे डाली पर चढने की तत्परता तो हुई पर मन ही मन शका भी हुई कि मेरी यह साधना सफल होगी या नही ? कही मैं कडाह मे गिर गया तो ·। इस अविश्वास के

कारण वह वार-२ डाली पर चढने की हिम्मत करता, और पुन -२ सकल्प से डिगायमान हो जाता ।

उसकी इस चर्या के वीच ही क्या हुआ कि एक चोर जो कि राजा के यहाँ से चोरी करता हुआ पकडा गया, पर कोतवाल उसे कैद नही कर पाया और वह दौडता-२ उसी जगल मे पहुँचा जहाँ वह सेठ का लडका मन्त्र की तैयारी कर मन्त्र के प्रति पूर्ण समर्पणा के अभाव मे सशय उत्पन्न हो जाने से छीके पर चढू अथवा नही चढू ? ऐसा विचार कर रहा था, कारण कि प्राणी का व्यामोह जो उसे था और सन्यासी के वचनो पर पूर्ण विश्वास नही हो पा रहा था । ज्योहि उस चोर की दृष्टि उस सेठ के लडके पर पडी और उसने उससे सारी जानकारी चाही कि तुम यहाँ इस स्थिति मे कैसे खडे हो ? तव सेठ के लडके ने आद्योपात सारा वृत्तान्त उस चोर को कह सुनाया, यह सुनकर चोर ने सोचा कि कोतवाल मुझे पकडने के लिए मेरा पीछा कर रहा है, चोरी मेरी पकडी गयी है, अत मुझे प्राणदड तो मिलेगा ही, क्यो न मैं इस लडके को चुराये हुए दोनो रत्नो के डिब्बे देकर, इस मन्त्र को प्राप्त करलू ? यह विचार कर चोर ने अपने मन मे सोचा हुआ प्रस्ताव सेठ के लडके के सामने रख दिया । चोर के प्रस्ताव को सुनकर मन्त्र साधना की सफलता पर सदिग्ध बना वह सेठ का लडका दोनो रत्नो के डिब्बे को लेकर उसके बदले उस चोर को मन्त्र साधने की सारी विधि वतलाकर वहाँ से रवाना हो गया ।

चोर जिसे अब मरने की तो कोई परवाह थी नही, क्योकि प्राण सकट मे तो पहले से ही पडे हुए थे, अत यह सोचकर कि कदाचित् बच जाऊँ तो मन्त्र सिद्ध हो जाने पर आकाश मे उड जाऊँगा । ऐसा दृढ विश्वास कर वह उस कच्चे धागे के छीके मे बैठ गया और मन्त्र पढता हुआ एक-२ धागा तोडकर नीचे डालने लगा, ज्योहि पूरा छीका टूटा कि वह आकाशगामी विद्या को प्राप्त कर आकाश मे उड गया । इधर वह सेठ का लडका दोनो रत्नो के डिब्बे को लेकर घर की ओर जा रहा था और बीच रास्ते मे राजा के द्वारा प्रेषित कोतवाल के द्वारा पकडा गया, चोरी के माल उसके पास देखकर उसे प्राण दड दिया गया । बिचारा बेमौत मारा गया ।

इस दृष्टान्त से ज्ञानी जनो ने यह समझाया कि हमारी वीतराग भगवान की आज्ञा के प्रति श्रद्धा है या नही ? नमस्कार मन्त्र के प्रति श्रद्धा है या नही यानी परिपूर्ण समर्पणा है या नही ? वह सेठ का लडका जिसने मन्त्र की साधना की सफलता पर अविश्वास किया तो उसकी क्या स्थिति वनी ? और चोर मन्त्र की साधना के प्रति प्राणो की परवाह न करके पूर्णतया समर्पित हो गया तो उसने प्राण सुरक्षा के साथ सफलता हासिल करली । इसी प्रकार यदि हम वीतराग भगवान के वचनो पर नि शक समर्पित हो जाय और अपने लक्ष्य

के प्रति समर्पित होकर चले, चाहे कितनी भी आपदाएँ आ जाये तो भी अपने लक्ष्य से विचलित न हो, तीर्थंकर भगवन्तो की आज्ञाओ मे विना किसी प्रकार की शका के परिपूर्ण रूपेण समर्पणा बनाए रखे और तदनुरूप हमारी जीवन-चर्याओ को गतिशील बनाये रखे तो इस सम्यक्त्व के प्रथम आचार "निशंकित" से एक न एक दिन अपनी सम्पूर्ण आत्म ऋद्धि को प्रकट कर सकने मे सक्षम वन जायेंगे ।

मोटा उपाश्रय ------ १२-७-८५
घाटकोपर, बम्बई ------ शुक्रवार

१३ निःशंक और निःकांक्ष बनें

(सम्यक्त्व का द्वितीय आचार)

जीवन की इस भव्य वेला मे जब शुभ काम करने का प्रसग आता है, तब उस शुभ काम मे विघ्न न आने पावे, इसके लिये मगलाचरण करने की आवश्यकता है। वह मगल, तीर्थङ्कर देव का पवित्र नाम और उनके द्वारा प्रतिपादित अहिंसा, संयम, तप रूप धर्म है, जो आत्मा के साथ स्वभाव से सम्बन्धित है। यही मगल सभी मगलो मे प्रधान है। अन्य-अन्य मगलो का लोक रूढि मे जो प्रयोग किया जाता है, वे विघ्नो का नाश करने में सक्षम नही हैं। जैसे चावल, कुंकुम, लच्छा इत्यादि, इन वस्तुओ को स्वय को यह मालूम नही है कि हम मगल रूप है तो फिर ये दूसरो का मगल कैसे कर सकती हैं। अत जिन्हे इतना ज्ञान है कि विघ्नो का नाश किस विधि से ठीक तरह (प्रकार) से हो सकता है ? कौनसा मगल उसमे कामयाब हो सकता है ? वही मगल, मगलाचरण रूप मे प्रस्तुत करना उचित है और वह मगल है सम्पूर्ण मगलो के स्थानभूत तीर्थकर प्रभु का नाम-स्मरण और उनके अनन्त स्वरूप की स्तुति।

जो वस्तुत दर्शनीय होता है उसके दर्शन करने ही चाहिये और ऐसा दर्शनीय तत्त्व हमारी आत्मा ही है। क्योकि वह त्रिकालवर्ती अखण्ड, अमर, अजर है। जो क्षण-क्षण मे विनष्ट हो रहा है, वह पदार्थ दर्शनीय नही हो सकता है। आप देख रहे है, यह पाट जो कि लकडी का बना हुआ है, वह कुछ दिनो के बाद किस प्रकार परिवर्तन को प्राप्त हो जाता है। जो तत्त्व स्थायी नही रहता है, जिसमे ज्ञान, दर्शन, चारित्र नही है, आत्मिक गुण नही है, त्रिकालवर्ती नही है, वह यथार्थ मे दर्शनीय भी नही है। अत. जो दर्शनीय तत्त्व हमारी आत्मा है। उसके सौम्य स्वरूप को जानने के लिए सभी को प्रयत्नशील बनना है। यह चिन्तन करें कि वास्तव मे अनन्त सुख स्वरूपी मेरी आत्मा की वर्तमान मे कैसी दशा बनी हुई है ? जैसा कि कविता की कडियो मे बतलाया गया है —

> वहु पुण्य केरा पु ज थी, शुभ देह मानव नो मल्यो ।
> तो ए अरे भवचक्रनो, आटो नही एके टल्यो ।। टेर ।।
>
> सुख प्राप्त करता, सुख टले छे,
> लेश ए लक्ष्ये लहो ।
> क्षण-क्षण भयकर भाव मरणे, का अहो राची रह्यो ।। १ ।।

अनन्त पुण्यवानी का अर्जन करने के बाद तो यह नर तन और शास्त्र श्रवण आदि दुर्लभ अग मिले है। फिर भी भव चक्र का जो आटा-फेरा है, वह अब तक दूर नही हुआ है, तो क्यो नही दूर हुआ है ? इस विषय में विचार करें। विचार करने पर वस्तुस्थिति स्पप्ट हो जायेगी कि अब तक सही रूप मे अध्यात्म की ओर कदम नही बढाए है। शाश्वत सुख और शान्ति पाने के लिये आवश्यकता है—वास्तविक धर्म को जीवन मे समाहित कर आत्यतिक और एकान्त मगल करने की।

आज प्रत्येक मनुष्य सुख प्राप्त करना चाह रहा है, पर सुख का मूल स्रोत नही जानने से भौतिकता के पीछे पडकर सुख के बजाय दु ख की उपलब्धि करता जा रहा है।

सम्यक्त्व के आठ आचार जिसका प्रतिपादन आपके सामने चल रहा है—उसमे प्रथम आचार है निशकिय—अर्थात् जिन वचन मे शका नही करना। कभी कदाचित् वीतराग वाणी का कोई गूढ तत्त्व, गूढ रहस्य समझ में नहीं आये तो भी हमारे भीतर इतनी श्रद्धा (मजबूत, अगाध) हो, कि हमे देव, दानव भी जिनवाणी रूप अर्हत् धर्म की निष्ठा से विचलित न कर सके। आपने ज्ञाता धर्मकथाग सूत्र मे वर्णित अर्हन्नक श्रावक का वर्णन सुना होगा। जिसकी दृढ धर्मिता, दृढ निष्ठा की स्वय इन्द्र ने देवलोक मे प्रशसा की थी जिसे सुनकर एक मिथ्यात्वी देव, अर्हन्नक श्रावक की परीक्षा लेने के लिए विकराल रूप बनाकर नाव मे बैठे अर्हन्नक के सामने आ खडा हुआ था। जिसकी विकरालता इतनी भयानक थी कि देखने वालो के रोएँ-रोएँ काँप उठे किन्तु आस्था का अविचल सुमेरु अर्हन्नक निर्भय बना रहा।

देवरूप विकराल राक्षस ने अर्हन्नक को बहुत प्रकार से समझाने की चेष्टा की, उसे मारने तक की धमकी दी कि तू धर्म की श्रद्धा से विचलित हो जा किन्तु क्या मजाल, कि अर्हन्नक श्रावक डिग जाय। आखिर देव की ही हार हुई और वह अपने देवरूप मे आकर श्रमणोपासक अर्हन्नक के चरणो मे झुक गया।

धम्मो मगल मुक्किठ अहिसा संजमो तवो।
देवा वि त नम सन्ति जस्स धम्मे सया मणो॥

दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा का सार (सक्षेप) यह स्पष्ट करता है कि जिसका मन, उत्कृष्ट धर्मरूप मगल-अहिसा, सयम, तप मे निरन्तर लगा रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते है।

अत भव्य आत्माओ की श्रद्धा, जिनवाणी पर अविचल निशक होनी चाहिये। जो तत्त्व हमे समझ मे न आवे उसके लिए हमारे मु ह से यही शब्द

निकले कि मेरी अभी बुद्धि इतनी निर्मल नही है कि मैं वीतराग देव की इतनी गहरी वाणी को बरावर समझ पाऊँ, भले ही आज मैं उसमे पूर्णरूपेण अवगाहन नही कर पा रहा हू, पर यह मुझे अटल विश्वास है कि वीतराग भगवान के जो वचन है वे सत्य तथ्य है । उसमे शका करने की किंचित् मात्र भी गु जाइश नही है । जब मेरी बुद्धि कर्म निर्जरा के प्रशस्त पथ पर बढते हुए निर्मल वन जायेगी, तव मैं वीतराग भगवान के सारे तत्त्वो को सरलतया समझ सकूँगा ।

वीतराग वाणी की कई वाते आज भौतिक विज्ञान जगत् मे भी प्रत्यक्ष हो रही है, जैसे कि अन्तिम तीर्थकर प्रभु महावीर ने वताया है कि जो शब्द हम बोल रहे है वे द्रव्य-वर्गणा है, पुद्गल वर्गणा है, गेन्द की तरह उन्हे इधर-उधर सप्रेषित किया जा सकता है । मनुष्य जिन शव्दो को वोलता है, उसके लिए वह तद् योग्य पुद्गलो को ग्रहण कर उन्हे शब्द रूप मे परिणमित कर फिर बाहर निकालता है । यह बात सकेत रूप मे प्रज्ञापना सूत्र के ग्यारहवे भाषा पद मे मिलती है । उनमे जिनकी बुद्धि निर्मल नही थी वे यह कहते थे कि जो हमारी दृष्टि मे आये वही सत्य है और जो नही आये, उसे हम नही मानते । अन्य दर्शनकारो ने भी कहा है कि "शब्द, आकाश का गुण है, हम उसे द्रव्य नही मानते ।" कई वैज्ञानिक लोग भी यह वात नही मानते थे कि शब्द पुद्गल द्रव्य है । पर जब उन्होने कुछ वर्षो पूर्व इसका प्रयोग किया, तब उन्हे यह मानना पडा कि यह शब्द मेटर (Matter) है और यह चारो दिशा मे फैल सकता है, लोक के अन्तिम किनारे तक पहुँच सकता है । जैसे पानी मे पत्थर डालने से उसकी तरगे चारो ओर फैलती है, उसी प्रकार शब्द की पुद्गल वर्गणा, बोलने के साथ चारो दिशा मे विस्तारित होकर वायु मण्डल को प्रभावित करती है । इसी का परिणाम है कि आज आप रेडियो, टेलिविजन, ट्रासमीटर, वायरलेस आदि अनेक साधनो से हजारो मील दूर के शब्द सुन लेते हैं । यह बारीक रहस्य की बात प्रभु महावीर के समय और उसके बाद भी कई-कई नही मानते थे, पर आज प्रभु महावीर का यह शब्द विषयक विज्ञान इतना विस्तृत हो गया हैं कि एक सामान्य व्यक्ति भी इस बात को बिना किसी गम्भीरता की अपेक्षा के सरलता से स्वीकार कर लेता है कि हम बोलते है, वह आवाज दूर-दूर तक पहुँच सकती है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो तत्त्व कभी समझ मे नही आये, वही तत्त्व बुद्धि की निर्मलता से विचार करने पर गहराई मे पैठने पर समझ मे आ सकते है । अत हम कभी भी जिन वचनो पर शका नही करे ।

सम्यक्दर्शन का दूसरा आचार है निर्कांक्षा अर्थात् हमारे जीवन की स्थिति काक्षा रहित हो । हम सही धर्म के सच्चे स्वरूप को जानकर अन्य ज धर्मो से प्रभावित नही होवे । आप जब प्रात कालीन बेला मे दर्पण के साम

खड़े रहते हो और अपने रूप को निहारते हो तब मन मे कैसी-कैसी विचार-धाराएँ उत्पन्न होती है, क्या कभी रूप को विनश्वरता पर आपको विचार नही आता है ? अरे ये पाच इन्द्रियो के विषय-सुख कपूर की टिकिया की तरह क्षणिक है। पाच इन्द्रियो के विषय मे आसक्त बनी यह अनन्त शक्ति सम्पन्न आत्मा अपने निजी स्वरूप को भूल जाता है। इन्द्रिय-रामी बनकर ससार मे ही भटकता रहता है। आत्मा रामी वही बन सकता है जो इन्द्रियासक्ति से निरपेक्ष बनता हुआ आत्मचिन्तन करे।

सम्यक्त्व के दिव्य आचार का कथन करते हुए मै आपसे यही कहना चाह रहा हूँ कि पाँच इन्द्रियो के विषय मे रमण कराने वाला जो धर्म है उससे प्रभावित होकर कभी भी आत्म स्वरूप की पहचान कराने वाले, वीतराग धर्म से विमुख नही बने।

बन्धुओ ! जरा विचार करो कि सम्यक्दर्शन जो कि बहुत गहरा दर्शन है। उस दर्शन की भूमिका यदि शुद्ध नही बनती है तो वह वीतराग प्रभु के अन्य गूढ तत्त्वो को भी नही समझ सकता। अत· मै घूम फिर कर इस विशाल व्यापक सम्यक्त्व का स्वरूप बताना चाह रहा हूँ और कहना चाह रहा हूँ कि सम्यक्त्व की भूमिका हमारी तभी शुद्ध बन सकती है, जब हम सम्यक्त्व के आठो आचारो की स्थिति को जीवन मे सम्यक् रूपेण विकसित करले।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

१३-७-८५
शनिवार

• □ •

१४ मूल्यांकन करो वर्तमान का

वर्तमान का समय ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योकि अतीत का समय बीत चुका है, इसलिये उसका कोई अस्तित्व नही रह गया है और भविष्य का समय अभी आया नही है और वह अपने लिए इस रूप मे आएगा भी या नही, यह भी निश्चित नही है। अत महत्त्वपूर्ण समय है तो वह वर्तमान का समय ही है।

वर्तमान का समय 'देहली दीपक न्याय' से भूत एव भविष्य के समय को भी प्रकाशित करने मे समर्थ हो जाता है। यद्यपि अतीत का समय बीत चुका है। बीते हुए समय का अव क्या परिवर्तन होना है, किन्तु फिर भी बीता हुआ जीवन परिवर्तित हो सकता है। उदाहरण के रूप मे, क्यो न किसी व्यक्ति का अतीत का जीवन अन्याय, अनीति, अविवेक और कषाय के साथ बीता हो, लेकिन वही व्यक्ति जब संयम जीवन स्वीकार कर लेता है तो वह बीते हुए जीवन की विकृति को धोने के साथ भविष्य मे आने वाले अन्धकारमय जीवन को भी शुभ प्रकाश से आलोकित कर लेता है।

आपने शास्त्र अन्तकृद्दशाग-सूत्र के माध्यम से एक बार नही, अपितु अनेक बार अर्जुनमाली के जीवन को सुना होगा, जो प्रतिदिन छ पुरुष और एक स्त्री को मारने वाला हत्यारा बन गया था। जिसका यह कार्य एक-दो दिन नही अपितु महीनो तक चला था। लेकिन जब उसे सुदर्शन श्रमणोपासक के साथ ही महाप्रभु का सान्निध्य प्राप्त हुआ कि उसके जीवन मे हठात् परिवर्तन आया।

जिसके विचार कषायो एव हिंसक वृत्ति से भरे रहते थे, वे परिपूर्णत अहिंसक बन गए। जिसके हाथ मे हर समय लोहमय भारी मुग्दर रहता था जीवो को हनन करने के लिए, उसी के हाथ मे अहिंसा का प्रतीक जीवो की रक्षा करने वाला रजोहरण आ गया। जिसके मुख से हिंसा की हुकार निकलती थी, जिसके कारण चरिन्दे और परिन्दे भी काँप उठते थे। और तो और राजगृह नगर के मुख्य द्वार बद करवा दिये गये थे, लोगो का आवागमन बद करवा दिया गया था। सम्राट श्रेणिक भी उसका कुछ नही कर सका था। उसके मुख पर वायुकाय के जीवो की रक्षा के लिए भी मुखवस्त्रिका सुशोभित होने लगी थी। उसका आमूल-चूल जीवन बदल गया।

आवे। इन्द्रियाए क्षीण न हो, तव तक धर्म का आचरण करलो। क्योकि अगर शरीर मे रोग भी आ गया तो फिर साधना सही ढग से नही हो सकेगी।

इन सव अवस्थाओ को देखते हुए वर्तमान के इन अमूल्य क्षणो को सार्थक करना आवश्यक है। जो वीत गया है, उसे भूल जाइये और जो भविष्य मे आ सकता है, उसके ताने-वाने वुनना छोड दीजिये। इसमे समय न लगाकर वर्तमान मे क्या करना है, इस ओर अपने जीवन की सारी शक्ति को लगा देना आवश्यक है। शास्त्रकारो ने 'समय' को समझने वाले को पंडित कहा है, जो समय को न समझे और केवल पुस्तकीय ज्ञान को लेकर चले वह पडित नही हो सकता। समय की स्थिति को समझने के लिए वडे-वडे योगियो ने गुफाओ मे जाकर ध्यान लगाया था। लेकिन सभी साधक उसमे सफल नही हो सके। समय को सफल वनाने के लिए सवसे पहले अपने मन को परिष्कृत करना आवश्यक है। यदि मन मिथ्यात्व से अनुरजित है तो उसका जीवन कभी भी सफल नही हो सकता। मिथ्यात्व अनुरजित भले वह कितनी कठोर से कठोर साधना करले पर वह अपने जीवन को सफल नही वना सकता। सवसे पहले आत्मा मे सम्यक्त्व की स्थिति आना आवश्यक है, सम्यक्त्व की स्वरूप व्याख्या तो आप लोग समझ ही गये होगे। जैसे कि शास्त्रकार वतलाते है :—

अरहतो महदेवो, जावज्जीवाए, सुसाहूणो गुरूणो।
जिण पण्णत्त तत्तं, इह सम्मत्त मए गहिय ॥

सुदेव अरिहत, गुरु निग्रन्थ, सुधर्म अहिंसामय या निश्चित श्रद्धान होना सम्यक्त्व है।

जब सम्यक्त्व की स्थिति जीवन मे आ जाती है तव उसका किया गया धार्मिक अनुष्ठान फलदायी होता है। वह जीवन को समुन्नत वनाने वाला होता है। कई बार ऐसा होता है कि अन्यतीर्थियो के सावद्य आडम्वर देखकर कई भद्रिक भाई-वहिनो का उस ओर ध्यान आकर्षित हो जाता है। वे अपना मौलिक धर्म भूल-कर उस तरफ अनुरक्त हो जाते है, लेकिन इन सावद्य कार्यो मे आसक्त होने वाले व्यक्ति हिसात्मक वृत्ति को प्रोत्साहन देने वाले होते हैं, वे अपने जीवन को कभी सुसफल नही वना सकते। कुछ दिनो से आपके समक्ष सम्यक्त्व के आठ आचारो का वर्णन चल रहा है। जीवन की नीव को मजवूत वनाने के लिए इन आचारो का स्वरूप समझ कर उन्हें जीवन मे उतारना आवश्यक है।

जो व्यक्ति सम्यक्त्व की स्थिति के साथ दृढता के साथ आगे वढता है, उसकी विजय निश्चित होती है। ज्ञाता धर्म कथाग सूत्र मे आठवे अध्याय मे अरणक श्रावक का वर्णन आया है, जिसे विचलित करने के लिए, धर्म को झूठा साबित करने के लिए, देव ने विविध प्रयास किये। उसे डराया, धमकाया।

लेकिन अरणक श्रावक ने समय को समझा था। वह जानता था कि वर्तमान समय को किस प्रकार महत्वपूर्ण बनाना, अपने जीवन को सफल कैसे बनाना। वह देव के इन कष्टो से घबराया नही। सब कुछ दृढता के साथ सह गया। आखिर देव को झुकना पडा। देव ने एक श्रावक को नमस्कार किया था। अतः जीवन के इन वर्तमान क्षणो को शाति से जीने के लिए सम्यक्त्व को भूमिका पर आरूढ होना आवश्यक है।

जीवन को सही ढग से जीने के लिए सम्यक् दर्शन के ये आचार अत्यन्त उपयोगी हैं। महाप्रभु ने जीने को कला बहुत ही सक्षिप्त सार रूप मे बतला दी है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र के राजमार्ग पर अपने जीवन दशा को आगे बढाया जाय। जब तक इस राज मार्ग पर जीव रक्षा सही ढग से आगे बढ़ता रहेगा। तब तक वह आत्मा की सुषुप्त शक्तियो को जागृत करता हुआ लक्ष्य की ओर निरन्तर बढता जाएगा।

जिस किसी भी व्यक्ति ने अपने जीवन को शाति से जिया है, तो वह इसी पथ पर बढकर ही अतः आप भी आगे बढने का प्रयास करेगे तो मगल मय दशा प्राप्त कर सकेंगे।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

१४-७-८५
रविवार

• • •

१५ स्याद्वाद और विचिकित्सा

(सम्यक्त्व का तृतीय आचार)

आत्मा की अत्यन्त पवित्र दशा को प्राप्त करने के लिये वीतराग देव के सिद्धान्त को शास्त्रीय वाणी के माध्यम से सुनें। स्थूल रूप से तो सभी जान रहे है कि वीतराग देव, जिन्होने केवलज्ञान प्राप्त कर जो सिद्धान्त बताये है, वे हमारे जीवन को सरस बनाने वाले एव बडे उपयोगी हैं, पर वे सिद्धान्त किस रूप मे जीवन मे उतारे जाएँ, कैसे उनकी गहराई मे हम उतर सके, इस विषयक पात्रता अर्जित करना अति आवश्यक है।

वैसे एक आत्मा के स्वरूप मे सभी आत्माओ के स्वरूप का समावेश हो जाता है। इसीलिये ठाणाग सूत्र मे प्रभु महावीर ने कहा कि "एगे आया" अर्थात् सभी आत्माओ का आत्मीय स्वरूप एक समान है, पर विभाव पर्याय से आत्मा की जुदी-जुदी अवस्थाएँ है। जैसे एकेन्द्रिय, वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय, पचेन्द्रिय आदि तथा नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवता आदि-आदि। एक स्वरूप मे स्थित जीवो के अनन्त पर्याय है। अस्तित्व की दृष्टि से सभी आत्माओ का अस्तित्व अलग-अलग होने से, आत्माएँ अनन्तानन्त है। सभी स्थिति मे सभी मे आत्मा अलग-अलग है तो प्रश्न उपस्थित होता है कि अनन्त आत्माओ को एक कैसे कहा ? ऐसी बातो को समझाने के लिये प्रभु ने नयो का स्वरूप बताया है। अलग-अलग अपेक्षाओ का कथन किया है। उनसे जो वस्तु जैसी है, उसे उसी रूप मे समझा जा सकता है। ऐसे विधान से ही नयो का स्वरूप हमारे समक्ष आ सकता है। "आत्मा एक है" यह सग्रह नय की अपेक्षा से कथन है, पर "एक" कहने से समग्र जाति का बोध नही हो सकता है। अत "आत्मा एक भी है, आत्मा अनेक भी है" इन दोनो वाक्यो को स्याद्वाद अथवा नयवाद का सहारा लेकर ही समझा जा सकता है। मनुष्य जाति मे जो कृत्रिम अनेक जातियाँ है, उनका तथा मानव-मानव का पृथक्-पृथक् रूप समझने के लिये व्यवहार नय की अपेक्षा रखनी पडती है और सभी का एक स्वरूप समझने के लिये निश्चय नय का सहारा लेना पडता है। जैसे—एक ही पुरुष अपने लडके की अपेक्षा पिता और अपने पिता की अपेक्षा पुत्र कहलाता है। तो यहाँ पर वस्तु स्वरूप को समझने के लिये नय का सहारा लेना अति आवश्यक है। द्रव्यार्थ से पुरुष एक ही है, पर पर्यायार्थ से वही पुरुष अलग-अलग धर्मो से अनेक रूपो मे हमारे सामने आता है।

"जैन धर्म का सिद्धान्त वैज्ञानिक सिद्धान्त है" इसका तात्पर्य यह नही कि विज्ञान ने इन सिद्धान्तो को प्ररूपित किया, वरन् केवलज्ञान द्वारा जो सिद्धान्त प्ररूपित किये गये, वे वैज्ञानिक प्रयोगो मे भी सौ टच खरे उतरते है।

स्याद्वाद को समझने के लिये रूपक सामने रखिये—जैसे–जब बिलौना किया जाता है, तब एक रस्सी को खीचकर दूसरी रस्सी को ढीली छोडनी पडती है, पर उस ढीली छोडी हुई रस्सी को हाथ मे पकडे रहना पडता है, तभी मक्खन निकल सकता है। इसी प्रकार प्रभु महावीर के सिद्धान्त जो स्याद्वाद रूप है, अनेकान्तवाद को लिये हुए है, उनमे, जिसका जब कथन किया जाता है, वह उस समय मुख्य रूप से रहता है और अन्य भी सभी उस समय उसमे विद्यमान रहते हैं, पर ढीली छोडी हुई रस्सी के समान गौण रूप मे। हर वस्तु मे हर धर्म, पृथक्-पृथक् समय मे अलग-अलग रूप से कथित होते रहते है, पर सत्ता रूप से विद्यमान सभी धर्म उसमे एक साथ रह सकते है।

जब तक नय का स्वरूप समझ मे नही आता, वहाँ तक किसी का भी स्वरूप समझ मे नही आ सकता। व्यवहार नय से भिन्न-भिन्न सभी जातियो का सग्रह हो जाता है। सम्यग्दर्शन का, आत्म स्वरूप का मक्खन यदि जैन दर्शन के सिद्धान्तो का बिलौना करते हुए हमे निकालना है तो नय रूपी रस्सी लेकर ही निकाला जा सकेगा और वह भी बिलौने की विधि से नयो का बिलौना करते हुए ही निकाल सकेंगे। एक ही नय की रस्सी को खीचने से काम नही चलेगा। आज कई विद्वान् मुक्त कठ से प्रशसा करते है, अपनी श्रुतियो के अनुरूप, अनुभूतियो के आधार पर, कि जैन धर्म से भिन्न अन्य कोई भी धर्म श्रेष्ठ नही है। आचार्य विनोबा के कथन का भाव है कि मैंने जैन धर्म का अध्ययन किया, तब मुझे आत्म सतुष्टि हुई। और अतिम समय मे उन्होने जैन विधि की तरह सथारा ग्रहण किया था।

नोखामडी मे एक बार का प्रसग है—राजस्थान के मुख्य मत्री हरिदेव जोशी व्याख्यान मे उपस्थित हुए थे और व्याख्यान सुनने के पश्चात् कहने लगे कि "दुनिया मे जितने भी धर्म है, उनमे से सर्वश्रेष्ठ धर्म स्याद्वादी जैन धर्म है।" एक दृष्टान्त उन्होने दिया कि एक सेठ के पास एक आगन्तुक भाई आया और पूछा कि सेठ साहब कहाँ है? कर्मचारी से उत्तर मिला कि सेठ साहब ऊपर है। ऊपर गया तो उत्तर मिला कि सेठ सा० नीचे है। नीचे आया तो सेठ सा० वहाँ नही थे। उसके मन मे उथल पुथल मच गई कि बात क्या है? मुझे नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे क्यो भेजा जा रहा है? वह खीझ उठा और पूछने लगा कि यह क्या बात है? कोई कहता है सेठ सा० नीचे है और कोई कहता है कि सेठ सा० ऊपर है। पर सेठ सा० तो दोनो जगह मे से कही नही हैं। तब किसी सुज्ञ व्यक्ति ने उसके तूफान को ठडा करते हुए बड़ी विनम्रता पूर्वक कहा

कि भाई ! दोनो की बात सही है । कारण कि सेठ सा० वीच वाली मजिल मे हैं । वह मजिल नीचे की अपेक्षा ऊपर और ऊपर की अपेक्षा नीचे है । इसी प्रकार स्याद्वाद का रूपक सामने रखकर वे कहने लगे कि वस्तुत ऐसा धर्म अन्यत्र कही नही है । परन्तु जैन-धर्म के अनुयायी आज क्या कर रहे है ? यह थोडा विचारणीय प्रश्न है । यदि आज जैन-धर्म को पालने वाले, सम्यक्त्वी कहलाने वाले इस स्याद्वाद की दृष्टि को अपनाकर प्रत्येक तत्त्व की गहराई मे पहुँचे तो वीतराग देव के प्रत्येक सिद्धान्त की गहराई, उनकी थाह, वे पा सकते हैं ।

मैं जो सम्यक्त्व के आठ आचार बता रहा था, उसमे तीसरा आचार "निर्विचिकित्सा" है । अर्थात् धर्म करणी के फल मे सदेह नही करना ।

मनुष्य की चितन की शक्ति का केन्द्र मस्तिष्क है । अत अपनी बुद्धि को निर्मल बनाकर, अन्तर्मुखी बनाकर हम सोचे कि जो धर्म क्रिया करते है, वह किसलिये करते है ? क्या ससार के लिये करते है अथवा निज स्वरूप को साधने के लिये क्रिया करते है ? क्रिया मन से भी होती है, वचन से भी होती है और काया से भी क्रिया होती है । पर ये सारी क्रियाये हमारे निज स्वरूप को साधने के लिये ही हो । फल की कभी आकाक्षा मत करो । आप आध्यात्मिक साधना के लिये क्रिया कर रहे है तो जरूर आपको आध्यात्मिक फल प्राप्त होगा, शाति मिलेगी । आत्मा की अनूठी शक्तियो की उपलब्धि होगी । पर कभी भी धर्म क्रिया करते हुए फल की आकाक्षा नही करनी चाहिये एव कभी भी फल अवाप्ति विषयक शका भी नही करनी चाहिये ।

ज्ञाता सूत्र मे दो साथियो का रूपक आया है । दो साथी घूमने के लिए जगल मे गये । वहाँ देखा कि दो मयूर नृत्य कर रहे थे । उनका नृत्य देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए । सोचा कि क्या ही अच्छा हो, यदि ये मयूर अपने घर मे हो और इनका नृत्य हमे प्रतिदिन देखने को मिले । ऐसा सोच ही रहे थे, तभी उन्हे समीपस्थ स्थल मे मयूर के दो अण्डे पडे हुए दिखाई दिये । उन्हे देखकर दोनो बडे हर्षित हुए और उन्हे लेकर अपने घर आ गये तथा एक-एक अण्डे की दोनो अपने-अपने घर मे प्रतिपालना करने लगे । उन दोनो मे से एक साथी सोच रहा था कि इस अण्डे की मैं सावधानीपूर्वक परिपालना करूँगा तो एक दिन जरूर इसमे से मयूर का जन्म होगा और उसका पालन कर मैं नित्य प्रतिदिन उसका मनोहारी रूप देखा करूँगा । लेकिन दूसरा मित्र जो बडा चचल और उत्सुक था, वह हमेशा उसे उठाता और घूमता, फिरता देखता कि अण्डा जीवित है या नही ? बार-बार हाथ मे लेने से वह अण्डा समय से पहले फूट जाता है और जिस मयूर के जन्म के लिये वह लालायित बना हुआ था, उस मयूर का जन्म न होने से शकाग्रस्त बन जाता है और विचारने लगता है कि "अरे—रे !

मैं ठगा गया, यह अण्डा तो मयूर का नही था, अन्यथा क्या मुझे मयूर की प्राप्ति नही होती ? उधर दूसरे मित्र ने पूर्ण विश्वास के साथ सम्यक् रूपेण उस मयूरनी के अण्डे की परिपालना की और समय आने पर मयूर का जन्म उसके आगन मे हुआ, उस मयूर को पाकर वह बडा प्रसन्न हुआ, प्रफुल्लित बना, उसे दाना-पानी खिला-पिलाकर बडा किया और उससे अपनी इच्छापूर्ति करने लगा।

एक दिन, जब वह दूसरा साथी उसके घर आया और वहाँ मयूर को नृत्य करते हुए देखकर बडा आश्चर्यचकित हुआ और सारी हकीकत पूछी, पूछने पर जाना कि वह अण्डा मयूर का ही था, पर चचलता और उत्सुकता के कारण ही नष्ट हो गया। यह ज्ञातकर उसे बहुत पश्चाताप हुआ।

बन्धुओ ! यह तो एक रूपक है, चाहे वह शास्त्र मे किसी भी रूप मे आया हो। पर इससे यह शिक्षा लेनी है कि धर्म करणी करते हुए पहली बात तो यह है—कि हम कभी भी फल की आकाक्षा नही करे तथा दूसरी बात—फल के विषय मे कभी शकाशील नही बने। जैसे कि मै अमुक धर्म-कार्य कर रहा हूँ, उसका फल मुझे मिलेगा या नही ?

मै जब पढता था, तब का एक प्रसग है—एक दिन मेरे सामने ऐसा जटिल प्रश्न आया, जिसका मै हल नही कर पा रहा था। तब मैने सहज ही उपवास किया, उपवास वाले दिन तो शरीर शिथिल बना रहा, पर पारणे के दिन एकाएक जटिल प्रश्न का समाधान हो गया। एक उपवास मे भी आत्मा इतनी निर्मल बन सकती है तो फिर लम्बी तपश्चर्या के द्वारा कितना अधिक फल प्राप्त होता है ? अत: इस विषय मे कभी शका नही करनी चाहिये और न ही उसके फल के विषय मे सदेह ही करना चाहिये। तप आदि सभी क्रियाओ का फल अवश्य प्राप्त होता है। जिसका सम्यग्दर्शन भलीभाँति निर्मल है, वह कभी भी धर्म-कार्य करता हुआ न तो फल की आकाक्षा करता है और न ही उसके फल मे शकाशील बनता है। इस प्रकार वह अपने सम्यक्त्व के तीसरे आचार का सम्यक् रूपेण परिपालन करता है। कहने का सार यही है कि इस "निर्विचिकित्सा आचार" से यह शिक्षा जीवन मे ग्रहण करे कि आपकी प्रत्येक धर्म-क्रिया, आत्म-शुद्धि के हेतु ही हो, और यह सुनिश्चित है कि उसका सुमधुर फल अवश्य ही अवाप्त होगा।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

१५-७-८५
सोमवार

कि भाई ! दोनो की बात सही है । कारण कि सेठ सा० बीच वाली मजिल मे हैं । वह मजिल नीचे की अपेक्षा ऊपर और ऊपर की अपेक्षा नीचे है । इसी प्रकार स्याद्वाद का रूपक सामने रखकर वे कहने लगे कि वस्तुत ऐसा धर्म अन्यत्र कही नही है । परन्तु जैन-धर्म के अनुयायी आज क्या कर रहे है ? यह थोडा विचारणीय प्रश्न है । यदि आज जैन-धर्म को पालने वाले, सम्यक्त्वी कहलाने वाले इस स्याद्वाद की दृष्टि को अपनाकर प्रत्येक तत्त्व की गहराई मे पहुँचे तो वीतराग देव के प्रत्येक सिद्धान्त की गहराई, उनकी थाह, वे पा सकते है ।

मैं जो सम्यक्त्व के आठ आचार बता रहा था, उसमे तीसरा आचार "निर्विचिकित्सा" है । अर्थात् धर्म करणी के फल मे सदेह नही करना ।

मनुष्य की चिंतन की शक्ति का केन्द्र मस्तिष्क है । अत अपनी बुद्धि को निर्मल बनाकर, अन्तर्मुखी बनाकर हम सोचे कि जो धर्म क्रिया करते है, वह किसलिये करते है ? क्या ससार के लिये करते है अथवा निज स्वरूप को साधने के लिये क्रिया करते है ? क्रिया मन से भी होती है, वचन से भी होती है और काया से भी क्रिया होती है । पर ये सारी क्रियाये हमारे निज स्वरूप को साधने के लिये ही हो । फल की कभी आकाक्षा मत करो । आप आध्यात्मिक साधना के लिये क्रिया कर रहे है तो जरूर आपको आध्यात्मिक फल प्राप्त होगा, शाति मिलेगी । आत्मा की अनूठी शक्तियो की उपलब्धि होगी । पर कभी भी धर्म क्रिया करते हुए फल की आकाक्षा नही करनी चाहिये एव कभी भी फल अवाप्ति विषयक शका भी नही करनी चाहिये ।

ज्ञाता सूत्र मे दो साथियो का रूपक आया है । दो साथी घूमने के लिए जगल मे गये । वहाँ देखा कि दो मयूर नृत्य कर रहे थे । उनका नृत्य देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए । सोचा कि क्या ही अच्छा हो, यदि ये मयूर अपने घर मे हो और इनका नृत्य हमे प्रतिदिन देखने को मिले । ऐसा सोच ही रहे थे, तभी उन्हे समीपस्थ स्थल मे मयूर के दो अण्डे पडे हुए दिखाई दिये । उन्हे देखकर दोनो बडे हर्षित हुए और उन्हे लेकर अपने घर आ गये तथा एक-एक अण्डे की दोनो अपने-अपने घर मे प्रतिपालना करने लगे । उन दोनो मे से एक साथी सोच रहा था कि इस अण्डे की मैं सावधानीपूर्वक परिपालना करूँगा तो एक दिन जरूर इसमे से मयूर का जन्म होगा और उसका पालन कर मैं नित्य प्रतिदिन उसका मनोहारी रूप देखा करूँगा । लेकिन दूसरा मित्र जो बडा चचल और उत्सुक था, वह हमेशा उसे उठाता और घूमता, फिरता देखता कि अण्डा जीवित है या नही ? बार-बार हाथ मे लेने से वह अण्डा समय से पहले फूट जाता है और जिस मयूर के जन्म के लिये वह लालायित बना हुआ था, उस मयूर का जन्म न होने से शकाग्रस्त बन जाता है और विचारने लगता है कि "अरे—रे !

सम्यग्दर्शन की स्थिति जीवन मे प्राप्त होती है, उसी से सुज्ञान तथा कुज्ञान का भेद स्पष्ट होता है, क्योकि पुत्रोत्पत्ति के साथ ही उसके कुपुत्र-सुपुत्र का निर्णय नही होता, यह निर्णय तो उसके आचरण से होता है, वैसे ही ज्ञान की उत्पत्ति पहले होती है, उसके बाद ही उसके आचरण से सम्यक्दर्शन या मिथ्यादर्शन की प्राप्ति होने पर सुज्ञान-कुज्ञान का निर्णय होता है। 'इस सुज्ञान से सुश्रद्धा आती है। अज्ञान जब तक रहता है, तब तक मिथ्या श्रद्धा (कुश्रद्धा) रहती है। ज्ञान को सुज्ञान बताने वाला सम्यग्दर्शन है। अत उमास्वाति ने दर्शन को पहले कहा, इसमें भी कोई विरोध नही है, अपेक्षा भेद को लेकर नयवाद के सहारे से ही पहले और पीछे का कथन है, अत इस विपयक अविरोध को समझने के लिए नय दृष्टि को समझे।

वीतराग देवो के वचनो पर श्रद्धा आ गयी तो दुनिया भर का सारा ज्ञान-विज्ञान सम्यक् हो जायेगा। यदि दुनिया भर का बाहरी ज्ञान है, सारे शास्त्र कण्ठस्थ कर लिये पर सब कुछ होते हुए भी वीतराग देव के वचनों पर एक निष्ठा- आस्था नही है, तो उसका ज्ञान सुज्ञान नही कहला सकता। अभवी भी बाहरी रूप मे साधु बन सकता है, गौतम स्वामी जैसी करणी कर सकता है, फिर भी वह कुज्ञानी है, यद्यपि वह अपने उपदेश से कई भव्य मुमुक्षुओ को प्रति-बोधित भी कर देता है, कई आत्माएँ उसके निमित्त से मोक्ष भी प्राप्त कर लेती हैं, पर वह खुद मोक्ष नही जा सकता है, इसका कारण है कि उसकी वीतराग वाणी पर सच्ची श्रद्धा नही है। वीतराग वाणी को, शास्त्र के सिद्धान्त को ज्ञानी और अज्ञानी दोनो ही सुन सकते हैं, दोनो पढ सकते है पर पढने-पढने मे सुनने-सुनने मे अन्तर है। जो अटूट श्रद्धा के साथ अनन्य भाव से शका आदि पाचो दोषो को टालकर, शुद्ध भावना के साथ चाहे कम पढे, कम सुने या ज्यादा पढे, ज्यादा सुने वह सम्यग्दृष्टि है। इसके विपरीत आचरण करने वाला मिथ्यादृष्टि है।

बहुत से भाई कहते हैं कि हम अज्ञानी हैं। अरे आप श्रावक हैं, आपको भगवान् की वाणी पर अचल आस्था है, अटूट श्रद्धा है तो फिर आप अज्ञानी कैसे ? अज्ञान-अधकार है और भगवान् की वाणी के प्रति श्रद्धा यह प्रकाश है। मात्रा कम ज्यादा हो सकती है, पर प्रकाश के सामने अधकार टिक नही सकता। श्रावक लोग यदि स्वय अपने को अज्ञानी बनायेंगे तो सुज्ञ लोग आपकी मखौल उडायेंगे। लघुता की दृष्टि से यदि कहना ही है तो यह कहा जा सकता है, कि मेरे मे विशेष ज्ञान कहाँ है, मैं तो वीतराग वाणी पर श्रद्धा लेकर चल रहा हूँ। विशेष ज्ञानी महापुरुष मेरे से भी अधिक बहुत है।

सम्यक्त्व के आठ आचार जिसमे आज चतुर्थ आचार का मैं आपके समक्ष वर्णन करना चाह रहा हूँ, वह है **अमूढ दृष्टि**—इसका तात्पर्य है, जिसकी

१६ सम्यक्त्व का चतुर्थ आचार–अमूढ़दृष्टि

वीतरागता से परिपूर्ण केवली भगवान् जिन कहलाते है। और उनके भी इन्द्र "जिनेन्द्र" कहलाते है। इस जिनेन्द्र शब्द से तीर्थंकर भगवान् का ग्रहण होता है। तीर्थंकर देव चतुर्विध सघ की स्थापना करके भव्यो के कल्याणार्थ मार्ग प्रशस्त बनाते है। तीर्थंकर भगवान् के अमृतोमय उपदेश सागरवत् गहन एव विस्तृत है, उन्हे गागर मे भरने तुल्य ग्यारह अग और बारह उपाग आदि शास्त्र है।

ग्यारह अग मे सूचित, कथन मान्य है, अत ग्यारह अग कसौटी है। जैसे सोना कसौटी पर खरा उतरता है, ठीक वैसे ही ग्यारह अग की कसौटी पर जितना भी कथन लेखन खरा हो, वह सभी मान्य है, जो कि आत्मकल्याणकारी होता है।

भगवती सूत्र बहुत बडा शास्त्र है, इसमे सक्षिप्त से साधना का स्वरूप रत्नत्रय की आराधना बताई है, उसी रत्नत्रयाराधना को समझकर हम सयम-भाव की आराधना मे लगे हुए है। उस आराधना मे सम्यक्ज्ञान, दर्शन और चारित्र ये तीन रत्न समाहित है। उत्तराध्यान सूत्र के मोक्षमार्ग अध्ययन मे "णाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा" कहा है। यहा सम्यक्ज्ञान पहले बताया है, कई ग्रथो मे पहले सम्यक्दर्शन बताया है, जैसे कि तत्त्वार्थ सूत्र मे पहले सम्यक्दर्शन का कथन किया है, यथा—"सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग."। यहा विचारणीय प्रश्न यह उपस्थित होता है कि पहले ज्ञान को समझें या पहले दर्शन को ? शास्त्र मे जब ज्ञान को पहला नम्बर दिया है तो पहले ज्ञान ही मानना उपयुक्त होगा। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा गया है "णाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अन्नाणमोहस्स विवज्जणाए। रागस्स दोसस्स य सखाएण, एगन्तसोक्खसमुवेई मोक्ख ।। आत्मा की जो अवस्था है, उस अवस्था मे ज्ञान आत्मा का गुण है। गुण, गुणी, अभेद सम्बन्ध से चलते है, ज्ञान आत्मा के साथ रहता है, पर ससारी आत्मा को जब तक मोक्षमार्ग का ज्ञान नही होता, तब तक वह अज्ञान अवस्था मे रहती है, ज्ञान, अज्ञान के अलग-अलग भेद बताये है। यहाँ आत्मा के मूल गुण की दृष्टि से ज्ञान का नम्बर पहला है और दर्शन का नम्बर बाद मे है, क्योकि पुत्र पैदा होने के बाद ही सुपुत्र-कुपुत्र का निर्णय होता है। ज्ञान आत्मा का पुत्र है, जब वह ज्ञान आगे बढता है, प्रगति करता है, तब

सम्यग्दर्शन की स्थिति जीवन मे प्राप्त होती है, उसी से सुज्ञान तथा कुज्ञान का भेद स्पष्ट होता है, क्योकि पुत्रोत्पत्ति के साथ ही उसके कुपुत्र-सुपुत्र का निर्णय नही होता, यह निर्णय तो उसके आचरण से होता है, वैसे ही ज्ञान की उत्पत्ति पहले होती है, उसके बाद ही उसके आचरण से सम्यक्दर्शन या मिथ्यादर्शन की प्राप्ति होने पर सुज्ञान-कुज्ञान का निर्णय होता है। 'इस सुज्ञान से सुश्रद्धा आती है। अज्ञान जब तक रहता है, तब तक मिथ्या श्रद्धा (कुश्रद्धा) रहती है। ज्ञान को सुज्ञान बताने वाला सम्यग्दर्शन है। अत उमास्वाति ने दर्शन को पहले कहा, इसमें भी कोई विरोध नही है, अपेक्षा भेद को लेकर नयवाद के सहारे से ही पहले और पीछे का कथन है, अत इस विपयक अविरोध को समझने के लिए नय दृष्टि को समझे।

वीतराग देवो के वचनो पर श्रद्धा आ गयी तो दुनिया भर का सारा ज्ञान-विज्ञान सम्यक् हो जायेगा। यदि दुनिया भर का बाहरी ज्ञान है, सारे शास्त्र कण्ठस्थ कर लिये पर सब कुछ होते हुए भी वीतराग देव के वचनो पर एक निष्ठा- आस्था नही है, तो उसका ज्ञान सुज्ञान नही कहला सकता। अभवी भी बाहरी रूप मे साधु बन सकता है, गौतम स्वामी जैसी करणी कर सकता है, फिर भी वह कुज्ञानी है, यद्यपि वह अपने उपदेश से कई भव्य मुमुक्षुओ को प्रति-बोधित भी कर देता है, कई आत्माएँ उसके निमित्त से मोक्ष भी प्राप्त कर लेती हैं, पर वह खुद मोक्ष नही जा सकता है, इसका कारण है कि उसकी वीतराग वाणी पर सच्ची श्रद्धा नहीं है। वीतराग वाणी को, शास्त्र के सिद्धान्त को ज्ञानी और अज्ञानी दोनो ही सुन सकते है, दोनो पढ सकते है पर पढने-पढने मे सुनने-सुनने मे अन्तर है। जो अटूट श्रद्धा के साथ अनन्य भाव से शका आदि पाचो दोषो को टालकर, शुद्ध भावना के साथ चाहे कम पढे, कम सुने या ज्यादा पढे, ज्यादा सुने वह सम्यग्दृष्टि है। इसके विपरीत आचरण करने वाला मिथ्यादृष्टि है।

बहुत से भाई कहते है कि हम अज्ञानी है। अरे आप श्रावक है, आपको भगवान् की वाणी पर अचल आस्था है, अटूट श्रद्धा है तो फिर आप अज्ञानी कैसे ? अज्ञान-अधकार है और भगवान् की वाणी के प्रति श्रद्धा यह प्रकाश है। मात्रा कम ज्यादा हो सकती है, पर प्रकाश के सामने अधकार टिक नही सकता। श्रावक लोग यदि स्वय अपने को अज्ञानी बनायेंगे तो सुज्ञ लोग आपकी मखौल उड़ायेंगे। लघुता की दृष्टि से यदि कहना ही है तो यह कहा जा सकता है, कि मेरे मे विशेष ज्ञान कहाँ है, मैं तो वीतराग वाणी पर श्रद्धा लेकर चल रहा हूँ। विशेष ज्ञानी महापुरुष मेरे से भी अधिक बहुत है।

सम्यक्त्व के आठ आचार जिसमे आज चतुर्थ आचार का मैं आपके समक्ष वर्णन करना चाह रहा हूँ, वह है **अमूढ़ दृष्टि**—इसका तात्पर्य है, जिसकी

सम्यग्दृष्टि किसी भी अवस्था मे मूढ नही बने, आपद्ग्रस्त अवस्था मे भी किंकर्त्तव्य विमूढ नही बने। वीतराग देव के आध्यात्मिक रस को लेकर भव्य प्राणी चल रहे है तो कभी भी उनके प्रकाशमय जीवन मे अज्ञान अधकार का प्रवेश नही होता, वैसे भी अधकार और प्रकाश का कभी मेल ही नही होता।

एक दृष्टान्त है—वैदिक सस्कृति की बात है। एक बार अधकार, तथाकथित भगवान के पास गया और प्रार्थना करने लगा—भगवन्! आप रक्षक है, दयालु है, मेरी रक्षा करे। तथाकथित भगवान् ने पूछा—भाई तुम्हे कौन मार रहा है? अधकार ने कहा—और तो कोई नही, पर यह प्रकाश मुझे छिन्न-भिन्न कर देता है। भगवान् ने प्रकाश को बुलाया और कारण पूछा तो प्रकाश ने कहा कि अधकार कौन है? मैं तो उसे जानता ही नही? कभी मैंने उसे देखा भी नही तो मैं उसे कहाँ मार रहा हूँ और मार भी कैसे सकता हूँ? आप उसे मेरे सामने बुलवायें, अधकार को जब सूचना करवायी कि तुम आओ फैसला करे, पर अधकार ने आने से मना कर दिया, तब फैसला कैसे हो? देखिये प्रकाश के सामने अधकार टिक ही नही पाता है। इसी प्रकार आप मे भगवान् के वचन पर अटूट अडिग श्रद्धा है, तो आप ज्ञानी है, अत भूलकर भी ऐसा मत कहना कि हम अज्ञानी हैं, क्योकि ये शब्द सम्यग्दृष्टि श्रावक के लिए अनुपयुक्त है। क्योकि सम्यक्त्वी के सामने अज्ञान टिक ही नही सकता।

जिसके पास छोटासा भी दीपक है, वह भले ही तेज प्रकाश न भी करे, पर है प्रकाश का ही पु ज। हम अमूढदृष्टि कैसे बने, इसके लिए हमे दृढता लानी अति अपेक्षित है। शास्त्र मे वर्णन आता है कि अम्बडजी सन्यासी की पौशाक मे थे, लेकिन भगवान् महावीर के अनुयायी और बारह व्रतधारी श्रावक थे। उत्कृष्ट श्रावक वर्ग के आराधक वीतराग वाणी पर अटूट श्रद्धा रखने वाले थे। लब्धि सम्पन्न भी थे, जिसके जरिये से जगल की जगह नगर और नगर की जगह जगल दिखाने मे समर्थ थे। वे अम्बड सन्यासी एक वक्त भगवान् महावीर से पूछते है कि आपने जिस प्रकार मोक्ष मार्ग बताया और जिस प्रकार सुश्रद्धा का रूप बताया, ऐसी सुश्रद्धा को पालने वाले अभी कौन हैं? तब प्रभु महावीर ने फरमाया कि सुलसा नामक श्राविका जो भले नारी जाति मे है, पर उसके जीवन मे सम्यक्त्व इतना प्रगाढ है कि उसकी दृष्टि को कोई भी विमूढ नही बना सकता। वह किसी के प्रभाव मे नही आती। अम्बडजी के जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि क्या नारी जाति मे इतनी ठोसता हो सकती है? जबकि नारी की प्रकृति चचल, कोमल और जिज्ञासुवृत्ति को लिये हुए होती है, अत मुझे सुलसा की दृढता की परीक्षा करनी चाहिये। जहाँ सुलसा रहती थी, उस नगरी मे अम्बडजी पहुँचे। वैक्रिय लब्धि से ब्रह्मा का रूप बनाया, नगर मे तो हल्ला मच गया, लोग देखने के लिए उत्सुक हो उठे। सब गये पर वह श्राविका सुलसा नही गयी। कई

बहिनो ने उसको आग्रह भी किया कि देख तो लो, देखने मे क्या हर्ज है, पर उसने कहा--यह इन्द्रियो का विषय है इसे क्या देखना ? मुझे तो आत्मा को देखना है, उसका समीक्षण करना है, आत्म सौन्दर्य के दर्शन करने है। अम्बडजी ने जब सुलसा को नही देखा तो दूसरे दिन अम्बडजी ने विष्णु का रूप बनाया, दुनिया उलट पडी, पर वह नही गई। तब अम्बडजी ने सोचा इसका श्रद्धान तीर्थंकर देवो के प्रति है। अत मैं तीर्थंकर का रूप बनालूँ, तीर्थंकर का रूप बनाया, २५वे तीर्थंकर के रूप मे मशहूर हो गये पर सुलसा दृढ रही। इस अवसर्पिणी काल मे तीर्थंकर २४ ही होते है। ऐसी वीतराग वाणी है, और वीतराग वाणी के प्रति मेरी अचल आस्था है। अत वह २५वे तीर्थंकर के दर्शन करने नही गई। अम्बडजी के तीर्थंकर रूप बनाने पर भी सुलसा दर्शन करने नही गई, तब उन्हे विचार आया। ओह ! कितनी निष्ठा है, कितनी दृढ आस्था है। अब भी विमूढ नही बनी। मुझे उसके दर्शन करने चाहिये। वे सन्यासी के रूप मे उसके घर पहुँचे, श्रावकोचित आचार का पालन करते हुए, निस्सिही-निस्सिही शब्द का उच्चारण किया। सुलसा चौकी, सोचा कोई श्रावकजी मेरे आगन मे पधारे है। साधर्मी भाई का स्वागत-सत्कार, सम्मान करना मेरा फर्ज है। वात्सल्य भाव दर्शाना मेरे सम्यग्दृष्टिपने का आचार है। वह उठी और बाहर आयी पर सन्यासी को देखकर रुक गई और सोचा--मानवता के नाते मुझे सत्कार अवश्य करना है, पर श्रावक का सम्बन्ध लेकर श्रावकोचित विनय की बुद्धि से नही। अम्बडजी इधर विचारने लगे कि मेरी वेशभूषा को देखकर उसे कुछ सशय हो रहा है। अत उसके सशय का परिहार करते हुए अम्बडजी ने भगवान् महावीर के द्वारा कही हुई सारी हकीकत उसके सामने स्पष्ट की और कहा--मैं तुम्हारे दर्शन करके धन्य हुआ। श्रावक की कितनी धर्म वत्सलता है। पर आज क्या स्थिति है ? कही इससे विपरीत तो नही है ?

सवाईमाधोपुर के पास एक छोटासा गाँव है, जैन श्रावको के घर हैं। वहाँ पर जब स्वर्गीय आचार्य श्री जी पधारे तो जयपुर के बडे-बडे जौहरी लोग वहाँ आये, गाव वाले इतने खुश हुए कि उन लोगो की इतनी अधिक आवभगत की कि जयपुर वाले मोटे-मोटे सेठ सभी बाग-बाग हो गये, और आचार्य भगवन् के समक्ष उनकी साधर्मी वात्सल्यता की भूरि-भूरि प्रशसा की पर उस छोटे से गाँव वाले जब जयपुर आये तो उन सेठो ने क्या सत्कार-सम्मान किया ? यह बहुत विचारणीय स्थिति है। सत्कार-सम्मान करना तो दूर रहा पर उन सेठ लोगो ने आँख उठाकर भी उनकी तरफ नही देखा होगा। कहाँ है सम्यग्दृष्टि भाव ? कहाँ है साधर्मी वात्सल्यता ? उन्होने जो उन सेठो का अपूर्व सत्कार सम्मान किया, उसे भी वे भूल बैठे। आज क्या कुछ स्थितियाँ बन रही है--यह सामने है। भेदभाव की नीति ने पैर जमा दिये हैं। यह जो पानी यहाँ बरस रहा है, वह पहाड पर भी उतना ही बरसता है, चट्टानो पर भी, मखमली दूब पर भी। यह वृष्टि भेदभाव नही रखती। वास्तव मे यही सच्चा सम्यग्दृष्टि भाव है।

प्राकृतिक दृश्यो से भी शिक्षा मिल रही है कि समभाव रखा जाय, दृष्टि को समीक्षण बनाई जाय । सुलसा मे जैसा सम्यग्दर्शन था, वैसा हजारो लाखो मे भी नही मिल सकता । सुलसा अम्बडजी को नमस्कार करने लगी, पर उन्होने सुलसा को मना कर दिया और स्वय श्रद्धा विभोर भावो के साथ झुक गये और स्व को धन्य-धन्य कृत्य-कृत्य महसूस करने लगे । आप सभी अपने सम्यग्दृष्टि भाव पर चितन, मनन करे और सम्यक्त्व की नीव को सुलसावत् मजबूत बनाने का आत्म साहस, आत्म पुरुषार्थ जागृत करे । जरूर हमारा जीवन भी मगलमय बनेगा । इन्ही शुभ भावनाओ के साथ..... .... ।

मोटा उपाश्रय   १६-७-८५
घाटकोपर, बम्बई   मगलवार

१७

उववूह

(सम्यक्त्व का पाँचवाँ आचार)

वीतराग देव द्वारा दिया गया जो पवित्र उपदेश है, उसकी तुलना करने योग्य, इस विश्व मे कोई उपदेश नही है, कारण कि उन्होने अपूर्ण अवस्था मे न कोई विशेष उपदेश दिया एव न चारतीर्थ की स्थापना की। तीर्थंकर देव स्वतन्त्र रूप से साधना पथ पर अवतीर्ण होते है, एव साधना की परिपक्वता होने पर केवल ज्ञानादि अनन्त चतुष्टय सम्पन्न बन जाते है। तदनन्तर भव्यो के उद्धार हेतु निस्पृह होकर केवलालोक की अनुभूतिपूर्वक उपदेश प्रदान करते है। वह उपदेश त्रिकाल अबाधित एव शाश्वत स्वरूप अभिव्यक्त करने वाला होता है।

अनन्त प्रकाश स्वभावी तीर्थंकरो के द्वारा अमृतोपम आध्यात्मिक निर्झर का प्रवाह प्रवाहित हुआ, गौतमादि गणधरो ने उसे ग्रहण किया एव सुधर्मास्वामी आदि पवित्र आचार्य परम्पराओ से आज भी वह आत्मकल्याण हेतु पर्याप्त मात्रा मे समुपलब्ध है। आवश्यकता है, उसे आत्मसात् करने की। यह तभी सम्भव है, जबकि वीतराग देव द्वारा प्ररूपित तत्त्वो पर अटूट आस्था के साथ श्रुत धर्म एव चारित्र धर्म को जीवन मे साकार रूप दें। श्रुत धर्म मे सम्यग्दर्शन एव सम्यग्ज्ञान का समावेश है। चारित्र धर्म मे सम्यग्चारित्र एव सम्यग्तप का समावेश है।

सम्यक्दर्शन जीवन की एक ऐसी पवित्र भूमिका है कि जिस पर आसीन होकर ऊर्ध्वगामी बनने का स्वर्णिम अवसर समुपलब्ध हो सकता है। उसी सम्यक्-दर्शन का प्रकरण चल रहा है। सम्यग्दर्शन भी अपने सम्यक्लक्षणादि के साथ आचार सहिता से व्यवस्थित जीवन मे अभिव्यक्त हो सकता है।

यहाँ आचार सहिता का तात्पर्य—सम्यक्दर्शन से सम्बन्धित आठ आचारो से है। उनमे से चार आचारो के विषय मे पूर्व के दिनो मे कुछ विवेचन प्रस्तुत किया गया, आज पाँचवाँ आचार का प्रसग समुपस्थित है, पाँचवाँ आचार है-- उववूह। जिसे उपवृहण भी कहा जा सकता है। उपवृहण अर्थात् गुणवान पुरुषो के गुणो का प्रगटीकरण करना। गुणी पुरुषो के विद्यमान गुणो का कथन करने से सद्गुणो की अभिवृद्धि होती है। व्यक्ति मे जब तक अपूर्ण अवस्था रहती है, तब तक गुण व अवगुण न्यूनाधिक मात्रा मे यथास्थान प्राय· पाये जाते है। उनके गुणो को सन्मुख रखकर कथन करने पर जिस व्यक्ति के गुणो का कथन किया

प्राकृतिक दृश्यो से भी शिक्षा मिल रही है कि समभाव रखा जाय, दृष्टि को समीक्षण बनाई जाय। सुलसा मे जैसा सम्यग्दर्शन था, वैसा हजारो लाखो मे भी नही मिल सकता। सुलसा अम्बडजी को नमस्कार करने लगी, पर उन्होने सुलसा को मना कर दिया और स्वय श्रद्धा विभोर भावो के साथ झुक गये और स्व को धन्य-धन्य कृत्य-कृत्य महसूस करने लगे। आप सभी अपने सम्यग्दृष्टि भाव पर चितन, मनन करे और सम्यक्त्व की नीव को सुलसावत् मजबूत बनाने का आत्म साहस, आत्म पुरुषार्थ जागृत करे। जरूर हमारा जीवन भी मगलमय बनेगा। इन्ही शुभ भावनाओ के साथ .. . . ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

१६-७-८५
मगलवार

१७

उववूह

(सम्यक्त्व का पाँचवाँ आचार)

वीतराग देव द्वारा दिया गया जो पवित्र उपदेश है, उसकी तुलना करने योग्य, इस विश्व मे कोई उपदेश नही है, कारण कि उन्होने अपूर्ण अवस्था मे न कोई विशेष उपदेश दिया एव न चारतीर्थ की स्थापना की। तीर्थंकर देव स्वतत्र रूप से साधना पथ पर अवतीर्ण होते है, एव साधना की परिपक्वता होने पर केवल ज्ञानादि अनन्त चतुष्टय सम्पन्न बन जाते हैं। तदनन्तर भव्यो के उद्धार हेतु निस्पृह होकर केवलालोक की अनुभूतिपूर्वक उपदेश प्रदान करते हैं। वह उपदेश त्रिकाल अबाधित एव शाश्वत स्वरूप अभिव्यक्त करने वाला होता है।

अनन्त प्रकाश स्वभावी तीर्थंकरो के द्वारा अमृतोपम आध्यात्मिक निर्भर का प्रवाह प्रवाहित हुआ, गौतमादि गणधरो ने उसे ग्रहण किया एवं सुधर्मास्वामी आदि पवित्र आचार्य परम्पराओ से आज भी वह आत्मकल्याण हेतु पर्याप्त मात्रा मे समुपलब्ध है। आवश्यकता है, उसे आत्मसात् करने की। यह तभी सम्भव है, जबकि वीतराग देव द्वारा प्ररूपित तत्त्वो पर अटूट आस्था के साथ श्रुत धर्म एव चारित्र धर्म को जीवन मे साकार रूप दें। श्रुत धर्म मे सम्यग्दर्शन एव सम्यग्ज्ञान का समावेश है। चारित्र धर्म मे सम्यग्चारित्र एव सम्यग्तप का समावेश है।

सम्यक्दर्शन जीवन की एक ऐसी पवित्र भूमिका है कि जिस पर आसीन होकर ऊर्ध्वगामी बनने का स्वर्णिम अवसर समुपलब्ध हो सकता है। उसी सम्यक्-दर्शन का प्रकरण चल रहा है। सम्यग्दर्शन भी अपने सम्यक्लक्षणादि के साथ आचार सहिता से व्यवस्थित जीवन मे अभिव्यक्त हो सकता है।

यहाँ आचार सहिता का तात्पर्य–सम्यक्दर्शन से सम्बन्धित आठ आचारो से है। उनमे से चार आचारो के विषय मे पूर्व के दिनो मे कुछ विवेचन प्रस्तुत किया गया, आज पाँचवाँ आचार का प्रसग समुपस्थित है, पाँचवाँ आचार है—उववूह। जिसे उपबृहण भी कहा जा सकता है। उपबृहण अर्थात् गुणवान पुरुषो के गुणो का प्रगटीकरण करना। गुणी पुरुषो के विद्यमान गुणो का कथन करने से सद्गुणो की अभिवृद्धि होती है। व्यक्ति मे जब तक अपूर्ण अवस्था रहती है, तब तक गुण व अवगुण न्यूनाधिक मात्रा मे यथास्थान प्राय. पाये जाते है। उनके गुणो को सन्मुख रखकर कथन करने पर जिस व्यक्ति के गुणो का कथन किया

प्राकृतिक दृश्यो से भी शिक्षा मिल रही है कि समभाव रखा जाय, दृष्टि को समीक्षण बनाई जाय । सुलसा मे जैसा सम्यग्दर्शन था, वैसा हजारो लाखो मे भी नही मिल सकता । सुलसा अम्बडजी को नमस्कार करने लगी, पर उन्होने सुलसा को मना कर दिया और स्वय श्रद्धा विभोर भावो के साथ झुक गये और स्व को धन्य-धन्य कृत्य-कृत्य महसूस करने लगे । आप सभी अपने सम्यग्दृष्टि भाव पर चितन, मनन करे और सम्यक्त्व की नीव को सुलसावत् मजबूत बनाने का आत्म साहस, आत्म पुरुषार्थ जागृत करे । जरूर हमारा जीवन भी मगलमय बनेगा । इन्ही शुभ भावनाओ के साथ . ..... ।

मोटा उपाश्रय   १६-७-८५
घाटकोपर, बम्बई   मगलवार

□ □ □

प्रकारान्तर से प्रेरणा प्रदान करता है। यह कार्य सम्यक्त्व के इस पाँचवे आचार का जीवन मे भलीभाति स्थान देने वाले ही कर सकते है।

चतुर्विध सघ के प्रत्येक सदस्य का परस्पर किसी न किसी रूप मे धार्मिक सम्बन्ध रहा हुआ है, एक-दूसरे का एक-दूसरे पर विचार-विमर्श, देने-लेने का प्रसग भी यदा-कदा आ सकता है। उस समय एक-दूसरे के दिल को गुणो की ओर बढाने के लिए ऐसे शब्दो का प्रयोग करना चाहिये कि जिससे सुनने वाले का हृदय प्रसन्न हो जाय एव वह भी यह महसूस करने लगे कि चतुर्विध सघ के इस सदस्य ने मेरे विद्यमान गुण का कथन करते हुए अपने मधुर वचनो से आगे बढने की प्रेरणा दी। मैं भी अब ऐसा प्रयत्न करूँ कि जो मेरे जीवन मे आलस्य प्रमादादि के कारण दुर्गुण प्रवेश करते है, उन दुर्गुणो को जोवन से दूर करूँ एव ऐसा सत्पुरुषार्थ करूँ कि जिससे मेरे जीवन मे खोजने पर भी दुर्गुण न मिलें, और मैं भी अन्य सदस्यो को इसी प्रकार सम्बोधित कर उनके गुणो को आगे बढाऊँ। कदाचित् मुझे लगे कि अमुक सदस्य कई वर्षों से सामायिक, पौषधादि क्रियाएँ कर रहा है, किन्तु उसके जीवन मे कोई परिवर्तन दृष्टिगत नही हो रहा है, बल्कि दिन-प्रतिदिन उसकी प्रमादादि वृत्तियाँ बढती जा रही है। उसका व्यवहार भी अन्य के साथ अच्छा नही रह पा रहा है। उन सबकी यदि मैं समालोचना करूँगा तो उनके दोषो को प्रकटीकरण कर उनको खिस्ट करने की चेष्टा करूँगा तो उससे उनके जीवन मे कोई भी परिवर्तन नही आ पायेगा, बल्कि वे क्रोधित होकर लडने लगेंगे। जिससे भी कषाय कभी न कभी भडक सकती है और वातावरण दूषित होगा, यदि मुझे उनके जीवन मे परिवर्तन लाना है, और वस्तुत मैं इनका हितचिंतक हूँ तो मुझे चाहिये कि इनके साथ मे रहकर इनके यत्किचित विद्यमान गुणो का कथन करूँ एव कहूँ कि "आप कितने सौभाग्यशाली हैं कि ससार के प्रपचो मे से अपने आपको अलग करके धर्म स्थान मे पहुँचते हैं। जितने समय तक सावद्य योगो का त्याग करके चलते है उतने समय तक निर्जरा एव पुण्य का बध करते हैं। कई पुरुष ऐसे है कि बाजारो मे बैठे हुए व्यर्थ मे गपशप करते रहते है, व्यर्थ ही कर्म बधन का कार्य करते रहते है। क्या ही अच्छा हो कि वे भी धर्म स्थान मे पहुँचकर यथाशक्ति धर्माराधना करें, पर उनमे से कई ऐसा नही कर पाते, किन्तु आप कर रहे हैं, यह हमारे लिए प्रेरणा का प्रसग है।" इस प्रकार उनके छोटे से छोटे गुण का कथन करके फिर उन्हे प्रेम से समझाया जाय कि आप इतना सब कुछ करते है, अत थोडी इस भूल को सुधार ले तो सोना में सुहागा आ जाय। इस प्रकार कहने पर वे श्रावक भी अपनी गलती महसूस करेंगे और उसे निकालने के लिए भी प्रयत्न करेंगे। वह सफल साधना करने वाला व्यक्ति सामायिक, सवरादि क्रियाएँ करता हुआ अपने जीवन मे वास्तविक परिवर्तन लावे। क्योकि ऐसा करने मे उसे कोई रोक तो नही रहा है, उसकी साधना उसके अधीन है। इनके

जा रहा है, उसमे अपने गुणो को अधिक बढाने की स्फुरणा पैदा होती है, और वह उसी कार्य मे सतत प्रयास करने लगता है, एव स्वय के आइने मे स्वयं को देखने लगता है, जिसने स्वय के दुर्गुण उससे प्राय अविदित नही रह पाते और वह उन दुर्गुणो को स्वय देख-देख करके खिन्नता का अनुभव करता है, और अपने आपको गुणमय बनाने का भरसक प्रयत्न करता है। यह सम्यग्दृष्टि का पाँचवां आचार गुणो को बढाने मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

कई सज्जन सामायिक करके बैठते हैं, और अपनी शक्ति तथा अनुभव एव ज्ञान की मात्रा के अनुसार सामायिक की परिपालना करने की भावना रखते हैं। किन्तु वे जितनी मात्रा मे सामायिक का स्वरूप अभिव्यक्त करना चाहिये, उतनी मात्रा मे कर नही पाते। न उतनी मात्रा मे जीवन मे रूपान्तरण ही ला पाते हैं। उनके इस व्यवहार को देख कर कई पुरुष समालोचना करने लगते हैं, उनमे रहने वाले कुछ दोषो का उद्भावन कर यह प्रगट करना चाहते हैं कि ऐसी सामायिकादि मे क्या पडा ? ये सामायिक करने वाले लम्बे समय से सामायिक कर रहे है, किन्तु अपने जीवन को सस्कारित नही कर पाये, इनके जीवन मे कुछ रूपान्तरण नही आया, इसकी अपेक्षा हम अच्छे है, जो सामायिक का प्रदर्शन न रचकर जीवन को ठीक रखते हैं, ऐसा कथन करने वाले पुरुष सम्यक्त्व के आचार को नही जानने वाले होते है, और इस पाँचवे आचार के अभाव मे वे सामायिक करने वालो के दुर्गुणो को ही अभिव्यक्त करते हुए उनको खिन्न करना चाहते है। इससे गुणो की वृद्धि का प्रसग तो नही रहता, किन्तु अवगुणो को ही प्रश्रय मिलता है, अन्य भी कोई पुरुष इस प्रकार के कथन को श्रवण करता है तो वह जो सद्गुण प्राप्ति के लिये सामायिकादि साधना को प्रारम्भ की भावना रखता था, वह भी अपनी भावना को गौण करके वैसे ही निन्दा करने वाले व्यक्ति की मडली मे अपने आपको सलग्न कर लेता है, और जिन पुरुषो ने कुछ साधना प्रारम्भ की हैं, उसमे भी कई कच्चे मस्तिष्क वाले व्यक्ति छोड बैठते है। दुर्गुणो का कथन करने से दुर्गुणमय वातावरण बनता है, जो कि प्राणियो के लिए अकल्याणकारी अहित-स्वरूप होता है, दुर्गुण का कथन करने वाला व्यक्ति सही सम्यक्त्व आचार के बोध के अभाव मे अपनी स्वय की कमजोरी को आच्छादित करने के लिये ऐसा कथन करता है, वह अपनी कमजोरी को सरलतापूर्वक स्वीकार करने मे स्वय के अह को ठेस पहुँचाना समझता है और दुनिया मे जो अपवाद है कि ये सामायिकादि धर्म-ध्यान नही करते, उस अपवाद को मिटाने के लिए धर्म-ध्यान करने वालो पर दोषो का प्रगटीकरण करता है। यह मानव जीवन की बहुत बडी कमजोरी है, जिसको निकालना प्रत्येक व्यक्ति के बूते की बात नही है, कोई विशिष्ट महानुभाव ही स्वय की त्रुटि को स्वीकार करता हुआ, अन्यो के सद्गुणो का कथन कर सद्वायु मण्डल का निर्माण करता हुआ, साधना पथ पर अग्रसर न होने वाले पुरुषो को भी अग्रसर होने की

प्रकारान्तर से प्रेरणा प्रदान करता है। यह कार्य सम्यक्त्व के इस पाँचवे आचार का जीवन मे भलीभाति स्थान देने वाले ही कर सकते है।

चतुर्विध सघ के प्रत्येक सदस्य का परस्पर किसी न किसी रूप मे धार्मिक सम्बन्ध रहा हुआ है, एक-दूसरे का एक-दूसरे पर विचार-विमर्श, देने-लेने का प्रसग भी यदा-कदा आ सकता है। उस समय एक-दूसरे के दिल को गुणो की ओर बढाने के लिए ऐसे शब्दो का प्रयोग करना चाहिये कि जिससे सुनने वाले का हृदय प्रसन्न हो जाय एव वह भी यह महसूस करने लगे कि चतुर्विध सघ के इस सदस्य ने मेरे विद्यमान गुण का कथन करते हुए अपने मधुर वचनो से आगे बढने की प्रेरणा दी। मैं भी अब ऐसा प्रयत्न करूँ कि जो मेरे जीवन मे आलस्य प्रमादादि के कारण दुर्गुण प्रवेश करते है, उन दुर्गुणो को जोवन से दूर करूँ एव ऐसा सत्पुरुषार्थ करूँ कि जिससे मेरे जीवन मे खोजने पर भी दुर्गुण न मिले, और मैं भी अन्य सदस्यो को इसी प्रकार सम्बोधित कर उनके गुणो को आगे बढाऊँ। कदाचित् मुझे लगे कि अमुक सदस्य कई वर्षो से सामायिक, पौषधादि क्रियाएँ कर रहा है, किन्तु उसके जीवन मे कोई परिवर्तन दृष्टिगत नही हो रहा है, बल्कि दिन-प्रतिदिन उसकी प्रमादादि वृत्तियाँ बढती जा रही है। उसका व्यवहार भी अन्य के साथ अच्छा नही रह पा रहा है। उन सबकी यदि मैं समालोचना करूँगा तो उनके दोषों को प्रकटीकरण कर उनको खिस्ट करने की चेष्टा करूँगा तो उससे उनके जीवन मे कोई भी परिवर्तन नही आ पायेगा, बल्कि वे क्रोधित होकर लडने लगेंगे। जिससे भी कषाय कभी न कभी भडक सकती है और वातावरण दूषित होगा, यदि मुझे उनके जीवन मे परिवर्तन लाना है, और वस्तुत मैं इनका हितचिंतक हूँ तो मुझे चाहिये कि इनके साथ मे रहकर इनके यत्किंचित विद्यमान गुणो का कथन करूँ एव कहूँ कि "आप कितने सौभाग्यशाली हैं कि ससार के प्रपचो मे से अपने आपको अलग करके धर्म स्थान मे पहुँचते है। जितने समय तक सावद्य योगो का त्याग करके चलते हैं उतने समय तक निर्जरा एव पुण्य का बध करते है। कई पुरुष ऐसे हैं कि बाजारो में बैठे हुए व्यर्थ मे गपशप करते रहते हैं, व्यर्थ ही कर्म बधन का कार्य करते रहते है। क्या ही अच्छा हो कि वे भी धर्म स्थान मे पहुँचकर यथाशक्ति धर्माराधना करे, पर उनमे से कई ऐसा नही कर पाते, किन्तु आप कर रहे हैं, यह हमारे लिए प्रेरणा का प्रसग है।" इस प्रकार उनके छोटे से छोटे गुण का कथन करके फिर उन्हे प्रेम से समझाया जाय कि आप इतना सब कुछ करते है, अत थोडी इस भूल को सुधार लें तो सोना मे सुहागा आ जाय। इस प्रकार कहने पर वे श्रावक भी अपनी गलती महसूस करेंगे और उसे निकालने के लिए भी प्रयत्न करेंगे। वह सफल साधना करने वाला व्यक्ति सामायिक, सवरादि क्रियाएँ करता हुआ अपने जीवन मे वास्तविक परिवर्तन लावे। क्योकि ऐसा करने मे उसे कोई रोक तो नही रहा है, उसकी साधना उसके अधीन है। इनके

साथ रहकर भी उनके जीवन का प्रमाद आलस्य अपने जीवन मे न आने दे, बनती कोशिश साधना की मर्यादा मे रहते हुए उनकी यथाशक्ति सेवादि परिचर्या करता रहे एव अपने जीवन को आदर्श बनावे। इससे कथन की अपेक्षा सद्-व्यवहार से वे अपने आप प्रभावित हो जायेगे और वे भी अपने जीवन मे परि-वर्तन ले आयगे। परिवर्तन लाये या न लाये ये उनके अधीन की बात है, उसे तो अपनी आत्म-शुद्धि के लिए ही वास्तविक जीवन निर्माण कर लेना चाहिये। जो यह सोचता है कि मैं अपने जीवन मे गुण ही गुण देखना चाहता हूँ तो वह तब ही देख पायेगा जबकि वह सभी के सदगुण देखता रहे और उन सद्गुणो को बढाने के लिये कथन करता रहे। जिससे सम्यक्त्व का यह पाँचवाँ आचार भली-भाति जीवन मे प्रगट हो जाय। सदा गुण का ही चिंतन करने से दुर्गुण स्वत क्षीण होते हुए चले जायेगे एव एक न एक दिन अपने जीवन को वह गुणो की असीम अभिव्यक्ति से भर लेगा। ऐसा करने से सद्गुण का वायुमडल एव क्लेश ककाश समाप्त होगे, राग-द्वेष की वृत्ति मद होगी और मोक्ष के रास्ते पर अग्रसर होने का प्रसग आयेगा। इस प्रकार इस पाँचवे आचार को श्रावक अपने जीवन मे स्थान दे तो अनेक भव्यो का परिवर्तन होते हुए व्यक्ति, परिवार एव समाज मे भव्य वातावरण बन सकेगा।

पूर्व के ऐतिहासिक प्रसगो से ऐसे पुरुषो का वृतान्त भी उपलब्ध हो सकता है। सुना गया है कि बीकानेर मे मालूजी थे, वे शास्त्रो के अच्छे जानकार भी थे एव धार्मिक आदि क्रियाओ मे पीछे रहने वाले नही थे, आर्थिक दृष्टि से भी सम्पन्न एव लब्ध प्रतिष्ठित थे। वे समय पर धर्म स्थान मे पहुँच जाते, वहाँ सामायिक, स्वाध्यायादि करते रहते और छोटे-से-छोटे सन्त या सती व्याख्यान वाचते तो सबसे पहले जाकर बैठते, बड़े ध्यान से सुनते और सुनने के पश्चात् एकान्त मे सन्त या सती के पास बैठकर विनय भाव से नम्रतापूर्वक कहते कि "आपने व्याख्यान अच्छा वाचा, आपका उच्चारण भी अच्छा है, भाषा मे माधुर्य है, वचन मे ओज है, आप इसी तरह से वाचते रहो, आगे तरक्की करो, लोगो के कुछ कहने से अपने मन मे अभिमान मत आने दो, और सदा प्रमाद छोडकर सत्पुरुषार्थ मे लगे रहो।" इस प्रकार उन छोटे सत-सतियोजी के सद्गुणो का प्रकटीकरण करते हुए उनको आगे बढाने मे सहायक बनते। जिन सत सतियो का व्याख्यान कदाचित् ठीक तरह से नही होता, कुछ गल्तियाँ हो जाती तो उनको भी सभा के बीच कुछ भी न कहते हुए एकान्त मे नम्रतापूर्वक निवेदन करते कि आपने बाकी तो सब अच्छा बोला, किन्तु अमुक-अमुक विषय का सही प्रतिपादन नही हो पाया, उस विषय मे जिन शब्दो का आपने प्रयोग किया, वे भी शास्त्र सम्मत मालूम नही हुए, ऐसा करते हुए शास्त्र का पाठ भी बतलाने का प्रयास करते और कहते आप बाकी सब अच्छे बोलते हो, ऐसे ही बोलते रहना चाहिये। उनमे जो विषय शास्त्रीय हो, उस विषय को कहने के पूर्व

शास्त्रीय स्थल अच्छी तरह से देख लेना चाहिये। इस प्रकार करते हुए उनके गुणो का ही मुख्यतया प्रतिपादन करते और उनके उत्साह को वढाते।

व्याख्यान उठने के अनन्तर भी पैसे वालो की तरफ उनकी दृष्टि कम जाती, किन्तु जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर होते, उनके पास जाकर स्वय जय-जिनेन्द्र करते। वे कमजोर भाई नतमस्तक हो जाते, फिर उनके कन्धे पर हाथ रखकर एक तरफ ले जाते, उनके सुख-दु ख की वाते पूछते, वे भी उनकी गुण-ग्राह्यता व हार्दिक प्रेम देखकर दिल खोलकर सभी वाते रख देते। उसमे जो वाते गुणप्रद होती उन वातो को लेकर उनका उत्साह वढाते और आत्मीय भावना से कहते कि मैं भी आपका भाई हूँ। सार्घमिक भाई के नाते आप कभी-कभी तो घर पर पधारा करो। किसी वात का सकोच मत करो, मेरे घर मे भैंसे है, छाछादि पर्याप्त मात्रा मे होती है, कभी वच्चो को छाछादि लाने के लिये भी नही भेजते, ऐसा क्यो ? तव खुलकर वे कह देते—सेठ साहव ! आपकी गुणग्राही दयालु भावना का ज्ञान आज ही हो पाया है, आप ऐसे गुणीजनो के गुण को वढाने वाले है एवं आत्मीय भावना से गरीव-अमीर के भेद को दूर करने का प्रयास करते है, ऐसी भावना सर्वत्र नही पाई जाती। इतने दिनो तक हम यही सोचते थे कि "गरीवी अवस्था मे धन वालो के यहाँ कोई वस्तु लाने के लिये जाना या किसी को भेजना योग्य नही रहता, क्योकि धनवान लोग गरीवो की उपेक्षा करते हैं, उनके विद्यमान गुणो को ध्यान मे नही रखकर कर्मों से दवे हुए उन गरीवो को और दवाने की चेप्टा करते है, जिससे उनके अन्दर जो साहस, धैर्य आदि गुण होते हैं, उनका भी विलुप्त होने का प्रसग आ जाता है एव सहानु-भूतिपूर्वक कोई वस्तु देना तो दूर रहा, वे ऐसे शव्दो का प्रयोग करते हैं जिससे अपने आपको अपमानित होना पडता है। कदाचित् कोई ऐसा नही भी करते हैं, किन्तु माँगी जाने वाली वस्तु सडी-गली वाहर फैंकने योग्य होती है उन्हे देने की कोशिश करते हैं, साथ ही देते हुए अपना अहसास वतलाने की चेप्टा भी करते हैं। कदाचित् साधारण वस्तु छाछ भी वहाँ से लाने का प्रसग आता है तो वह भी भेदभावपूर्वक देते हैं, अन्यो को तो ओरिजनल छाछ देते है, किन्तु गरीवो को उसी ओरिजनल छाछ मे अधिक पानी मिलाकर देते हैं, जिससे आत्मग्लानि होना स्वाभाविक है, अन्तराय कर्म के उदय से हमारे अर्थ की कमी हो सकती है, किन्तु आत्मीय गौरव का अवमूल्यन करना हम नही चाहते है। इसी कोटि मे आपको भी समझ रखा था, इसीलिये आपके यहाँ छाछ के लिये भी वच्चो को नही भेजते, किन्तु आज मेरी भ्रान्ति दूर हुई कि सभी एक जैसे नही होते हैं, आपके उदार एव स्नेही हृदय को आज मैं जान पाया हूँ। अव मुझे आपके यहाँ आना या वच्चो को भेजने मे कोई सकोच नही होगा।"

इस प्रकार वे आर्थिक दृष्टि से कमजोर स्थिति वाले जव अपने वच्चों को छाछ लेने के लिए सेठजी के यहाँ भेजते, तव मालूजी छाछ का वर्तन एवं रुपयों

की थैली अपने पास लेकर बैठते, जब कभी बच्चे आते तो उनके पास मे से बर्तन लेकर किसी बहाने से उनको अन्दर भेज देते, पीछे से मुट्ठी भरकर के रुपये उस बर्तन मे रख देते और ऊपर से छाछ भर देते तथा बर्तन देते हुए कहते कि छाछ का यह बर्तन तुम्हारे माता या पिता को ही देना, अन्य को नही।

छाछ का बर्तन लेकर बच्चे अपने-अपने घर पहुँचते, जब वह छाछ का बर्तन उनके माता-पिता लेकर उसे अन्य बर्तन मे खाली करते, तब रुपये निकलते। उन रुपयो को लेकर वे कभी मालूजी के पास पहुँचते और उनसे कहते कि ये रुपये छाछ मे से निकले है, तो मालूजी कहते कि "बोलो मत। इनको भी काम मे लो। जब आपकी स्थिति ठीक हो जाय तब देने की सोचना, अन्यथा कोई बात नही।" इस प्रकार उनके गुणो की वृद्धि के साथ-साथ आर्थिक स्थिति मे भी सहायक होते। इस प्रकार वे कभी किसी को कभी किसी को आर्थिक सहायता देते हुए उनके गुणादि की अभिवृद्धि करते हुए पाँचवे आचार का समीचीनतया पालन करते थे।

उन लोगो ने पूज्य श्री श्रीलालजी म० सा० के पास जाकर मालूजी के जीवन का वृतान्त सुनाया। जब एक रोज आचार्य श्री श्रीलालजी म० सा० के पास स्वय मालूजी बैठे हुए थे तब प्रसगोपात आचार्य श्री श्रीलालजी म० सा० ने फरमाया कि "मालूजी आप तो मानव जीवन को सार्थक करते हुए अन्य सार्धमिक भाइयो के विद्यमान गुणो की अभिवृद्धि करते हुए उनके जीवन को भी प्रशस्त बना रहे है। इस प्रकार सम्यक्त्व के पाँचवें आचार की मुख्यतया पुष्टि करते हुए अन्य आचारो को भी प्राणवान बना रहे हो। इसी प्रकार सब सम्यग्दृष्टि एव श्रावकवर्ग अपने जीवन को बना ले तो श्रावक समाज की समीचीन व्यवस्था हो सकती है।"

आचार्य देव के मुखारविन्द से इन शब्दो को श्रवण कर मालूजी कहने लगे—"भगवन्! आप ऐसा न फरमाये। मैं क्या कुछ कर सकता हूँ, जिनशासन मे अन्य भी बहुत से गुणीजन विद्यमान हैं। मैं तो यत्किंचित कुछ करने का प्रयत्न करता हूँ। यह कचरा बहुत बढता है, जैसे-जैसे मैं सवितरण करता हूँ वैसे-वैसे बढता जाता है।"

यह श्रावक समाज को लेकर पाँचवे आचार का विषय बतलाया गया है। क्या ही अच्छा हो कि शासन मे रहने वाले सत-सती वर्ग भी सम्यक्त्व के पाँचवे आचार को प्रमुखता देते हुए अन्य सभी आचारो को यथास्थान जीवन मे स्थान दें एव एक-दूसरे सत-सतीवर्ग के साथ विद्यमान गुणो को बढाते हुए सौहार्दपूर्ण सव्यवहार करने लगें तो सुनिश्चित है, श्रमण श्रमणी वर्ग मे भी एक हर्षोल्लास तथा आनन्द की लहर व्याप्त हो सकती है।

मेरे कहने का मतलब यह नही है कि सत-सती वर्ग दुर्गुणी है या महाव्रतो का पालन नही करते। आप देख ही रहे है कि ये सत-सती वर्ग किस प्रकार सुन्दर तरीके से सयम मर्यादाओ का पालन करते हुए स्नेह सौहार्द के साथ रह रहे है, लेकिन कभी किसी मे छद्मस्थावश कोई दोष आ जाय तो प्रत्येक सत सतीवर्ग किसी भी सत सतीवर्ग की कमजोरी शासन नायक के अतिरिक्त किसी के सामने कुछ भी नही कहे एव चतुर्विध सघ के सामने गुण प्रधानता से एक-दूसरे के गुणो को वृद्धिगत करते हुए कहे कि सब मोतियो की माला है, किसमे क्या गुण है ? ये सब प्रभु महावीर के एव रत्नत्रय की अभिवृद्धि करने हेतु क्रान्ति के पगलिये उठाने वाले पूर्वाचार्यो के विविध पुष्पफलो से सुशोभित भव्य एव सुन्दर चतुर्विध सघ की बगिया है। इस बगिया की सुवास कोई भी लेता है तो उसकी आभ्यन्तर एव बाह्य दुर्गुण रूपी दुर्गन्ध समाप्त होती है। आप गुणो से सुरभित अपने जीवन को बनावे जिससे आप परम शाति के मार्ग पर अग्रसर होते हुए वर्तमान मे हो रही मस्तिष्क सम्बन्धी उलझनो को समाप्त कर सकते है। यह उपबृहन का पाँचवाँ आचार सभी के लिये पालन करने योग्य है।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

१७–७–८५
बुधवार

१८ | यात्रा अगम देश की

परम पावन वीतराग दशा प्राप्त, अगाध शक्ति के धारक महाप्रभु का स्मरण करने के अनन्तर उनके द्वारा प्रवाहित जन-कल्याणी अमृतमयी देशना मे अवगाहन कर, चिन्तन-मनन का यह भव्य प्रसग उपस्थित हो गया है।

वीतराग देव के प्रति एक निष्ठा होगी, एकात्मक-भाव होगा, तभी उनकी वाणी का रस प्राप्त हो सकेगा। बिना निष्ठा के उनकी वाणी से आने वाला अनुपम रस प्राप्त नही हो सकेगा और जिनवाणी के रस की प्राप्ति के बिना मन एकाग्र नही हो सकता।

मन की एकाग्रता बनाए रखने के लिए भौतिक आकर्षणो से हटकर शक्ति का नियोजन एक ही दिशा मे करना होगा। आज के व्यक्ति साधना भी करना चाहते है, मन को स्थिर करना चाहते हैं, और भौतिक तत्त्वो की आसक्ति भी छोडना नही चाहते है। एन्द्रियक सुखो को भी भोगना चाहते हैं। ऐसे व्यक्ति कभी भी साधना मे सफल नही हो सकते। जिस प्रकार एक विशाल लम्बी पाइप लाइन है, जिसके माध्यम से दूरस्थ क्षेत्रो मे पर्याप्त पानी पहुचता है, लेकिन उसी पाइप लाइन के मध्य मे स्थान-स्थान पर छेद कर दिये जाय और उसमे पानी बाहर रिसता रहे तो क्या ऐसी दशा मे उस पाइप लाइन से पानी दूरस्थ क्षेत्रो तक पहुच सकेगा ? उत्तर होगा—नही। क्योकि उसकी शक्ति रास्ते मे ही खत्म हो जाती है। ठीक इसी प्रकार आत्मा की शक्ति भी मन रूप पाइप के माध्यम से अगम क्षेत्र की यात्रा करती हुई परमात्मा तक पहुच सकती है। किन्तु उस पाइप लाइन के बीच मे बहुत बडे-बडे छेद कर दिये हैं, जिसके कारण आत्मा की शक्ति परमात्मा तक पहुच ही नही पा रही है। वे छिद्र हैं इन्द्रियो की आसक्ति के। आज का व्यक्ति कभी श्रोतेन्द्रिय के माध्यम से अपनी आत्मिक शक्ति को खर्च कर रहा है तो कभी चक्षुरिन्द्रिय के माध्यम से खर्च कर रहा है। अर्थात् वह अच्छे-अच्छे फिल्मी गाने सुन रहा है। अपनी प्रशसा किये जाने से खुश हो रहा है। निदा किये जाने पर रुष्ट हो रहा है। कान के माध्यम से मन के द्वारा आत्मा मे अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्प पैदा कर उसकी शक्ति को खर्च कर रहा है। इसी प्रकार नेत्र से वह अनेक भले-बुरे चित्र देख रहा है। अच्छे चित्र पर मोहित हो रहा है तो कभी विकारी भावनाओ से अपनी आत्मा को दूषित बना रहा है तो कभी बुरे चित्र को देखकर घृणा

कर रहा है। जैसा कि कभी सुनने को मिलता है कि किसी ने प्रात किसी व्यक्ति का मुँह देख लिया जो कि उसे पसद नही है तो वह यह कहता हुआ पाया जाता है कि सुबह-सुबह किस कलमुहे का मुंह देख लिया। पर यह नही सोचता कि किसी का भी मुख देखने से होता क्या है ? होगा वही जो स्वय के कर्मो मे रहा है।

इस प्रकार कान, नेत्र की ही बात नही है, अपितु अन्य नाक, मुख, स्पर्श आदि इन्द्रियो के माध्यम से भी वह अपने मन की पाइप लाइन मे जाने वाली आत्मिक शक्ति को रास्ते मे ही खर्च कर डालता है, इस प्रकार का व्यक्ति कभी भी अगम देश की यात्रा कर परमात्म रूप को प्राप्त नही कर सकता।

परम शाति एव परम सुख को पाने के लिए अगम देश की यात्रा को एक निष्ठा के साथ करनी होगी। इन्द्रियो के माध्यम से हो रही आत्म शक्ति के व्यय को रोकना होगा।

आप देखते है कि आज के युग मे वैज्ञानिक लोग जब छोटी-मोटी वस्तु का आविष्कार करते है, तब भी मन को किस प्रकार उसमे लगा रखते है। सब कुछ भूल जाते हैं उस समय। खाने-पीने का भी ध्यान उन्हे नही रहता है। बस रात-दिन खोज करने मे ही लगे रहते है। तब कही जाकर वे किसी वस्तु का आविष्कार कर पाते है। तो बधुओ ! आपको हमको तो इन भौतिक वस्तुओ का आविष्कार न कर इन सबकी आविष्कारक मौलिक शक्ति आत्मा को जागृत करना है। अब आप विचार कर सकते है कि उसे जागृत करने के लिए कितनी अवधानता—एकाग्रता की अपेक्षा होती है।

बडे-बडे योगी-महायोगी, एकनिष्ठ साधना करने के लिए सब कुछ छोड-छाडकर जगलो मे, गुफाओ मे चले जाते है। और साधना करने मे लग जाते है। तथापि कई साधक साधना से विचलित भी हो जाते है। अपने शास्त्रो मे भी चरम शरीर रहनेमि का उदाहरण आता है कि जो गुफा मे एक निष्ठ हो साधना कर रहे थे। किन्तु राजमति साध्वी का निमित्त पाकर साधना से विचलित हो गये थे। पर राजमति के सयोग से वे पुन स्थिर भी हो गये थे। साधना में अस्थिरता के कई उदाहरण वैदिक सस्कृति मे भी मिलते है। जैसे कि कोई सन्यासी साधना कर रहा था किन्तु उसके सामने स्वर्गलोक की उर्वशी—मेनका आकर नृत्य करने लगी तो जो सन्यासी अगम लोक की यात्रा पर था, वह रास्ते मे ही विचलित हो गया।

इन सब उदाहरणो को मैं इसलिए बतला रहा हूँ कि आप चाहे कि हम भौतिक वस्तुओ मे आसक्त रहते हुए ही साधना मे सफल हो जाय तो वह केवल कल्पना ही होगी। साधना मे सफल होने के लिए इन्द्रियो के माध्यम से जो बाहर

१८ | यात्रा अगम देश की

परम पावन वीतराग दशा प्राप्त, अगाध शक्ति के धारक महाप्रभु का स्मरण करने के अनन्तर उनके द्वारा प्रवाहित जन-कल्याणी अमृतमयी देशना मे अवगाहन कर, चिन्तन-मनन का यह भव्य प्रसग उपस्थित हो गया है ।

वीतराग देव के प्रति एक निष्ठा होगी, एकात्मक-भाव होगा, तभी उनकी वाणी का रस प्राप्त हो सकेगा । बिना निष्ठा के उनकी वाणी से आने वाला अनुपम रस प्राप्त नही हो सकेगा और जिनवाणी के रस की प्राप्ति के बिना मन एकाग्र नही हो सकता ।

मन की एकाग्रता बनाए रखने के लिए भौतिक आकर्षणो से हटकर शक्ति का नियोजन एक ही दिशा मे करना होगा । आज के व्यक्ति साधना भी करना चाहते है, मन को स्थिर करना चाहते है, और भौतिक तत्त्वो की आसक्ति भी छोडना नही चाहते है । एन्द्रियक सुखो को भी भोगना चाहते है । ऐसे व्यक्ति कभी भी साधना मे सफल नही हो सकते । जिस प्रकार एक विशाल लम्बी पाइप लाइन है, जिसके माध्यम से दूरस्थ क्षेत्रो मे पर्याप्त पानी पहुचता है, लेकिन उसी पाइप लाइन के मध्य मे स्थान-स्थान पर छेद कर दिये जाय और उसमे पानी बाहर रिसता रहे तो क्या ऐसी दशा मे उस पाइप लाइन से पानी दूरस्थ क्षेत्रो तक पहुच सकेगा ? उत्तर होगा—नही । क्योकि उसकी शक्ति रास्ते मे ही खत्म हो जाती है । ठीक इसी प्रकार आत्मा की शक्ति भी मन रूप पाइप के माध्यम से अगम क्षेत्र की यात्रा करती हुई परमात्मा तक पहुच सकती है । किन्तु उस पाइप लाइन के बीच मे बहुत बडे-बडे छेद कर दिये है, जिसके कारण आत्मा की शक्ति परमात्मा तक पहुच ही नही पा रही है । वे छिद्र है इन्द्रियो की आसक्ति के । आज का व्यक्ति कभी श्रोतेन्द्रिय के माध्यम से अपनी आत्मिक शक्ति को खर्च कर रहा है तो कभी चक्षुरिन्द्रिय के माध्यम से खर्च कर रहा है । अर्थात् वह अच्छे-अच्छे फिल्मी गाने सुन रहा है । अपनी प्रशसा किये जाने से खुश हो रहा है । निंदा किये जाने पर रुष्ट हो रहा है । कान के माध्यम से मन के द्वारा आत्मा मे अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्प पैदा कर उसकी शक्ति को खर्च कर रहा है । इसी प्रकार नेत्र से वह अनेक भले-बुरे चित्र देख रहा है । अच्छे चित्र पर मोहित हो रहा है तो कभी विकारी भावनाओ से अपनी आत्मा को दूषित बना रहा है तो कभी बुरे चित्र को देखकर घृणा

कर रहा है। जैसा कि कभी सुनने को मिलता है कि किसी ने प्रात किसी व्यक्ति का मुँह देख लिया जो कि उसे पसद नही है तो वह यह कहता हुआ पाया जाता है कि सुबह-सुबह किस कलमुहे का मुह देख लिया। पर यह नही सोचता कि किसी का भी मुख देखने से होता क्या है ? होगा वही जो स्वय के कर्मो मे रहा है।

इस प्रकार कान, नेत्र की ही बात नही है, अपितु अन्य नाक, मुख, स्पर्श आदि इन्द्रियो के माध्यम से भी वह अपने मन की पाइप लाइन मे जाने वाली आत्मिक शक्ति को रास्ते मे ही खर्च कर डालता है, इस प्रकार का व्यक्ति कभी भी अगम देश की यात्रा कर परमात्म रूप को प्राप्त नही कर सकता।

परम शाति एव परम सुख को पाने के लिए अगम देश की यात्रा को एक निष्ठा के साथ करनी होगी। इन्द्रियो के माध्यम से हो रही आत्म शक्ति के व्यय को रोकना होगा।

आप देखते है कि आज के युग मे वैज्ञानिक लोग जब छोटी-मोटी वस्तु का आविष्कार करते हैं, तब भी मन को किस प्रकार उसमे लगा रखते है। सब कुछ भूल जाते है उस समय। खाने-पीने का भी ध्यान उन्हे नही रहता है। बस रात-दिन खोज करने मे ही लगे रहते है। तब कही जाकर वे किसी वस्तु का आविष्कार कर पाते है। तो बधुओ ! आपको हमको तो इन भौतिक वस्तुओ का आविष्कार न कर इन सबकी आविष्कारक मौलिक शक्ति आत्मा को जागृत करना है। अब आप विचार कर सकते हैं कि उसे जागृत करने के लिए कितनी अवधानता—एकाग्रता की अपेक्षा होती है।

बडे-बडे योगी-महायोगी, एकनिष्ठ साधना करने के लिए सब कुछ छोड-छाडकर जगलो मे, गुफाओ मे चले जाते हैं। और साधना करने मे लग जाते हैं। तथापि कई साधक साधना से विचलित भी हो जाते हैं। अपने शास्त्रो मे भी चरम शरीर रहनेमि का उदाहरण आता है कि जो गुफा मे एक निष्ठ हो साधना कर रहे थे। किन्तु राजमति साध्वी का निमित्त पाकर साधना से विचलित हो गये थे। पर राजमति के सयोग से वे पुन स्थिर भी हो गये थे। साधना मे अस्थिरता के कई उदाहरण वैदिक सस्कृति मे भी मिलते है। जैसे कि कोई सन्यासी साधना कर रहा था किन्तु उसके सामने स्वर्गलोक की उर्वशी—मेनका आकर नृत्य करने लगी तो जो सन्यासी अगम लोक की यात्रा पर था, वह रास्ते मे ही विचलित हो गया।

इन सब उदाहरणो को मैं इसलिए बतला रहा हूँ कि आप चाहे कि हम भौतिक वस्तुओ मे आसक्त रहते हुए ही साधना मे सफल हो जाय तो वह केवल कल्पना ही होगी। साधना मे सफल होने के लिए इन्द्रियो के माध्यम से जो बाहर

मे शक्ति खर्च हो रही है उसे रोककर मन के पाइप लाइन मे प्रवाहित आत्मा की शक्ति को सीधी परमात्म-अभिव्यक्ति तक पहुँचाना होगा ।

इन्द्रियो के ही नही मन के भी अनेक छिद्र है । जिनसे विचार सरणि विखरती है, उन्हे भी प्रयत्न विशेष से वन्द करना होगा ।

उन सव छिद्रो को वन्द कर आगे वढने के लिए सवसे पहले मिथ्यात्व को हटाकर सम्यक्त्व की अभिव्यक्ति आवश्यक है । कुछ दिनो से आपके समक्ष सम्यक्त्व को लेकर विचार-विमर्श चल रहा है । सम्यक्त्व वह अमूल्य तत्त्व है जो आत्मा के पराङ्मुखी प्रचार को स्वोन्मुखी बनाता है और जव तक प्रवाह स्वोन्मुखी नही बनता है तब तक किया गया सारा का सारा पुरुषार्थ व्यर्थ चला जाता है । सम्यक्त्व शाति से जीने का सबसे अनिवार्य अग है । सम्यक्त्व मे रहने वाली आत्मा ज्ञान पूर्वक चलती हुई भयकर से भयकर दु ख की स्थिति मे सुखी रह सकती है ।

सम्यक्त्व को जीवन मे सही ढग से अपनाने के लिए महाप्रभु के आठ आचारो का वहुत ही सुन्दर ढग से विवेचन किया है । जिन आचारो के माध्यम से शाति का अभिप्सु—इच्छुक अपने आन्तरिक एव व्यावहारिक जीवन को निर्मल बना सकता है ।

सम्यक्त्व की प्राप्ति पर ही वीतराग देव की एक निष्ठ साधना सध सकती है - कृष्ण वासुदेव एव श्रेणिक सम्राट इस बात के आदर्श है जिन्होने सम्यक्त्व की विशिष्ट आराधना करके जीवन को सही ढग से जीया था । श्रेणिक सम्राट जब वीतराग देव के एक निष्ठ उपासक नही बने थे, मिथ्यात्वावस्था मे रहकर हिंसादि प्रवृत्तियो मे अनुरक्त थे, तब नरकायु का बधन कर चुके थे । किन्तु जब उन्हे महाप्रभु का सान्निध्य प्राप्त हुआ और उनसे धर्म का सही स्वरूप समझा । तब से उनके जीवन मे एकदम रूपान्तरण आ गया और उनकी वीतराग देव के प्रति इतनी गहरी निष्ठा बनी कि परिणामस्वरूप वे आगामी चौबीसी के पहले तीर्थंकर होगे । इसी प्रकार कृष्ण वासुदेव भी आगामी चौबीसी के बारहवें तीर्थंकर होगे ।

जीवन का सही रूप अभिव्यक्त करने के लिए सम्यक्त्व की नितान्त आवश्यकता है । उववूह—उपबृहन का वर्णन आपके सामने आ ही रहा है । अर्थात् दूसरे के गुणो का उद्भावन करना । दूसरो के गुणो को बतलाने से स्वय के गुणो का विकास होता है । दूसरो के अवगुणो को प्रकट किया जायेगा तो स्वय के अवगुणो की वृद्धि होगी । क्योकि दूसरे के ऊपर कीचड उछालने से पहले स्वय के हाथ कीचड से भरते हैं ।

आज के लोगो की जो सबसे बडी समस्या स्वय के जीवन को जीने की हो रही है। जिस समस्या का कइयो के पास समाधान न होने से वे अपघात तक कर बैठे हैं। मानसिक कुठाओ से ग्रस्त हो जाते है, तो कई अनेक व्याधियो से पीडित हो जाते है। इन सवका एक ही कारण है कि उन्हे जीना नही आया है।

मैं आप सबसे यही कहूँगा कि आप प्रभु द्वारा प्रतिपादित जीने की कला सीखें। उसे सीखकर तदनुसार चलेगे तो अगम देश की सही यात्रा होगी और अवश्य ही आपके जीवन मे शाति का उपवन महक उठेगा…… ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

१८–७–८५
गुरुवार

□ □ □

१६ स्थिरीकरण

(सम्यक्त्व का छट्ठा आचार)

आज के मानव-समुदाय के जीवन का जो व्यवहार चल रहा है, उसमे बहुत से मनुष्य जीवन की समस्याओ मे उलझे हुए है। जीवन को किस ओर ले जाना, क्या कार्य करना, किस प्रकार जीवन का व्यवहार रखना, ये सब बाते मनुष्य के जीवन मे, मानवीय मस्तिष्क मे हलचल मचा रही है, इस सभी बातो की उलझन को मिटाने के लिए वीतराग सिद्धान्त है।

वीतराग देव ने जो सिद्धान्त व समाधान दिये है उन सिद्धान्तो को जीवन मे रमाकर प्रत्येक मनुष्य यदि अपने जीवन की समस्याओ का हल करे तो उसकी सारी समस्याएँ हल हो सकती है। वह अतीव शाति का अनुभव कर सकता है। जो अशाति की अनुभूतियाँ वह कर रहा है, उसका निर्माता वह स्वय है। वह यदि स्वय के निजी स्वरूप को सम्यक् रूप से समझ लेता है तो उसको ज्ञात हो सकता है कि दुनिया मे सुख-दु ख उत्पन्न करने वाला कोई दूसरा नही है। वह स्वय ही स्वय के सुख-दु ख का कर्त्ता है। दूसरे तो निमित्त मात्र है। जैसी कि प्रभु की वाणी है—

> अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
> अप्पा मित्तममित्त च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ।।

यह अडोल आस्था जिनके जीवन मे है, सम्यक्त्व की भूमिका पर आरूढ होकर वीतराग देव की वाणी मे अवगाहन करते हुए सम्यक्त्व के आचारो का सम्यक्रूपेण अपने जीवन मे निर्वाह कर सकते है। सम्यक्त्व का छठवाँ आचार है स्थिरीकरण ।

अपने जीवन मे यह समीक्षण करना है कि हम वीतराग वाणी मे स्थिर है या अस्थिर ? यदि हम सुदृढ रूप से स्थिर है तो हम अन्य को भी स्थिर कर सकते है। जो स्वय को सम्भालने मे सक्षम है, वही दूसरो को सम्भाल सकता है। यह ससार वैतरणी नदी है और इसका तट सम्यक्त्व की आचार भूमि है। जो मनुष्य स्वय तट पर सुरक्षित अवस्था मे खडा रहने मे समर्थ बन चुका है, वही, अन्य जो प्राणी ससार रूपी वैतरणी नदी मे गिर रहे है, बह रहे है, उन्हे भी गिरने से, बहने से बचा सकता है।

ससार से तिरने हेतु जो आगे बढने का पुरुषार्थ करते हैं, उनको जो बाधक बन कर रोकते है, सासारिक, भौतिक पदार्थों का प्रलोभन देते है, उनकी धर्म के प्रति निष्ठा को हटाते है, वे मिथ्यादृष्टि है और महा मोहनीय कर्म को बाध कर अनन्त ससार को बढा लेते है। वे स्वय भी डूब रहे है, और दूसरो को भी डुबोने का प्रयास करते हुए अनन्त ससार बढा रहे हैं।

प्रभु महावीर का अमृतोपम उपदेश है कि—

"परिजूरइ ते सरीरय, केसा पडुरया हवति ते।
से सव्व बले य हायई, समय गोयम मा पमायए ॥

अर्थात्—शरीर जीर्ण हो रहा है, केश सफेद हो रहे है, सभी इन्द्रियो का बल घट रहा है, अतएव हे गौतम! समय-मात्र का भी प्रमाद मत करो। कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक कर्म करने की शक्ति है, तभी तक धर्म भी हो सकता है। कहावत भी है कि—

"जे कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा।"

अत: सम्यक् दृष्टि का यह कर्त्तव्य है कि जो ससार मे गिर रहे है, ससार बढा रहे है, उन्हे समझावे और सासारिक कुकृत्यो से उदासीन बनावे, उन्हे धर्म के सम्मुख करे, धर्म मे स्थिर करे। ऐसा करता हुआ वह महान् निर्जरा की स्थिति मे आगे बढ सकता है, दूसरो को तिराता हुआ स्वय तिर जाता है। पर खेद होता है कि आज के अधिकाश मनुष्य जिन परिस्थितियो मे बह रहे है, उससे वे इतने बोझिल बने हुए है कि स्वय के निजी स्वरूप को पहचानने की किञ्चित् मात्र फुर्सत भी उन्हे नही है। धर्म के प्रति रुचि न होने से वे स्वय धर्म नही कर पाते है और अन्य करने वालो के लिये भी समझ न होने से येन-केन-प्रकारेण बाधक बन जाते हैं।

धर्म पर स्थिरता-अस्थिरता एव श्रावक सम्यग्दृष्टि के कर्त्तव्यो को समझने के लिए जमाली का उदाहरण दे देता हूँ। प्रभु महावीर की अमृतोपम वाणी जब जमाली के मन मे प्रविष्ट हुई, तब उसने विचार किया कि प्रभु महावीर मेरे अनन्त उपकारी है। जब प्रियदर्शना के साथ मेरा सम्बन्ध जोडा, तब मैंने यही विचार किया कि प्रभु महावीर की असीम कृपा से मुझे इस प्रियदर्शना का बहुत अच्छा सयोग मिला, पर आज मुझे वास्तविक लक्ष्मी के साथ सयोग कराने के लिए प्रभु महावीर ने कैसा अच्छा मुझे प्रतिबोध दिया और ऐसा प्रतिबोध पा वह जमाली जामाता अपने पाँच सौ साथियो के साथ दीक्षित हो गया। पर दीक्षित होने के बाद भगवान् से अलग विचरण की अनुमति माँगी, तब प्रभु मौन रहे, दो-तीन बार पूछने पर भी जवाब नही दिया तो उस जमाली अणगार ने

१६ स्थिरीकरण

(सम्यक्त्व का छट्ठा आचार)

आज के मानव-समुदाय के जीवन का जो व्यवहार चल रहा है, उसमे बहुत से मनुष्य जीवन की समस्याओ मे उलझे हुए है । जीवन को किस ओर ले जाना, क्या कार्य करना, किस प्रकार जीवन का व्यवहार रखना, ये सब बाते मनुष्य के जीवन मे, मानवीय मस्तिष्क मे हलचल मचा रही है, इस सभी बातो की उलझन को मिटाने के लिए वीतराग सिद्धान्त है ।

वीतराग देव ने जो सिद्धान्त व समाधान दिये है उन सिद्धान्तो को जीवन मे रमाकर प्रत्येक मनुष्य यदि अपने जीवन की समस्याओ का हल करे तो उसकी सारी समस्याएँ हल हो सकती है । वह अतीव शाति का अनुभव कर सकता है । जो अशाति की अनुभूतियाँ वह कर रहा है, उसका निर्माता वह स्वय है । वह यदि स्वय के निजी स्वरूप को सम्यक् रूप से समझ लेता है तो उसको ज्ञात हो सकता है कि दुनिया मे सुख-दु ख उत्पन्न करने वाला कोई दूसरा नही है । वह स्वय ही स्वय के सुख-दु ख का कर्त्ता है । दूसरे तो निमित्त मात्र है । जैसी कि प्रभु की वाणी है—

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्त च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ।।

यह अडोल आस्था जिनके जीवन मे है, सम्यक्त्व की भूमिका पर आरूढ होकर वीतराग देव की वाणी मे अवगाहन करते हुए सम्यक्त्व के आचारो का सम्यक्रूपेण अपने जीवन मे निर्वाह कर सकते है । सम्यक्त्व का छठवाँ आचार है स्थिरीकरण ।

अपने जीवन मे यह समीक्षण करना है कि हम वीतराग वाणी मे स्थिर है या अस्थिर ? यदि हम सुदृढ रूप से स्थिर है तो हम अन्य को भी स्थिर कर सकते है । जो स्वय को सम्भालने मे सक्षम है, वही दूसरो को सम्भाल सकता है । यह ससार वैतरणी नदी है और इसका तट सम्यक्त्व की आचार भूमि है । जो मनुष्य स्वय तट पर सुरक्षित अवस्था मे खडा रहने मे समर्थ बन चुका है, वही, अन्य जो प्राणी ससार रूपी वैतरणी नदी मे गिर रहे है, बह रहे है, उन्हे भी गिरने से, बहने से बचा सकता है ।

ससार से तिरने हेतु जो आगे बढने का पुरुषार्थ करते हैं, उनको जो बाधक बन कर रोकते है, सासारिक, भौतिक पदार्थो का प्रलोभन देते हैं, उनकी धर्म के प्रति निष्ठा को हटाते हैं, वे मिथ्यादृष्टि है और महा मोहनीय कर्म को बाध कर अनन्त ससार को बढा लेते है। वे स्वय भी डूब रहे हैं, और दूसरो को भी डुबोने का प्रयास करते हुए अनन्त ससार बढा रहे है।

प्रभु महावीर का अमृतोपम उपदेश है कि—

"परिजूरइ ते सरीरय, केसा पडुरया हवति ते।
से सव्व बले य हायई, समय गोयम मा पमायए ॥

अर्थात्—शरीर जीर्ण हो रहा है, केश सफेद हो रहे है, सभी इन्द्रियो का बल घट रहा है, अतएव हे गौतम ! समय-मात्र का भी प्रमाद मत करो। कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक कर्म करने की शक्ति है, तभी तक धर्म भी हो सकता है। कहावत भी है कि—

"जे कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा।"

अत सम्यक् दृष्टि का यह कर्त्तव्य है कि जो ससार मे गिर रहे हैं, ससार बढा रहे है, उन्हे समझावे और सासारिक कुकृत्यो से उदासीन बनावे, उन्हे धर्म के सम्मुख करें, धर्म मे स्थिर करे। ऐसा करता हुआ वह महान् निर्जरा की स्थिति मे आगे बढ सकता है, दूसरो को तिराता हुआ स्वयं तिर जाता है। पर खेद होता है कि आज के अधिकाश मनुष्य जिन परिस्थितियो मे बह रहे हैं, उससे वे इतने बोझिल बने हुए है कि स्वय के निजी स्वरूप को पहचानने की किञ्चित् मात्र फुर्सत भी उन्हे नही है। धर्म के प्रति रुचि न होने से वे स्वय धर्म नही कर पाते है और अन्य करने वालो के लिये भी समझ न होने से येन-केन-प्रकारेण बाधक बन जाते है।

धर्म पर स्थिरता-अस्थिरता एव श्रावक सम्यग्दृष्टि के कर्त्तव्यो को समझने के लिए जमाली का उदाहरण दे देता हूँ। प्रभु महावीर की अमृतोपम वाणी जब जमाली के मन मे प्रविष्ट हुई, तब उसने विचार किया कि प्रभु महावीर मेरे अनन्त उपकारी है। जब प्रियदर्शना के साथ मेरा सम्बन्ध जोडा, तब मैंने यही विचार किया कि प्रभु महावीर की असीम कृपा से मुझे इस प्रियदर्शना का बहुत अच्छा सयोग मिला, पर आज मुझे वास्तविक लक्ष्मी के साथ सयोग कराने के लिए प्रभु महावीर ने कैसा अच्छा मुझे प्रतिबोध दिया और ऐसा प्रतिबोध पा वह जमाली जामाता अपने पाँच सौ साथियो के साथ दीक्षित हो गया। पर दीक्षित होने के बाद भगवान् से अलग विचरण की अनुमति माँगी, तब प्रभु मौन रहे, दो-तीन बार पूछने पर भी जबाब नही दिया तो उस जमाली अणगार ने

बिना भगवान् की आज्ञा के अलग विचरण करना प्रारम्भ कर दिया। विचरण करते हुए एक स्थान पर अशाता वेदनीय कर्म के उदय से शरीर मे तीव्र व्याधि हो गई। अत सोने के लिये शिष्यो को शय्या बिछाने का निर्देश दिया। शय्या बिछाने मे देरी होने के कारण इस निमित्त मात्र से उनकी विचारधारा वीतराग वाणी के प्रतिकूल बनी और वह मिथ्या दृष्टि हो गया।

घटना इस प्रकार घटी कि जब शिष्यो से पूछा गया कि मेरी शय्या बिछ गई ? तब शिष्यो ने कहा कि हाँ ! बिछ गयी है। किन्तु जब जमाली ने देखा कि शय्या अभी तक बिछी नही है, फिर भी ये कैसे कह रहे है कि "शय्या बिछ गई।" ये भगवान् के सिद्धान्त का अनुसरण करके कह रहे है। पर आज मै यह प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि भगवान् का यह सिद्धान्त सर्वथा गलत है। जो कार्य पूरा नही हुआ है, उसे पूरा हुआ कैसे कह रहे है। इस गलत मान्यता का आग्रह सिर्फ जमाली ने ही नही पकडकर रखा वरन् उसके साथ वाले साथी और महासती प्रियदर्शना भी उस गलत मान्यता के आग्रह को लेकर विचरने लगी।

एक बार का प्रसग है। प्रियदर्शना विचरती हुई ढक श्रावक के यहाँ पर पहुँची। वह जाति से कुम्भकार था, पर प्रभु महावीर का पक्का श्रावक था। जिनवाणी का रसिक, प्रभु महावीर के सिद्धान्तो का जानकार, सुज्ञ और गम्भीर था। उसने जब यह जाना कि, जमाली प्रभु महावीर के सिद्धान्तो से विरुद्ध प्ररूपणा करके विचर रहा है तथा यह प्रियदर्शना भी मूढ मति को प्राप्त हो जमाली के द्वारा प्ररूपित गलत सिद्धान्त को स्वीकार कर प्ररूपणा कर रही है कि—"जो कार्य अभी तक पूरा नही हुआ, उसे पूरा हो गया—ऐसा नही कहना।" कुम्भकार ढक श्रावक अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से एक उपाय ढूँढ निकालता है और वीतराग वचन से अस्थिर बनी साध्वी प्रियदर्शना को पुन॰ वीतराग वचनो पर स्थिर कर देता है, जैसा कि उसने यह प्रयोगात्मक कार्य किया। बर्तन पकाने के स्थल से अगारा लेकर उस साध्वी की चादर के एक किनारे पर डाल दिया। तब वह साध्वी बोल उठी—"अरे ! यह क्या किया ? मेरी चादर जला दी।" तब कुम्भकार ने कहा कि तुम्हारी चादर अभी पूरी कहाँ जली है ? सिर्फ एक किनारा ही तो जला है। तुम्हारा तो सिद्धान्त है कि जब तक कोई वस्तु पूरी नही जल जाय, तब तक उसे जला हुआ नही कहना। तीर ठीक निशाने पर लगा। वह हलुकर्मी आत्मा साध्वी प्रियदर्शना तुरन्त समझ गयी कि प्रभु महावीर का जो सिद्धान्त है—"चलमाणे चलिए इत्यादि" वह सही है और मैं जो वर्तमान मे प्ररूपणा करने के लिये तत्पर हुई हूँ, वह सर्वथा गलत है। तब साध्वी प्रियदर्शना अपने साध्वी परिवार के साथ महाप्रभु के सान्निध्य मे आलोचना-प्रतिक्रमण कर पुन सम्मिलित हो गई। महाप्रभु का सत्य सिद्धान्त समझाया गया तो कितने ही सन्त, जमाली अणगार को छोडकर महाप्रभु के सान्निध्य मे चले आए। किन्तु जमाली अपने मिथ्या-सिद्धान्त पर डटा रहा और अन्त तक मिथ्यादृष्टि ही बना रहा।

इस प्रकार अन्य भी उदाहरण है धर्म से, सयम से अस्थिर होते हुए को पुन. धर्म मे, सयम मे स्थिर करने विषयक । जैसे—जव अरिष्टनेमि भगवान् के छोटे भाई रथनेमि साधना मे स्थित, गुफा मे ध्यान कर रहे थे और इधर साध्वी राजमति प्रभु अरिष्टनेमि के दर्शन करने के लिये उसी रास्ते से साध्वी-समुदाय के साथ जा रही थी, पर बीच मे भयकर आँधी-वरसात के कारण सभी साध्वियाँ इधर-उधर हो गयी । सयोग की बात है, राजमति उस स्थिति मे अपने वस्त्र सुखाने की दृष्टि से उसी गुफा मे चली गयी जिसमे रथनेमि थे । वाहर प्रकाश से आने के कारण उसे मालूम न हुआ कि भीतर मे कोई है । अत वह तो अपने वस्त्र यतनापूर्वक सुखाने की दृष्टि से शरीर से पृथक् कर रही थी और उधर उन रथनेमि अणगार की दृष्टि ज्यो ही महासती पर पडी, वे मोहग्रस्त वन उसके सौन्दर्य को निहारने लगे, वैषयिक आमन्त्रण देने लगे । पर वह सयमनिष्ठ साध्वी राजमति सिहनी की तरह उसे ललकार कर कहने लगी—

"धिरत्थु तेऽजसं कामी, जो त जीवियकारणा ।
वन्त इच्छसि आवेउ, सेय ते मरण भवे ।।"

"हे अपयशकामी रथनेमि ! तुझे धिक्कार है, जो तू असयम रूप जीवन के लिये वमन किये हुए को पुन ग्रहण करना चाहता है । इस असयम रूप जीवन से तो तेरा असयम को प्राप्त होने से पूर्व ही मर जाना ही श्रेष्ठ होगा ।" इस प्रकार उस सयमव्रती साध्वी के उपर्युक्त सुभाषित वचनो को श्रवण कर वे चरम शरीरी रथनेमि अणगार सयम मे उसी प्रकार स्थित हो गये, जिस प्रकार अकुश से हाथी वश मे हो जाता है । कहने का तात्पर्य यह है कि एकान्त स्थान मे साधना करते हुए बडे-बडे योगी भी कदाचित् मोहनीय कर्म के उदय हो जाने से धर्म से, सयम से विचलित हो जाएँ तो सम्यग्दृष्टि आत्मा का कर्त्तव्य है कि वे उन्हे पुन धर्म का दिव्य स्वरूप समझाकर धर्म मे, सयम मे स्थिर करें । अपने सम्यक्त्व के छट्ठे आचार का परिपालन करें ।

प्रभु महावीर ने कहा है—यह अब्रह्मचर्य जीवन को गहरे पतन मे ले जाने वाला है । चरम शरीरी रथनेमि भी, जब ब्रह्मचर्य की स्थिति से विचलित हो गये, तो सामान्य साधको का तो कहना ही क्या ? प्रभु महावीर ने तो इतनी तक मर्यादा वनाई है कि ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए जहाँ नारी आदि का आवास हो, वहाँ साधु को और जहाँ पुरुषो का आवास हो, वहाँ साध्वी को नही रहना तथा विकाल मे साध्वी के स्थान पर पुरुष और साधु के स्थान पर स्त्री नही आवे । जिस प्रकार साधु-साध्वी के लिए महाप्रभु ने सकेत किया, उसी प्रकार ब्रह्मचारी श्रावक-श्राविकाओ को भी इस विषय मे विवेक रखने की आवश्यकता रहती है । जब श्रावक-श्राविका पौषध करते है, सामायिक करते है, सवर आदि धर्म क्रिया करते है, तब ब्रह्मचर्य का अनुपालन किया जाता है, उस

समय उन्हे भी साधुओ के नियमो की तरह सूर्योदय होने के पहले व सूर्योदय के पश्चात् श्राविकाओ के धर्मस्थान मे श्रावको को और श्रावको के धर्म स्थान मे श्राविकाओ का रहना प्रतिक्रमण, धर्मचर्चा, प्रार्थना आदि करना मर्यादा से प्रतिकूल है। कभी-कभी इन प्रक्रियाओ से श्रावक-श्राविकाओ की धर्म के प्रति स्थिरता तो दूर रही, धर्म के प्रति अस्थिरता आ जाती है। लोगो को उनके चारित्र पर शका हो जाती है। कई स्थलो पर श्रावक-श्राविकाओ के विकाल मे धर्म थानक पर रहने से अस्थिरता के दुष्परिणाम आये है। अत इस विषय मे श्रावक-श्राविकाओ को भी विशेष ध्यान रखना चाहिये। तीर्थेश मल्लिनाथ भगवान्, जो स्त्रीलिंगी थे, वे भी रात्रि मे आभ्यन्तर परिषद् के साथ रहते थे, जबकि वे कल्पातीत थे, उनका कुछ भी बिगडने वाला नही था। फिर भी उन्होने लोक व्यवहार का ख्याल रखा।

इस प्रकार स्थिरीकरण आचार की पुष्टि करने वाले अन्य भी बहुत से उदाहरण हैं। उन सबसे यही शिक्षा ग्रहण करे कि आप भी अपनी निजी अनन्त शक्तियो का, अपने आत्मबल का विकास करे। जीवन मे सम्यग्दृष्टिपने के बल-बूते से, आत्मीय गुणो मे रमण करते हुए, निष्ठापूर्वक अपने व्रतो का परिपालन करते हुए स्वरूप का विकास करे और फिर अन्य जो धर्म से विमुख बने हुए हैं, उन्हे भी धर्म मे स्थिर कर कर्म निर्जरा का पथ प्रशस्त करे।

मोटा उपाश्रय, १९–७–८५
घाटकोपर, बम्बई शुक्रवार

२० स्वधर्मी वात्सल्य

(सम्यक्त्व का सप्तम आचार)

वीतराग दशा को प्राप्त तीर्थंकर देवो के परम पावन उपदेश का निष्कर्ष जीवन मे प्राप्त करने हेतु जिन वीतराग देव की स्तुतिपरक गाथाओ का उच्चारण किया है, उन्हे चिन्तन मे लेने की नितान्त आवश्यकता है।

आज मनुष्यो की जो दयनीय दशा वन रही है, वे किनकी शरण मे जाएँ ? दु.ख से निवृत्ति लेने हेतु, जो परिपूर्ण सुखी है, उनकी शरण लेने से ही वे सुखी बन सकते है। पर दु खी व्यक्ति के पास जाने से वे अपने दु खो से निवृत्ति नही प्राप्त कर सकते है। जैसे—एक भिखमगा दूसरे भिखमगे से भूख-निवारण करने हेतु कहे, तो क्या वह भिखारी उस भिखमगे की भूख मिटा सकता है ? उत्तर होगा—नही। ठीक इसी प्रकार ससार मे सभी व्यक्ति दु खी है। उनके पास जाने से दु ख की निवृत्ति नही हो सकती है। इसी प्रकार भौतिक पदार्थो की याचना करने वाले, भौतिक पदार्थो मे आसक्त ससारियो को भिखमगे की उपमा दे दी जाए, तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। क्योकि प्राय सभी ससारी, तृष्णा के आवेग मे बहते हुए भिखमगे के रूपक को ही धारण किये हुए है। यही नही देव, जो अमित ऐश्वर्य के स्वामी है, उनकी भी तृष्णा का अन्त नही है। वडी विचारणीय स्थिति है कि निजी स्वरूप को छोडकर जीव पर-स्वरूप मे रमण कर रहा है, उनमे ममत्व रख रहा है। ऐसी तृष्णा वाले चाहे लखपति, करोडपति भी क्यो न हो, दूसरो के दु ख दूर करने मे समर्थ नही हो सकते है। पर जो पर-पदार्थो के व्यामोह मे न पडकर साधना के बलबूते पर आध्यात्मिक सम्पत्ति के स्वामी वन चुके हैं, उनका सान्निध्य, उनकी शरण ग्रहण करने से ही दु खो से छुटकारा पाया जा सकता है। शातिनाथ भगवान् जब चक्रवर्ती थे, तब उनके पास छ खण्ड की ऋद्धि थी, फिर भी आध्यात्मिक सुख की अपेक्षा रखने वाले, आध्यात्मिक लक्ष्मी को प्राप्त करने हेतु छ ही खण्डो का राज्य उन्होने छोड दिया। उन्होने सोचा कि आत्मिक ऋद्धि अभी तक मुझे मिली नही है। यदि इस भौतिक ऋद्धि मे ही खुशी मनाता रहा तो मैं भिखारी ही रहूँगा। अत. छ खण्ड का राज्य छोडकर वे अणगार वन गये। जैसा कि 'उत्तराध्ययन' सूत्र मे यह वतलाया गया है कि—

"चइत्ता भारह वास, चक्कवट्टी महड्ढिओ।
'सन्ती' सन्तिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरम् ॥"

अर्थात्—शाति देने वाले शातिनाथ नामक महासमृद्धिशाली चक्रवर्ती इस लोक मे भरत क्षेत्र के, छ खड के राज्य को छोडकर अर्थात् अतीव रमणीय कामभोगो का परित्याग करके प्रधान गति मोक्ष को प्राप्त हुए। जिनके ज्ञान मे, जिनके हृदय मे ससार के प्रत्येक प्राणी के प्रति अपूर्व वात्सल्य-भाव था, ऐसे भाव के स्वामी, सभी के कल्याण का पथ प्रशस्त करने वाले वीतराग देव बन गये। यदि हमारी आत्मा कर्म प्रवाह से ससार रूपी वैतरणी मे बहती हुई वीत-राग भगवान् के वचनो पर दृढ आस्थावान् हो जाय, जो कि सम्यक्त्व का लक्षण है, उस लक्षण पर इतनी दृढीभूत हो जाय कि सम्यक्त्व के सभी आचारो का भलीभाँति अपने जीवन मे निर्वाह करती हुई एक दिन उस आध्यात्मिक शक्ति रूप श्री का वरण कर सके और उस प्रधान गति मोक्ष को प्राप्त कर सके।

आचरण करने योग्य आठ सम्यक्त्व के आचारो को भव्यात्माओ को आन्तरिक जीवन मे ओत-प्रोत कर लेना चाहिये। सातवे स्थान पर जिस आचार का वर्णन आया है, वह है वात्सल्य। माता का पुत्र के प्रति अद्वितीय वात्सल्य रहता है, वह पुत्र के लिए सब कुछ सहन कर लेती है, अनन्य भाव से उसका परिपालन करती है। यह सारी चर्या उस माँ की वात्सल्य भावना का प्रतीक है। इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी पर सम्यक् दृष्टि का नि स्वार्थ वात्सल्य बन जाय तो प्रत्येक आत्मा के साथ अनन्य भाव पैदा किये जा सकते है। प्रत्येक के साथ आत्मवत् व्यवहार की स्थिति प्राप्त होती है। रूपक है—बिल्ली स्वय की सन्तान को जन्म देने के बाद उन्हे अपने दाँतो के बीच मे दबाकर सात घरो तक फिराती है, तब उन बच्चो की आँखे खुलती है—ऐसा कहा जाता है। पर जब वह सात घरो तक बच्चे को दातो के बीच मे दबाकर घूमती है, तब अपने बच्चे को जरा भी आँच नही आने देती। लेकिन यदि किसी पक्षी का बच्चा उसके मुख मे आ जाय तो वह उसको खा जाती है। यह तो अज्ञानवश पशु जाति की मोह अवस्था है, पर जो मानव चिन्तनशील है, वह अपने वात्सल्य भाव का विस्तार करना सीखे। स्व-पर का भेद भूलकर सबके साथ आत्मवत् व्यवहार करे। बच्चा जन्म लेता है और माता के स्तन मे से दूध एकाएक आने लगता है, यह बच्चे के प्रति माता की वात्सल्यता का ही परिणाम है। जब भगवान् महावीर को चण्ड-कौशिक ने डक मारा, तो भगवान् के पैर के अगुष्ठ से दूधवत् धारा छूट पडी। यह उनकी प्रत्येक आत्मा के प्रति अपूर्व आत्मीयता, अद्वितीय वात्सल्यता का प्रतीक थी। यह माता के जीवन से भी बढकर भगवान् के जीवन का वात्सल्य भाव था। डक मारने वाले के प्रति भी वह नि स्वार्थ वात्सल्य भावना दूध की धवलता के रूप मे निर्झरित हुई। प्रतिबोधित कर दिया उस चडकौशिक को। पर आज कहाँ है नि स्वार्थ वात्सल्य भावना ? कहाँ है वह सम्यग्दृष्टि का आचार ? कहाँ है साधर्मी के प्रति सहयोग की भावना ?

एक समय का प्रसग है। दुष्काल का समय था। तब कई सम्पन्न स्थिति वालो ने अन्न खरीद लिया और अपने परिवार वालो का पोषण करने लगे। पर

कई गरीब लोग क्षुधा से तडफडाते हुए मरने लगे। ऐसी परिस्थिति मे "बहुरत्ना वसुन्धरा" इस कहावत को चरितार्थ करने वाला एक सुदत्त नामक सम्यग्दृष्टि श्रावक प्रभु महावीर का अनुयायी विचार करने लगा कि मेरी यह सम्पत्ति यदि मैं साधर्मी भाइयो की मदद मे नियोजित कर दूँ, तो इससे वढकर इस नश्वर सम्पत्ति का और क्या सदुपयोग होगा। ऐसा विचार कर खुले दिल से वह साधर्मी भाइयो के लिये हर तरह से साधन जुटाने लगा, वडी हवेली वना कर सब अनाथो का, गरीबो का पोषण करने लगा, वडी विनम्रता और आत्मीय भावना के साथ। तीन साल तक बराबर उनका परिपालन कर उन लोगो का भी धर्म के प्रति अहोभाव उत्पन्न किया।

समय परिवर्तनशील है। समय ने पलटा खाया, दुष्काल जब सुकाल मे परिवर्तित हुआ तो सभी दुष्काल पीडित भाई-बहिन अपनी विनम्रता, कृतज्ञता जतलाते हुए बडे विनम्र भावो के साथ उन सेठ सा को कहने लगे कि— "महानुभाव! आपने हमारी बहुत सुरक्षा की। आपने वात्सल्य भाव का वहुत सुन्दर अनूठा रूपक जगत् के सामने रखा। हम आपके बहुत आभारी है। अब हमे छुट्टी दीजिये। हम अपने घर जाना चाहते है।" तब सेठ कहने लगा कि यह तो आपने मुझे स्वर्णिम चान्स दिया। मेरा अहोभाग्य है कि मुझे आपकी सेवा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। आपने मेरे पर बहुत उपकार किया।

ख्याल करिये कि उपकार किया सेठ ने उन लोगो पर, पर कह क्या रहा है कि "आपने मुझ पर बहुत बडा उपकार किया।" कितनी विनम्रता थी, सेठ के जीवन मे। सेठ ने यथार्थ मे प्रभु महावीर के सिद्धान्तो का रसपान किया था। सम्यक् दृष्टि के आचारो का भली-भाति ज्ञान कर दृढता से उसका पालन किया था।

आज के युग मे तो देखने को मिलता है कि प्रथम तो कोई ऐसा स्वधर्मी वात्सल्य का व्यवहार ही नही करते है। यदि कही करते भी हैं तो उसके पीछे नाम कमाने की, यश फैलाने की भावना अधिक काम करती है। काम कम, नाम अधिक होना चाहिये। इस बात को मानने वाले व्यक्ति कभी भी स्वधर्मी वत्सलता का पूरा-पूरा लाभ नही प्राप्त कर सकते। वह सेठ, ऐसे लोगो मे से नही था। वह दिये गये दान को भूमि मे गये बीज की तरह गुप्त और सुरक्षित रखने वाला था।

जब सुकाल हुआ और लोग जाने की तैयारी करने लगे तो सेठ ने उन्हे एक निवेदन किया कि एक प्रतिभोज और देना चाहता हूँ। कृपा कर मुझे सतुष्ट कीजिये। लोगो ने बात मान ली। प्रीतिभोज की जोरदार तैयारियाँ की जाने लगी। सभी को वह अपने हाथ से परोसकर जिमाने लगे। देखिये स्वधर्मी सेवा!

मुझे इसी बीच स्वर्गीय गुरुदेव के समय का प्रसग याद आ रहा है।

गुरुदेव का जब बगडी चातुर्मास था, तब चातुर्मास कराने वाले सेठ लक्ष्मीचदजी घाडीवाल स्वय स्वधर्मी भाइयो की सराहनीय सेवा करते थे । भोजनादि सभी कार्यो मे स्वय भाग लेते थे । एक बार का प्रसग है—कुछ भाई भोजन मे अपनी खुराक का ध्यान नही रख पाये, जिससे उन्हे हैजे की शिकायत हो गयी । चेप की बीमारी होने से उनकी सेवा करने मे नौकर-चाकर भी सकोच करने लगे । तो सेठ-सेठानी ने स्वय ने उनको सम्भाला, उनकी सभी प्रकार से सेवा की और उन्हे स्वस्थ कर विदा किया । यह है साधर्मी के प्रति नि स्वार्थ वात्सल्य भाव ।

हाँ ! तो उस सेठ की बात कह रहा था मैं, जो सेठजी सभी को परोस रहे थे, उस समय उनके लडके ने कहा—"पिताजी ! मैं भी परोसूँगा ।" तो उसे सहर्ष अनुमति दी गयी । वह लडका जब परोस रहा था तो एक बहिन ने, जिसे किसी चीज की जरूरत थी, उसे माँगने हेतु उसने उस लडके के वस्त्र को पकड कर कहा—"यहाँ भी परोसते जाइये ।" पर वह नादान, वात्सल्य भावना से अनभिज्ञ, बोल उठा कि तीन-तीन साल हो गये, यहाँ टुकडे खाते-खाते फिर भी अभी तक तृप्ति नही हुई क्या ? पल्ला पकडते नही छूटा ? बन्धुओ ! ये कठोर शब्द, उस बहिन को क्या ! जीमने वाले सभी भाई-बहिनो को इतनी ठेस पहुँचाने वाले हुए कि सबके सब एक साथ उठ गये, विना पूरा भोजन किये ही रवाना होने लगे । जब सेठजी ने यह दृश्य देखा तो विचार करने लगे कि तीन साल तक जो वात्सल्य भावना का स्रोत मैंने वहाया, उस पर लडके ने थोडे से कठोर शब्द कहकर पानी फेर दिया । सेठजी उन लोगो को हाथ जोडकर, पैरो मे गिरकर माफी माँगने लगे । कहने लगे कि लडके ने नादानी कर दी, आप उसे क्षमा कर दे । सभी सेठ की अपूर्व वात्सल्यता, विनम्रता से गद्गद् हो उठे । सेठ का पूरा सत्कार ग्रहण करके, सेठ को अन्तर आशीष देते हुए विदा हुए । अस्तु !

वात्सल्य भावना तो अन्तर की होती है । प्रभु महावीर ने कहा कि—"हे आत्मन् ! तू सम्पूर्ण विश्व के साथ वात्सल्य भाव रख । यदि इतना न हो सके तो कम से कम परिवार वालो के प्रति और साधर्मी भाइयो के प्रति तो अपनी वात्सल्य भावना का विस्तार होना चाहिये । वात्सल्य भाव करने वालो को सबक लेना है कि समाज मे रहते हुए कभी कुछ बोलने अथवा सुनने का प्रसग आ जाए तो भी अपने क्षमा गुण का विकास कर, आत्मवत् व्यवहार का ख्याल कर अपने वात्सल्य का निर्झर बहाते रहे । अपने जीवन मे समागत समूल दु खो से निवृत्ति पाने हेतु वीतराग वाणी मे अवगाहन करते हुए सम्यक्त्व के सातवे आचार को जीवन मे स्थान देंगे तो जीवन अतीव मगलमय बन जाएगा । इन्ही शुभ भावो के साथ ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, वम्वई

२०–७–८५
शनिवार

२१ भौतिकता से हटो—आत्मलक्ष्यी बनो

वीतराग देव का परम पावन स्वरूप, जन-जन की अन्तर चेतना को उल्लसित करनेवाला है। उस उपदिष्ट मार्ग का, उनकी देशना का चिन्तन-मनन करने का यह भव्य अवसर है।

मनुष्य जन्म, आर्यभूमि, सत-समागम और वीतराग-वाणी का श्रवण जिसे उपलब्ध होता है, उसका मनुष्य जीवन अनत पुण्यवानी के उदय का शुभ फल एव अतराय कर्म का क्षयोपशम समझना चाहिये।

वर्तमान की पर्याय वर्तमानस्वरूप ही रहती है। वैसी पर्याय भूत और भविष्य की भी होती है। पर्याय का तात्पर्य परिवर्तन से है। यह तीनो काल मे होता रहता है। सम्यग्दृष्टि भाव यह विवेक देता है कि जिस समय जो पर्याय वरत (चल) रही है, उस समय उसी पर्याय का कथन करो। भविष्य मे आप आत्मा की शुद्ध पर्याय को प्राप्त कर सकते हैं, पर वर्तमान मे उस पर्याय का एकान्त आरोप करना सम्यक् नही है। जैसे—वर्तमान मे मनुष्य चोले को लेकर चल रहा है और उसे सिद्ध कहे तो अनुचित है। नय की दृष्टि को लेकर हम कह सकते हैं कि हमारी आत्मा सिद्ध जैसी है, पर वर्तमान मे उसे सिद्ध नही कहा जा सकता। यदि वर्तमान की पर्याय को, हम भविष्य मे प्राप्त होने वाली पर्याय मान लेते हैं, तो इसमे मिथ्यात्व की स्थिति बन सकती है। जैसे—आप वर्तमान मे भोजन कर रहे है और यह कह दें कि मैं व्यापार कर रहा हूँ तो आपका यह कथन गलत है भले ही आप भविष्य मे व्यापार करेंगे ठीक वैसे ही वर्तमान मे जिस पर्याय मे आप चल रहे है और अतीत या भविष्य की किसी पर्याय का आरोप वर्तमान मे करते हैं तो यह अनुचित होगा।

सयमी जीवन भी एक पर्याय है। वह पर्याय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सीमा मे सार्वभौम होती है। उस पर्याय को किसी भी प्रान्त या काल की परिधि मे ही मान लेना गलत होगा। प्रभु महावीर की सयमीय पर्याय सार्वभौमता से प्रारभ हुई और जब घनघाती कर्म क्षय कर उनकी पर्याय केवलज्ञानादि की पर्याय मे परिणित हुई तब वे महाप्रभु सारी सीमाओ को पार कर असीम बन गये थे। असीम बनने के बाद उन्होने जन कल्याण के लिये जो आध्यात्मिक उपदेश दिया, वह उपदेश प्राणीमात्र के लिये था। जैसा कि प्रश्नव्याकरण सूत्र

मे कहा गया है—"सव्व जग जीव रक्खण-दयट्ठयाए भगवया पावयण सुकहिय" जगत् के सभी जीवो की रक्षा के लिये भगवान् ने प्रवचन दिया था। वह प्रवचन आज सुनने, पढने को मिलता है तो हम कितने सद्भाग्यशाली है। पर अवधानतापूर्वक श्रवण से प्रत्येक तत्त्व समझा जा सकता है।

प्रभु महावीर ने यह नही कहा था कि मै क्षत्रिय जाति का हूँ, अत मेरा उपदेश सिर्फ क्षत्रिय जाति के लिये ही है। उन्होने तो फरमाया कि मेरा उपदेश कल्याण चाहने वाले प्राणिमात्र के लिये है। आप उसे सुने क्योकि सुनकर ही अपना हित-अहित पहचाना जा सकता है। जैसे—

"सोच्चा जाणइ कल्लाण, सोच्चा जाणइ पावग ।
उभयऽपि जाणइ सोच्चा, ज सेय त समायरे ।।" (दशवै०सू०अ० ४)

अर्थात् कल्याण मार्ग भी सुनकर ही जाना जा सकना है और अकल्याण मार्ग भी सुनकर ही जाना जा सकता है। दोनो सुनकर जाने जा सकते है। अत जो तुम्हारे लिये श्रेयस्कर है उसका तुम आचरण करो।

आज हम देख रहे है कि श्रवण की स्थिति तो बहुत अधिक व्यापक है, पर वह श्रवण कर्णेन्द्रिय तक ही सीमित है या मन तक भी पहुँचता है। मन तक पहुँचता है तो क्या कभी चितन को स्थिति भी बनती है कि मैं जो सुन रहा हूँ, उसके अनुसार अपना जीवन भी बनाऊँ। जीवन के क्षेत्र मे श्रवण तब तक उपयोगी नही होता है, जब तक वह श्रवण विचार क्षेत्र मे पहुँचकर निर्णायक स्थिति मे परिणित न बने। गहन चिन्तन की भूमिका तैयार न करे।

आज के युग मे विचार की स्थिति से हटकर निर्विचार बनने की स्थिति भी बन रही है पर निर्विचार है क्या ? क्या पशुवत् विचारो से रहित बन जाएँ ? उत्तर होगा—नही। मनुष्य चितनशील प्राणी है। विचार करनेवाली बुद्धि कुछ और होती है। विचार जब चलता है, तब समुद्र मे उठनेवाली तरगो की भाँति अनेक विचार तरगे उठती है। उस समय उन सारी विचार तरगो से ऊपर उठकर, जो विचार उपादेय है, उन्हे स्वीकार करने की निर्णायक बुद्धि ही यथार्थ मे हेय विचारो से निर्विचार स्थिति को प्राप्त करा सकती है। विचार जड के नही होते, विचार चैतन्य के ही होते है। जो सुन ही नही सकता, वह विचार क्या करेगा ? सुनने की क्षमता चैतन्य मे ही है। तात्पर्य यह है कि सुनना, विचार करना, सम्यक् निर्णायक बुद्धि का विकास करना और निर्विचार यानि मोहजनित सकल्प-विकल्पो से मुक्ति पाकर विचारो पर नियन्त्रण पाना यह सब चैतन्य का ही कार्य है। विचार की तरगे मन की भूमिका पर उठ रही है, पर उसे तरगित करनेवाली आत्मा ही है। वही आत्मा उन विचारो पर नियत्रण कर निर्विचार वन सकती है, अर्थात् निर्विचार स्थिति मे अपनी पहुँच बना सकती है।

जो लोग यह मानते है कि विचारो को समाप्त कर दो तो उनका यह मानना युक्तिसगत नही है। विचारो को समाप्त नही किया जा सकता बल्कि रूपान्तरित किया जा सकता है। **प्रवाह को रोका नहीं जा सकता, मोड़ा जा सकता है।** एक रूपक है समझने के लिये—जिस व्यक्ति को कम दिखाई देता है, वह डॉक्टर के पास जाकर अपनी आँखे दिखाता है और रोशनी बढाने की फरियाद करता है, तब डॉक्टर उसे नम्बर वाला चश्मा देता है, जिसे लगाकर वह व्यक्ति स्पष्ट देख सकता है। पर, यदि उस नम्बर वाले चश्मे पर लाल रग का लेप करदे तो उसे प्रत्येक चीज लाल-लाल दिखाई देगी। यह विकृति रग के कारण ही उस चश्मे मे आती है। नम्बर मे कोई विकृति नही होती। यदि वह नम्बर मे कोई विकृति मानता है तो उसका चिन्तन उपयुक्त नही कहा जा सकता। इसी प्रकार आत्मा के विचार नम्बर हैं और इन विचारो पर अह का, ममत्व का, राग-द्वेष का रग चढ जाता है। तब वह सही स्वरूप को नही जान पाती है। उसी रग के कारण आज मानव विचारो की गलत उलझनो मे पडा प्रान्तीयता के घर्मों मे, गलत साम्प्रदायिक व्यामोह मे, आत्मीयता रहितपना आदि को प्राप्त हो रहा है। जो अह, राग, द्वेष, ममत्व के रग को हटाकर समताभाव मे उपस्थित होकर उन शुद्ध विचारो के नम्बरो से आत्म भाव की समीक्षा करता है, वह इतना समर्थ बन सकता है कि लोक-अलोक, सब को जान सकता है। स्वय का समुज्ज्वल स्वरूप प्राप्त कर सकता है।

आज वैज्ञानिक युग मे जो बडे-बडे आश्चर्यकारी आविष्कार हुए है, उन आविष्कारो ने बहुत ही प्रज्ञाशील जनो को भी विचारो की स्थिति से गुमराह बनाया है। वे यही मानने लगे है कि भौतिक विज्ञान ही सब कुछ है। पर यह सर्वमान्य है कि इन अनेक आविष्कारो को करनेवाली हमारी अनत-अनत शक्ति सम्पन्न आत्मा ही है। आज सवालो का जवाब देनेवाले जिस कम्प्यूटर का आविष्कार हुआ है, वह जो उत्तर देता है तो वह उत्तर देने वाला कौन है? क्या वह कम्प्यूटर जानता है कि वह कौन है? उसमे तो जो भर दिया जाता है, वही सामने आता है। जो उसमे नही है, वह उससे पूछे तो ज्ञात होगा? कम्प्यूटर से पूछे—तुम कौन हो? क्या वह उत्तर दे सकता है कि मै अमुक हूँ? वह तो जड है, उसका निर्माता है तो आत्मा ही। आचाराग सूत्र का दिव्य सूत्र है—"जे आया से विन्नाया" जो आत्मा है वही विज्ञाता है। आत्मा की अनत शक्ति से ही ये आविष्कार हो रहे है। भीतर का सचालक कौन है? यह भौतिक औजारो से नही जाना जा सकता। इस विज्ञान स्वरूपी आत्मा को जानने का प्रसग जब तक नही बनेगा तब तक कितना ही विकास हो जाय, वह अधूरा है। अगर अन्तर चेतना का विकास हो जाय तो अन्य सभी तरह का विकास होते कोई देर न लगेगी। दृश्य जगत् मे दिखने वाले सभी पदार्थ भौतिक हैं। और उनका निर्माणकर्ता अभौतिक आत्मा ही है।

आज भौतिक विज्ञानवादी भी आध्यात्मिक स्थिति मे आगे बढ रहे है। वर्त्तमान मे आप जिन भौतिक पर्यायो को जान रहे है। यदि उनकी भीतरी स्थिति का ज्ञान नही है तो आप किञ्चित् मात्र भी अध्यात्म विकास की स्थिति मे आगे नही बढ पाएगे। भौतिकता से आज क्या कुछ दयनीय स्थिति इस मानव की बनो हुई है। भौतिकता के रग मे रगा मानव ईर्ष्या, राग-द्वेष की द्वन्द्वात्मक स्थिति मे झूलता हुआ बहिर्दर्शी बना अपने जीवन को किस भाँति जी रहा है—इस विषयक एक घटना का उल्लेख कर देता हूँ। कुछ वर्ष पूर्व की बात है, क्षेत्रपुर गाँव मे एक वेणी माधवसिंह नामक जागीरदार था। वह एक बार बीमार हो गया। बीमार भी ऐसा कि पलग से उठने की स्थिति भी नही थी। डॉक्टर, वैद्य, हकीम आदि ने अलग-अलग जाँच की और एक ही निर्णय दिया कि इनको हृदय की बीमारी है। इनके सामने कुछ भी चिन्ता की स्थिति उपस्थित मत करना। इनको ज्यादा बोलाना मत। एक बार उनका भानेज सदाशिव अपने मामा की शाता पूछने के लिये अपने मित्र के साथ उनके घर गया और पूछा कि तबियत कैसी क्या है ? पर उसके मामाजी ने उसे कुछ भी प्रत्युत्तर नही दिया। उसने जब मामाजी की चिकित्सा के विषय मे खोज की तो ज्ञात हुआ कि चिकित्सा तो बराबर चल रही है फिर भी उनकी व्याधि समाप्त नही हुई है। इसमे जरूर कोई आन्तरिक कारण होना चाहिये। बात-चीत के दौरान उसे ज्ञात हुआ कि मामाजी को चन्द्रनाथ ठाकुर से ईर्ष्या है। उसके विकास को सुनकर ही यह इतने दु खी हुए है। जिससे इन्हे हार्ट-अटैक हो गया है। अत इन्हे स्वस्थ करने के लिये मनोविज्ञान से काम लेना होगा। वह भानजा मनोविज्ञान का भी जानकार था। वह मामा का मनोरजन करने लगा, जिससे उनको कुछ प्रसन्नता की अनुभूति हुई। तब मामा सदाशिव से चन्द्रनाथ जागीर-दार के विषय मे पूछताछ करने लगा, कहने लगा कि तुम्हारे प्रान्त मे खेती बहुत हुई है। तुमने तो चन्द्रनाथ ठाकुर के विषय मे कुछ भी समाचार नही बताये। तब भानजा कहने लगा कि—मामाजी ! चन्द्रनाथ ठाकुर के खेती तो बहुत हुई पर टिड्डी लग गयी जिससे फसल नष्ट हो गयी। जो दूसरो को ठगता है वह भी ठगा जाता है। प्रकृति के घर मे देर है, पर अधेर नही है। यह श्रवणकर मामा अतीव प्रसन्न हुआ। पुन भानजे से कहने लगा कि सुना है उसकी लडकी का सबध किसी धनिक परिवार मे हुआ है। तब पुन भानजे ने प्रत्युत्तर दिया कि "नही-नही ! यह किसने कहा ? ज्योतिषी ने तो साफ मना कर दिया कि चन्द्रनाथ की लडकी का लगन होगा ही नही।" यह श्रवण कर तो उसे इतनी अधिक खुशी हुई कि वह एकदम उठकर बैठ गया तथा अपने आपमे एकदम स्वस्थता का अनुभव करने लगा तथा भानजे को धन्यवाद देता हुआ विदा किया और यह भी कहा कि भाई ! तुम्हे कभी समय मिले तो आया करना और उस जागीरदार चन्द्रनाथ का हाल सुनाया करना।

लौटते वक्त रास्ते मे सदाशिव को उसका मित्र कहने लगा कि तुमने

इतना झूठ क्यो कहा ? तब वह कहने लगा कि यदि मैं अपने मामा को ये झूठी बातें नही कहता, तो आज ही उसका हार्ट-फेल हो जाता। मेरी दवाई मेरे मामा को लागू हो गई। वे चन्द्रनाथ के समाचार श्रवण कर एकदम स्वस्थ हो गये। चन्द्रनाथ की तरक्की के समाचार सुनकर ही मामा को हार्ट को बीमारी हुई थी। बन्धुओ ! यह क्या है ? ये ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि परिणतियाँ ही हृदय-रोग आदि-आदि कैसे-कैसे भयकर रोग खडे कर देती है। स्वस्थ को अस्वस्थ बना देती है। विषमता का यह भयानक रूप व्यक्ति के अन्तरग और बाहरी दोनो ही प्रकार के जीवन को क्षत-विक्षत कर देता है।

जो व्यक्ति राग-द्वेष को मद करता हुआ नैतिकता के साथ निर्लोभ-वृत्ति से चलता है, उसके पास भौतिक सम्पत्ति चाहे कितनी भी कम क्यो न हो, वह चैन से रह सकता है। इस प्रसग पर एक और छोटा-सा उदाहरण सुना देता हूँ। राजा भोज सादी पोषाक मे जगल मे घूम रहा था, तब उसने एक मस्त लकडहारे को देखा और विचार किया कि यह इतना गरीब है पर है कितना मस्त हाल ! पूछा उससे—"तुम कौन हो ?" पर वह बिना उत्तर दिये आगे बढ गया। यह देख राजा भोज ने सोचा कि यह कितना निर्भीक है। पुन राजा ने आगे बढकर पूछा कि तुम कौन हो ? तब उत्तर मिला कि मैं राजा भोज हूँ। राजा को बडा आश्चर्य हुआ। भोज उसके साथ-साथ चलने लगा। वह जहाँ बैठा, राजा भोज भी वहाँ बैठ गया और पूछने लगा कि क्या राजा भोज भी लकडी का भार ढोता है ? क्या तुम सचमुच राजा भोज हो ? तब वह कहने लगा—"अरे ! राजा भोज जितना राजसी आनद का उपभोग नही करता, उतना मै करता हूँ। मुझे नित्य प्रतिदिन लकडी बेचने मे छ: टका मिलता है, जिसमे से एक टका बोरा को देता हूँ, एक टका आसामी को, एक टका मत्री को, एक स्वय के लिये, एक अतिथि सत्कार मे तथा एक भण्डार मे डालता हूँ।" राजा ने पूछा—"तुम्हारा बोरा कौन है ?" तो वह बोला—"मेरे माता-पिता हैं क्योकि उन्होने मुझे पाल पोसकर बडा किया और इस योग्य बनाया। इसलिये वे अब मेरे लेनदार हैं। आसामी मेरे पुत्र-पुत्रियाँ है क्योकि वे मेरे से ऋण ले रहे है। मत्री मेरी धर्मपत्नी है क्योकि वह मुझे नेक सलाह देती है। इसलिये मैं माता-पिता को एक टका, पुत्र-पुत्रियो के लिये एक टका, पत्नी के लिये एक टका, शेष तीन मे से एक भण्डार मे, एक अतिथि के लिये व एक मेरे लिये खर्च करता हूँ। मैं अपनी इसी आमदनी मे इतना मस्त हूँ जितनी मस्ती विशाल समृद्धि सम्पन्न राजा भोज के भी नही है।"

भोज सोचने लगा कि ऐसी सुन्दर व्यवस्था तो मेरे पास भी नही है। कठियारे की मस्ती मे मूल कारण सतोष और आत्मनिर्भरता थी। जैसी कि सम्राट मे भी नही पायी गयी। यह तो भौतिक तत्त्वो मे सतोष का परिणाम

था कि उसे इतना सुख मिला। किन्तु जब व्यक्ति भौतिक आसक्ति से परे हट-कर अध्यात्म-साधना करता हुआ परिपूर्णत आत्मलक्ष्यी बनता है, तब विचार कीजिये उसको कितने सुख की अनुभूति होती होगी। उसकी कल्पना भौतिक तत्त्वो से नही की जा सकती। अत स्पष्ट है कि भौतिकता मे सुख नही है। सुख का मूल स्रोत आध्यात्मिकता है। जो भी व्यक्ति आध्यात्मिकता मे प्रवेश कर परिपूर्णत दृष्टि को समीक्षणमय बनाता हुआ आत्मलक्ष्यी बनता है, वह निश्चय ही परम सुख को प्राप्त करता है।

मोटा उपाश्रय   २१–७–८५
घाटकोपर, बम्बई   रविवार

• ○ •

२२ प्रभावना

(सम्यक्त्व का आठवाँ आचार)

सारे जगत् मे सार रूप, अनन्य स्वरूप जिसके समान दूसरा कोई रूप नही हो सकता है, ऐसे वीतराग प्रभु का सस्मरण करने से वीतराग भाव भीतर मे जागृत होते हैं। जिन-जिन तत्त्वो के गुण समक्ष आते है, उन-उन गुणो को भीतर मे प्रकट करने की लालसा जागृत होती है। जब तक राग रहता है, तब तक बहुत सारे दुर्गुण, बहुत सारी कर्म बन्धन की स्थिति आत्मा के साथ सबधित रहती है। जब राग आत्मा से दूर हो जाता है, तब आत्मा पूर्ण स्वतन्त्र होकर वीतराग दशा मे रमण करती है। वीतराग दशा मे प्रभु ने जो उपदेश दिया है, उस उपदेश को प्रवचन रूप मे सबोधित किया जाता है।

वचन और प्रवचन मे अतर है। वचन तो सभी बोलते है, अपने भावो की अभिव्यक्ति करने के लिये। वचनो का तो कोई विशेष महत्त्व नही है। वह एकमात्र वादित्र की भाँति ध्वनि वाचक है। जैसे वादित्र बजता है, तो लोग सामान्य रूप से सुन लेते है। पर जब घडी का घटा लगता है, तब मनुष्य कितने उपयोगपूर्वक व सावधानी से सुनते हैं। आप निर्णय करिये कि महत्त्व वादित्र की आवाज का है या घडी के टणकारे का। इसी प्रकार वचन तो वादित्र की तरह है और प्रवचन घडी के टणकारे की भाँति।

एक न्यायाधीश जो परिवार मे रहकर नन्हे-नन्हे बच्चो के साथ बात करता है, तब जो वचन वह बोलता है उसका इतना महत्त्व नही होता है। लेकिन वही न्यायाधीश जब न्याय की कुर्सी पर बैठकर न्याय देता है, तब लोग कितने ध्यानपूर्वक सुनते हैं। उन वचनो का कितना अधिक महत्त्व होता है। इसी प्रकार भगवान् के वचन जो प्रवचन रूप है वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। प्रभु के प्रवचन का जितना-जितना रहस्य सामने आता है, उतनी-उतनी मुमुक्षु आत्माएँ आह्लादित होकर उसमे अवगाहन करने को उत्सुक रहती है। वर्तमान मे अनेक पुस्तके निकल रही है, पर उनका उतना महत्त्व नही है, जितना ससार मे घट रही घटनाओ का है, जिन्हे देखकर, सुनकर या पढकर उसका असर उन देखने, सुनने व पढने वालो के जीवन मे पडता है। उसका महत्त्व विशेष है। वीतराग प्रवचन का महत्त्व, कथन की अपेक्षा अनुभव से अधिक किया व जाना जा सकता है।

यह चैतन्य आत्मा जब निर्विकार बनकर अर्थ से परिपूर्ण शब्दो को निसृत करती है, तब उसमे गूढतम रहस्य परिपूरित रहता है। पर जो सासारिक मनुष्य है, वे सभी प्रवचन का श्रवण नही कर सकते है। जो श्रवण करते हैं, वे भी सिर्फ कर्णो से, सभी हृदय से नही सुनते। ऐसे व्यक्ति उसका कुछ भी महत्त्व नही जान सकते है। पर जो हृदय से श्रवण करते है, वे ही इस वीतराग प्ररूपित प्रवचन के महत्त्व का मूल्याकन कर सकते है तथा उससे प्रभावित होते है। जो व्यक्ति प्रतिदिन प्रवचन सुनते है उनको देखा जाता है कि असर कम रहता है। किन्तु जो कभी-कभी प्रवचन सुनते है उनमे कभी चमत्कारिक असर देखने को मिलता है। इससे यह मतलब नही कि प्रतिदिन प्रवचन न सुना जाये। सुनने से यत्किचित् निर्जरा तो होती ही है। पर जैसे नगारे की आवाज को सुनने वाला मन्दिर का कबूतर बिल्कुल नही घबराता और उसी थोडी सी आवाज से जगल का कबूतर उड जाता है। ठीक वैसे ही मन्दिर के कबूतरो की तरह के श्रोताओ के जीवन मे परिवर्तन नही होता है, किन्तु जगल के कबूतरो की तरह के व्यक्ति जो कभी-कभी सुनने वाले हैं, उनमे विशेष परिवर्तन देखा जाता है। जिनवाणी तो विस्तृत और व्यापक है। उस सब की बात तो जाने दीजिये। सिर्फ एक छोटा सा नवकार मत्र जिसमे अनन्तानन्त तीर्थकरो की वाणी का सार है यदि सच्चे श्रद्धान के साथ उसके अर्थ का अनुसधान किया जाये तो मालूम होगा कि यह मत्र कितना गूढ है, रहस्यमय एव चमत्कारी मत्र है तथा अन्यो को बहुत प्रभावित करने वाला है।

मेरी अनुभवगम्य बात है—स्वर्गीय गुरुदेव ने मुझे करोली गॉव फरसने के लिये भेजा। आज्ञा प्राप्त कर मैंने तीन सतो के साथ विहार किया। आहार, पानी दो कोस तक ही चलता (ले जा सकते) हैं। अत आहार पानी करके आगे बढे तो आधा घटा ही दिन अवशेष था। अत गॉव के बाहर पचायत भवन जो प्रासुक था, उसकी एक व्यक्ति से आज्ञा मागी तो उसने कहा कि मैं तो हरिजन हूँ, अत· आप यहा नही ठहर सकेंगे। पर जब उसको बताया गया कि इसमे हमे कोई बाधा नही है। क्योकि यह पचायती मकान है। तब उसने आज्ञा दे दी। और हम सब वही ठहर गये। कुछ समय के बाद उसको जिज्ञासा हुई और उसने पूछा कि आपके धर्म का मंत्र क्या है। तब उस व्यक्ति को नवकार मन्त्र का स्वरूप बताया तो वह बडा प्रभावित हुआ। और कहने लगा कि हमने तो जैन धर्म की निन्दा ही निन्दा सुनी है। किन्तु आज आपसे मालूम हुआ कि दुनिया को वास्तविक शान्ति प्रदान करने वाला, यह नवकार मत्र ही है। हमे ऐसे ही धर्म की आवश्यकता है। इस विषयक मुझे और भी आप ज्ञान प्रदान करियेगा। तब प्रतिक्रमण करने के बाद बहुत सारे भाइयो को लेकर वहां आया। उन सबको मैंने नवकार मन्त्र, अर्थ सहित सुनाया। उससे सभी प्रभावित हुए

और पाँव छूने की अनुमति माँगी । तव मैने कहा कि वैसे तो मैं इसे महत्त्वपूर्ण नही मानता । फिर भी छूना चाहो तो मना नही है । तव उन्होने हर्ष के साथ पैर छूए और चले गये । सवके चले जाने के वाद वह हरिजन पुन. आया और अपनी वस्तु स्थिति वताने लगा । महाराज मैं ७०० गाँव के हरिजनो का मुखिया अर्थात् अध्यक्ष हूँ । मैंने आज ही इतना महिमामय मत्र सुना है । मुझे आप ऐसा धर्म वताओ कि मैं भी आपके चरणो मे समर्पित हो जाऊँ । मेरा आपको इतना-सा कहना है कि आप मेरे अधीनस्थ सभी हरिजन भाइयो को यह उपदेश देवे और जो आपके समाज के मुखिया है, उन्हे भी समझावे कि वे हमसे छुआछूत नही करे । मानवता के नाते मानव रूप मे हमारा सत्कार करे, अपमान नही । उसके ७०० गाँव जिसमे उनके जाति भाई रहते थे वहा तो मैं गुरु आज्ञा विना नही पहुँच सका, उन्हे उपदेश नही दे सका पर वह भाई इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपने जीवन को सुसस्कारित वना लिया ।

सज्जनो ! सुख की मृगतृष्णा मे दौडने वाले लोगो की सुख पाने की समस्या का एक ही समाधान होगा कि वे जैनत्व का सही स्वरूप समझे । जो भौतिकता के रग मे ही अपनी शक्ति का अपव्यय कर रहे हैं उसे अध्यात्म मे लगावे । यह तो स्पष्ट है कि यदि परम शाति के महाद्वार मे प्रवेश करना है तो वह इसी जैन दर्शन के द्वार से ही होगा । अत इसे समझिये । जैन धर्म मे प्रवेश करने के लिए सम्यक्-दर्शन सवसे पहले आना आवश्यक है । यदि सम्यक्त्व अवस्था के साथ समतापूर्वक जो व्यक्ति चलता है तो वह अपने जीवन मे चमत्कारिक सुखद परिवर्तन ला सकता है ।

जितने भी वर्तमान मे जैनी हैं वे यदि सम्यक्त्व के आचारो को जीवन मे स्थान देकर चलने लगे तो आज भी जैनियो की सख्या वढ सकती है । जो वीतराग वाणी के प्रवचनो पर अटल आस्था रखता है, वह सम्यग्दर्शनी है । उसके आठ आचार है । उसमे अन्तिम आठवा आचार है **प्रभावना ।**

प्रवचन प्रभावना कैसे हो ? जैन शासन की प्रभावना अनेक प्रकार से की जा सकती है । दान देकर, सेवा करके, उपदेश देकर आदि अनेक प्रकार से प्रभावना का प्रसग उपस्थित किया जा सकता है । प्रत्येक धार्मिक वृत्ति वालो को स्वाध्यायादि के माध्यम से भगवान् के प्रवचन का वोध देना भी प्रभावना है । एक प्रसग है । भोपाल मे डेढ सौ घर पक्के स्थानकवासी के थे । वहाँ जव मैं गया तव मौढ जाति के अन्य वहुत से लोग व्याख्यान मे आये । कुछ दिनो वाद जव मैं दोपहर मे वैठा था, तव उन मौढ जाति का मुखिया भगवानदास कहने लगा कि मैं जल रहा हूँ ? तव मैंने पूछा कि यह तुम क्या कह रहे हो । तव उसने कहा —आप स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा के शिष्य हो । आप धर्म का प्रचार करने के लिये आये हो, आपका व आपके परिवार साधु समुदाय का

जीवन तो बडा ही शुद्ध निर्मल एव पवित्र है । पर एक बार पहले भी मैने देखा कि कुछ सत धर्म प्रचार करने हेतु आये थे वे माइक मे बोलते थे, तथा बहनो से बिना पुरुष की साक्षी से घण्टो बाते करते रहते, यही नही उन्हे जरा भी अपनी साधु मर्यादा का ख्याल नही था । मैंने देखा वे एक बार एक बहिन के कधे पर हाथ रख कर खडे थे । सिनेमा हॉल मे भी उन्हे पकडा । मैं उनके विषय मे क्या कुछ कहूँ । गुरुदेव, ऐसे साधुओ को देखकर विचार आता है, कि लोगो की धर्म के प्रति कैसे श्रद्धा बने । धर्म प्रचार के नाम पर साधु-मर्यादाए क्यो तोडी जा रही है । उस साधु के इस आचरण को देखकर हमने स्थानकवासी धर्म ही छोड दिया । और जो स्थानक बनाया हुआ है, उसमे यज्ञादि कार्य करने लगे है । अब हम आपके जीवन से अत्यन्त प्रभावित है । आप वहा पधारिये, प्रवचन फरमाइये । हमे नया दिशा निर्देश दीजिये । मैं उनकी भावना को देखकर वहा गया । दो प्रवचन भी दिये । उन्होने और रुकने के लिये आग्रह किया पर कल्प की स्थिति पूर्ण हो जाने से आगे रुकने की स्थिति नही बनी । कल्प तोड कर धर्म प्रचार करने से भी एक के बाद एक मर्यादा टूटती जाती है । अत मैने विहार कर दिया । रास्ते मे जब उन्होने मागलिक सुनी तब वे बोले—गुरुदेव ! पहले मैंने अमोलक ऋषिजी का जमाना देखा था । वे अच्छे थे । और अब आपको उसी रूप मे देख रहा हूँ ।

बन्धुओ ! उस एक साधु के गलत आचरण से उन सभी घरो की धर्म के प्रति श्रद्धा विचलित हो गई । प्रभावना की जगह और हानि का प्रसग आ गया । एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है । वैसे ही उस एक साधु के गलत आचरण से पूरी साधु समाज बदनाम हो गई ।

[आचार्य प्रवर का कल्प पूर्ण हो चुका था । यानि २९ दिन तक उन्होने साधु मर्यादा का परीक्षण कर उसके बाद वे बोले थे कि आपका जीवन कितना पवित्र है । यह हमने प्रत्यक्ष देखा है ।—सम्पादक]

आप लोग धर्म का दिव्य स्वरूप समझे । धर्म से विचलित नही बने । बन्धुओ ! ऐसी स्थिति मे प्रवचन की प्रभावना कैसे क्या हो सकती है । क्योकि जबकि साधु स्वय बहुरूपियो की चर्या अपना कर चलता है । समुद्र मे ही तूफान आ जाये तो प्रलय होगा ही । वैसे ही साधु जीवन ही दूषित हो जाये तो फिर जिन शासन की प्रभावना कैसे हो सकती है । मेरा तो आप सभी से यही कहना है कि आज के युग मे यह आवश्यक है कि अगर आप महावीर के सच्चे भक्त है और जिन शासन की प्रभावना करना चाहते है तो साधु-साध्वी के जीवन को पवित्र बनाने मे सहयोग दे । यह जिनशासन की सर्वोत्कृष्ट प्रभावना होगी । क्योकि आप साधुओ के जीवन को पवित्र रखेगे तो सारा जैन सघ पवित्र रहेगा । यदि साधुओ के जीवन को दूषित करने का प्रयास किया गया, उन्हे गिरने मे

सहयोग दिया गया, जैसे कि—आप तो बहुत विद्वान हो गये है आप यह क्रिया छोडिये। लाउडस्पीकर मे बोलिये, प्लेन मे यात्रा करिये, रात्रि मे बहनो के सामने प्रवचन दीजिये। भोजन हम बना के दे देते है। पानी के लिये भी क्या परहेज करना है। सामान आदि उठाने की क्या जरूरत है। हम आपके साथ भाई रख देते है। वह सामान उठा लेगा आदि बातें करके यदि साधु-साध्वियो को इस पवित्र सस्कृति से नीचे गिराने का प्रयास किया गया तो यह प्रभु महावीर की एव जिनशासन की बहुत बडी कुप्रभावना होगी। बहुत बडा जघन्य अपराध होगा। आप लोग यदि जिनशासन की प्रभावना नही कर सकते तो कम से कम ऐसी कुप्रभावना से तो परहेज रखिये। सत जब अपनी मर्यादा मे रहकर वीतराग के प्रवचन से जनता को प्रतिबोधित करे, तो कभी भी जैनी स्वय श्रद्धा से विचलित नही हो सकते है। यही नही अन्य भी कई जैनेतर जैनी बन सकते है। एक बार का प्रसग है। देशनोक के भूराजी जब रायपुर चातुर्मास मे दर्शनार्थ आ रहे थे। रास्ते मे जब रेल मे बैठे हुए थे उसी ट्रेन मे अन्य-अन्य प्रान्तो के बडे-बडे राजकर्मचारी भी बैठे हुए थे। उन्होने पूछा कि तुम कहा जा रहे हो ? उन्होने कहा कि मै अपने गुरु के दर्शनार्थ जा रहा हूँ। उन्होने जिज्ञासा की कि तुम्हारे गुरु का क्या स्वरूप है, वे कैसे रहते हैं, क्या पहनते है, क्या खाते है ? जब उन्होने अपने गुरु की सयमी मर्यादाओ का परिचय दिया तो उन्होने आश्चर्य करते हुए पूछा—क्या ऐसी स्थिति मे भी तुम्हारे गुरु जीवित है ? तब उन्होने कहा कि जीवित है तभी तो मैं दर्शन करने के लिए जा रहा हूँ। कहने का तात्पर्य यह है कि सयमनिष्ठ साधु जीवन, अतीव महत्त्वपूर्ण जीवन है। अत. उसे मर्यादाओ मे सुरक्षित रखा जाये, कारण कि मर्यादाओ को सुरक्षित रखकर ही प्रवचन प्रभावना सम्यक् रूपेण हो सकती है। आपने कपिल केवली का नाम सुना होगा। श्रावस्ती नगरी के जगल मे ५०० चोर थे। उनको प्रतिबोध देने के लिये वे कपिल केवली वहाँ पहुँचे। पर चोर क्या जाने कि ये केवली है। केवली ही केवली को जान सकता है। गौतम स्वामी को प्रभु महावीर ने कहा कि हे गौतम ! तुम्हे जिन नही दिखते है। क्योकि छद्मस्थ जिन को नही देख सकता है। सिर्फ अनुमान से जान सकता है। जैसा कि उत्तराध्ययन सूत्र के दसवे अध्ययन मे बताया गया है।

"न हुजिणे अज्जदीसइ, बहुमए दीसई मग्गदीसए।"

चोर केवली प्रभु को नही समझ पाये और उन्हे दण्डित करने लगे, यातनाएँ पहुँचाने लगे। तब चोरो का सरदार जो अनुभवी था वह उनके तेजोमय प्रशान्त मुखमण्डल की दिव्य आभा को देखकर कहने लगा—रुको ! इन्हे मत मारो, ये महान् विभूति है। इनसे कुछ सुनो। तब कपिल केवली ने उत्तराध्ययन सूत्र का आठवाँ अध्ययन सुनाया। उस अध्ययन की गाथाओ का अर्थ गीत रूप

जीवन तो बडा ही शुद्ध निर्मल एव पवित्र है। पर एक बार पहले भी मैने देखा कि कुछ सत धर्म प्रचार करने हेतु आये थे वे माइक मे बोलते थे, तथा बहनो से बिना पुरुष की साक्षी से घण्टो बाते करते रहते, यही नही उन्हे जरा भी अपनी साधु मर्यादा का ख्याल नही था। मैंने देखा वे एक बार एक बहिन के कधे पर हाथ रख कर खडे थे। सिनेमा हॉल मे भी उन्हे पकडा। मैं उनके विषय मे क्या कुछ कहूँ। गुरुदेव, ऐसे साधुओ को देखकर विचार आता है, कि लोगो की धर्म के प्रति कैसे श्रद्धा बने। धर्म प्रचार के नाम पर साधु-मर्यादाए क्यो तोडी जा रही है। उस साधु के इस आचरण को देखकर हमने स्थानकवासी धर्म ही छोड दिया। और जो स्थानक बनाया हुआ है, उसमे यज्ञादि कार्य करने लगे है। अब हम आपके जीवन से अत्यन्त प्रभावित है। आप वहा पधारिये, प्रवचन फरमाइये। हमे नया दिशा निर्देश दीजिये। मैं उनकी भावना को देखकर वहा गया। दो प्रवचन भी दिये। उन्होने और रुकने के लिये आग्रह किया पर कल्प की स्थिति पूर्ण हो जाने से आगे रुकने की स्थिति नही बनी। कल्प तोड कर धर्म प्रचार करने से भी एक के बाद एक मर्यादा टूटती जाती है। अत मैंने विहार कर दिया। रास्ते मे जब उन्होने मागलिक सुनी तब वे बोले—गुरुदेव! पहले मैंने अमोलक ऋषिजी का जमाना देखा था। वे अच्छे थे। और अब आपको उसी रूप मे देख रहा हूँ।

बन्धुओ! उस एक साधु के गलत आचरण से उन सभी घरो की धर्म के प्रति श्रद्धा विचलित हो गई। प्रभावना की जगह और हानि का प्रसग आ गया। एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है। वैसे ही उस एक साधु के गलत आचरण से पूरी साधु समाज बदनाम हो गई।

[आचार्य प्रवर का कल्प पूर्ण हो चुका था। यानि २९ दिन तक उन्होने साधु मर्यादा का परीक्षण कर उसके बाद वे बोले थे कि आपका जीवन कितना पवित्र है। यह हमने प्रत्यक्ष देखा है।—सम्पादक]

आप लोग धर्म का दिव्य स्वरूप समझे। धर्म से विचलित नही बने। बन्धुओ! ऐसी स्थिति मे प्रवचन की प्रभावना कैसे क्या हो सकती है। क्योकि जबकि साधु स्वय बहुरूपियो की चर्या अपना कर चलता है। समुद्र मे ही तूफान आ जाये तो प्रलय होगा ही। वैसे ही साधु जीवन ही दूषित हो जाये तो फिर जिन शासन की प्रभावना कैसे हो सकती है। मेरा तो आप सभी से यही कहना है कि आज के युग मे यह आवश्यक है कि अगर आप महावीर के सच्चे भक्त है और जिन शासन की प्रभावना करना चाहते है तो साधु-साध्वी के जीवन को पवित्र बनाने मे सहयोग दे। यह जिनशासन की सर्वोत्कृष्ट प्रभावना होगी। क्योकि आप साधुओ के जीवन को पवित्र रखेगे तो सारा जैन सघ पवित्र रहेगा। यदि साधुओ के जीवन को दूपित करने का प्रयास किया गया, उन्हे गिरने मे

निष्कर्ष यह है कि हम इस प्रकार प्रवचन प्रभावना के विविध आयामो का सम्यक् रूपेण ज्ञान करे और यथाशक्ति उन आयामो को जीवन मे स्थान देकर प्रवचन की प्रभावना करे। विशाल, व्यापक जैन धर्म की उन्नति करे। जैन धर्म के गुणो को दिपावें। ज्यादा कुछ नही वन सके तो धर्म-दलाली करे। कृष्ण वासुदेव व श्रेणिक राजा की तरह। सम्यक्त्व के आठो आचारो का दिव्य मगलमय जो स्वरूप है उसे समझ कर जो भी भव्य मुमुक्षु आत्मा अपनी सम्यक्त्व की भूमिका को उत्तरोत्तर निर्मल बनायेगी, उसका कल्याण सुनिश्चित रूप से होगा। इन्ही मगलमय भावो के साथ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२२-७-८५
सोमवार

• □ •

मे श्रवण कर ५०० ही चोर प्रतिबोधित हो गए। यह है प्रवचन की प्रभावना।

प्रभावना करने के अन्य भी कई तरीके है। जैसे तपस्या भी प्रवचन प्रभावना का अग है। पर यह विचारना कि तपस्या मे हमारी कोई इहलोक-परलोक और काम भोग आदि के हेतु भौतिक ऐश्वर्य की कामना तो नही बनी हुई है। जो तपस्या सिर्फ आत्म-शुद्धि हेतु प्रशस्त कर्म-निर्जरा का ख्याल करके की जाती है, उसी तपस्या से प्रवचन की सम्यक् रूपेण प्रभावना हो सकती है। जो तपस्वी का गुणानुवाद करता है। वह भी प्रवचन की प्रभावना करता है।

वीतराग वाणी का अद्भुत ही प्रभाव है कि तपोवन मे आत्मार्थी आत्माएँ निरन्तर आगे बढती है। तप का कोई कम महत्त्व नही है। आत्म-शुद्धि के साथ-साथ स्वास्थ्य लाभ मे भी तप अतीव महत्त्व रखता है। प्राकृतिक चिकित्सा वाले गर्म पानी के आधार से ४०-४० दिन के उपवास कराते हैं। सुना है एक व्यक्ति जिसका सारा शरीर इजेक्शनो से बीध गया था, उसकी जब प्राकृतिक चिकित्सा की गई, गर्म पानी के आधार पर उपवास कराये गये तब तेरहवे दिन ही उसके शरीर का विकार मल द्वार से बाहर निकल गया और ४०वे दिन वह एकदम स्वस्थ हो गया। यह है तप का प्रभाव जो कि जैन धर्म मे जैन आगमो मे विविध भाँति से दर्शाया है।

सथारा यह भी एक प्रवचन-प्रभावना का विषय है। उनका गुणानुवाद भी प्रवचन की प्रभावना का विषय है। अभी-अभी आपने सुना कि भीनासर मे सरल स्वभाविनी महासती श्री वल्लभ कवर जी के सथारे का ६७वाँ दिन चल रहा है। जीवन-मरण के क्षेत्र मे, दृढता एव साहस के साथ आगे बढना कोई मामूली बात नही है। महासती जी ने आत्म बल का सराहनीय परिचय दिया है। बहुत वर्ष पहले इसी सम्प्रदाय मे स्वर्गीय महासती श्री सरदार कँवरजी म० सा० के ६२ दिन का सथारा आया था। उसके पहले और अब तक ६७ दिन का सथारा सुनने को नहीवत् मिला। फिर महासती ने २-३ दिन से तो चौविहार का भी प्रत्याख्यान कर लिया है। अर्थात् पानी भी छोड दिया है। यह दृढता भी एक तरह से शासन की अपूर्व प्रभावना है।

शास्त्र के गूढ रहस्य को प्रकट करने से भी प्रवचन की प्रभावना होती है। शास्त्रीय मर्यादानुसार व्याख्यान देना यह भी महान् निर्जरा का काम है। प्रवचन प्रभावना है।

शरीर को अति संक्षिप्त रूप मे सर्वात्म-प्रदेशो को सकुचित कर लेता है। और ऐसे निगोद मे जाकर अनन्त काल तक भी जन्म-मरण कर सकता है। जमीकद मे जीवो की बहुलता बतलाने की एक प्रणाली बतलाई है कि सुई के अग्र भाग पर जमीकद का जितना अश आवे, उसमे असख्यात प्रतर है, उन असख्यात प्रतरो मे से प्रत्येक मे असख्यात-असख्यात श्रेणिया है, लाइने हैं। उन असख्यात श्रेणियो मे से प्रत्येक मे असख्यात-असख्यात गोले है। उन गोलो मे से प्रत्येक मे असख्यात-असख्यात शरीर है, और उन शरीर मे से प्रत्येक मे अनन्त-अनन्त जीव है। और उन जीवो के प्रत्येक के तीन-तीन शरीर है।

देखिये जो आत्म-प्रदेश हाथी के शरीर मे व्याप्त थे, वे ही किस प्रकार निगोद आदि के शरीर मे सकुचित हो जाते है। यह सकोच-विस्तार आत्म-प्रदेशो मे चलता रहता है। तत्त्वार्थ सूत्र के पाँचवे अध्ययन मे आया है कि—

"प्रदेश-सहार-विसर्गाभ्या प्रदीपवत्"

आत्म प्रदेशो का दीपक के प्रकाश की तरह कर्मो के आवरण से सकोच विस्तार होता रहता है। अर्थात् जैसे १००० पॉवर का बल्व हॉल मे लगा हुआ है, पर उस पर एक मिट्टी का बर्तन रख दिया जाय तो जो प्रकाश सारे हॉल मे फैल रहा था, वह सकुचित होकर मिट्टी के बर्तन की परिधि तक ही प्रकाश करेगा। यही स्वरूप आत्मा का है। वह जिस–शरीर को प्राप्त करती है। उसी शरीर के अनुरूप अपने असख्यात आत्म प्रदेशो का अवगाहन कर लेती है।

यह विषय विस्तार की अपेक्षा रखता है, अत. फिलहाल तो सकेत ही कर रहा हूँ। शुभाशुभ कर्म करने मे आत्मा स्वतत्र है, पर कर्म करने के बाद जब अशुभकर्म का उपभोग होता है तब वही दु खी हो जाती है। दु ख को प्राप्त होती हुई अगर वह सम्यक् ज्ञान की अवस्था को प्राप्त नही है तो और अधिक अशुभ कर्मो का बध कर लेती है। जैसे मदिरा पीने वाले किसी भाई को मदिरा से होने वाली बेभान अवस्था का ज्ञान कराया जाय तो वह उस समय तो कह देगा कि हाँ अब मैं मदिरा नही पीऊँगा। परन्तु वृत्ति जो चिर-काल से उसकी मदिरा पीने की बन चुकी है, उसमे वह कुछ समय बाद पुन. मदिरा पीना चालू कर देगा। उसी प्रकार मानव का भी यही हाल हो रहा है। अनादिकालीन बुरी प्रवृत्तियो मे अभ्यस्त बनी आत्मा उपदेश श्रवण कर थोडी देर तो उन प्रवृत्तियो से विरक्त हो जाती है, पर पुन वे ही प्रवृत्तियाँ चिर-अभ्यास होने से वापस जीवन मे चालू हो जाती हैं। जब तक अशुभकर्मो का जबरदस्त उदय रहता है तब तक उस आत्मा को कितना ही उपदेश दिया जाय तो भी वह उपदेश उसके आचरण का विषय नही बन सकता। पचेन्द्रिय अवस्था मे रहकर वह यदि क्रूर कर्म करे तो नारकी मे भी जा सकती है। श्रोता

२३ आराधना और प्रभावना

परम पिता परमात्मा, परम स्वरूप को संप्राप्त, वीतराग देव ने भव्यात्माओ के लिये जो उपदेश दिया, उस उपदेश मे समत्व रूप आत्म हित की बात बतलाई है ।

भगवती सूत्र के शतक आठवे मे आराधना का प्रकरण आया है । महाप्रभु से गौतम स्वामी ने पूछा कि—

> कतिविहाण भते । आराहणा पण्णत्ता ? गोयम्मा ।
> तिविहा आराहणा पण्णत्ता तजहा-नाणाराहणा,
> दसणाराहणा, चरित्ताराहणा ।

भगवन् ! आराधना कितने प्रकार की कही गई है ? तब महाप्रभु ने फरमाया—गौतम ! भगवती सूत्र ८/१० मे आराधना तीन प्रकार की कही गई है । ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना, चारित्राराधना ।

"आराध्यते इति आराधना" सामान्य रूप से आराधना का तात्पर्य है, किसी की उपासना करना । अर्थात् उसी के साथ मनसा, वाचा, कर्मणा सयुक्त हो जाना आराधना है । जीवन मे जो सौम्य भावनाये बनती हैं उन्हे ही आचरण की भूमिका पर जब उतारा जाता है, तब वे ही भावनायें उस जीवन की महत्त्वपूर्ण आराधना बन जाती है । ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना को एकरूप कर उन्हे आराधना शब्द से सबोधित किया है ।

आराधना करने वाली आत्मा है । उसके असख्य प्रदेश है । जिसके सकोच-विस्तार को समझना भी आवश्यक है । शरीर मे जब तक आत्मा है, तब तक वह शरीर सार रूप है । हाथी के शरीर मे जो आत्मा है, वही आत्मा ऐसे कर्म बाध लेती है जिससे वह हाथी का शरीर छोडकर गाय के शरीर मे समाहित हो जाती है । हाथी के स्थूल-शरीर मे जो असख्यात आत्मप्रदेश थे, वे सभी हाथी की अपेक्षा छोटे गाय के शरीर मे समाहित हो जाते है । और गाय यदि अशुभ कर्म करे तो वह चीटी के रूप मे उत्पन्न होकर अपने असख्यात आत्म-प्रदेश को उस चीटी के शरीर मे समाहित कर लेती है । यही नही चीटी का जीव मरकर यदि जमीकद मे, निगोद मे चला जाता है तो उसमे अपने

शरीर को अति सक्षिप्त रूप मे सर्वात्म-प्रदेशो को सकुचित कर लेता है । और ऐसे निगोद मे जाकर अनन्त काल तक भी जन्म-मरण कर सकता है । जमीकद मे जीवो की बहुलता बतलाने की एक प्रणाली बतलाई है कि सुई के अग्र भाग पर जमीकद का जितना अश आवे, उसमे असख्यात प्रतर है, उन असख्यात प्रतरो मे से प्रत्येक मे असख्यात-असख्यात श्रेणिया है, लाइने है । उन असख्यात श्रेणियो मे से प्रत्येक मे असख्यात-असख्यात गोले है । उन गोलो मे से प्रत्येक मे असख्यात-असख्यात शरीर है, और उन शरीर मे से प्रत्येक मे अनन्त-अनन्त जीव हैं । और उन जीवो के प्रत्येक के तीन-तीन शरीर है ।

देखिये जो आत्म-प्रदेश हाथी के शरीर मे व्याप्त थे, वे ही किस प्रकार निगोद आदि के शरीर मे सकुचित हो जाते है । यह सकोच-विस्तार आत्म-प्रदेशो मे चलता रहता है । तत्त्वार्थ सूत्र के पाँचवे अध्ययन मे आया है कि—

"प्रदेश-सहार-विसर्गाभ्या प्रदीपवत्"

आत्म प्रदेशो का दीपक के प्रकाश की तरह कर्मो के आवरण से सकोच विस्तार होता रहता है । अर्थात् जैसे १००० पॉवर का बल्ब हॉल मे लगा हुआ है, पर उस पर एक मिट्टी का बर्तन रख दिया जाय तो जो प्रकाश सारे हॉल मे फैल रहा था, वह सकुचित होकर मिट्टी के बर्तन की परिधि तक ही प्रकाश करेगा । यही स्वरूप आत्मा का है । वह जिस–शरीर को प्राप्त करती है । उसी शरीर के अनुरूप अपने असख्यात आत्म प्रदेशो का अवगाहन कर लेती है ।

यह विषय विस्तार की अपेक्षा रखता है, अत: फिलहाल तो सकेत ही कर रहा हूँ । शुभाशुभ कर्म करने मे आत्मा स्वतत्र हैं, पर कर्म करने के बाद जब अशुभकर्म का उपभोग होता है तब वही दु खी हो जाती है । दु ख को प्राप्त होती हुई अगर वह सम्यक् ज्ञान की अवस्था को प्राप्त नही है तो और अधिक अशुभ कर्मो का बध कर लेती है । जैसे मदिरा पीने वाले किसी भाई को मदिरा से होने वाली बेभान अवस्था का ज्ञान कराया जाय तो वह उस समय तो कह देगा कि हाँ अब मैं मदिरा नही पीऊँगा । परन्तु वृत्ति जो चिर-काल से उसकी मदिरा पीने की बन चुकी है, उसमे वह कुछ समय बाद पुन. मदिरा पीना चालू कर देगा । उसी प्रकार मानव का भी यही हाल हो रहा है । अनादिकालीन बुरी प्रवृत्तियो मे अभ्यस्त बनी आत्मा उपदेश श्रवण कर थोडी देर तो उन प्रवृत्तियो से विरक्त हो जाती है, पर पुन वे ही प्रवृत्तियाँ चिर-अभ्यास होने से वापस जीवन में चालू हो जाती है । जब तक अशुभकर्मो का जबरदस्त उदय रहता है तब तक उस आत्मा को कितना ही उपदेश दिया जाय तो भी वह उपदेश उसके आचरण का विषय नही बन सकता । पचेन्द्रिय अवस्था मे रहकर वह यदि क्रूर कर्म करे तो नारकी मे भी जा सकती है । श्रोता

वन कर व्याख्यान श्रवण कर लेना, ज्ञान हासिल कर लेना और बात है तथा उस ज्ञान को आचरण की भूमि पर उतारना, ज्ञान की आराधना करना और बात है। कर्मो की वृत्तियाँ वैभाविक है। उन्हे आत्मा से अपुनर्भाव से अलग किया जा सकता है। आवश्यकता है प्रकृष्ट सत्पुरुषार्थ की।

भगवती सूत्र मे जो तीन आराधना बताई गई हैं, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान एव चारित्र के रूप मे है। सम्यक्त्व के आठ आचार जो आपने श्रवण किये है, उसमे अतिम आचार है, प्रभावना। प्रभावना प्रवचन की भी होती है। प्रभावना तप कीभी होती है। प्रभावना आचरण की भी होती है। जो मनुष्य अपना सुन्दर आचरण रखता है। उसकी प्रतिष्ठा ऐसी जम जाती है कि जिससे वर्तमान मे किसी प्रकार की कोई कष्ट की स्थिति जीवन मे नही आ सकती भले ही प्रारम्भिक अवस्था मे उसे कष्टो से सघर्ष भी करना पडे, पर अपनी सत्यनिष्ठा पर जो दृढ रहता है वह कष्ट से अपने अशुभ कर्मो को निर्जरित कर समुज्ज्वल भविष्य के कगार पर आकर खडा हो जाता है, उससे स्वय का जीवन तो सौम्य बनता ही है, अन्यो पर भी उसका प्रभाव पडता है। धर्म प्रभावना का, वह व्यक्ति एक महत्त्वपूर्ण अग बन जाता है।

एक समय का प्रसग है—ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा०, जब प्रतापगढ मे विराजमान् थे। तब पूज्य गुरुदेव ने फरमाया कि जो मनुष्य सत्यनिष्ठा रखते है उनके प्रति सभी विश्वास रखते है। उनकी प्रतिष्ठा का प्रसग बनता है, कि उन्हे कभी आर्थिक आदि सकटो का भी मुकाबला नही करना पडता। यह बात श्रवण कर एक सेठ साहब जो बडे भव्यात्मा एव हलुकर्मी थे उन्होने सत्य बोलने की प्रतिज्ञा ले ली और व्यापार की स्थिति से उनके जो कपडे की दुकान थी, वे उस दुकान मे बडी सत्यनिष्ठा के साथ अपना व्यापार चलाने लगे। अपने ग्राहको को कहने लगे कि इस कपडे की कीमत १ रुपये है, और १ आना मै मुनाफा का लेता हूँ। तब ग्राहक की आदत होती है कीमत कम कराने की तो वहाँ अब गु जाइश ही नही रही। अत वे अपनी बताई हुई कीमत पर ही अटल रहते। ऐसा करने से १ साल तक उनका व्यापार एकदम बन्द सा रहा, पर वे अपनी सत्यनिष्ठा से विचलित नही हुए। उनकी सत्यनिष्ठा पर ग्राहको पर स्वत ही ऐसा प्रभाव पडा कि वे ग्राहक जो दूसरी दुकानो पर उन्ही कपडो की बढी चढी कीमत श्रवणकर विचार करने लगे, कि इससे तो उस सेठ की दुकान पर कम कीमत मे ये ही कपडे मिल रहे है। सभी ग्राहक पुन उनकी दुकान पर आने लगे और खरीद-दारी शुरू करने लगे। ग्राहक पूछने लगे कि तुम अपनी एक कीमत पर कैसे स्थिर हो, बाजार मे तो बहुत भाव बढ गया है। तब सेठ ने कहा—कि मैने जितने रुपये मे यह कपडा खरीदा है, तदनुसार १ रुपये पर १ आना मुनाफा के हिसाब से ही बेचू गा, अत मेरे यहाँ कीमत मे उतार-चढाव नही है। मैंने सत्य बोलने

की प्रतिज्ञा की है, उस पर दृढ हूँ, यह श्रवण कर सभी ग्राहक इतने प्रमुदित हुए कि सभी कपडा वही से लेने लगे। अपने सम्बन्धी दूसरे लोगो को भी कहने लगे कि अमुक सेठ सा० की दुकान प्रमाणित है, तब और भी लोग वही पर ही पहुँचने लगे। बाजार की अन्य सभी कपडे की दुकानो मे व्यापार ठडा पड गया, और उसकी दुकान पर ग्राहको की सख्या इतनी अधिक बढती गई कि उसका व्यापार बहुत सुन्दर रीति से चलने लगा। यही नही, सभी ग्राहक लोग उसकी सत्यनिष्ठा से प्रभावित होकर उसकी भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे। अहो जैन धर्म के अनुगामी सेठ सा० का जीवन कितना सत्यनिष्ठ है। इस प्रकार जैन जैनेतर सभी मे उसके सौम्य सत्यनिष्ठ आचरण से जैन धर्म की बहुत अधिक प्रभावना हुई। आज बहुत से लोग पतासा, शक्कर इत्यादि बाटकर प्रभावना करने की भावना रखते है, पर विचार करिये कि उस प्रभावना का उतना मूल्य नही है, जितना कि यदि वे ज्ञान की प्रभावना करे, दर्शन की प्रभावना करे।

जैन धर्म की प्रभावना करने वाले बहुत से ऐसे सुज्ञ लोग है, जो दहेज मे भी अन्य-अन्य भौतिक पदार्थ न देकर शास्त्र, प्रवचन की पुस्तके आदि साहित्य देते है और धर्म की प्रभावना करते है। दान, शील, तप, ब्रह्मचर्य, भद्रिक स्वभाव, मधुर भाषीता बनने से भी स्वय आत्मा की शुद्धि के साथ जैन धर्म की भी प्रभावना होती है। क्योकि आत्मीय गुणो के प्रकाशन से उसका प्रभाव साधर्मियो पर पडता है। पर खेद होता है कि आज दिखावा इतना आ चुका है, कि प्रशसा के भूखे प्रभावना तो बाटते है, पर जहाँ कोई साधर्मी की सहायता का प्रसग सामने आता है तो बहुत विरले ही उसमे सहयोग प्रदान करते है। आज के धनाढ्य व्यक्ति शादी विवाह आदि प्रसगो पर हजारो रुपयो के उपहार दे देंगे। इन ससारी चीजो से मोह ही बढता है, जो दूसरो को भी कर्मो का बन्ध करवाते है। किन्तु जो सत्साहित्य कर्म निर्जरा का, आत्म-शुद्धि और पुण्यार्जन का हेतु है, उससे धर्म की प्रभावना नहीवत् करेंगे।

भव्यात्माओ! आप महाप्रभु महावीर के उपासक है, तो जरा उनके द्वारा प्ररूपित धर्म की प्रभावना करना सीखिये, केवल वाह-वाही, यशलिप्सा एव सासारिक प्रपचो मे ही रह गए तो आत्म-शुद्धि होने वाली नही है। बिना आत्म-शुद्धि के परमात्मा रूप प्रगट नही हो सकता। अत प्रभावना की विविध विधाओ पर ध्यान रखते हुए, यथाशक्ति आचरण की परिधि मे उन्हे उतारेगे तो आपका जीवन धन्य बनेगा। इसी भावना के साथ—

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२३-७-८५
मगलवार

२४ स्नात करें आत्मा को ज्ञानालोक से

इस काल चक्र मे चौबीस तीर्थंकर भगवन्तो ने इस भू-धरातल को पावन किया था। तीर्थंकर केवल-ज्ञान-दर्शन से युक्त होने के बाद समान शक्ति के धारक हो जाते है, फिर उनमे कोई अन्तर नही रहता, शक्ति मे कोई न्यूनता नही होती। उनमे एक समान ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द एव सुख शक्तियाँ होती है। तीर्थंकर देव के वाणी रस को अलग-अलग तरीके से कवि अपनी कविता के माध्यम से अनुगु जित करते हैं।

यह तो बतला दिया गया है कि आत्म-प्रदेशो मे सकोच और विस्तार होता है, दीपक के प्रकाश के समान। जब जीव चरम शरीरी बनता है, जिस शरीर से उसे मोक्ष जाना होता है उस शरीर मे मरण अवस्था मे दो तिहाई भाग मे आत्म-प्रदेश घनीभूत हो जाते है, जो कि सारे शरीर मे फैले रहते थे। शैलेशीकरण मे आत्म प्रदेश शरीर के प्रत्येक हिस्से से निकल कर पोलार भाग मे इकट्ठे होने के बाद शैलेशीकरण की अवस्था मे आ जाते है। शैलपर्वत को कहते है, जो कभी डिगता नही, विचलित, कम्पित नही होता, मानलो कदाचित् पर्वत तूफान से प्रकम्पित हो भी जाय, क्योकि तीर्थंकर महावीर के जन्म के समय उत्सव मनाने के लिये उनको मेरु पर्वत पर ले गये थे। इन्द्र, भगवान् की छोटी काया देखकर चिन्तित हो गये थे, कि इतना अभिषेक किस प्रकार सहन करेगे। पर भगवान् को तो जन्म से ही अवधिज्ञान था, जिससे उन्होने इन्द्र की शका को जानकर निवारण के लिये पैर के अगूठे से पर्वत को हिला दिया, यह जानकर सभी आश्चर्य मे डूब गये। प्रसन्नता का पार न रहा, इससे तीर्थंकर की शक्ति का पता चला। इन्द्र की शका का समाधान हो गया, इतनी शक्ति के धारक तीर्थंकर जब अन्तिम भव मे शैलीशीभूत बने, तब दुनिया मे किसी के पास ताकत नही है कि उनके आत्म-प्रदेशो को हिला सके, कम्पित कर सके। ऐसी निष्प्रकम्प आत्मा, अन्त मे निर्वाण को प्राप्त कर लेती है, जहाँ जाने पर वह उसी रूप मे अनन्त काल तक रहती हुई शाश्वत सुख का अनुभव करती रहती है।

शाश्वत सुख की अनुभूति उपलब्धि के लिये सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यक् ज्ञानाराधनादि का प्रसग चल रहा है। यह चिन्तन का विषय है, कि आराधना का अन्तिम फल क्या होगा ? तो सभी यही कहेगे कि मोक्ष। परन्तु

उससे पहले हमारे आत्म प्रदेशो मे, मन मे जो चचलता है, मन बाहर की ओर भाग रहा है, आत्म प्रदेश ऊँचे से नीचे-नीचे से ऊपर की ओर भाग रहे है, जिस प्रकार कडाई मे उबलता हुआ तेल नीचे से ऊपर-ऊपर से नीचे की ओर जाता है, उसी प्रकार मस्तिष्क के आत्म-प्रदेश पैरो की ओर और पैरो के आत्म-प्रदेश मस्तिष्क की ओर चलते रहते है।

जिसका कारण है—आठ कर्म और इनके पैदा होने मे निमित्त तीन मन, वचन, काया की अप्रशस्त प्रवृत्ति। सबसे पहले जिन कारणो से कर्म वधते है, उन्हे रोको, बाहर से लगता है कि शरीर पाप कर्म कर रहा है, पर यह मालूम है कि वह स्वत कुछ भी नही करता है, उससे करवाया जा रहा है, वह तो आज्ञा का पालक है। विचार करना है कि भावना कहाँ पैदा होती है मन मे, मस्तिष्क मे? शरीर को तो जैसी आज्ञा होती है, तदनुसार उसमे हलचल हो जाती है। वैसे लोग कहते है कि शरीर चल कर आया, पर वास्तव मे मन चलकर आया है। शरीर तो मन का वाहन है, आप कहते है कि कार आ गई पर क्या वास्तव मे कार चलकर आ सकती है। नही, कार तो आप चला रहे है, आप ड्राइवर है, वह तो साधन मात्र है। वैसे ही आत्मा की कार शरीर है एव ड्राइवर मन है, वही कार को चलाता है। मन भी अकेला कुछ नही करता, वह भी आत्मा के साथ जुडा हुआ है, शरीर से कर्म होता है, वह मन कराता है और मन को भी आत्मा कर्म कराती है, यह साकल जुडी हुई है, उसको ठीक करने के लिए जीवन को समझने का प्रसग है, पर किस प्रकार? सम्यग्ज्ञान से ज्ञान के बाधक तत्वो को रोकने का प्रसग है, मनुष्य अन्दर आने की कोशिश करता है पर दरवाजा बन्द है तो जब तक वह दरवाजा बन्द होने का कारण एव उसको खोलने का पुरुषार्थ नही करेगा, तब तक वह न तो भीतर जा सकेगा न बाहर आ सकेगा, ज्ञान तो प्रकट होने की कोशिश करता है, पर रास्ता बन्द है, क्योकि दिवार का अवरोध है, पूर्व जन्म के ज्ञानावरणीयादि कर्मो ने आकर ज्ञान को आवृत्त कर दिया है, वे हटे तभी ज्ञान प्रकट हो सकता है। ज्ञान को प्रकट करने के लिये यह जान लें कि इसके बाधक कारण क्या है, और उन्हे कैसे दूर किया जाय? सम्यक्ज्ञान के जो आचार हैं, उन्हे जानना आवश्यक है। तभी हम कर्मो के आश्रव को रोककर बद्ध कर्म का आवरण हटा पायेंगे। ज्ञानावरणीय कर्म, आयु कर्म बाधना मनुष्य के हाथ की बात है, और वह उसे तोड भी सकता है, पर अज्ञान अधकार मे रहकर नही।

एक रूपक है कि एक व्यक्ति आँखो से देख सकता है, पर वह कमरे मे जाकर द्वार बद कर दे, और विस्तर पर रजाई ओढकर सो जाय और फिर विचार करे कि मैं देखू तो क्या वह देख सकेगा? चाहे आँखे खुली हो या बद, आगे रजाई का आवरण है। वहाँ वह देखने की कोशिश भी करे और रजाई को भी ओढे तो कभी भी देख नही सकेगा, जव तक रजाई नही हटेगी तब तक नही

देख सकता, यदि रजाई हटाकर दरवाजा खोलकर बाहर आ जाएगा तभी प्रकाश देख सकेगा। प्रकाश तो है पर जब तक पर्दा नही हटेगा तब तक न तो बाहर जा पाएगा, और न प्रकाश के दर्शन ही हो पायेगा। इसी तरह ज्ञानावरणीय कर्म को रजाई की तरह ओढ लिया है, इसी कारण ज्ञान नही होता। इसलिये ज्ञान आवरण को रोकना चाहिये। ज्ञान, ज्ञानी पर द्वेष करने से, दुश्मनी करने से, इस प्रकार ज्ञान की ज्ञानो की आशातना करने से, ज्ञान के साधनो की तोड फोड करने से, ज्ञान जिनसे सिखा उनके नाम का गोपन करने से ज्ञानावरणीय कम बाधता है। कोई माता सोचे कि उसका बालक ज्ञान नही करे, अत जब वह पढने लगता है तो वह कभी किताबे छिपा देती, कभी उसे दूसरा काम सौप देती है। इस तरह वह कुछ-न-कुछ अवरोध पैदा करती है, जिससे बालक को ज्ञान न होने पाए। इस तरह वह माता ज्ञानावरणीय कर्मो का बन्ध कर लेती है। अत. जिनको ज्ञान पैदा करना है, उन्हे इन कारणो को छोडना चाहिये, जब ज्ञानावरणीय कर्म बन्ध जाता है तो कभी-कभी बहुत परिश्रम करने पर भी ज्ञान का उपार्जन नही हो पाता। लेकिन जब व्यक्ति सत्पुरुषार्थ के बल पर आगे बढता है तो एक-न-एक दिन साधना से ससिद्धि प्राप्त कर लेता है। उदाहरणार्थ एक साधु गाथा याद कर रहे थे जोर-जोर से। पर याद नही हो पा रही थी, तब आस-पास के लोग हँसते हुए निकल गये कि एक गाथा नही याद कर पा रहा है तो यह साधु आगे क्या करेगा, यह सुन उन्हे खेद होता, वे सोचते कि अहा ! ये सब मेरी कितनी हँसी उडा रहे है। बहुत दु ख करते थे, पर जब दूसरे व्यक्ति प्रशसा करते कि अहो कितने पुरुषार्थी है। कितनी मेहनत से याद कर रहे है, तो वे अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न भी हो जाते, इस तरह निन्दा से नाराज और प्रशसा से प्रसन्न होना, उनकी प्रवृत्ति बन गई। एक बार वे गुरुदेव के पास पहुँचे और कहा कि मै इतनी मेहनत करता हूँ, फिर भी मुझे याद नही होता। लोग मेरा उपहास करते है। गुरुदेव ने कहा कि तुमने पूर्व भव मे किसी को अन्तराय दी होगी, ज्ञान के साधनो का तिरस्कार किया होगा, ज्ञानी की आशातना की होगी, ज्ञान उपार्जन करते समय किसी को सहायता नही दी होगी, जिनसे ज्ञान प्राप्त किया, उनका अपमान किया होगा, नाम का गोपन किया होगा, इसी कारण तुम्हे ज्ञान याद करने मे इतनी कठिनाई हो रही है। गुरुदेव की बात सुनकर वह कहने लगा, अब वर्तमान मे क्या करूँ ? तो गुरुदेव ने कहा—प्रतिज्ञा करो। किसी के भी ज्ञान अर्पण करने मे अन्तराय नही दोगे। और ज्ञानी के प्रति द्वेष भाव नही रखोगे, साथ ही प्रतिज्ञा करो कोई निन्दा करेगा तो दु खी नही बनोगे, कोई प्रशसा करेगा तो खुश नही होवोगे। गुरुदेव ने कहा 'मा रुष मा तुष' इस समभाव का तुम आचरण अपना लो और पुरुषार्थ को अपना लो। गुरुदेव के अमृतामय उपदेश को उसने दृढता के साथ धारण किया, और उसी के अनुसार वर्तन करने लगा, मा तुष, मा रुष तो याद नही रहा, पर इतना याद रहा कि माष तुष। लेकिन इसके अर्थ को उन्होने

जीवन मे अच्छी तरह उतार लिया लोग । उनके अशुद्ध उच्चारण से हँसते भी, तो भी वे "समो निदा पससासु" के सिद्धान्त को जीवन मे रमा लेने से सब समभाव से सह लेते, चमत्कार हुआ महाप्रभु के एक वाक्य को जीवन मे उतार लेने मात्र से । उन साधु को केवलज्ञान, केवलदर्शन हो गया, उनके ज्ञानावरक घनघाती कर्म नष्ट हो गये, एक गाथा तो याद नही हो पाई, पर वे उसकी साधना से पूरे विश्व दृष्टा बन गये ।

बन्धुओ ! यदि सम्यक्ज्ञान का उपार्जन कर जीवन का चरम लक्ष्य ससिद्ध करना है तो ज्ञान के आचारो का बोध आगे प्राप्त करे । ज्ञानावरणीय कर्म बध कराने वाले वैभाविक प्रवृत्तियो से हटने का पुरुपार्थ करे । अपने आपको समभाव मे रमण करावे तो एक-न-एक दिन जीवन मे ज्ञान का अभिनव आलोक विकसित होगा, जिससे सदा-सदा के लिए अज्ञान अधकार भाग जाएगा, परिपूर्ण ज्ञानी आत्मा परिपूर्ण दृष्टा बन जायेगी ।

ज्ञान के परिपूर्ण आवरण तोडने के लिए मोह को दूर करना प्रथम आवश्यक है, क्योकि मोह उसकी मूल जड है, जड मूल के साथ मोह के उखडते ही ज्ञानावरणीय कर्म भी नष्ट हो जायेगा ।

आत्मा ज्ञान के अलौकिक प्रकाश मे स्नात हो जायेगी ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२४-७-८५
बुधवार
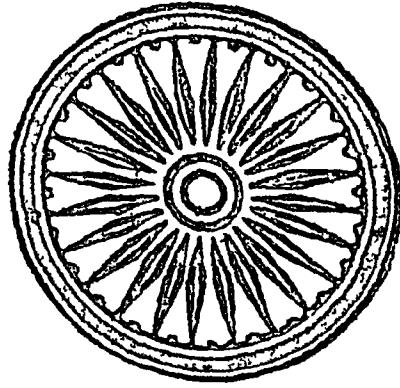
सम्यक् ज्ञान

[वैचारिक जीवन जीने की कला]

आठ आचार

- कालाचार
- विनयाचार
- बहुमानाचार
- उपधानाचार
- अनिह्नवाचार
- व्यञ्जनाचार
- अर्थाचार
- तदुभयाचार

तो वह विहार कब करे ? अत स्पष्ट है कि विहार के समय स्वाध्यायादि कार्यक्रम गौण करे, इस प्रकार करने से प्रकल्प मर्यादा का भी उल्लघन नही होता, शास्त्र मे साधक को सकेत दिया है—

"काले काल समायरे" यह सूत्र साधक को आह्वान कर रहा है कि हे साधक ! जिस कार्य का जो समय हो, वही कार्य उस समय करना योग्य है। अर्थात् जिस क्षेत्र मे गृहस्थी के घर जिस समय भोजन बनता है, उसी समय साधक गोचरी के लिये जा सकता है। कई लोग कहते है, कि साधु के लिये तो सिर्फ एक टाइम भोजन करने का शास्त्र मे विधान है, पर उनका यह कथन सार्वकालिक नही है। शास्त्र मे साधु के लिये यदि एक वक्त ही भोजन करने का विधान होता, तो भगवती सूत्र मे ऐसा उल्लेख क्यो आता कि "साधु पहले प्रहर का आहार-पानी चौथे प्रहर मे नही भोगे। इससे यह स्पष्ट होता है कि जैसी-जैसी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से शास्त्रीय मर्यादानुसार अनुकूलता होवे, उसी प्रकार साधु अपना आहारादि कार्य करता हुआ, स्वाध्याय के काल का ध्यान रख कर स्वाध्याय करे। क्योकि अस्वाध्याय काल मे स्वाध्याय करने पर उस समय यदि आकाश मार्ग से देवो का गमनागमन हो रहा हो तो जो स्वाध्याय प्रेमी सम्यग्दृष्टि देव होते है। वे कष्ट तो नही देते है किन्तु किसी न किसी रूप मे अस्वाध्याय का सकेत करा देते हैं। पर जो मिथ्यादृष्टि देव होते है वे अस्वाध्याय मे स्वाध्याय करने वाले पर उपद्रव भी कर सकते है।

अत ज्ञानाचार के पहले आचार कालाचार का बोध प्राप्त कर विवेक रखना आवश्यक है।

एक महात्मा, सध्या के समय प्रतिक्रमण करने बाद आकाश को प्रतिलेखना करके स्वाध्याय करने के लिये बैठे, पर वे स्वाध्याय करते हुए इतने आत्मविभोर बन गए कि शब्द-उच्चारण रूप स्वाध्याय का काल परिपूर्ण हो गया, उसका यह ध्यान ही नही रहा अत अकाल मे भी स्वाध्याय करते रहे, उस समय एक सम्यग्दृष्टि देव जो आकाश मार्ग से जा रहा था। उसका उपयोग उस तरफ लगा और विचार किया कि यह साधु प्रशस्त भावो से स्वाध्याय तो कर रहे हैं, पर अस्वाध्याय काल आगया है, इनका इन्हे ध्यान नही है, कही मिथ्यादृष्टि देव इन पर प्रकुपित होकर कष्ट न दे, इससे पूर्व इन्हे सकेत कर देना चाहिये। यह सोचकर वह देव उन्हे प्रतिबोध देने हेतु अहीर का रूप बनाकर दही बेचने की दृष्टि से जोर-जोर से उस साधक के उपाश्रय के नीचे गुजरते हुए आवाज लगाने लगा कि दधि लो दधि लो इत्यादि। ये शब्द श्रवण कर वे साधक बीच मे स्वाध्याय रोककर उस अहीर को कहने लगे-अरे अभी तो सभी लोग सोये हुए है, तुम्हारा दही कौन खरीदेगा ? इतने जोर-जोर से क्यो बोल रहे हो, क्या यह कोई अभी दही बेचने का समय है ? तब देव ने प्रत्युत्तर मे कहा कि महाराज ! यह ठीक है कि अभी दही बेचने का समय तो नही है पर मैं आपको

पूछता हूँ कि क्या अभी स्वाध्याय करने का समय है ? यह बात सुनते ही वह साधु एकदम चौका और समय का ख्याल किया, तब उसे पता चला कि "अहो मै अस्वाध्याय काल मे भी स्वाध्याय कर रहा हूँ। मैंने कितनी बडी गलती कर दी।" बडी सरलता पूर्वक वे साधक अपनी गलती को स्वीकार करते है, और उस देव का वडे नम्र शब्दो से आभार मानते है।

बन्धुओ! जो सरल होता है, और सरलतापूर्वक अपनी गलती स्वीकार कर लेता है, वही अपनी आध्यात्मिक स्थिति कोसुरक्षित रख सकता है। शास्त्र मे उल्लेख आया है कि एक चक्रवर्ती महाराज छ खड का राज्य छोडकर मुनि बन जाय और यदि उनसे कुछ गलती हो जाय, तब उसकी अदना दासी भी यदि उन्हे प्रतिबोध देवे तो भी उनका कर्तव्य होता है कि वे अह न करके उस दासी का उपकार मानते हुए सरलतापूर्वक अपनी गलती को गलती के रूप मे स्वीकार कर प्रायश्चित, आलोचना, पश्चाताप कर ले।

बन्धुओ! ज्ञान की प्यास शात हो सके इसके लिए ज्ञान की वास्तविक स्थिति जीवन मे लाने के लिए कालाचार आदि ज्ञान के सभी आचारो का स्वरूप समझना है। कालाचार का स्वरूप सम्यक्तया समझकर शास्त्र मे जिस समय जिस आगम की स्वाध्याय करने का विधान आया है, उस समय अस्वाध्याय के सारे बोलो का ख्याल रखते हुए चिन्तन मनन पूर्वक स्वाध्याय करे तो जरूर आप आध्यात्मिक ज्ञान की खुराक आत्मा को बराबर देते हुए, आत्मिक शक्तियो को पुष्ट बना सकेंगे। इन्ही मगलमय शुभ भावो के साथ—

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२५-७-८५
गुरुवार

२६ | ज्ञान हो पर अनुभूति के साथ

वीतराग देव की पवित्र वाणी का रसास्वादन भव्य मुमुक्षुजन प्रतिदिन कर रहे है, यह वाणी ही ऐसी है कि इस वाणी को यदि जीवन मे उतारने का प्रसग आ जाय तो आत्मा की जितनी भी दु खमय अवस्थाएँ है, वे सभी समाप्त हो सकती है।

प्रत्येक ससारी आत्मा दु ख की अनुभूतियाँ कर रही है, पर सबसे अधिक दु ख मृत्यु के समय मे होता है, मृत्यु कोई नही चाहता, मृत्यु का नाम सुनते ही कपकपी छूट जाती है। जन्म लेते समय भी दु ख होता है, पर वह अवस्था अबोध होने से, उस समय दु.ख की विशेष अनुभूति नही हो पाती है, पर मृत्यु का नाम श्रवण करते ही जो दु खद अनुभूति होती है, वह जन्म के समय होने वाले दु ख से बहुत अधिक है। जन्म और मृत्यु ये दोनो ही अवस्थाएँ आत्मा को, किस कारण से होती है, इस विषय मे शास्त्रकार कहते है, कि यदि तुम्हे जन्म लेने की इच्छा न हो, सदा-सदा के लिए आनन्दमय स्थिति को प्राप्त करना हो तो अन्य को जन्म मत दो, जो दूसरो को जन्म देता है, वह स्वय जन्म ग्रहण करता है, तथा जो अन्यो को मारता है (आसक्ति पूर्वक) कषाय पूर्वक तो वह अत्यधिक जन्म-मरण की परम्परा को बढाता है।

आचाराङ्ग सूत्र मे कहा है कि जो मनुष्य पृथ्वीकायादि षट्काय के जीवो को मारता है, उनका हनन करता है, वह अपनी जन्म-मरण की परम्परा बढाता है। मनुष्य पृथ्वीकाय के जीवो का हनन कैसे करता है, जैसे कि उदाहरण के तौर पर समझ लो, कोई मनुष्य अपने मकान की नीव खुदवा रहा है, तो वहाँ असंख्य पृथ्वीकाय के जीवो की हिसा का प्रसग बनता है, यदि कोई कहे कि यह कार्य तो मजदूर करता है। अत सारा पाप उसे लगेगा, पर उसका यह मानना गलत है कारण कि वह मजदूर तो लाचारीवश कर रहा है, अत उसको कम पाप लगता है पर जो करा रहा है, आदेश दे रहा है, उसे विशेष पाप लगता है। जैसे—सेठ मुनीम से बहीखाता का काम कराता है, पर यदि कभी उसकी गलती पकडली जाती है तो सारा दण्ड मुनीम भोगता है या सेठ? उत्तर होगा सेठ। इसी प्रकार नीव आप मजदूर से खुदवा रहे है, पर पाप सिर्फ मजदूर को ही नही लग रहा है, मजदूर से विशेष पाप आपको लग रहा है। पर खेद होता है, कि आज के युग मे जो पञ्च महाव्रत-धारी साधु कहलाते है, छ काया के

रक्षक माने जाते है, उनमे भी कई छ काया के जीवो की हिसा मे भाग ले रहे है, कई प्रसग ऐसे सुनने मे आ रहे है, कि साधु स्वय नीव खोदना आदि-आदि कार्य मे सक्रिय सहयोग प्रदान करते है। भले वो स्थानक बनाने का कार्य हो या फिर सार्वजनिक धर्मशाला, हॉस्पिटल, स्कूल आदि किसी भी मकान का किसी भी नाम से निर्माण कार्य हो। सभी मे हिंसा तो होती ही है। जिसका साधु के लिये सर्वथा त्याग होता है, वह तो अपनी सीमा मे रहकर दान, शील, तप, भावना का उपदेश दे सकता है, बाकी आरम्भ-जनक कार्यो मे सहभागी बनना उसके लिए कतई अभीष्ट नही है।

बन्धुओ! व्याख्यान के प्रसग से भी स्वाध्याय का प्रसग उपस्थित होता है, ज्ञानीजन कहते है कि हिंसा करने वाले प्राणी भी स्वाध्याय मे सलग्न बन पश्चाताप की स्थिति से अपनी असख्य जन्म-मरण की शृखला तोड सकते हैं। श्रावक सोचे कि मेरा भी वह दिन धन्य होगा, जब मै भी समस्त सासारिक प्रपच छोडकर अणगार प्रवृत्ति को अगीकार करूँगा। ऐसी भावना भाते हुए भी वे अपने कर्मो की निर्जरा कर सकते है। शास्त्रो की स्वाध्याय करने से अत्यधिक लाभ की उपलब्धि हो सकती है। जब भगवान् से पूछा गया कि स्वाध्याय करने से क्या लाभ है? तब प्रभु ने फरमाया कि स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म को निर्जरा होतो है। उत्तराध्ययन सूत्र के २९वे अध्ययन मे बतलाया है—

"सज्झाएण भते। जीवे किं जणयइ?
सज्झाएण नाणावरणिज्ज कम्म खवेइ।।"

स्वाध्याय भी दो प्रकार की है—एक तो शास्त्रीय स्वाध्याय, पुस्तक के माध्यम से की जाने वाली। दूसरी है "स्वस्मिन् अध्याय इति स्वाध्याय" अर्थात् अपना चिन्तन करने वाली स्वाध्याय। आप शास्त्रो की स्वाध्याय करते है, इससे भी निर्जरा होती है। पर स्वाध्याय के बाद ध्यान यदि आप करते है तो वह ध्यानरूपी स्वाध्याय, अक्षरीय स्वाध्याय का रस लेने का एक अत्युत्तम साधन बनती है। यह एक प्रकार की अनुप्रेक्षा है, अनुप्रेक्षा का तात्पर्य गहराई से अर्थ का एव स्वय का चिन्तन मनन करना, इससे स्वय के जीवन की स्वाध्याय होती है। स्व के अध्याय का प्रसग उपस्थित होता है। यह स्वाध्याय का दूसरा प्रकार है।

आप आधा घटा पुस्तक से स्वाध्याय करे तो आधा घटा ध्यान रूपी स्वाध्याय अवश्य करे। पुस्तकीय स्वाध्याय भी आवश्यक है, पर उसका रस लेने के लिए आत्मरमण की स्थिति से ध्यान करना अतीव उपयोगी होगा। ध्यान रूपी स्वाध्याय मे स्व का अध्याय करते समय यह चिंतन करे कि हम बहुत लम्बे समय से अशुद्ध विभाव के साथ रमण कर रहे है, पर अब सम्यक्त्व के

साथ स्वभाव से अपना सम्बन्ध स्थापित करे। आत्म शक्तियो को निरन्तर वृद्धिगत्त करते हुए चेतन के भेद विज्ञान से आत्मान्मुखी बने। स्वय के जीवन का समीक्षण करे कि मेरा जीवन किस ढग से चल रहा है, मै जन्म-मरण की शृखला बढ़ा रहा हूँ या कम कर रहा हूँ ? यदि पारिवारिक आसक्ति एव धन वैभव की तृष्णा मे ही जिन्दगी व्यतीत कर दूँगा, तो अवश्य ही मेरी भव-शृंखला बढ जाएगी। अतः इसे तोडने के लिए स्वाध्याय, स्व का चिन्तन करना आवश्यक है।

आज व्यक्ति अक्षरीय ज्ञान प्राप्त कर बडी डिग्रियाँ तो प्राप्त कर रहा है, पर स्व के ज्ञान के अभाव मे कितनी हास्यास्पद स्थिति जीवन मे बन जाती है, इसे आप कथानक के माध्यम से समझे।

प्राचीन काल में काशी के विश्वविद्यालय मे बहुत से विद्यार्थी पढते थे। एक गाँव का विद्यार्थी भी वहाँ पढने आया, वह वहाँ का सारा अध्ययन बडी लगन पूर्वक करके उत्तीर्ण हो गया, तत्पश्चात् उसने अपने माता-पिता को समाचार प्रेषित किये कि "मेरा विद्याध्ययन पूर्ण हो गया है, मैं आ रहा हूँ, मुझे लेने के जिए आप जल्दी ही आना।" सारे गाँव वालो को यह सूचना जब मिली कि अमुक का लडका विद्वान् बन पडित की पदवी को पाकर काशी से आ रहा है तो सभी गाॅव वाले उत्सुकता पूर्वक उसके स्वागत की तैयारी करने लगे। इधर वे पडितजी अपने गाँव के बाहर पहुँचकर, गाँव वाले लोग, जो स्वागत करने के लिए आने वाले हैं, उनकी प्रतीक्षा करने हेतु एक वृक्ष की छाया मे बैठ गये। तभी चार बहिने जो पनघट पर पानी भरने के लिए आई, वे परस्पर बाते करने लगी—उन्ही पडितजी के विषय मे, जो काशी से पढकर आये है, और वृक्ष के नीचे बैठे हुए है। वे अनुभवी बहिनें परस्पर कहने लगी कि ये पडितजी काशी से पढकर भले ही आये है, पर लगता ऐसा है कि सिर्फ इन्होने अक्षरीय ज्ञान ही प्राप्त किया है। कहावत के अनुसार इन्होने पढा है, पर गुना नही है।

अपनी इस अनुभूति को साक्षात्कार करने हेतु वे बहिने उनके पास पहुँची और इधर-उधर की बाते करती हुई बोली—पडितजी ! आप तो पढ लिख करके आ गये, पर क्या कहूँ ? पडितजी ने पूछा—क्यो क्या बात हुई ? कहो-कहो जल्दी कहो। तब वे बहिने कहने लगी—पडित साहब क्या कहूँ। कहने की हिम्मत नही हो रही है। पडितजी बोले अरे बहिनो। आप सकोच क्यो कर रही हो ? जो कुछ भी है, साफ-साफ कह दो, मैं जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ। तब वे बहिने बोली—पडित साहब आप तो. .काशी पढने के लिए गये थे, पर पीछे से आपकी पडितानीजी .आपकी पडितानीजी....। पुन कहती-कहती रूक गई तो पडितजी झुझलाते हुए कहने लगे—अरे तुम चुप क्यो हो गई, कहो ना पडितानीजी को क्या हुआ ? पडितजी आपकी पडितानीजी अर्थात् आपकी

धर्मपत्नी विधवा हो गई, ज्यों ही यह वात पडितजी ने सुनी तो वे वडे दुःखी दिल होकर फूट-फूट कर रोने लगे, उनको रोते देख उन वहिनो को वडी जोर से हँसी आने लगी, पर वडी मुश्किल से हँसी रोककर पडितजी को ढाढस बधाने लगी, कहने लगी कि पडित सा ! अब रोने से क्या होने वाला है, जो होना था सो हो गया । आप चुप रहिये और चलिये घर की तरफ पर पडितजी के अश्रुओ का निर्झर बद नही हुआ और इधर परिवार वाले तथा गाव के सभी लोग उनका स्वागत करने के लिए वहाँ आ पहुँचे थे । वे वहिने जिन्होने वडी मुश्किल से हँसी रोक रखी थी, उस भीड का लाभ उठाते हुए वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गई । इधर परिवार वाले और गाँव वाले सभी सदस्यो ने उन पडित साहब को इस प्रकार जोर-जोर से रोते देखकर अनुमान लगाया कि शायद किसी "गमी" के समाचार इन्हे मिले है, इसलिए ये इस तरह रो रहे है, वे सभी लोग भी रीति रिवाज के अनुसार पडित सा के रोने मे साथ देने लगे और सभी रोते-रोते घर पहुँचे, घर पहुँचने के बाद भी बहुत देर तक रोने का कार्यक्रम चलता रहा । आखिर रोते-रोते पडित सा जब कुछ चुप हुए तो सभी ने पूछा कि क्या हुआ पडित साहब । किनकी मृत्यु के समाचार मिले है आपको ? तब पडित साहब ने आश्चर्यपूर्वक कहा कि "किसकी मृत्यु ? अरे ! आप गाँव मे रहते हो फिर भी आपको पता नही ? बेचारी मेरी पडितानीजी विधवा हो गई ।" यह सुनकर सभी लोग एक साथ खिलखिलाकर हँस पडे और उनकी विधवा बहिन जो अपने भैया का स्वागत करने के लिए आई हुई थी, कहने लगी कि वाह भाई वाह ! आपने भी खूब अपनी हँसी करवाई । अरे ! आपके रहते हुए मेरी भाभी विधवा कैसे हो सकती है ? तभी पडितजी जो काशी से पढ लिखकर विद्वान् बनकर आये थे, तर्क देते हुए कहने लगे ओह ! तुम भी कैसी बात करती हो ? मेरे रहते हुए तुम्हारी भाभी "विधवा" नही हो सकती है तो मैं पूछता हूँ कि मेरे रहते हुए तुम कैसे विधवा हो गई ? यह सुनकर सभी लोग पुन खिल-खिलाकर हँस पडे । बहिन भी अपनी हँसी को रोक नही सकी, कहा कि भाई ! मेरे पतिदेव मर गये है इसलिये मैं विधवा हो गई हूँ पर मेरी भाभी के पतिदेव तो आप है अत आपके रहते हुए मेरी भाभी विधवा नही हो सकती है । अब कुछ बात पडित सा को समझ मे आई और गहराई से सोचकर कहा कि अच्छा । अब समझा, ऐसी बात है क्या ! ओहऽऽ मैं कितना उल्लू बन गया । उन बहिनो ने भी मेरी अच्छी हँसी करवाई । पूछा गया किन बहिनो ने ? तब पडितजी ने उनका परिचय दिया तव घर के सदस्य इस बात का रहस्य पूछने उनके पास गए तब उन्होने बताया कि हमने जव यह देखा कि पडितजी जहाँ बैठे थे वहाँ कीडी-नगरा था । जव पडितजी को बैठने के स्थान का भी विवेक नही हैं तो हमने अनुमान लगाया कि ये काशी से पढकर भले ही आये है पर इनमे विवेक-ज्ञान का अभाव है, इसीलिये हमारे अनुमान का प्रत्यक्षीकरण हमने किया और हमारा अनुमान शतप्रतिशत ठीक निकला ।

बन्धुओ ! इस कथानक से यह सवक ग्रहण करना है कि ज्ञान सीखे अवश्य पर, विवेक का जागरण जीवन मे अवश्य हो, केवल तोता रटन ज्ञान से जीवन का सद् विकास नही हो सकता है। आज स्वाध्याय करने के प्रसग से प्राय मनुष्य मात्र मूल-मूल को रट लेते है, पर उसका अर्थ क्या है ? उनका रहस्य क्या है ? यह नही जानते है, ज्ञान के आचार क्या है ? इनका भी उन्हे ज्ञान नही रहता, यही कारण है कि प्रभावमय स्वाध्याय जिसका महान् फल आत्मशुद्धि है, वह प्राप्त होने के वजाय कभी-कभी उल्टा प्रसग भी उपस्थित हो जाता है।

अत आप स्वाध्याय को स्थिति जीवन मे अपनाने से पहले सर्वप्रथम ज्ञानाचार का भेद कालाचार व इसके स्वरूप का सम्यक् वोध करे और यथा-समय स्वाध्याय, ध्यान आदि प्रक्रियाओ से आत्मशुद्धि रूप प्रशस्त पथ के पथिक बनें। इन्ही मगलमय शुभ भावो के साथ—

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२६-७-८५
शुक्रवार

२७ महाप्रयाण

(महासती श्री नगीनाकुंवरजी)

आज का प्रसग सर्वविदित है, कि व्यावर मे महासती श्री नगीना कुंवरजी का स्वर्गवास हो चुका है, अत व्याख्यान का प्रसंग तो नही है, सिर्फ उन महासतीजी के जीवन पर कुछ प्रकाश डालने का प्रसग है ।

बन्धुओ ! सयमी जीवन कितना महत्त्वपूर्ण जीवन है, इस जीवन मे जो व्रत अगीकार करते है, वे व्रत कितने विशाल एव व्यापक होते है, यह विचारने का प्रसग है । कई मनुष्य विचारते हैं, कि "व्रत प्रत्याख्यान तो जीवन मे बधन है, ये वघन तो मैं नही ले सकता हूँ । पर विचारना है कि ये व्रत-प्रत्याख्यान बधन है या वधन से मुक्ति है ।"

जो मनुष्य परिवार मे जन्म लेकर परिवार के सदस्यो के साथ अपना सम्बन्ध करके चलता है, उन्ही को अपना मानता है वह अपने विराट् जीवन को एक सकुचित घेरे मे रखकर चलता है, अपने परिवार के बन्धन मे ही बन्धा रहता है । वह व्यक्ति कही भी जाता है पर पुन लौटकर शीघ्र घर जाने की ही भावना बनी रहती है । इस प्रकार घर के बन्धन मे बन्धा हुआ होने पर वह अपना ससार और भी अधिक सकुचित कर लेता है, सिर्फ अपनी पत्नी को ही अपना मानता है । और विचार करता है कि हमारा यह दाम्पत्य जीवन अमर रहे । इस आसक्ति बन्धन मे फसा, अन्य सभी के प्रति परायापन की वृत्ति रखता है । आतरिक बन्धन से घिरा हुआ, वह इस सकुचित सासारिक बन्धन रूपी कैदखाने मे रहता हुआ, अपनी हविशो की परिपूर्ति के साथ क्या-क्या अनर्थ वृत्तियाँ जीवन मे अपना लेता है ? १ असत्य, २ अचौर्य, ३ हिंसा, ४. अब्रह्म, ५. परिग्रह आदि-आदि वृत्तियो मे उलझता हुआ, बन्धनमय जीवनयापन करता है । उसकी यह बन्धन परम्परा भव-भव तक चलती रहती है ।

इस विश्व मे एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त सभी जीव जन्म-मरण कर रहे हैं । निगोद. जिसके एक शरीर मे अनन्तानन्त जीव होते है और सचित्त जल मे सात प्रकार के जीवो की नियमा है, उसमे भी अनन्तानन्त जीव है ।

वे व्यक्ति इन अनन्त जीवो की ही नही, छ काया के जीवो की हिंसा करते रहते हैं, पर जो सकुचित घेरे से निकलकर सयम व्रत ग्रहण करते है, वे

अपने प्रथम महाव्रत की स्थिति से सभी जीवो को अभयदान देकर विराट् जीवन मे प्रवेश कर लेते हैं। जो विराट् जीवन को प्राप्त हो जाते है, वे छ' ही काया की रक्षा करते हुए आहार, पानी ग्रहण करते हैं। असत्य भाषण भी उनके छूट जाता है। अचौर्य व्रत की स्थिति से बिना किसी की आज्ञा के तृण मात्र भी वे नही उठा सकते हैं। जैसे – स्थानक मे जब साधु प्रवेश करते है, तब वे स्थानक मे रही हुई समस्त चीजो को, जो उनके कल्पनीय हैं, उसे भी बिना आज्ञा ग्रहण नही करते है, यहाँ तक कि कही स्थानक मे कलेण्डर वगैरह लगे होते है, वे भी बिना आज्ञा नही देख सकते है। यही नही यदि कपडा सीलने के लिए सुई लाने का प्रसग भी आवे तो भी वह जो कुछ सीलना है और उसे ही सीलने की आज्ञा लेकर आया है, तो वह उसी वस्त्र को सील सकता है, अन्य कुछ भी नही। अगर अन्य कुछ सीलता है, तो उसे चोरी लगती है। कार्य पूरा होने पर सूर्यास्त के पहले-पहले वह सुई पुन गृहस्थ को भोला दी जाती है। सुई भी साधु रात्रि मे स्वय के पास नही रख सकता है, इतनी सूक्ष्मरूपेण चोरी का भी उसे त्याग होता है। चौथा व्रत ब्रह्मचर्य है, जिसमे वह अपने मन की सम्पूर्ण विकारी वृत्तियो को अपने जीवन से निकाल देता है, और अनादि कालीन मोह बन्धन से छूटने हेतु नववाड ब्रह्मचर्य व्रत की परिपालना करता है, तथा पाँचवाँ अपरिग्रह व्रत जिसमे धर्म सहायक उपकरण के अलावा कुछ भी नही रखता है, उन पर भी मूर्च्छा (ममता) नही रखता है। यही नही साधु धातु का चश्मा भी अपने पास न रखे, उसमे छोटी से छोटी कील भी क्यो हो उसे भी न रखे। साधु अपने हाथ से किसी को पत्र न लिखे, न अपने नाम से मगवावे। गृहस्थ बन्द पत्र लेकर आवे तो साधु स्वय के हाथ से खोले भी नही, गृहस्थ स्वय उसे फाडकर दे तो साधु पढले और लिखाने योग्य उत्तर हो तो गृहस्थ से ही लिखावे। इस प्रकार साधु समस्त बन्धनो से छुटकारा पाकर विराट् पथ का पथिक बन जाता है। मुक्ति के मगल-मय राजपथ पर उसके चरण अग्रसित हो जाते हैं। वह सबका बन्दनीय बन जाता है।

इस विषयक एक उदाहरण है। सुधर्मा स्वामी राजगृही नगरी मे जब पधारे, तब एक लकडहारा जो कि अतीव निर्धन स्थिति मे था वह सुधर्मा स्वामी के पास आकर कहने लगा कि मुझे ससार की लालसाओ से मुक्ति का मार्ग बताओ। तब सुधर्मा स्वामी ने मुक्ति का मार्ग बताया तो उस लकडहारे ने सयम ग्रहण कर लिया। एक बार का प्रसग है, जब महाराज श्रेणिक अभयकुमार के साथ वन भ्रमण हेतु बाहर निकले हुए थे। तब वही लकडहारा मुनि वेश मे उस रास्ते से निकला तो अभयकुमार उन मुनि को वदन करने हेतु वाहन से नीचे उतरे और उन्हे विधिवत् वदन किया। अभयकुमार की यह चर्या देखकर अन्य सब कर्मचारी मन ही मन हसने लगे कि यह लकडहारा जिसको कि अभयकुमार वदन कर रहा है, उसने क्या त्याग किया ? अभयकुमार, जो कि औत्पति की

२७ महाप्रयाण

(महासती श्री नगीनाकुंवरजी)

आज का प्रसग सर्वविदित है, कि व्यावर मे महासती श्री नगीना कु वरजी का स्वर्गवास हो चुका है, अत व्याख्यान का प्रसंग तो नही है, सिर्फ उन महासतीजी के जीवन पर कुछ प्रकाश डालने का प्रसग है ।

बन्धुओ ! सयमी जीवन कितना महत्त्वपूर्ण जीवन है, इस जीवन मे जो व्रत अगीकार करते है, वे व्रत कितने विशाल एव व्यापक होते है, यह विचारने का प्रसग है । कई मनुष्य विचारते है, कि "व्रत प्रत्याख्यान तो जीवन मे बधन है, ये बधन तो मै नही ले सकता हूँ । पर विचारना है कि ये व्रत-प्रत्याख्यान बधन है या बधन से मुक्ति है ।"

जो मनुष्य परिवार मे जन्म लेकर परिवार के सदस्यो के साथ अपना सम्बन्ध करके चलता है, उन्ही को अपना मानता है वह अपने विराट् जीवन को एक सकुचित घेरे मे रखकर चलता है, अपने परिवार के बन्धन मे ही बन्धा रहता है । वह व्यक्ति कही भी जाता है पर पुन लौटकर शीघ्र घर जाने की ही भावना बनी रहती है । इस प्रकार घर के बन्धन मे बन्धा हुआ होने पर वह अपना ससार और भी अधिक सकुचित कर लेता है, सिर्फ अपनी पत्नी को ही अपना मानता है । और विचार करता है कि हमारा यह दाम्पत्य जीवन अमर रहे । इस आसक्ति बन्धन मे फसा, अन्य सभी के प्रति परायापन की वृत्ति रखता है । आतरिक बन्धन से घिरा हुआ, वह इस संकुचित सासारिक बन्धन रूपी कैदखाने मे रहता हुआ, अपनी हविशो की परिपूर्ति के साथ क्या-क्या अनर्थ वृत्तियाँ जीवन मे अपना लेता है ? १ असत्य, २ अचौर्य, ३ हिंसा, ४ अब्रह्म, ५. परिग्रह आदि-आदि वृत्तियो मे उलझता हुआ, बन्धनमय जीवनयापन करता है । उसकी यह बन्धन परम्परा भव-भव तक चलती रहती है ।

इस विश्व मे एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त सभी जीव जन्म-मरण कर रहे है । निगोद. जिसके एक शरीर मे अनन्तानन्त जीव होते हैं और सचित्त जल मे सात प्रकार के जीवो की नियमा है, उसमे भी अनन्तानन्त जीव हैं ।

वे व्यक्ति इन अनन्त जीवो की ही नही, छ. काया के जीवो की हिंसा करते रहते है, पर जो सकूचित घेरे से निकलकर सयम व्रत ग्रहण करते है, वे

अपने प्रथम महाव्रत की स्थिति से सभी जीवो को अभयदान देकर विराट् जीवन मे प्रवेश कर लेते है। जो विराट् जीवन को प्राप्त हो जाते है, वे छः ही काया की रक्षा करते हुए आहार, पानी ग्रहण करते है। असत्य भाषण भी उनके छूट जाता है। अचौर्य व्रत की स्थिति से बिना किसी की आज्ञा के तृण मात्र भी वे नही उठा सकते है। जैसे – स्थानक मे जब साधु प्रवेश करते है, तव वे स्थानक मे रही हुई समस्त चीजो को, जो उनके कल्पनीय है, उसे भी विना आज्ञा ग्रहण नही करते है, यहाँ तक कि कही स्थानक मे कलेण्डर वगैरह लगे होते है, वे भी बिना आज्ञा नही देख सकते है। यही नही यदि कपडा सीलने के लिए सुई लाने का प्रसग भी आवे तो भी वह जो कुछ सीलना है और उसे ही सीलने की आज्ञा लेकर आया है, तो वह उसी वस्त्र को सील सकता है, अन्य कुछ भी नही। अगर अन्य कुछ सीलता है, तो उसे चोरी लगती है। कार्य पूरा होने पर सूर्यास्त के पहले-पहले वह सुई पुन गृहस्थ को भोला दी जाती है। सुई भी साधु रात्रि मे स्वय के पास नही रख सकता है, इतनी सूक्ष्मरूपेण चोरी का भी उसे त्याग होता है। चौथा व्रत ब्रह्मचर्य है, जिसमे वह अपने मन की सम्पूर्ण विकारी वृत्तियो को अपने जीवन से निकाल देता है, और अनादि कालीन मोह बन्धन से छूटने हेतु नववाड ब्रह्मचर्य व्रत की परिपालना करता है, तथा पाँचवाँ अपरिग्रह व्रत जिसमे धर्म सहायक उपकरण के अलावा कुछ भी नही रखता है, उन पर भी मूर्च्छा (ममता) नही रखता है। यही नही साधु धातु का चश्मा भी अपने पास न रखे, उसमे छोटी से छोटी कील भी क्यो हो उसे भी न रखे। साधु अपने हाथ से किसी को पत्र न लिखे, न अपने नाम से मगवावें। गृहस्थ बन्द पत्र लेकर आवे तो साधु स्वय के हाथ से खोले भी नही, गृहस्थ स्वय उसे फाडकर दे तो साधु पढले और लिखाने योग्य उत्तर हो तो गृहस्थ से ही लिखावे। इस प्रकार साधु समस्त बन्धनो से छुटकारा पाकर विराट् पथ का पथिक बन जाता है। मुक्ति के मगल-मय राजपथ पर उसके चरण अग्रसित हो जाते हैं। वह सबका बन्दनीय बन जाता है।

इस विषयक एक उदाहरण है। सुधर्मा स्वामी राजगृही नगरी मे जब पधारे, तब एक लकडहारा जो कि अतीव निर्धन स्थिति मे था वह सुधर्मा स्वामी के पास आकर कहने लगा कि मुझे ससार की लालसाओ से मुक्ति का मार्ग बताओ। तब सुधर्मा स्वामी ने मुक्ति का मार्ग बताया तो उस लकडहारे ने सयम ग्रहण कर लिया। एक बार का प्रसंग है, जब महाराज श्रेणिक अभयकुमार के साथ वन भ्रमण हेतु बाहर निकले हुए थे। तब वही लकडहारा मुनि वेश मे उस रास्ते से निकला तो अभयकुमार उन मुनि को वदन करने हेतु वाहन से नीचे उतरे और उन्हे विधिवत् वदन किया। अभयकुमार की यह चर्या देखकर अन्य सव कर्मचारी मन ही मन हसने लगे कि यह लकडहारा जिसको कि अभयकुमार वदन कर रहा है, उसने क्या त्याग किया? अभयकुमार, जो कि औत्पति की

बुद्धि के मालिक थे। वे अपने बुद्धि बल से उन लोगो के भावो को पहचान कर उनकी भ्रमणा निकालने हेतु एक योजना बनाई। नगर भर मे ऐलान करवाया कि तीन करोड सौनया, तीन शर्त पर मिल सकती है, जिसको चाहिये वह लेने के लिए राजसभा मे उपस्थित हो जाय। बहुत वडी मात्रा मे भीड इकट्ठी हो गई, राजसभा प्रजाजनो से खचाखच भर गई, तब अभयकुमार ने अपनी शर्त जाहिर की—

१. पहली शर्त है कि जो पुरुष अपने जीवन मे पूर्ण ब्रह्मव्रत की आराधना करे, तीन करण तीन योग से तो उसे एक करोड सौनया मिलेगा।

२ दूसरी शर्त है कि जो तीन करण तीन योग से अहिसा व्रत की आराधना करे, किसी भी सूक्ष्म, बादर, त्रस, स्थावर जीवो की हिसा नही करे, उसे भी एक करोड सौनया मिलेगा, और

३ तीसरी शर्त है कि जो अग्निकाय के आरम्भ का सम्पूर्णतया आजीवन तीन करण तीन योग से त्याग करे, उसे भी एक करोड सौनया मिलेगा।

इन तीनो शर्तों के साथ तीन करोड सौनया मिलने की घोषणा कराई गई जिसे श्रवण करके सब आहिस्ते-आहिस्ते खिसकने लगे। तब अभयकुमार उन कर्मचारियो को कहने लगे कि देखो मैंने जब उस लकडहारे को जो कि अब मुनि बन चुके है, पॉच महाव्रत जिन्होने अगीकार कर लिया है—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप, उनको वदना की तो आप लोग हस पडे, आपकी यह विचारधारा थी कि यह लकडहारा जो कल तो दीन, हीन अवस्था को प्राप्त था और आज साधु बन गया तो अभयकुमार भी इसको वदना कर रहे है, चरणो का स्पर्श कर रहे है, आखिर इसने क्या त्याग किया है ? पर अब आप समझ चुके होगे, उसने जो त्याग किया है, वह त्याग स्वीकार करने का सामर्थ्य क्या हर किसी मे हो सकता है ?

क्योकि मेरे बताये इन तीन व्रतो मे से कोई एक व्रत को भी स्वीकारने के लिए तैयार नही है, जबकि प्रत्येक के पीछे एक-एक करोड सौनया देने को तैयार है। तो विचार करिये वह लकडहारा जिसने ऐसा एक व्रत नही अपितु पॉच महाव्रत अगीकार कर सासारिक-बन्धनो से निवृत्त होकर मुनि रूप मे पालन कर रहा है, अत उसका त्याग तीन करोड सौनयो से भी कई गुणाधिक है।

बन्धुओ ! त्याग प्रत्याख्यान का महत्त्व पहचानो ! त्यागी महापुरुषो का जीवन कितना दिव्य होता है। वे मानवो के तो क्या सुरासुरो के इन्द्रो के भी वदनीय बन जाते है। बाह्य वधनो से ही नही वरन् आभ्यन्तर जवरदस्त कर्मो

के बधन से भी मुक्त होते जाते है। अमित आत्मीय वैभव को समुलब्ध कर लेते है।

जो महासतीजी सयमी जीवन मे जिन आत्मीय गुणो की ज्योति को प्रज्वलित कर जो आज स्वर्गवास हो गये है, यदि उन्हे सच्ची श्रद्धाजलि अर्पित करना चाहते है, तो इन सासारिक बधनो से कुछ परे हटे। बधन से परे हटने का एक मात्र उपाय है, त्याग-प्रत्याख्यान। उन्हे जीवन मे स्वीकार कर मुक्ति के प्रशस्त राजमार्ग पर आगे बढे। इन्ही शुभ भावो के साथ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२७-७-८५
शनिवार

बुद्धि के मालिक थे। वे अपने बुद्धि बल से उन लोगो के भावो को पहचान कर उनकी भ्रमणा निकालने हेतु एक योजना बनाई। नगर भर मे ऐलान करवाया कि तीन करोड सौनया, तीन शर्त पर मिल सकती है, जिसको चाहिये वह लेने के लिए राजसभा मे उपस्थित हो जाय। बहुत बडी मात्रा मे भीड इकट्ठी हो गई, राजसभा प्रजाजनो से खचाखच भर गई, तब अभयकुमार ने अपनी शर्त जाहिर की—

१. पहली शर्त है कि जो पुरुष अपने जीवन मे पूर्ण ब्रह्मव्रत की आराधना करे, तीन करण तीन योग से तो उसे एक करोड सौनया मिलेगा।

२ दूसरी शर्त है कि जो तीन करण तीन योग से अहिंसा व्रत की आराधना करे, किसी भी सूक्ष्म, बादर, त्रस, स्थावर जीवो की हिंसा नही करे, उसे भी एक करोड सौनया मिलेगा, और

३ तीसरी शर्त है कि जो अग्निकाय के आरम्भ का सम्पूर्णतया आजीवन तीन करण तीन योग से त्याग करे, उसे भी एक करोड सौनया मिलेगा।

इन तीनो शर्तों के साथ तीन करोड सौनया मिलने की घोषणा कराई गई जिसे श्रवण करके सब आहिस्ते-आहिस्ते खिसकने लगे। तब अभयकुमार उन कर्मचारियो को कहने लगे कि देखो मैंने जब उस लकडहारे को जो कि अब मुनि बन चुके है, पाँच महाव्रत जिन्होने अगीकार कर लिया है—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप, उनको वदना की तो आप लोग हस पडे, आपकी यह विचारधारा थी कि यह लकडहारा जो कल तो दीन, हीन अवस्था को प्राप्त था और आज साधु बन गया तो अभयकुमार भी इसको वदना कर रहे है, चरणो का स्पर्श कर रहे है, आखिर इसने क्या त्याग किया है? पर अब आप समझ चुके होगे, उसने जो त्याग किया है, वह त्याग स्वीकार करने का सामर्थ्य क्या हर किसी मे हो सकता है?

क्योकि मेरे बताये इन तीन व्रतो मे से कोई एक व्रत को भी स्वीकारने के लिए तैयार नही है, जबकि प्रत्येक के पीछे एक-एक करोड सौनया देने को तैयार है। तो विचार करिये वह लकडहारा जिसने ऐसा एक व्रत नही अपितु पाँच महाव्रत अगीकार कर सासारिक-बन्धनो से निवृत्त होकर मुनि रूप मे पालन कर रहा है, अत उसका त्याग तीन करोड सौनयो से भी कई गुणाधिक है।

बन्धुओ! त्याग प्रत्याख्यान का महत्त्व पहचानो! त्यागी महापुरुषो का जीवन कितना दिव्य होता है। वे मानवो के तो क्या सुरासुरो के इन्द्रो के भी वदनीय बन जाते है। बाह्य बधनो से ही नही वरन् आभ्यन्तर जबरदस्त कर्मो

के बधन से भी मुक्त होते जाते है। अमित आत्मीय वैभव को समुलब्ध कर लेते है।

जो महासतीजी सयमी जीवन मे जिन आत्मीय गुणो की ज्योति को प्रज्वलित कर जो आज स्वर्गवास हो गये है, यदि उन्हे सच्ची श्रद्धाजलि अर्पित करना चाहते है, तो इन सासारिक बधनो से कुछ परे हटे। बधन से परे हटने का एक मात्र उपाय है, त्याग-प्रत्याख्यान। उन्हे जीवन मे स्वीकार कर मुक्ति के प्रशस्त राजमार्ग पर आगे बढे। इन्ही शुभ भावो के साथ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२७-७-८५
शनिवार

२८

मृत्यु भी महोत्सव है

(७२ दिन के संथारे के साथ महासती श्री वल्लभकुंवरजी का महाप्रयाण)

कल दिन एक महासती के स्वर्गवास का प्रसग आया, उस प्रसग से उनके जीवन पर प्रकाश डाला गया, आज पुन प्रसग आया है। जिन महासतीजी का सथारा लम्बे समय से चल रहा था वह कल रात्रि को सीझ गया है, अत. व्याख्यान का प्रसग तो नही रहा है, लेकिन उन महासतीजी के जीवन के विषय मे चिंतन करना सभी के लिए हितावह है।

दुर्लभ अगो की सप्राप्ति बहुतो को होती है, और कई आत्माएँ उनका फायदा उठाकर मोक्ष मार्ग की पथिक भी बनती है, पर ऐसी आत्माएँ विरल ही होती हैं, जो अपने इसी जीवन मे समग्ररूपेण रूपान्तरण करले, वस्तुत उन्ही आत्माओ की विशेषता है। महासतीजी वल्लभकुवरजी आज सभी के कितने वल्लभ बन गये हैं, कौन जानता था कि ये महासतीजी प्रभु महावीर एव क्रान्तिकारी युवाचार्यो के इस शासन मे एक जाज्वल्यमान नक्षत्र के रूप मे एक ऐसा अश्रुतपूर्व आदर्श उपस्थित करेंगी।

इन महासतीजी का जीवन कोई अक्षरीय विद्वता से परिपूरित नही था, विद्वान् कौन होता है? सिर्फ अक्षरीय ज्ञान से कोई विद्वान् नही होता है। वास्तविक विद्वान् वे ही हैं, जो आत्मस्थ बन आत्मिक गुणो की ज्योति से अपने जीवन को प्रकाशमय बना लेते है।

तीर्थेश प्रभु महावीर ने जहाँ शास्त्रो मे साधु-साध्वियो के जीवन का उल्लेख किया उसमे अनेको के विषय मे यह उल्लेख आया कि अनेक भव्य-साधक उसी भव मे सम्पूर्ण ममत्व भाव की स्थिति से रहित बनकर आत्म-भाव मे तल्लीन हो गये। इतिहास के पन्ने खोलने पर मैं सोचता हूँ कि वहाँ भी इतना लम्बा सथारा किसी के चला हो, यह पढने को नही मिला। ६२ दिन का सथारा पूर्व मे इसी शासन मे हुआ जरूर, पर ७२ दिन का यह अद्वितीय सथारा प्रथम ही सुनने को मिला।

शरीर का ममत्व छोडना कोई सहज बात नही है। शरीर के ममत्व को छोडकर अन्तिम समय की साधना कोई कम महत्त्व की चीज नही है, राग-द्वेष की चित्त वृत्तियो का शमन करके अपने आप मे आत्मस्थ हो जाना वहुत दुर्लभ है। यह समाधि है, इसका स्वरूप अतीव गहन है। समाधि का तात्पर्य है—

जहाँ मलिन विचार राग-द्वेष से परिपूरित्त जो वृत्तियाँ है, उससे परे हटकर शान्त दान्त बन जाना, यही सच्ची समाधि है, साधना जीवन मे कितनी हुई और कितनी नही हुई, इसका रिजल्ट अन्तिम समय मे आता है, हमारे सुकृत्यो की परछाया अन्तिम समय मे आती है, यदि अन्तिम समय की साधना सुधर जाती है, तो भव्यात्मा के अनेक जन्म-मरण की स्थिति समाप्त हो सकती है। बहुत जल्दी मोक्ष प्राप्ति का प्रसग बन सकता है। अन्तिम समय को सुधारने के लिए पहले से आत्मा को सलेखित करना अति आवश्यक है। सलेखना के साथ सथारा की स्थिति जीवन मे आती है तभी वह सथारा देहातीत अवस्था को प्राप्त हो, आत्मरमण के सम्मुख आ सकता है और वह आत्मा सच्चे अर्थो मे पडित की पदवी प्राप्त करती है।

गीता के अन्दर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से प्रश्न किया कि—"भगवन्! आज दुनिया मे बहुत से व्यक्ति अपने आप को विद्वान् शिरोमणि मानते है, तो क्या वे वस्तुत पडित है? विद्वान् है?" तब कृष्ण महाराज ने कहा कि नही सिर्फ मानने मात्र से कोई विद्वान् या पडित्त नही होता वरन् विद्या और विनय से जो सम्पन्न है और प्रत्येक आत्मा के साथ समदर्शिता की स्थिति लेकर जो चलते है, वही पडित हैं। जैसे कि गीता का श्लोक है—

"विद्या विनय सम्पन्ने, बाह्मणी गवि हस्तिनि।
शुनि चेव श्वपाकेच, पण्डिता समर्दाशनः॥"

जैन आगम मे भी बताया है, कि जो लाभ और अलाभ मे समभाव रखता है, वही पडित है। सस्कृत मे व्युत्पत्ति करते हुए बतलाया है कि "पापात् बिभेति इति पडित" जो साधना की स्थिति से आगे बढ रहा है, और उसकी साधना की चतुर्दिक् मे भूरि-भूरि प्रशसा हो रही है, उस समय प्रशसा मे फूलकर ऐसा कार्य न करना, जो श्रमण सस्कृति से निर्गन्थपने की स्थिति से विरुद्ध हो तथा कोई निन्दा करे तो भी किंचित् मात्र भी निन्दा करने वालो के प्रति द्वेष भाव नही लाना प्रत्युत निरन्तर राग-द्वेष की वृत्तियो से ऊपर उठने की साधना मे सलग्न बने रहना, वास्तविक आराधना है। साधना होती है आत्म-समाधि के लिये। उस साधना से, उस आतम समाधि से कई एक लब्धियाँ भी उपलब्ध हो सकती है, चूकि साधना चमत्कार लब्धियो की प्रसव भूमि है, पर चमत्कार दिखाना साधना का आदर्श नही है न उद्देश्य ही है। ज्ञानीजनो का फरमाना है कि अपना वास्तविक कल्याण चाहते हो तो चमत्कार से बचकर सदाचार का अभ्यास करो, सदाचार ही ससार का महान् चमत्कार है। अपनी प्राप्त लब्धियो को गोपकर चलो। ऐसी स्थिति जिसे प्राप्त हो जाती है, वही यथार्थ मे पंडित की सज्ञा को प्राप्त हो सकता है।

सथारे की स्थिति मे अपनी महिमा का प्रसार देखकर प्रफुल्लित न हो और किसी के द्वारा निन्दा किये जाने पर खिन्न न हो।

"समोनिन्दापससासु"

यह आदर्श जीवन मे उतारे । ससार के न किसी भी प्रकार के इस लोक की कामना रहे न परलोक की कामना रहे, न इस लोक-परलोक की कामना रखी जाय । सभी प्रकार की भौतिक कामनाओ से हटकर आत्मा मे रमण करते रहना सथारे की सार्थकता है ।

ऐसी आत्मलीनता मुझे स्वर्गीय गुरुदेव आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा. मे देखने को मिली, जिनके शरीर मे भयकर कैंसर जैसी व्याधि होते हुए भी किस शान्त दान्त भाव से उसको उन्होने सहन किया, जिसे देखकर उदयपुर के डॉक्टर शूरवीरसिहजी, रामावतारजी एव बम्बई से डॉक्टर बोरजस की रिपोर्ट भी आयी, उसमे भी यही भाव थे कि इस बीमारी को देखते हुए जीना बहुत मुश्किल है, यह तो इन महात्मा के तपोबल का ही प्रभाव है कि वे शान्त भाव से आगे बढ रहे हैं, डॉक्टर रामावतार ने साफ कहा कि इन महात्मा के सामने तो हमारी डॉक्टरी थ्योरी फेल हो चुकी है ।

जब स्वर्गीय गुरुदेव ने सथारा ग्रहण किया तब अत्यन्त सजगता के साथ मेरे से सथारा की पाटियो का उच्चारण करवाते हुए ग्रहण किया था । यह बतलाते रहे कि यह पाटो बोलो, यह पाटी बोलो । २६ घटे तक सथारा चला जिसे देखकर जनता आश्चर्यचकित हो गई । किसी आचार्य के इस प्रकार सथारा चलना, देखने-सुनने को कम मिलता है ।

स्वर्गीय गुरुदेव ने अपनी वृद्धावस्था मे भी श्रमण सस्कृति की सुरक्षा बनाये रखने के लिए जो एक दीक्षा-शिक्षा प्रायश्चित-चातुर्मास एक आचार्य के सान्निध्य मे हो, का क्रान्तिकारी कदम उठाया, वही आज पल्लवित, पुष्पित फलित होता परिलक्षित हो रहा है । स्वर्गीय गुरुदेव को सयम प्रिय था, पद नही, इसलिए उन्होने सयम की सुरक्षा के लिए उपाचार्य जैसे सर्व सत्ता सम्पन्न पद की भी कुर्बानी दे दी । यह शासन बीस-बाइस वर्षो से किसी प्रकार प्रगतिशील है, यह आप सबके सामने है ।

आज जो महासतीजी के स्वर्गवास के समाचार मिले है । उनके शरीर मे भी असाध्य बीमारी की स्थिति बन गई थी । वृद्धावस्था भी आ चुकी थी । एक दिन जब बीमारी ने उग्र रूप धारण किया । तब शरीर की स्थिति देखते हुए एव महासतीजी के बार-बार आग्रह को देखते हुए, कि कही मैं खाली नही चली जाऊँ, उन्हे सथारा करा दिया गया, बाद मे जब सथारा लम्बा चलने लगा तो उन्हे सूचित भी किया गया कि आप पारणा कर सकते हैं, आपके सथारे मे भी आगार रखा गया है, किन्तु महासतीजी अपनी प्रतिज्ञा मे दृढ रही, वह कभी भी सथारे को छोडने के लिए तैयार नही हुईं ।

ऐसी स्थिति मे यदि उन्हे जबरदस्ती आहार करवाने की स्थिति बने तो यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि शरीर मे असमाधि उत्पन्न हो सकती है, जो उनके जीवन के लिए खतरा बन सकता है। समाचार मिला कि महासतीजी अत्यन्त प्रसन्नता के साथ समभाव की साधना मे रमण करती हुई, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर आगे बढती रही थी, आज उन्ही महासतीजी के स्वर्गवास का समाचार मिला है। उनकी समभाव की साधना की यह सारी रिपोर्ट भी दर्शनार्थी भाइयो से बराबर मिलती रही थी, अपूर्व शाति, सौम्यता और सुख समाधिपूर्वक महासतीजी का सथारा चला, महासतीजी वस्तुत विद्वान् थी, पडित थी। जहाँ विद्वता सिर्फ कलात्मक हो, वह वास्तविक विद्वता नही है। पर जहाँ विद्वता रचनात्मक हो, जीवन निर्माण की भूमिका अदा करती हो वह विद्वता व्यक्ति को सच्चा विद्वान् बनाती है। जितने आगम है, उन्ही आगमो की मात्र अक्षरीय रूप चारदीवारी मे आबद्ध रहकर अपने आपको भले ही विद्वान् मान ले, पर ज्ञानीजन कहते हैं कि वह सही विद्वान् नही है पर जो आध्यात्मिक जीवन और आत्मीय गुणो को जागृत विकसित करने की स्थिति से सयमनिष्ठ बनकर सम्यक् आचरण की दिशा मे आगे बढता है, वही सच्चा विद्वान् है। अपने सयमी जीवन को सवारने वाला ही प्राणीमात्र को अभय दे सकता है, उस अभय देने वाली आत्मा की समाधि प्राप्त हो सकती है।

दूसरो को शान्ति देने वाली आत्मा स्वय अखूट शाति प्राप्त कर सकती हैं, अशाति देने वाले को कभी शाति नही मिलती। क्रिया और प्रतिक्रिया ये दोनो साथ-साथ चलती है। यह बहुत बडा वैज्ञानिक तथ्य है। अहिंसक के समक्ष हिंसक भी अपना वैर विरोध भूल जाते है और हिंसक को देखकर तो उल्लेख आता है कि वनस्पति भी भयभीत हो जाती है। अत: आप परिपूर्ण अहिंसक बनें, सभी को शाति दे, समाधि समुलब्ध करायें।

बन्धुओ! जो सभी को भयभीत कर असमाधि उत्पन्न करता है, वह स्वय कैसे समाधि सम्प्राप्त कर सकता है? प्राणी मात्र के अभय प्रदाता प्रभु महावीर ने समवशरण मे प्रवेश करने वालो के लिए जिन पाँच अभिगमो का विधान किया उसमे बताया कि धार्मिक स्थान जो कि निरवद्य स्थान है वहाँ सभी को अभयदान मिलने का प्रसग बनता है। अत समवशरण की भूमि मे उत्तरासन्न-पूर्वक सम्पूर्ण सचित्त वस्तुओ का त्याग करके प्रवेश किया जाता है।

चातुर्मास के इन पुण्यमय दिनो मे कम से कम इस पवित्र धर्म स्थान मे छोटे से छोटे जीव को भी अपनी तरफ से अशाति असमाधि उत्पन्न नही करना चाहिये। साधु जीवन इसी का प्रतीक है कि वह किसी प्राणी को कष्ट देना, सताना नही चाहता है, चाहे स्वयं कितने ही कष्ट उठा लेता है। इसी प्रकार समाधिमय साधना करने वाला ही अन्तिम समय मे पूर्णरूपेण समाधि रूप पडित मरण की स्थिति को प्राप्त कर सकता है। इस पडित मरण के समाचार

के उपलक्ष्य मे यह प्रतिज्ञा करे कि अपना जीवन समाधिमय बनाकर चले। किसी भी आत्मा को असमाधि नही पहुँचाये। यदि २४ घण्टो मे परिपूर्ण रूपेण अभय की साधना नही कर सके तो कम से कम १ घण्टा भी जगत् के जीवो को अभयदान देने का अभ्यास करना चाहिये। ऐसी अभ्यास वृत्ति से अतिम समय को सुसफल बनाया जा सकता है, अभ्यास से सब कुछ साध्य है। जिनका सम्पूर्ण जीवन ममत्व से अलिप्त है, उनका अन्तिम समय मे एकाएक सभी से ममत्व छूट जाय, यह कम सम्भव है।

जीवनभर अध्यवसायो की जिन स्थितियो से मानव गुजरता है, अन्तिम समय मे वे ही अध्यवसाय प्राय बने रहते है। जो असमाधि से परिपूरित जीवन को लेकर चल रहा है, उसका अन्तिम समय समाधिमय बनना कठिन है। विचार करिये। आप जिनकी ममता से सारी जिन्दगी व्यतीत कर देते है। क्या वह ममता अन्तिम समय मे दूर हो सकती है ? जल्दी से नही। ७२ दिन का यह दिव्य सथारा हमारे लिये प्रेरणा स्रोत बन चुका है। वे महासतीजी जो भद्रिक भाव से साधना करते रहे। उनके ७२ दिन का सथारा आज आप श्रवण कर रहे है। एक जीवन भी यदि पडित मरण से मृत्यु मे परिवर्तित हो जाय तो अवश्यमेव अतिशीघ्र मोक्षगामी बना जा सकता है।

शास्त्रो का अध्ययन, सयम का पालन प्रत्येक प्राणी को अभयदान देना ये सभी सद् अनुष्ठान समाधि के ही हेतु है। उन सती के भावात्मक जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर जो अपने जीवन को शुभ भद्रिक एव सरल भावो से परिपूरित करेगे तो समाधिमय बनते हुए अन्तिम घडियो मे दिव्य समाधि की स्थिति को सप्राप्त कर सकेगे।

उन महासतीजी के गुणमय भावमय जीवन को स्मृति मे रखते हुए उनसे सतत प्रेरणा लेते रहेगे और सभी प्राणियो को समाधि पहुँचायेगे, अभयदान देगे तो भव्यात्माओ का जीवन भी एक दिन अवश्यमेव मगलमय बनेगा।

मोटा उपाश्रय
घाटकोटर, बम्बई

२८–७–८५
रविवार

२६ ज्ञान का ज्ञान हो

तीर्थंकर भगवन्तो ने इस मनुष्य जाति के शरीर मे रहकर सुसाधना के द्वारा घनघाती कर्म क्षय करके केवलज्ञान एव केवलदर्शन प्राप्त किया, तदनुसार चार तीर्थ की स्थापना की तथा उपदेश की धारा मे द्वादशागी का ज्ञान फरमाया। साथ ही यह भी बतलाया कि सिर्फ द्वादशागी तक ही ज्ञान सीमित नही है, वरन् उससे भी आगे ज्ञान है।

महाप्रभु ने मति, श्रुत, अवधि, मनपर्याय और केवलज्ञान के भेद से ज्ञान को पाँच भागो मे विभक्त किया है। इन ५ प्रकार के ज्ञानो मे सारा ज्ञान समाहित हो जाता है। जिस समय शरीर मे रहती हुई आत्मा केवलज्ञान और केवलदर्शन की उपलब्धि के बाद जब पाँच ज्ञानो का प्रतिपादन करती है उस समय वह आत्मा रूपी एव साकार अवस्था मे रहती है। पर जब वही आत्मा सिद्ध बन जाती है, तब वह निराकार और अरूपी अवस्था मे आ जाती है।

प्रार्थना की कडियो मे जो ये निराकार, साकार शब्द आये है। वे ससारी और सिद्ध आत्मा की अपेक्षा से है। साकार और निराकार यह आत्मा का ही भिन्न-भिन्न स्वरूप है। चैतन्य रहित जड पदार्थ भी साकार-निराकार दोनो तरह के होते हैं, जैसे जो मकान है, स्तम्भ है, वे साकार है, पर धर्मास्तिकाय जो कि चैतन्यरहित है, उसका कोई आकार नही है। यहाँ प्रार्थना की कडियो मे जड के साकार, निराकारपने का कथन नही है। वरन् सचेतन आत्मा के लिये कथन आया है, और वह सचेतन आत्मा साकार अवस्था मे रही पुरुषार्थ बल से अपनी अष्ट-कर्म बेडी तोडकर अनन्तज्ञान/केवलज्ञान की निराकार अवस्था को प्राप्त कर स्वामी बन सिद्ध रूप मे पहुँच सकती है, पर कब ? जब वह कर्म आच्छादित अनन्तज्ञान राशि का बोध करके उसे प्राप्त करने के लिये कटिबद्ध हो जाये। ज्ञान की अनन्तता के विषय मे क्या कहा जाय।

एक बार स्थूलिभद्र ने पूर्वो का अध्ययन करते हुये भद्रबाहु स्वामी से जिज्ञासा की कि भगवन् ! मुझे कितना ज्ञान हो गया और कितना ज्ञान होना अवशेष है, तब भद्रबाहु स्वामी ने फरमाया कि हे आयुष्मान् ! कल्पना करो कि एक विशाल समुद्र जो अथाह जल से परिपूरित है, उसमे से चिडियाँ अपनी चोच मे जितना पानी ग्रहण कर सकती है, उतना सा ज्ञान अभी तक तुम्हे हुआ

है। ज्ञान—अथाह समुद्र के पानी की तरह अनन्त है, अभी बहुत ज्ञान करना अवशेष है।

बन्धुओ! जब स्थूलिभद्र जैसे ज्ञानी के विषय मे भी भद्रबाहु स्वामी ने यह बात फरमायी, तो फिर हमारे ज्ञान की क्या कुछ स्थिति है, इसे हम स्वय पहिचानने की कोशिश करे। और अत्यन्त विनीत भावो के साथ अनन्त ज्ञान राशि को प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ रत बने।

शास्त्र मे आनेवाली वर्णमाला का तात्पर्य है, अक्षर क, ख, ग इत्यादि। इनका सामूहिक रूप शब्द कहलाता है, शब्दो के समूह से वाक्य बनते है। उन्ही वाक्यो से जो दूसरो को ज्ञान होता है, वह ज्ञान, मति और श्रुत ज्ञान है, जो कि ५ इन्द्रियो और मन की स्थिति से होता है। विशिष्ट ज्ञान पाने के लिये विशिष्ट पुरुषार्थ करना होगा। इसके लिए एक रूपक है—किसान जब यह समझता है कि यह जमीन मक्का है, गन्ना है, तब तो वह पुरुषार्थ करना छोड सकता है, पर जमीन मिलने मात्र से यह नही समझा जा सकता, और न ही उससे उसकी उदर पूर्ति ही होती है। बीज बोने आदि रूप पुरुषार्थ करने पर ही उसे मक्का, गन्ना आदि उदर-पूर्ति के साधन प्राप्त हो सकते है। इसी प्रकार श्रुत ज्ञान रूपी शास्त्र जमीन के तुल्य है, इससे ज्ञान रूपी फसल तैयार करना है। ज्ञान रूपी फसल तैयार करने के लिये सत्पुरुषार्थी बनना नितान्त आवश्यक है। शास्त्रो का चिन्तन मनन पूर्वक पठन, पाठन वीतराग वाणी के श्रवण को आगे बढाने वाला है। पर सिर्फ शास्त्रो का अक्षरीय ज्ञान हासिल कर लेना, अस्वाध्याय, स्वाध्याय के ज्ञाता बन जाना, वीतराग वाणी कई बार श्रवण कर लेना पर्याप्त नही है। यह सब तो जमीन की तैयारी है, किन्तु जब गहन चितन मनन के साथ आत्मा की अनन्त शक्तियो को प्राप्त करने के लिये, भीतरी ज्ञान जागृत करने के लिये मन और इन्द्रियो से होने वाले ज्ञान तक ही सीमित न रहकर आत्मा से होने वाली प्राप्ति मे सत्पुरुषार्थशील बनेगे तब ही वास्तविक अतिन्द्रिय ज्ञान की प्राप्ति हो सकेगी। यथार्थ मे यह आत्मा की फसल तैयार करना होगा। जिससे परम तृप्ति प्राप्त हो सकती है।

ज्ञान प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो तरह का बतलाया गया है, इन्द्रियो और मन की सहायता से होने वाला मति और श्रुत ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। और आत्म मात्र की अपेक्षा अवधि, मनपर्याय तथा केवलज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है। यह कथन पारमार्थिक कथन की अपेक्षा से जानना चाहिये। क्योकि इन्द्रिय और मन से होने वाले ज्ञान को व्यावहारिक प्रत्यक्ष भी माना गया है।

मैं ज्ञानाचार के जिन-जिन आठ भेदो की चर्चा कुछ दिनो से आपके सामने कर रहा हूँ। उसमे सर्वप्रथम कालाचार के स्वरूप का प्रतिपादन चल रहा है। बन्धुओ! एक विद्वान् सारी जिन्दगी पुस्तक एव शास्त्रो को पढने मे

है। ज्ञान—अथाह समुद्र के पानी की तरह अनन्त है, अभी बहुत ज्ञान करना अवशेष है।

बन्धुओ! जब स्थूलिभद्र जैसे ज्ञानी के विषय मे भी भद्रबाहु स्वामी ने यह बात फरमायी, तो फिर हमारे ज्ञान की क्या कुछ स्थिति है, इसे हम स्वय पहिचानने की कोशिश करे। और अत्यन्त विनीत भावो के साथ अनन्त ज्ञान राशि को प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ रत बने।

शास्त्र मे आनेवाली वर्णमाला का तात्पर्य है, अक्षर क, ख, ग इत्यादि। इनका सामूहिक रूप शब्द कहलाता है, शब्दो के समूह से वाक्य बनते है। उन्ही वाक्यो से जो दूसरो को ज्ञान होता है, वह ज्ञान, मति और श्रुत ज्ञान है, जो कि ५ इन्द्रियो और मन की स्थिति से होता है। विशिष्ट ज्ञान पाने के लिये विशिष्ट पुरुषार्थ करना होगा। इसके लिए एक रूपक है—किसान जब यह समझता है कि यह जमीन मक्का है, गन्ना है, तब तो वह पुरुषार्थ करना छोड सकता है, पर जमीन मिलने मात्र से यह नही समझा जा सकता, और न ही उससे उसकी उदर पूर्ति ही होती है। बीज बोने आदि रूप पुरुषार्थ करने पर ही उसे मक्का, गन्ना आदि उदर-पूर्ति के साधन प्राप्त हो सकते है। इसी प्रकार श्रुत ज्ञान रूपी शास्त्र जमीन के तुल्य है, इससे ज्ञान रूपी फसल तैयार करना है। ज्ञान रूपी फसल तैयार करने के लिये सत्पुरुषार्थी बनना नितान्त आवश्यक है। शास्त्रो का चिन्तन मनन पूर्वक पठन, पाठन वीतराग वाणी के श्रवण को आगे बढाने वाला है। पर सिर्फ शास्त्रो का अक्षरीय ज्ञान हासिल कर लेना, अस्वाध्याय, स्वाध्याय के ज्ञाता बन जाना, वीतराग वाणी कई बार श्रवण कर लेना पर्याप्त नही है। यह सब तो जमीन की तैयारी है, किन्तु जब गहन चिंतन मनन के साथ आत्मा की अनन्त शक्तियो को प्राप्त करने के लिये, भीतरी ज्ञान जागृत करने के लिये मन और इन्द्रियो से होने वाले ज्ञान तक ही सीमित न रहकर आत्मा से होने वाली प्राप्ति मे सत्पुरुषार्थशील बनेंगे तब ही वास्तविक अतिन्द्रिय ज्ञान की प्राप्ति हो सकेगी। यथार्थ मे यह आत्मा की फसल तैयार करना होगा। जिससे परम तृप्ति प्राप्त हो सकती है।

ज्ञान प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो तरह का बतलाया गया है, इन्द्रियो और मन की सहायता से होने वाला मति और श्रुत ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। और आत्म मात्र की अपेक्षा अवधि, मनपर्याय तथा केवलज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान हैं। यह कथन पारमार्थिक कथन की अपेक्षा से जानना चाहिये। क्योकि इन्द्रिय और मन से होने वाले ज्ञान को व्यावहारिक प्रत्यक्ष भी माना गया है।

मैं ज्ञानाचार के जिन-जिन आठ भेदो की चर्चा कुछ दिनो से आपके सामने कर रहा हूँ। उसमे सर्वप्रथम कालाचार के स्वरूप का प्रतिपादन चल रहा है। बन्धुओ! एक विद्वान् सारी जिन्दगी पुस्तक एव शास्त्रो को पढने मे

खपा देता है। दूसरो को भी पढा देता है, पर क्या उसने यथार्थ मे पुस्तके पढी है, जब तक जीवन मे रूपान्तरण नही आवे तव तक उसका पढना, पढना नही है। स्वाध्याय और शास्त्र पठन के साथ ही जव किसी के जीवन मे नही परिवर्तन आने लगता है, उत्तेजना कम होती है। ज्ञानी के ज्ञान की वास्तविक फसल जिसके जीवन मे लहलहाती है, तो हम यह कह सकते है, कि उस व्यक्ति ने ज्ञान की सम्यक् आराधना की है।

यदि शास्त्र पढले पर परिवर्तन कुछ भी नही आये, सिर्फ वह ज्ञान के अहं मे डूबा रहे, अपने आपको पडित मानता रहे, यदि मानले कि मेरे समान कोई ज्ञानी नही है तो अह का वह कीडा उसके आध्यात्मिक जीवन मे "घुन" का काम करता है। जैसे खेती मे जब घुन लग जाता है तो भारी फसल नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार उस तथाकथित ज्ञानी की ज्ञान रूपी फसल सिर्फ अक्षरीय ज्ञान तक ही सीमित रह जाती है। आगे नही पहुँच पाती है। वन्धुओ! आज यह स्थिति बहुतो की हो रही है, कपडे की चिन्दी पा लेने मात्र से वन्दर बजाज नही बन सकता है। वैसे ही थोडा सा ज्ञान मात्र हो जाने से ही आज के कई साधक अपने आपको बहुत बडे ज्ञानी समझने लगते है, लेकिन उनका यह मानना उन्ही के पतन का कारण है। वर्तमान मे अवधिज्ञान का सम्पूर्णत: विच्छेद नही हुआ है, सिर्फ परम अवधिज्ञान का ही विच्छेद हुआ है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आज भी व्यक्ति को अवधिज्ञान हो सकता है और श्रुतज्ञान के साधनो की तो कोई कमी नही है। साधना के बल से श्रुतज्ञान मे विशिष्टता लाई जा सकती है, परन्तु वर्तमान मे कई मनुष्य थोडे से श्रुतज्ञान मे ही सतुष्ट करके विराम ले लेते है, यह समझ लेते है कि मैने वहुत ज्ञान अर्जित कर लिया है। उनके इस अह को दूर करने के लिये ही मै यह बात वता रहा हूँ। चाहे चौदह वर्ष पूर्वधारी ज्ञानी भी क्यो न हो जाय पर वह भी केवलज्ञान के सामने तो समुद्र मे बूंद के तुल्य भी नही है।

वन्धुओ! जब तक आप आगे का सर्वोच्च केवल ज्ञान को प्राप्त करने की कोशिश नही करोगे तब तक परिपूर्ण लक्ष्य वरण नही कर सकोगे।

गौतम स्वामी जव आनन्द श्रावक को दर्शन देने के लिये गये तब आनन्द जी ने कहा—भगवन्! मै आपके चरण स्पर्श करने की भावना रखता हूँ, पर आप कुछ आगे पधारने की कृपा करावें। तब गौतम स्वामी आनन्द श्रावक के पास आये। आनन्द श्रावक ने तीन बार मस्तक झुकाकर वन्दन नमस्कार किया और फिर पूछा कि भगवन्! क्या गृहस्थ को घर मे रहते हुए अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है? गौतम स्वामी ने उत्तर दिया—"हत्ता अत्थि" "हाँ आनन्द हो सकता है"—तो भगवन् मुझे भी अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है, उसके द्वारा मैं पूर्व को पश्चिम और दक्षिण मे ५०० योजन लवण समुद्र के अन्दर तक, उत्तर मे चूल

हिमवत पर्वत तक, अधोलोक मे प्रथम नरक के लोलुच्च नरक तक, ऊर्ध्वलोक मे सोधर्म स्वर्ग जानने और देखने लगा हूँ। यह सुनकर गौतम स्वामी ने आनद श्रावक को कहा—कि हे श्रावक! गृहस्थावास मे रहे हुये गृहस्थ को अवधिज्ञान तो उत्पन्न हो सकता है, पर इतना विशाल अवधिज्ञान श्रावक को नही हो सकता है। जबकि आनन्द श्रावक को उतना ज्ञान हो चुका था, जिसका स्पष्टीकरण स्वय भगवान् ने किया था। लेकिन विशिष्ट ज्ञान के धनी गौतम स्वामी इस बात को नही जान पाए कि आनन्द श्रमणोपासक को कितना ज्ञान हुआ? इस पर कई भाई-बहन कहते है कि गौतम स्वामी चार ज्ञान के स्वामी है तो क्या उपयोग नही लगा सके। प्रथम तो वे चार ज्ञान के स्वामी थे, ऐसा विशेषण आनन्दजी के यहाँ जाते गौतम स्वामी के शास्त्र मे देखने को नही मिलता है, तथा यह मान भी लिया जाय कि उन्हे चार ज्ञान थे, तो भी वे आनन्दजी श्रावक के अवधिज्ञान को नही जान सकते हैं, क्योकि ज्ञान तो अरूपी है। और अवधि और मन पर्याय ज्ञान का विषय रूपी है, अत: गौतमस्वामी भले ही उस समय ज्ञान के धनी हो पर वे आनन्द श्रावक के उस अरूपी ज्ञान को अपने रूपी विषयक अवधि, और मन पर्याय ज्ञान से कैसे जान सकते? यही कारण था कि भगवान महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी से कहा कि—

"न हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सइ मग्गदेसिए।
सपइ नेयाउए पहे, समय गोयम! मा पमायए।।" उत्तरा. १०/३१

अर्थात् हे गौतम! तू आज जिनको नही देखता है। प्रभु महावीर के इस कथन से यह भी स्पष्ट जाहिर हो रहा है कि छद्मस्थ रूपी विषयक ज्ञान से अरूपी ज्ञान को नही जान सकते हैं।

त्रिषष्टिशलाका पुरुष मे एक प्रसग आया है कि एक बार भगवान् महावीर चम्पक नगरी के बगीचे मे तप सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विराजमान थे। तब वहाँ का सम्राट जिसका नाम "शाल" था, वह अपने युव-राज "महाशाल" आदि को साथ लेकर भगवान के चरणो मे पहुँचा। भगवान् की अपूर्व देशना श्रवण कर सम्राट को ससार से विरक्ति हो गई और कहने लगे कि भगवन्! ऐसा अमृतमय ज्ञान का निर्झर आज जिन्दगी मे मुझे प्रथम बार ही मिला है। मैं यह जान पाया कि इस जीवन मे कितनी महान् शक्ति है। उसको प्राप्त करने पर लोकालोक देखा जा सकता है। पर कब, जब उसके अनुरूप पुरुषार्थ करे, तब। भगवन्! मैं भी आपश्रीजी के चरणो मे दीक्षित होकर अपनी अनन्त ज्ञान ज्योति को प्रज्वलित करना चाहता हूँ। तब प्रभु महावीर ने फरमाया—

"अहा सुह देवाणुप्पिया।
महा पडिबध करेह।।"

जैसा तुमको सुख हो वैसे करो, शुभ कार्य मे विलम्ब मत करो। जब सम्राट ने पूर्णरूपेण दीक्षित होने की तैयारी करली, तब तक उनका पुत्र युवराज कहने लगा कि आप तो दीक्षा ले रहे है। इस दुर्लभ मनुष्य भव को सार्थक बनाना चाह रहे हो, तब यह बधन रूप राग का भाव मेरे सिर पर क्यो डाल रहे हो ? तब महाराज ने कहा कि नही भाई—तुम मेरे अप्रिय नही हो, यदि तुम भी इस ससार रूपी जल से निकलना चाहते हो तो तैयार हो जाओ, मैं तुम्हे सहर्ष अनुमति देता हूँ दीक्षा लेने की। तब युवराज ने पूछा कि पिताजी राज्य किसको सँभलाओगे ? तब महाराज ने कहा "तुम इसकी चिन्ता मत करो", भानजे को राज्य भार सौप देंगे। इस प्रकार भाणेज का राजमहोत्सव मनाकर पिता पुत्र दोनो प्रभु महावीर के चरणो मे दीक्षा ले लेते है, और दीक्षित होकर प्रभु महावीर के साथ विचरने लगते है। जब एक बार चम्पा नगरी मे भगवान् महावीर का समवसरण हुआ तब वे दोनो साथ थे, उनमे जो शालमुनि थे वे भगवान् से निवेदन करने लगे—भगवन्! मेरा भानजा ससार रूपी जेलखाने मे पडा हुआ है, आप आज्ञा फरमाये तो उसे भी इस जेल से छुटकारा दिलाने के लिए पृष्ठ चम्पा नगरी मे जाना चाहते हैं, तब भगवान् ने उन्हे आज्ञा प्रदान की तब पिता-पुत्र जो मुनि बन चुके थे, गौतम स्वामी के साथ पृष्ठ चम्पा नगरी पहुँचते है। और तप सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। महाज्ञानी गौतम स्वामी ने अमृतोपम वाणी से सम्राट को उद्बोधन दिया उससे वे जागृत होकर मुनिशाल का भानजा सम्राट गागली, पुत्र को राज्य भार सभलाकर माता-पिता के साथ दीक्षा अगीकार कर लेते है। इस प्रकार गौतम स्वामी पाँच भव्यात्माओ को लेकर पुन. जब प्रभु महावीर के चरणो मे पहुँचने हेतु पृष्ठ चम्पा से विहार कर जा रहे थे, तब उस नवीन सतो को ज्ञान देते हुए कहा कि तुम अब भगवान् की विराट् परिषद् मे जा रहे हो, वहाँ विनय धर्म का यथोचित पालन करना। केवली की, अवधिज्ञान की, मन पर्याय ज्ञान की आदि-आदि सभी की जुदी-जुदी परिषद है, तुम नवदीक्षित की परिषद् मे जाकर बैठना। गौतम स्वामी की यह आज्ञा सभी ने विनयपूर्वक शिरोधार्य की। लेकिन उनके अन्दर में भावो की विशुद्धि निरन्तर बढती चली गयी। आत्मा ऊर्ध्वगामी साधना के लिये सर्वतोभावेन समर्पित होकर तन, मन, वचन से एकाकार हो गई। एक ही लक्ष्य की तरफ जिन का ध्यान तन्मय हो गया। भावनाओ मे विशुद्धि के प्रकर्ष से गुणस्थानो पर आरोहण करने लगे। क्षपक श्रेणी पर चढकर अन्तरमुहूर्त मे ही भगवान् के पास पहुचने से पहले ही घनघाती कर्म क्षय कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन गये और महाप्रभु के समवसरण मे आकर सीधे केवली परिषद मे आकर बैठ गये। तब गौतम स्वामी को आश्चर्य हुआ, उनके मन मे कई सकल्प, विकल्प उठने लगे। तब घट-घट के अन्तर्यामी भगवान् महावीर कहने लगे कि गौतम! तू क्या सोच रहा है। ये तन-मन से सर्वतोभावेन तुम्हारी आज्ञाओ मे समर्पित होकर चलने वाले मुनि अब तुम्हारी आज्ञा पालन की

स्थिति से बहुत आगे बढ चुके है अर्थात् इनको तो केवलज्ञान, केवलदर्शन हो गया है। तब गौतम स्वामी ने यह सुना तो कहने लगे भगवन्! यह क्या ? मै इतने वर्ष से श्रुतचारित्र धर्म की आराधना कर रहा हूँ, पर अभी तक मुझे केवलज्ञान नही हुआ और ये मुनि जिनको अभी दीक्षा देकर मै लाया और इतना जल्दी इन्हे केवलज्ञान हो गया, भगवन्! ऐसा क्यो ? गौतमस्वामी के भीतर हलचल सी मच गई, उसे शात करने की दृष्टि से सात्वना देते हुए महाप्रभु ने फरमाया कि हे आयुष्मान् गौतम! तुम्हारा मेरे प्रति अनुराग है, वह प्रशस्त है, वह आगे बढनेवाला है। राग दो प्रकार का होता है—प्रशस्त और अप्रशस्त। प्रशस्त राग गुरु के प्रति, श्रुत के प्रति होता है और माता-पिता, पारिवारिक सदस्यो और पुद्गलो के प्रति जो अनुराग होता है। वह अप्रशस्त राग है। गौतम! तुम इतने बेचैन मत बनो, कारण कि तुम्हारा जो मेरे प्रति प्रशस्त राग है, वह तुम्हे आगे बढाने वाला है। पर अभी तक काल की परिपक्वता नही आई है, कर्मों के क्षय की स्थिति नही बनी है, तुम्हे केवलज्ञान नही हो पा रहा है। अभी तुम्हारे कुछ कर्मो का उपभोग अब शेष है, पर जब मुझे मोक्ष हो जायेगा, तब तुम केवली बन जाओगे। अत खेद मत करो, पुरुषार्थरत रहो। उत्तराध्ययन सूत्र के दसवे अध्ययन की पैतीसवी गाथा मे भगवान् ने गौतम स्वामी को सम्बोधित करते हुए फरमाया कि हे गौतम—

अकलेवर-सेणिं उस्सिया, सिद्धि गोयम! लोय गच्छसि।
खेम च सिव अणुत्तर समय गोयम! मा पमायए॥

अर्थात्—हे गौतम! शरीर से रहित जो सिद्ध श्रेणि है, उसके सदृश पवित्र क्षपक श्रेणि पर चढकर सर्वोत्कृष्ट कल्याण रूप सिद्धलोक को प्राप्त होगा अत तू समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

यहाँ विचार करने की बात है कि इतने विशिष्ट ज्ञानी को भी महाप्रभु ने समय मात्र का भी प्रमाद नही करने के लिए कहा है जिनका कि उसी भव मे मोक्ष निश्चित है। तो फिर आज के अधिकाश साधक जिनके पास श्रुतज्ञान भी पूरा नही है, फिर उनके ज्ञान की इति भी हो गई, जो प्रमाद या आलस्य मे समय व्यतीत करे। गौतम स्वामी से सम्बन्धित यह घटना चाहे किसी भी रूप मे घटित हुई हो लेकिन इससे यह शिक्षा मिलती है कि सदा आलस्य, प्रमाद त्यागकर पुरुषार्थ करते रहो।

[यहाँ आप एक बात स्पष्ट करलें कि गौतम स्वामी ने जो गागली सम्राट के माता-पिता को दीक्षा दी, वह सारी विधिवत् हुई थी। और जब वे महाप्रभु के समवसरण मे पहुँचे तो गागली अनगार के माताजी जो अब सर्वज्ञ बन गई थी। साध्वी की केवली परिषद् मे जाकर विराजी। —सम्पादक]

आज हम देख रहे हैं कि कई साधु जो शास्त्राध्ययन भी कर रहे है, तो वे उसी मे सतुष्ट बने बैठे है, सोच रहे है कि हम तो साधु बन गये है, हमने इतना बडा सयम ले रखा है, बस और हमे क्या चाहिये। और श्रावक जिसने सामायिक, प्रतिक्रमण, भक्तामर आदि-आदि सीख लिया और सोचे कि हमने तो बहुत कुछ सीख लिया है, यही भावना तो आगे बढने मे रुकावट डाल रही है, इसे हटाकर ज्ञानाचार के भेदो को समझते हुए आगे बढिये। कालाचार से शास्त्रीय स्वाध्याय का समय ध्यान मे रखिये। शास्त्रीय स्वाध्याय करने के अनन्तर जब स्वय की स्वाध्याय-चिन्तन-मनन चालू करते हैं, उसमे निमग्न हो जाते है, तो ज्ञान का अथाह आनन्द भी एक दिन पा सकते है, कहने का तात्पर्य यह है कि जितना ज्ञान मिला है उसका अभिमान नही करते हुए ज्ञान का ज्ञान करिये कि यह तो है ही पर मुझे इससे बहुत आगे बढना है, इसके लिए कालाचार को समझे, ज्ञानाचार सम्पन्न बने। जैसे एक लखपति जब हजारपति की ओर देखता है तो उसे अभिमान होता है, पर करोडपति की ओर देखता है तो उसका अभिमान उतर जाता है। इसी प्रकार छोटे-मोटे ज्ञानी को देखकर अपने ज्ञान का अह न करे प्रत्युत विशिष्ट ज्ञानी की ओर निहारते हुए अपनी अपूर्ण अवस्था का स्थल पाने की भावना रखते हुए अपने ज्ञान को, अपने पुरुषार्थ को अधिक से अधिक बढाने का प्रयत्न करे, ताकि एक न एक दिन अवश्य मंगलमय दशा को प्राप्त कर सके।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२९-७-८५
सोमवार

☐ ☐ ☐

स्थिति से बहुत आगे बढ चुके है अर्थात् इनको तो केवलज्ञान, केवलदर्शन हो गया है। तब गौतम स्वामी ने यह सुना तो कहने लगे भगवन्! यह क्या? मै इतने वर्ष से श्रुतचारित्र धर्म की आराधना कर रहा हूँ, पर अभी तक मुझे केवलज्ञान नही हुआ और ये मुनि जिनको अभी दीक्षा देकर मैं लाया और इतना जल्दी इन्हे केवलज्ञान हो गया, भगवन्! ऐसा क्यो? गौतमस्वामी के भीतर हलचल सी मच गई, उसे शात करने की दृष्टि से सात्वना देते हुए महाप्रभु ने फरमाया कि हे आयुष्मान् गौतम! तुम्हारा मेरे प्रति अनुराग है, वह प्रशस्त है, वह आगे बढनेवाला है। राग दो प्रकार का होता है—प्रशस्त और अप्रशस्त। प्रशस्त राग गुरु के प्रति, श्रुत के प्रति होता है और माता-पिता, पारिवारिक सदस्यो और पुद्गलो के प्रति जो अनुराग होता है। वह अप्रशस्त राग है। गौतम! तुम इतने बेचैन मत बनो, कारण कि तुम्हारा जो मेरे प्रति प्रशस्त राग है, वह तुम्हे आगे बढाने वाला है। पर अभी तक काल की परिपक्वता नही आई है, कर्मों के क्षय की स्थिति नही बनी है, तुम्हे केवलज्ञान नही हो पा रहा है। अभी तुम्हारे कुछ कर्मो का उपभोग अब शेष है, पर जब मुझे मोक्ष हो जायेगा, तब तुम केवली बन जाओगे। अत खेद मत करो, पुरुषार्थरत रहो। उत्तराध्ययन सूत्र के दसवे अध्ययन की पैतीसवी गाथा मे भगवान् ने गौतम स्वामी को सम्बोधित करते हुए फरमाया कि हे गौतम—

अकलेवर-सेणिं उस्सिया, सिद्धि गोयम! लोय गच्छसि।
खेम च सिव अणुत्तर समय गोयम! मा पमायए॥

अर्थात्—हे गौतम! शरीर से रहित जो सिद्ध श्रेणि है, उसके सदृश पवित्र क्षपक श्रेणि पर चढकर सर्वोत्कृष्ट कल्याण रूप सिद्धलोक को प्राप्त होगा अत तू समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

यहाँ विचार करने की बात है कि इतने विशिष्ट ज्ञानी को भी महाप्रभु ने समय मात्र का भी प्रमाद नही करने के लिए कहा है जिनका कि उसी भव मे मोक्ष निश्चित है। तो फिर आज के अधिकाश साधक जिनके पास श्रुतज्ञान भी पूरा नही है, फिर उनके ज्ञान की इति भी हो गई, जो प्रमाद या आलस्य मे समय व्यतीत करे। गौतम स्वामी से सम्बन्धित यह घटना चाहे किसी भी रूप मे घटित हुई हो लेकिन इससे यह शिक्षा मिलती है कि सदा आलस्य, प्रमाद त्यागकर पुरुषार्थ करते रहो।

[यहाँ आप एक बात स्पष्ट करलें कि गौतम स्वामी ने जो गागली सम्राट के माता-पिता को दीक्षा दी, वह सारो विधिवत् हुई थी। और जब वे महाप्रभु के समवसरण मे पहुँचे तो गागली अनगार के माताजी जो अब सर्वज्ञ बन गई थी। साध्वो की केवली परिषद् मे जाकर विराजी। —सम्पादक]

आज हम देख रहे हैं कि कई साधु जो शास्त्राध्ययन भी कर रहे है, तो वे उसी मे सतुष्ट बने बैठे है, सोच रहे है कि हम तो साधु वन गये है, हमने इतना बडा सयम ले रखा है, बस और हमे क्या चाहिये। और श्रावक जिसने सामायिक, प्रतिक्रमण, भक्तामर आदि-आदि सीख लिया और सोचे कि हमने तो बहुत कुछ सीख लिया है, यही भावना तो आगे वढने मे रुकावट डाल रही है, इसे हटाकर ज्ञानाचार के भेदो को समझते हुए आगे बढिये। कालाचार से शास्त्रीय स्वाध्याय का समय ध्यान मे रखिये। शास्त्रीय स्वाध्याय करने के अनन्तर जब स्वय की स्वाध्याय-चिन्तन-मनन चालू करते है, उसमे निमग्न हो जाते है, तो ज्ञान का अथाह आनन्द भी एक दिन पा सकते है, कहने का तात्पर्य यह है कि जितना ज्ञान मिला है उसका अभिमान नही करते हुए ज्ञान का ज्ञान करिये कि यह तो है ही पर मुझे इससे वहुत आगे बढना है, इसके लिए कालाचार को समझें, ज्ञानाचार सम्पन्न वनें। जैसे एक लखपति जब हजारपति की ओर देखता है तो उसे अभिमान होता है, पर करोडपति की ओर देखता है तो उसका अभिमान उतर जाता है। इसी प्रकार छोटे-मोटे ज्ञानी को देखकर अपने ज्ञान का अह न करे प्रत्युत विशिष्ट ज्ञानी की ओर निहारते हुए अपनी अपूर्ण अवस्था का स्थल पाने की भावना रखते हुए अपने ज्ञान को, अपने पुरुषार्थ को अधिक से अधिक बढाने का प्रयत्न करे, ताकि एक न एक दिन अवश्य मगलमय दशा को प्राप्त कर सकें।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२६-७-८५
सोमवार

३० विनयाचार–बहुमानाचार

(सम्यक्ज्ञान का द्वितीय-तृतीय आचार)

वीतराग परमात्मा के उपदेश को समझने के लिये उनकी स्तुति चाहे किसी रूप मे, किसी भी नाम से की जाए, पर करना आवश्यक है। स्तुति का अर्थ है प्रभु की प्रशसा करना, प्रभु के गुणो का वर्णन करना और उसकी अभिव्यक्ति स्वय मे लाने के लिये सत्पुरुषार्थशील बनना।

कई लोग प्रार्थना का अर्थ याचना करना समझते है, परन्तु लेने की कामना रखकर प्रार्थना करने वाले सामान्य व्यक्ति होते है, तत्वज्ञानी नही। चू कि तत्वज्ञानी यह जानते है कि भगवान् कुछ नही देते है। लेन-देन का प्रसग ससारियो का है, व्यापारियो का है। व्यापारी वर्ग बाजार मे एक वस्तु दूसरे को देते है और उससे दूसरी वस्तु लेते है, यह प्रक्रिया व्यापारी वर्ग की है। उनकी यह प्रक्रिया स्वार्थपूर्ण होती है। अन्दर मे उनकी कामना रहती है कि मैं ज्यादा से ज्यादा कमालू। वे अन्य के कष्ट, दु ख की परवाह नही करते। यदि ऐसा लेन-देन का कार्य कोई भगवान् के साथ करने के लिये प्रार्थना करता है तो वह उत्तम कोटि का भक्त नही है, प्रत्युत निम्न कोटि का भक्त है। जो वस्तु अन्यो से उपलब्ध हो सकती है, उसकी माँगनी भगवान् से की जाती है तो यह बात कम ज्ञान का परिणाम है। ससार मे धन है, मकान है, फ्लैट है, वस्त्र है, सोना है, चादी है इन सब पदार्थो की मागनी किसी बडे सेठ को खुश करके की जाए, तो वह भी इन वस्तुओ की पूर्ति कर सकता है, यदि कोई इन्ही पदार्थो की मागनी भगवान् से करता है तो वह भगवान् को क्या समझता है—पैसे वाला सेठ ? यह धारणा यदि है तो बिल्कुल गलत है।

एक स्वर्ग का इन्द्र यहाँ आकर आपकी धर्म करणी से प्रसन्न होकर मन-इच्छित वरदान माँगने का प्रस्ताव रखे तो आप उससे क्या मागोगे ? आपकी कुछ मागने की इच्छा होगी या नही ? उत्तर होगा—क्यो नही होगी ? अरे ! आप तो बुद्धिमान है। अत सभव है मोटी सारी लिस्ट बनालोगे। पर यदि कोई मनुष्य कहे कि इन्द्र ! यदि आप मेरे पर खुश हो तो मैं वरदान माँगता हूँ कि मेरे घर मे एक भैंस है, उसके लिये एक घास का भारा लाकर दे दो, दूसरा मनुष्य कहे कि मुझे भोजन बनाने हेतु लकडी अथवा कोयले की आवश्यकता है, सो वह लाकर दे दो। तीसरा कहे कि मेरे लडके को तीन दिन से बुखार आ रहा है, आप बुखार मिटा दो। चौथा कहे कि मेरी पुत्री की शादी नही हो रही

है, आप उसकी शादी करा दो। तो आप विचार करिये कि ऐसी माग करने वालो ने इन्द्र की कितनी कद्र की, कितनी कीमत की ? जिसने घास का भारा माँगा उसने इन्द्र की कीमत मजदूर के बराबर की। जिसने लकडी, कोयले मागे, उसने इन्द्र की व्यापारी जितनी कीमत की तथा जिसने बुखार उतारने के लिये कहा उसने मेटासिन की गोली जितनी कीमत की तथा जिसने पुत्री की शादी कराने की बात कही, वह तो एक सामान्य पुरुष भी करा सकता था। ऐसे मागने वालो को आप यह कहोगे कि ये नासमझ है। इन्होने इन्द्र की कद्र-पहिचान नही की कि उनमे कितनी शक्ति है। बल्कि इन तुच्छ वस्तुओ को मागकर इन्द्र का अपमान कर दिया। चूँकि छोटी-छोटी वस्तु मागने से उनकी कद्र नही होती वरन् उनका अपमान होता है। भारत के प्रधानमन्त्री यदि यहाँ आये और आपके काम से खुश होकर आपसे पूछे कि आपको क्या चाहिये ? और आप उन्हे कहे कि आप इस स्थानक का झाड निकाल दीजिये तो उनका सम्मान हुआ या अपमान ? अपमान ही माना जायेगा तो फिर प्रधानमन्त्री से इन्द्र का पद बडा है और उस इन्द्र से भी वीतराग भगवान् बडे है। पच परमेष्ठी मन्त्र से जिन भगवान् को याद करते हो, उनकी आप कितनी कीमत कर रहे हो ? यही तो ज्ञान की, श्रद्धा की कमी है। इसी कारण कई व्यक्ति वीतराग देव की कभी जानते-अजानते अशातना कर बैठते है, अविनय कर बैठते हैं। अत. आवश्यक है कि सही ज्ञान पाया जाय, ताकि आत्मा मे ज्ञान का अभिनव आलोक प्रसरित हो, जिससे हिताहित का विवेक किया जा सके।

विश्व की समस्त भव्यात्माओ मे ज्ञान की अनन्त शक्ति दबी हुई पडी है। जिस प्रकार कि अगारे पर राख आ जाने से उसकी तपन आच्छादित हो जाती है, सूर्य पर बादल आ जाने से सूर्य का प्रकाश-तेज आच्छादित हो जाता है। इसी प्रकार भव्यात्माओ की अनत-अनत ज्ञान शक्तियाँ कर्मो से आच्छादित है। उन्हे उद्घाटित करने के लिये कर्मो के आवरण को हटाना होगा। ज्ञान का अभिनव आलोक विकसित करने हेतु सतत पुरुषार्थशील बनना होगा। उत्तराध्ययन के ३२ वें अध्ययन की दूसरी गाथा मे महाप्रभु ने बतलाया है—

> "नाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अन्नाण मोहस्स विवज्जणाए।
> रागस्स दोसस्स य सखएण, एगत सोक्ख समुवेइ मोक्ख ॥"

अज्ञान और मोह का क्षय करिये, राग और द्वेष को हटाइये, परिपूर्ण ज्ञान की ज्योति जगाइये और एकान्त मोक्ष को प्राप्त करिये। बंधुओ ! वीतराग देव तो निमित्त बनते है, वास्तव मे उपादान हमारा ही होता है। जब वह स्वय पुरुषार्थ करता है तभी भीतर मे रहा हुआ ज्ञान प्रकाश बाहर आ सकता है। भगवान् की स्तुति इसलिए की जाती है कि वे भव्यात्माओ के ज्ञान को प्रकट करने मे निमित्त बने, जिससे उनके भीतर मे रहा हुआ ज्ञान अनावृत्त हो सके।

छोटे बालक को आप स्कूल मे भेजते है, वह वालक वर्णमाला सीखता है, कितना प्रयत्न करता है, वार-वार उसे देखता है, लिखता है, तव वह उसे जान लेता है। उसी प्रकार जो ज्ञान भीतर है उसे निरन्तर पुरुपार्थ करने पर प्रकट किया जा सकता है। इसके लिये ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न करना अतीव आवश्यक है। आप किसी को निमन्त्रण देंगे तो ही वे आपके घर आयेंगे और उनका आप सत्कार सम्मान करेंगे तभी वे आपके यहाँ जीमेंगे। इसी प्रकार ज्ञान के प्रति विनय करना आवश्यक है, ज्ञान और ज्ञानी के प्रति वहुमान करना आवश्यक है। विनय, बहुमान होगा, तभी वह भीतर मे प्रवेश कर सकता है। ज्ञान के प्रति विनय कैसे करे ? इसके विए वीतराग देव के ज्ञान की कीमत करे। यह मानकर चले कि वीतराग देव का जो ज्ञान था, है, वह अद्वितीय, अनुपम है, सत्य एव सर्वश्रेष्ठ है। ऐसी श्रद्धा करके विनय के साथ उसे पाने की पात्रता अर्जित करे। तदनन्तर वीतराग देव के उपदेश का चिन्तन-मनन करे। ध्यान मे बैठकर प्रभु के सिद्धान्तो की गहराइयो मे उतरे। उन्हे मथकर उनका नवनीत निकाले। यद्यपि ध्यान की प्रक्रिया भी महाप्रभु ने वहुत वतलाई है। सत बाहर जाते है तो आकर ध्यान करते है, सोते एव जागते समय भी ध्यान करते है। जैसे—साधु को समय-समय पर ध्यान की प्रक्रिया प्रभु ने बतायी है, वैसे ही श्रावको को भो सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध आदि मे ध्यान की प्रक्रिया का विधान किया गया है। ये ध्यान तो फिर भी आप करते ही होगे पर आप ज्ञान को प्रकट करने का कितना व कौन-सा ध्यान कर रहे हैं ? "णमो नाणस्स" की माला फेरने मात्र से अथवा "णमो नाणस्स" का ध्यान करने मात्र से ज्ञान प्राप्त नही हो सकता। सबसे पहले तो ज्ञान को प्रकट करने के लिये ज्ञान के प्रति एव ज्ञानी के प्रति विनय होना चाहिये। विनय के साथ बहुमान भी अति आवश्यक है।

विनय का स्वरूप तो आप सम्यक् तरीके से जानते होगे। फिर भी कुछ विनय का स्वरूप भी स्पप्ट कर देता हूँ। "विनय" सम्यक् ज्ञान का द्वितीय आचार है। विनय शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए बतलाया है कि 'विनीयते कर्मानेनेति विनय' जिससे व्यक्ति कर्म बध से निवृत्त होता है, उसे विनय कहते है। श्रेष्ठ पुरुषो का विनय करने से, झुकने से भव्यात्माओ के कर्म भी झुक जाते है और एक दिन आत्मा से अलग भी हो जाते है। स्थानाङ्ग सूत्र के ७ वें ठाणे मे विनय के ७ भेद प्रतिपादित किये है—"सत्तविहे विणए पण्णत्ते तजहा—णाण विणए, दसण विणए, चरित्त विणए, मण विणए, वत्ति विणए, काय विणए, लोगोवयार विणए।

विनय के सात भेद है—ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय, मन विनय, वचन विनय, काय विनय और लोकोपचार विनय। सात प्रकार से अपने विनय भावो को वनाये रखना सम्यग् ज्ञान पाने के लिये आवश्यक है।

विनम्रता कैसी होनी चाहिये इसके लिये गौतम स्वामी का आदर्श सामने है। भगवान् जब निर्वाण पधार रहे थे, उस समय दूर-दूर से लोग महाप्रभु की सेवा मे आए हुए थे महाप्रभु के निर्वाण को देखने के लिये। ऐसे समय मे महाप्रभु ने गौतम स्वामी को आदेश दिया—देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिवोध देने के लिये। गौतम स्वामी उसी क्षण बिना रुके खडे हो गए और महाप्रभु को वन्दन कर देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने प्रस्थित हो गए।

बधुओ! विचार करिये! गौतम स्वामी का विनय कितना उच्चकोटि का था। उन्होने मुँह से उफ तक करने की बात तो दूर रही, पर मन मे भी यह नही सोचा कि महाप्रभु इस विकट समय मे मुझे क्या आदेश फरमा रहे है। यह तो बाद मे भी किया जा सकता है। अभी तो मुझे यही रहना चाहिये। ऐसा कुछ न सोचकर वे अत्यन्त विनय के साथ वहा से रवाना हो गए। विनय ऐसा होना चाहिये जीवन मे। जब इतना उच्च कोटि का विनय आता है, तब विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति मे भी देरी नही लगती। गौतम स्वामी ने विनम्रता का उत्कृष्ट रूप उपस्थित किया तो विशिष्ट परिणाम भी सामने आया कि उन्हे केवलज्ञान केवल दर्शन प्राप्त हो गया।

यह तो प्रभु महावीर के समय की बात है। लेकिन मैं आपको निकट अतीत मे हुई घटना भी सुना देता हूँ। प्रभु महावीर की इस क्रातिकारी परम्परा के ७६ वे पाट पर विराजमान आचार्य श्री उदयसागर जी म. सा के जीवन से सबधित घटना है। उन्हे जब यह ज्ञान हुआ कि रामपुरा मे केशरीमलजी गाग नाम के श्रावक शास्त्रो के विशिष्ट ज्ञाता हैं तो वे जब रामपुरा पधारे तो सोचा कि उनसे शास्त्रीय चर्चा की जाय ताकि यदि उनके पास और भी नया ज्ञान हो तो प्राप्त हो सके।

आचार्य प्रवर जिज्ञासु बने और उस श्रावक को अपने यहाँ न बुलाकर स्वय चलकर उसके घर पहुँचे। जब केशरीमलजी को ज्ञात हुआ कि आचार्य प्रवर ज्ञान–पाने की जिज्ञासु भावना से मेरे पास आ रहे हैं तो उनके मन मे आचार्य प्रवर की जिज्ञासु भावना के प्रति अत्यन्त श्रद्धा जागृत हुई। किन्तु इसी के साथ ही एक विचार मन मे आया कि जरा आचार्य प्रवर का परीक्षण किया जाय कि इनमे जिज्ञासा के साथ ज्ञान पाने के लिये विनयाचार की स्थिति भी है या नही? आचार्य प्रवर ने जब केशरीमलजी के घर मे प्रवेश किया तो आश्चर्य! कि वह श्रावक उठकर भी सामने नही आता है। किन्तु विनयाचार की गहराइयो मे उतरे आचार्य प्रवर कुछ भी अन्यथा न विचारते हुए उन श्रावक के पास पहुँचकर फरमाते हैं कि मुझे आपसे शास्त्र चर्चा कर ज्ञान प्राप्त करना है। तव केशरीमलजो ने कहा कि अभी अवसर नही है। एक महान् आचार्य प्रथम तो उसके घर पहुँचे और फिर श्रावक यह कह दे कि अभी अवसर नही है तो आज के युग मे कैसी विचित्र स्थिति वन सकती है, यह विचार करिये। परन्तु

छोटे बालक को आप स्कूल मे भेजते है, वह बालक वर्णमाला सीखता है, कितना प्रयत्न करता है, वार-वार उसे देखता है, लिखता है, तब वह उसे जान लेता है। उसी प्रकार जो ज्ञान भीतर है उसे निरन्तर पुरुषार्थ करने पर प्रकट किया जा सकता है। इसके लिये ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न करना अतीव आवश्यक है। आप किसी को निमन्त्रण देगे तो ही वे आपके घर आयेंगे और उनका आप सत्कार सम्मान करेंगे तभी वे आपके यहाँ जीमेंगे। इसी प्रकार ज्ञान के प्रति विनय करना आवश्यक है, ज्ञान और ज्ञानी के प्रति बहुमान करना आवश्यक है। विनय, बहुमान होगा, तभी वह भीतर मे प्रवेश कर सकता है। ज्ञान के प्रति विनय कैसे करे ? इसके विए वीतराग देव के ज्ञान की कीमत करे। यह मानकर चले कि वीतराग देव का जो ज्ञान था, है, वह अद्वितीय, अनुपम है, सत्य एव सर्वश्रेष्ठ है। ऐसी श्रद्धा करके विनय के साथ उसे पाने की पात्रता अर्जित करे। तदनन्तर वीतराग देव के उपदेश का चिन्तन-मनन करे। ध्यान मे बैठकर प्रभु के सिद्धान्तो की गहराइयो मे उतरे। उन्हे मथकर उनका नवनीत निकाले। यद्यपि ध्यान की प्रक्रिया भी महाप्रभु ने बहुत बतलाई है। सत बाहर जाते हैं तो आकर ध्यान करते है, सोते एव जागते समय भी ध्यान करते है। जैसे—साधु को समय-समय पर ध्यान की प्रक्रिया प्रभु ने बतायी है, वैसे ही श्रावको को भो सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध आदि मे ध्यान की प्रक्रिया का विधान किया गया है। ये ध्यान तो फिर भी आप करते ही होगे पर आप ज्ञान को प्रकट करने का कितना व कौन-सा ध्यान कर रहे है ? "णमो नाणस्स" की माला फेरने मात्र से अथवा "णमो नाणस्स" का ध्यान करने मात्र से ज्ञान प्राप्त नही हो सकता। सबसे पहले तो ज्ञान को प्रकट करने के लिये ज्ञान के प्रति एव ज्ञानी के प्रति विनय होना चाहिये। विनय के साथ बहुमान भी अति आवश्यक है।

विनय का स्वरूप तो आप सम्यक् तरीके से जानते होगे। फिर भी कुछ विनय का स्वरूप भी स्पष्ट कर देता हूँ। "विनय" सम्यक् ज्ञान का द्वितीय आचार है। विनय शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए बतलाया है कि 'विनीयते कर्मानिनेति विनय' जिससे व्यक्ति कर्म बध से निवृत्त होता है, उसे विनय कहते है। श्रेष्ठ पुरुषो का विनय करने से, झुकने से भव्यात्माओ के कर्म भी झुक जाते हैं और एक दिन आत्मा से अलग भी हो जाते है। स्थानाङ्ग सूत्र के ७ वे ठाणे मे विनय के ७ भेद प्रतिपादित किये हैं—"सत्तविहे विणए पण्णत्ते तजहा—णाण विणए, दसण विणए, चरित्त विणए, मण विणए, वत्ति विणए, काय विणए, लोगोवयार विणए।

विनय के सात भेद है—ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय, मन विनय, वचन विनय, काय विनय और लोकोपचार विनय। सात प्रकार से अपने विनय भावो को वनाये रखना सम्यग् ज्ञान पाने के लिये आवश्यक है।

विनम्रता कैसी होनी चाहिये इसके लिये गौतम स्वामी का आदर्श सामने है। भगवान् जब निर्वाण पधार रहे थे, उस समय दूर-दूर से लोग महाप्रभु की सेवा मे आए हुए थे महाप्रभु के निर्वाण को देखने के लिये। ऐसे समय मे महाप्रभु ने गौतम स्वामी को आदेश दिया—देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिये। गौतम स्वामी उसी क्षण बिना रुके खडे हो गए और महाप्रभु को वन्दन कर देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने प्रस्थित हो गए।

बधुओ! विचार करिये! गौतम स्वामी का विनय कितना उच्चकोटि का था। उन्होने मुँह से उफ तक करने की बात तो दूर रही, पर मन मे भी यह नही सोचा कि महाप्रभु इस विकट समय मे मुझे क्या आदेश फरमा रहे हैं। यह तो बाद मे भी किया जा सकता है। अभी तो मुझे यही रहना चाहिये। ऐसा कुछ न सोचकर वे अत्यन्त विनय के साथ वहा से रवाना हो गए। विनय ऐसा होना चाहिये जीवन मे। जब इतना उच्च कोटि का विनय आता है, तब विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति मे भी देरी नही लगती। गौतम स्वामी ने विनम्रता का उत्कृष्ट रूप उपस्थित किया तो विशिष्ट परिणाम भी सामने आया कि उन्हे केवलज्ञान केवल दर्शन प्राप्त हो गया।

यह तो प्रभु महावीर के समय की बात है। लेकिन मैं आपको निकट अतीत मे हुई घटना भी सुना देता हूँ। प्रभु महावीर की इस क्रातिकारी परम्परा के ७६ वे पाट पर विराजमान आचार्य श्री उदयसागर जी म सा के जीवन से सबधित घटना है। उन्हे जब यह ज्ञान हुआ कि रामपुरा मे केशरीमलजी गाग नाम के श्रावक शास्त्रो के विशिष्ट ज्ञाता है तो वे जब रामपुरा पधारे तो सोचा कि उनसे शास्त्रीय चर्चा की जाय ताकि यदि उनके पास और भी नया ज्ञान हो तो प्राप्त हो सके।

आचार्य प्रवर जिज्ञासु बने और उस श्रावक को अपने यहाँ न बुलाकर स्वय चलकर उसके घर पहुँचे। जब केशरीमलजी को ज्ञात हुआ कि आचार्य प्रवर ज्ञान–पाने की जिज्ञासु भावना से मेरे पास आ रहे है तो उनके मन मे आचार्य प्रवर की जिज्ञासु भावना के प्रति अत्यन्त श्रद्धा जागृत हुई। किन्तु इसी के साथ ही एक विचार मन मे आया कि जरा आचार्य प्रवर का परीक्षण किया जाय कि इनमे जिज्ञासा के साथ ज्ञान पाने के लिये विनयाचार की स्थिति भी है या नही? आचार्य प्रवर ने जब केशरीमलजी के घर मे प्रवेश किया तो आश्चर्य! कि वह श्रावक उठकर भी सामने नही आता है। किन्तु विनयाचार की गहराइयो मे उतरे आचार्य प्रवर कुछ भी अन्यथा न विचारते हुए उन श्रावक के पास पहुँचकर फरमाते है कि मुझे आपसे शास्त्र चर्चा कर ज्ञान प्राप्त करना है। तब केशरीमलजी ने कहा कि अभी अवसर नही है। एक महान् आचार्य प्रथम तो उसके घर पहुँचे और फिर श्रावक यह कह दे कि अभी अवसर नही है तो आज के युग मे कैसी विचित्र स्थिति बन सकती है, यह विचार करिये। परन्तु

आचार्य प्रवर तो उसी जिज्ञासु भावना के साथ लौट गये। दूसरे दिन पुन उनके घर पर जाकर यही कहा, तब भी उन श्रावक जी का यही जवाब मिला। फिर भी आचार्य प्रवर ने कुछ भी अन्यथा नही विचार किया और तीसरे दिन भी उसी जिज्ञासु भावना के साथ उनके घर पहुँचे, तब केशरीमलजी यह अच्छी तरह समझ गये कि आचार्य प्रवर सम्यक् ज्ञान और क्रिया की ठोस भूमि पर खड़े है। इनके जीवन मे सयमी मर्यादाए साकार हो उठी है। बस ! फिर क्या था, ज्योही उन्होने आचार प्रवर को दूर से आते देखा, त्यो ही उठकर सामने गये। विनम्रता से वन्दन नमस्कार किया और अश्रुधारपूर्वक अपने अविनय के लिये बार-बार क्षमा याचना करने लगे। वास्तव मे आचार्य प्रवर, प्रभु महावीर के सयमी सिद्धान्तो के प्रायोगिक आदर्श थे। उनका जीवन प्रभु महावीर के सिद्धान्तो को प्रत्यक्ष करने वाली प्रयोगशाला था। वे अपने जीवन प्रयोग से महाप्रभु के सिद्धान्तो का प्रायोगिक रूप उपस्थित करते थे। केशरीमल जी गाग ने निवेदन किया—"कहाँ आप और कहाँ मैं ? आपके विशाल ज्ञान के आगे मेरा ज्ञान क्या महत्त्व रखता है ? फिर भी आप जो चाहे, चर्चा करे। मेरे पास जो कुछ है, गुरुओ के प्रसाद से है, उसे अवश्य मै आपको देने को तैयार हूँ। चर्चा करने से आपको मेरे से कुछ मिले या न मिले, पर मुझे आपसे बहुत कुछ मिलेगा।"

बन्धुओ ! सम्यक् ज्ञान पाने के लिये किस प्रकार का विनय होना चाहिये, जरा विचार करिये। ऐसे आदर्शो से कुछ जीवन मे शिक्षा ग्रहण करने का प्रसग है। आचार्य प्रवर की विनम्रता का प्रभाव उनके शिष्यो मे पर्याप्त मात्रा मे था। उसके भी कई प्रसग है। पर एक प्रसग सामने रख देता हूँ।

आचार्य प्रवर का एक शिष्य अत्यन्त विनयशील था। उसकी विनम्रता को लेकर गुण गरिमा बहुत दूर-दूर तक फैली हुई थी। इसी विनम्रता के आदर्श को देखने के लिये एक बार एक सरकारी आदमी आचार्य प्रवर के पास पहुँचा और पूछने लगा कि भगवन् ! मैंने सुना है कि आपके पास एक अत्यन्त विनम्र-शील मुनिराज है, मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ। आचार्य प्रवर ने उसका कुछ भी उत्तर नही देते हुए एक साधु को आवाज लगाई। वे ऊपर बैठे हुए स्वाध्याय कर रहे थे। उन्होने ज्यो ही गुरुदेव की आवाज सुनी तो 'तहत्ति' के साथ वाणी को स्वीकार करते हुए विनम्रता से गुरुदेव के चरणो मे आ खडे हुए। गुरुदेव ने उन्हे कुछ भी न कहते हुए वापस भेज दिया। वे ऊपर पहुँचे ही थे कि पुन आवाज लगाई। वे पुन उसी विनम्रता के साथ उपस्थित हुए। फिर उन्हे कुछ भी कहे बिना वापस भेज दिया। यह क्रम लगातार लगभग २७ बार तक चलता रहा। वे मुनिराज बिना किसी तर्क के अत्यन्त श्रद्धा के साथ गुरुदेव के चरणो मे उपस्थित होते रहे। उनके मन मे भी यह भावना नही आयी कि गुरुदेव यह क्या कर रहे हैं ? काम है जो बतला क्यो नही देते ? बार-बार बुलाते क्यो हैं ?

ऐसा कुछ भी न सोचकर वे अत्यन्त श्रद्धा के साथ आते रहे। आखिर वह अफसर समझ गया कि विनयशील मुनिराज कौन है ? उसने गुरुदेव से निवेदन किया—भगवन् मैंने इनके दर्शन कर लिये है। आप इन्हे रोकिये। वार-वार कष्ट न दे।

सज्जनो ! देखिये विनम्रता का आदर्श ! क्या है ऐसी विनम्रता, आज की भव्यात्माओ मे ? मैं सबकी बात नही कहता, पर अधिकाश साधक-साधिकाओ के जीवन पर विचार करता हूँ तो विनय की वहुत कमी महसूस होती है। गुरुदेव यदि शिष्य को बुला रहे है तो पहले तो वह जल्दी से आयेगा ही नही और आ भी गया और उसे कुछ भी बतलाये बिना कारण जाने के लिये कहा गया तो वह तुरन्त प्रतिक्रिया कर बैठेगा कि अरे ! फिर वुलाया किस लिये ? बिना कारण इधर-उधर घुमाने का क्या तात्पर्य ? विनम्रता के अभाव मे ही कइयो की साधना सफल नही हो पाती। महाप्रभु ने विनय को धर्म का मूल बतलाया है। "विणओ धम्मस्स मूलो" जब तक विनयाचार की स्थिति जीवन मे नही आयेगी तब तक सम्यग्ज्ञान का विकास नही हो सकता।

वैसे आप लोग देख ही रहे है कि ये सत-सती वर्ग किस प्रकार सुन्दर तरीके से विनय एव अनुशासन पद्धति को लेकर चल रहे है। यह सब उन अतीत के क्रान्तिकारी आचार्यो की साधना का परिणाम है कि एक ही की आज्ञा मे पूरा साधु-साध्वी समाज, शिक्षा-दीक्षा, प्रायश्चित, चातुर्मास आदि कार्य सम्पन्न कर रहा है, यह भी विनम्रता का प्रतीक है।

भव्यात्माओ के जीवन मे सम्यग्ज्ञान की ज्योति जगाने हेतु इस दूसरे विनयाचार को जीवन मे स्थान दीजिये। गुर्वादिक के प्रति विनम्रता का व्यवहार रखिये। अवश्य ही यह विनम्रता विकास की ओर ले जाने वाली बनेगी। विनम्रता के अभाव का ही परिणाम समझिये कि आज की युवापीढी भौतिक विज्ञान की दृष्टि मे इतना विकास करने के बाद भी दु ख द्वन्द्वो मे उलझती जा रही है। अत स्पष्ट है जब तक जीवन मे विनय नही आयेगा, तब तक सम्यग्ज्ञान नही आयेगा और जब तक सम्यक् ज्ञान नही आयेगा, तब तक सम्यक्-आचरण नही बन सकेगा और बिना सम्यक्-आचरण के शाति पाने की कल्पना मृग मरीचिका के तुल्य ही होगी।

विनयाचार के वाद सम्यग्ज्ञान का तृतीय आचार है—बहुमानाचार। वहुमान का अर्थ है ज्ञानी और गुरु के प्रति हृदय मे भक्ति और श्रद्धा का भाव रखना। ज्ञानी एव गुरु का दिल जिससे प्रसन्न हो वैसा ही कार्य करना, सर्वतो-भावेन उनके प्रति समर्पित हो जाना। जब तक पूरा समर्पण नही होता है, तब तक ज्ञान हृदयगम नही होता। विद्वान् श्री अम्बिकादत्त जी ओझा के जीवन का प्रसग है जब वे सतो को पढाते थे, तो कभी अपने जीवन का प्रसग सुनाते हुए कहते थे। कि आज विद्यार्थी पढ़ने की इच्छा कम रखते है। यही नही ज्ञान प्राप्त

आचार्य प्रवर तो उसी जिज्ञासु भावना के साथ लौट गये। दूसरे दिन पुन उनके घर पर जाकर यही कहा, तब भी उन श्रावक जी का यही जवाब मिला। फिर भी आचार्य प्रवर ने कुछ भी अन्यथा नही विचार किया और तीसरे दिन भी उसी जिज्ञासु भावना के साथ उनके घर पहुँचे, तब केशरीमलजी यह अच्छी तरह समझ गये कि आचार्य प्रवर सम्यक् ज्ञान और क्रिया की ठोस भूमि पर खडे हैं। इनके जीवन मे सयमी मर्यादाए साकार हो उठी है। बस ! फिर क्या था, ज्योही उन्होने आचार प्रवर को दूर से आते देखा, त्यो ही उठकर सामने गये। विनम्रता से वन्दन नमस्कार किया और अश्रु धारपूर्वक अपने अविनय के लिये बार-बार क्षमा याचना करने लगे। वास्तव मे आचार्य प्रवर, प्रभु महावीर के सयमी सिद्धान्तो के प्रायोगिक आदर्श थे। उनका जीवन प्रभु महावीर के सिद्धान्तो को प्रत्यक्ष करने वाली प्रयोगशाला था। वे अपने जीवन प्रयोग से महाप्रभु के सिद्धान्तो का प्रायोगिक रूप उपस्थित करते थे। केशरीमल जी गाग ने निवेदन किया—"कहाँ आप और कहाँ मैं ? आपके विशाल ज्ञान के आगे मेरा ज्ञान क्या महत्त्व रखता है ? फिर भी आप जो चाहे, चर्चा करे। मेरे पास जो कुछ है, गुरुओ के प्रसाद से है, उसे अवश्य मैं आपको देने को तैयार हूँ। चर्चा करने से आपको मेरे से कुछ मिले या न मिले, पर मुझे आपसे बहुत कुछ मिलेगा।"

बन्धुओ ! सम्यक् ज्ञान पाने के लिये किस प्रकार का विनय होना चाहिये, जरा विचार करिये। ऐसे आदर्शो से कुछ जीवन मे शिक्षा ग्रहण करने का प्रसग है। आचार्य प्रवर की विनम्रता का प्रभाव उनके शिष्यो मे पर्याप्त मात्रा मे था। उसके भी कई प्रसग हैं। पर एक प्रसग सामने रख देता हूँ।

आचार्य प्रवर का एक शिष्य अत्यन्त विनयशील था। उसकी विनम्रता को लेकर गुण गरिमा बहुत दूर-दूर तक फैली हुई थी। इसी विनम्रता के आदर्श को देखने के लिये एक बार एक सरकारी आदमी आचार्य प्रवर के पास पहुँचा और पूछने लगा कि भगवन् ! मैंने सुना है कि आपके पास एक अत्यन्त विनम्र-शील मुनिराज है, मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ। आचार्य प्रवर ने उसका कुछ भी उत्तर नही देते हुए एक साधु को आवाज लगाई। वे ऊपर बैठे हुए स्वाध्याय कर रहे थे। उन्होने ज्यो ही गुरुदेव की आवाज सुनी तो 'तहत्ति' के साथ वाणी को स्वीकार करते हुए विनम्रता से गुरुदेव के चरणो मे आ खडे हुए। गुरुदेव ने उन्हे कुछ भी न कहते हुए वापस भेज दिया। वे ऊपर पहुँचे ही थे कि पुन आवाज लगाई। वे पुन: उसी विनम्रता के साथ उपस्थित हुए। फिर उन्हे कुछ भी कहे बिना वापस भेज दिया। यह क्रम लगातार लगभग २७ बार तक चलता रहा। वे मुनिराज बिना किसी तर्क के अत्यन्त श्रद्धा के साथ गुरुदेव के चरणो मे उपस्थित होते रहे। उनके मन मे भी यह भावना नही आयी कि गुरुदेव यह क्या कर रहे है ? काम है जो बतला क्यो नही देते ? बार-बार बुलाते क्यो है ?

ऐसा कुछ भी न सोचकर वे अत्यन्त श्रद्धा के साथ आते रहे । आखिर वह अफसर समझ गया कि विनयशील मुनिराज कौन है ? उसने गुरुदेव से निवेदन किया—भगवन् मैंने इनके दर्शन कर लिये है । आप इन्हे रोकिये । बार-बार कष्ट न दे ।

सज्जनो ! देखिये विनम्रता का आदर्श ! क्या है ऐसी विनम्रता, आज की भव्यात्माओ मे ? मै सबकी बात नही कहता, पर अधिकाश साधक-साधिकाओ के जीवन पर विचार करता हूँ तो विनय की बहुत कमी महसूस होती है । गुरुदेव यदि शिष्य को बुला रहे है तो पहले तो वह जल्दी से आयेगा ही नही और आ भी गया और उसे कुछ भी बतलाये बिना कारण जाने के लिये कहा गया तो वह तुरन्त प्रतिक्रिया कर बैठेगा कि अरे ! फिर बुलाया किस लिये ? बिना कारण इधर-उधर घुमाने का क्या तात्पर्य ? विनम्रता के अभाव मे ही कइयो की साधना सफल नही हो पाती । महाप्रभु ने विनय को धर्म का मूल बतलाया है । "विणओ धम्मस्स मूलो" जब तक विनयाचार की स्थिति जीवन मे नही आयेगी तब तक सम्यग्ज्ञान का विकास नही हो सकता ।

वैसे आप लोग देख ही रहे है कि ये सत-सती वर्ग किस प्रकार सुन्दर तरीके से विनय एव अनुशासन पद्धति को लेकर चल रहे हैं । यह सब उन अतीत के क्रान्तिकारी आचार्यो की साधना का परिणाम है कि एक ही की आज्ञा मे पूरा साधु-साध्वी समाज, शिक्षा-दीक्षा, प्रायश्चित, चातुर्मास आदि कार्य सम्पन्न कर रहा है, यह भी विनम्रता का प्रतीक है ।

भव्यात्माओ के जीवन मे सम्यग्ज्ञान की ज्योति जगाने हेतु इस दूसरे विनयाचार को जीवन मे स्थान दीजिये । गुर्वादिक के प्रति विनम्रता का व्यवहार रखिये । अवश्य ही यह विनम्रता विकास की ओर ले जाने वाली बनेगी । विनम्रता के अभाव का ही परिणाम समझिये कि आज की युवापीढी भौतिक विज्ञान की दृष्टि मे इतना विकास करने के बाद भी दु ख द्वन्द्वो मे उलझती जा रही है । अत स्पष्ट है जब तक जीवन मे विनय नही आयेगा, तब तक सम्यग्ज्ञान नही आयेगा और जब तक सम्यक् ज्ञान नही आयेगा, तब तक सम्यक्-आचरण नही बन सकेगा और बिना सम्यक्-आचरण के शाति पाने की कल्पना मृग मरीचिका के तुल्य ही होगी ।

विनयाचार के बाद सम्यग्ज्ञान का तृतीय आचार है—बहुमानाचार । बहुमान का अर्थ है ज्ञानी और गुरु के प्रति हृदय मे भक्ति और श्रद्धा का भाव रखना । ज्ञानी एव गुरु का दिल जिससे प्रसन्न हो वैसा ही कार्य करना, सर्वतो-भावेन उनके प्रति समर्पित हो जाना । जब तक पूरा समर्पण नही होता है, तब तक ज्ञान हृदयगम नही होता । विद्वान् श्री अम्बिकादत्त जी ओझा के जीवन का प्रसग है जब वे सतो को पढाते थे, तो कभी अपने जीवन का प्रसग सुनाते हुए कहते थे । कि आज विद्यार्थी पढने की इच्छा कम रखते है । यही नही ज्ञान प्राप्त

करने के लिये स्कूल-कॉलेजो मे जाते है, पर अध्यापको पर अपना आर्डर चलाते है, किन्तु हमारे समय मे पढाने वाले बहुत कम मिलते थे, और जो मिलते थे, वे भी पैसे लेकर नही पढाते थे, वे कहते थे कि हम ज्ञान नही बेचते। पैसे लेकर पढाने से हम व्यापारी बन जायेगे। वे गरीब भी क्यो न हो ? खेती-बाडी करके काम चला लेते थे, मजदूरी करके पेट भर लेते थे, पर विद्या का व्यापार नही करते। मैं जिस गुरु से पढता था, उनकी ऐसी ही गरीब अवस्था थी। वे खेती का कार्य करते थे, और हम स्वय उस समय गरीब अवस्था मे थे, मजदूरी करके ही पेट भरते थे। आज तो विद्यार्थी को कितने पौष्टिक तत्त्व मिलते हैं शरीर को तन्दुरुस्त रखने के लिये। उनके लिए बोर्डिंग मे हर साधन की उपलब्धि हो जाती है, पर हमारी यह अवस्था थी कि खाने को धान पाने के लिये भी परिश्रम करना पडता और पढाने के लिये भी गुरुजी के पास टाइम कहाँ रहता ? गुरूजी जब खेती मे हाँकते-हाँकते थक जाते थे तब, जब विश्रान्ति के लिए बैठते, उस समय हम उनसे विनय-वैयावच्च करते हुए ज्ञान लेते थे और रात्रि मे उस समय प्रकाश का साधन न होने से जुगनू को पकडकर उसके प्रकाश मे याद करते थे। खाने के लिये चने की दाल जिसे भिगोकर रख देते और उसे खाते थे तथा एक लगन से अध्ययन करते थे।

विचार करिये बन्धुओ ! कहाँ तो वह स्थिति और कहाँ आज की स्थिति ! आज तो कितनी सहूलियत आ गयी है इन विद्यार्थियो के पास। फिर भी क्या दशा हो रही है ?

उदयपुर मे मेरी एक प्रोफेसर से बात-चीत हुई थी। बात-चीत के सिलसिले मे उन्होने कहा कि "मुझे ट्राफिक का जितना डर नही रहता, उतना डर रहता है कॉलेज के लडको का। ट्राफिक से तो सावधानी के साथ बचा जा सकता है, पर कॉलेज के लडको से सुरक्षित बचकर घर पहुँचना अतीव कठिन है, उनके साथ बडे विवेकपूर्वक व्यवहार करना पडता है।" देखिये ! लौकिक ज्ञान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो की यह स्थिति है। अब विचार करिये ऐसी स्थिति मे उन विद्यार्थियो को पढने का क्या फल मिल सकता है, जिनका अपने गुरु के प्रति समर्पण न हो, विनय न हो, वह भले ही कितना ही ज्ञान पा ले, जीवन मे सफल नही हो सकते। इसीलिये आज आप देख सकते है, कितने ही पढे-लिखे ग्रेजुएट लोग बेरोजगार घूम रहे हैं। इनकी बेरोजगारी मे एक कारण गुरु के प्रति अविनय भी है।

जब भौतिक क्षेत्र मे भी सफल होने के लिये विनय की आवश्यकता है। तब आध्यात्मिक क्षेत्र मे कितनी क्या विनय की आवश्यकता रहती है ? यह अत्यन्त विचारणीय है। परन्तु खेद है कि आज आध्यात्मिक ज्ञान के क्षेत्र मे भी विद्यार्थियो की क्या दशा हो रही है ? मैं क्या कुछ कहूँ ? बन्धुओ। ज्ञान लेने के लिये विनय और बहुमान की अति आवश्यकता है। जिसमे विनय तो हर कोई

कर लेता है, पर बहुमान करना कोई सहज कार्य नही है। इसे आप एक उदाहरण के द्वारा समझिये—

एक गुरुजी के पास कई शिष्य आध्यात्मिक जीवन का अध्ययन करते थे, जो किताबो से नही प्रत्युत अनुभूति से मिलता था। चूँकि अनुभूति का ज्ञान अनुभूति से मिलता है। अक्षरीय ज्ञान भले ही पुस्तको से मिल जाए, पर ज्ञानी जनो का फरमाना है कि "ज्ञान पोथी से न चाहो, किन्तु नम्र भाव से आत्मा को झुकाकर, गुरु से पूछकर उनकी सेवा करके प्राप्त करो।" आध्यात्मिक ज्ञान का निर्झर वहाँ बह रहा था। उसी समय, सयोग की बात है, एक सम्यग्दृष्टि देव आकाश मार्ग से दूसरे स्थान पर जा रहा था। उसका उपयोग उस आध्यात्मिक अध्ययन कराने-करने वाले गुरु-शिष्यो की तरफ गया। उस ने देखा कि गुरुजी शिष्यो को अपने अनुभव का ज्ञान दे रहे है और शिष्य बडे विनयपूर्वक ग्रहण कर रहे हैं। पर बहुमानाचार इनके जीवन मे कितना क्या है ? इस बात को उस देव ने प्रैक्टिकल रूप से जानना चाहा। अत उसने अपनी देव शक्ति से ऐसा रोग पैदा किया, जिससे गुरुजी की दोनो आँखे चली गई। तत्पश्चात् वह स्वय चिकित्सक का रूप बनाकर वहाँ पहुँचा और जोर-जोर से कहने लगा कि कोई दु खी-दर्दी है, किसी के नेत्र चले गये है तो मैं ठीक कर सकता हूँ। यह बात शिष्यो ने श्रवण की तो विनयपूर्वक गुरु की आज्ञा लेकर उसके पास पहुँचे। उस देव रूप चिकित्सक के पास आकर कहा कि हमारे गुरुजी के नेत्र चले गये है। आप उनके नेत्र पुन लौटा दीजिये। वह चिकित्सक रूपधारी देव अन्दर आया और शिष्टाचार दर्शाते हुए गुरुजी को देखने लगा। सभी शिष्य भी गुरु के आस-पास बैठ गये।

चिकित्सक ने नेत्रो को देखा और कहा कि इनके नेत्रो मे रोशनी तो है, पर ऊपर की अवस्था विकृत हो गई है। अत इनके नेत्रो को ठीक तो किया जा सकता है, पर किसी दूसरे जीवित मनुष्य के नेत्र निकाल कर लगाने पडेगे। आप विनयवान हैं, गुरु के प्रति सम्पूर्ण रूप से समर्पित है, तो क्या, आप मे से कोई नेत्र दे सकता है ? यह सुनकर सभी विद्यार्थी आगे पीछे होने लगे और बहाने करने लगे कि गुरु महाराज के तो इतने चेले हैं, उनकी तो सेवा हो जायेगी, पर हमारे कौन से चेले है ? अगर हमारी आँखे चली गयी तो हमारी सेवा कौन करेगा ? पर उनमे से एक विद्यार्थी बिना बुलाये ही सामने आया और बडी विनम्रतापूर्वक कहने लगा, कि मेरा सारा शरीर ही गुरु चरणो मे समर्पित है। आप सहर्ष मेरे नेत्र निकाल कर गुरुजी के लगा दीजिये। ऐसा कहकर सन्मुख बैठ गया, नेत्र निकलवाने के लिये। तब देव ने उसके बहुमानाचार से प्रसन्न होकर अपनी सारी माया समेट ली और अपना दिव्य देव रूप प्रकट करने के साथ गुरुजी के नेत्र पूर्ववत् कर दिये तथा उस शिष्य को साधुवाद देते हुए कहा कि "तुम धन्य हो, जो ज्ञानाचारो से सम्पन्न बन, अपने अनन्त ज्ञान के प्रकाश को

प्राप्त करने मे प्रयत्नशील बने हुए हो।" वन्धुओ! यह है विनय और बहुमान मे अन्तर। विनय तो सभी कर लेते है, पर बहुमान करना अतीव कठिन है। आज भी बहुत से व्यक्ति वीतराग देव का ज्ञान प्राप्त करने के लिये तत्पर तो हो जाते है, पर यह मानकर चलिये कि उनमे गुरु के प्रति विनय के साथ बहुमान की प्रवृत्ति जीवन मे नही आयेगी, तब तक भीतर का ज्ञान प्रगट नही हो सकेगा। अत ये बहुमूल्य उपाय रूप ज्ञानाचार ज्ञानियो ने बताये है। उन उपायो को अतीव श्रद्धा के साथ अपनाने का प्रयास करना चाहिये।

आज प्रतिक्रमण करने मे भी कई भाई लोग बहाना बनाते है कि हमे प्रतिक्रमण याद नही होता है। याद नही होता है तो बन्धुओ! यह आपका प्रमाद है, आलस्य है। यह आप भव्यात्माओ के लिये योग्य नही है। सत्पुरुषार्थ करते जाइये और ज्ञान के साथ विनय, विनय के साथ बहुमान एव आगे के भी सभी आचारो का परिपालन करिये, अवश्य ही आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होगा। अन्यथा आत्म कल्याण असभव है। जब तक सम्यक्ज्ञान एव वीतराग वाणी पर सम्यक् श्रद्धान नही होगा, जब तक गुरु के प्रति परिपूर्ण समर्पण, बहुमान नही आयेगा, तब तक जीवन से वास्तविक रूप मे अज्ञान अधकार दूर नही हो सकेगा, ज्ञान का सच्चा प्रकाश नही जगमगा सकेगा। बहुमानाचार की स्थिति जीवन मे कैसे लाई जाय—इसके लिये भी मुझे आचार्य श्री उदयसागरजी म सा के एक शिष्य का घटनाक्रम याद आ रहा है। वैसे समय आपका हो रहा है फिर भी उसे सुना देता हूँ। एक शिष्य के हाथ से अचानक काष्ठ पात्र टूट गया, उस समय आचार्य प्रवर बाहर पधारे हुए थे और इधर ये मुनिराज किसी आवश्यक कार्य से बाहर पधार गये। आचार्य प्रवर जब वन-विहार से लौटे और देखा कि पात्र टूटा हुआ पडा है तो जो सत वहाँ उपस्थित थे, आचार्य प्रवर ने यही समझा कि इसी ने पात्र तोडा है और वे उपालम्भ की भाषा मे शिक्षा फरमाने लगे कि अरे! यह क्या कर दिया? थोडा विवेक रखना चाहिये। इस तरह परिश्रम-पूर्वक बने पात्र को फोड देना अयतना का परिणाम है। आलस्य-प्रमाद को छोड-कर अवधानता से काम करना चाहिए।

वे शिष्य गुरुदेव की वाणी को अत्यन्त भक्ति एव बहुमान के साथ सुनते रहे। लेकिन जब वे मुनिराज आए, जिनके हाथ से पात्र टूटा था, और उन्होने देखा कि पात्र मेरे हाथ से टूटा है और उपालभ इनको मिल रहा है तो वे तुरन्त बोले भगवन्! पात्र इन मुनिराज के हाथ से नही मेरे हाथ से टूटा है। आचार्य प्रवर बोले—अरे! तुमने बतलाया नही कि मेरे हाथ से नही टूटा? तब वे क्षमा-सागर मुनिराज बोले—भगवन्! यदि मैं ऐसा बोल देता तो आज आपकी यह अमृतमय शिक्षा कहाँ सुनने को मिलती? ये मुनिराज भी हैं तो मेरे गुरु भ्राता ही। इनके सयोग से मुझे आज हितशिक्षा सुनने को मिली।

भव्य पुरुषो! देखिये बहुमान का आदर्श। गुरु के प्रति, गुरु के वचनो के

प्रति कितना बहुमान होना चाहिये—यह इस घटना से स्पष्ट होता है। यदि बहुमान की ऐसी स्थिति बनती है तो सम्यक् ज्ञान का जीवन मे त्वरित विकास हो सकता है। इन ऐतिहासिक दृष्टान्तो के घटनाक्रम का भाव ही मैं आपके सामने रख गया हूँ।

अन्त मे मेरा आपसे यही कहना है कि सम्यक् ज्ञान का आलोक प्राप्त करने के लिए विनय एव बहुमान के स्वरूप का बोध प्राप्त करिये। विनय-बहुमान के साथ शास्त्रीय अध्ययन करने हेतु वीतराग वाणी का रसपान कीजिये। इस प्रकार से किया गया ज्ञान, निश्चय ही सम्यक् रूप मे परिणमित होगा और आत्मा मे विशिष्ट ज्ञान और विशिष्ट शाति प्राप्त कराने मे सहायक बनेगा।

मोटा उपाश्रय, ३०–७–८५
घाटकोपर, बम्बई मगलवार

□ □ □

३१ उपधानाचार

(सम्यक्ज्ञान का चतुर्थ आचार)

वीतराग परमात्मा के कई नाम भूतकालीन दृष्टि से प्रचलित है। जिस शरीर से आत्मा ने मोक्ष प्राप्त किया, उस शरीर से सिद्ध भगवन्तो की स्तुति करने हेतु उनको उन्ही नाम से पुकारा जाता है। इस काल चक्र मे तीर्थंकर २४ हो गये है। उनकी स्तुति जो वर्तमान मे करने मे आ रही है, वह सब भूतपूर्व शरीर के नाम को लेकर ही। सिद्ध भगवन्त होने के बाद उस आत्मा का कोई पृथक् नाम नही रह जाता है। आचाराग सूत्र मे सिद्ध के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है—

"अवण्णे, अगधे, अरसे, अरुवे, अफासे, अपयस्स पय नत्थि।"

सिद्ध भगवन्त के वर्ण, गध, रस, स्पर्श कुछ नही है तथा अपद अर्थात् शब्दो से सिद्ध भगवान् के स्वरूप का पूर्ण वर्णन नही किया जा सकता है। अत. वे अपद है। सिद्ध भगवन् को चाहे जिस रूप मे पुकारा जाये, पर उनका मौलिक शुद्ध स्वरूप ही सामने रखना चाहिये। उनका स्वरूप समकक्ष रखकर ही वीतराग भगवान् के सिद्धान्तो को श्रवण किया जाना अपेक्षित है। ऐसा कहने पर ही आत्मा अपनी आध्यात्मिक ज्योति को प्रज्वलित करने के लिए उल्लसित हो सकती है। आज जो धर्मस्थान मे सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय आदि का विशेष प्रसग दृष्टिगत हो रहा है, उन सभी का एक ही उद्देश्य होना चाहिये—मोक्ष प्राप्ति का।

चतुर्विध सघ मे साधना करने वाले सभी का एक ही लक्ष्य है पर सभी की साधना पद्धति भिन्न-भिन्न है। एक मजिल है पर चलने के रास्ते भिन्न-भिन्न है। एक महाव्रतो की सडक पर चल रहा है तो दूसरा अणुव्रतो की। एक हवाई-जहाज मे जा रहा है, तो दूसरा बैलगाडी मे। पर पहुँचना दोनो को एक ही जगह है। कौन कब पहुँचता है, यह अपने-अपने सद् पुरुषार्थ पर निर्भर है। जैसे कि उत्तराध्ययन सूत्र मे प्रभु ने फरमाया है कि—

"सन्ति एगेहि भिक्खूहि, गारत्था सजमुत्तरा।
गारस्थेहिं य सव्वेहिं, साहवो सजमुत्तरा॥"

अर्थात्—कुछेक साधुओ से तो गृहस्थो का सयम भी अच्छा होता है। और सब गृहस्थो से साधुओ का सयम श्रेष्ठ होता है। भावार्थ यह है कि कुतीर्थी, भग्नव्रती और निह्नवादि साधुओ की अपेक्षा व्रत नियमादि को पालने वाले, गृहस्थो को इसलिये श्रेष्ठ कहा गया है कि कुतीर्थियो मे तो सम्यक् चारित्र के अभाव से सयम का होना असम्भव है और भग्नव्रती तथा निह्नवादि चारित्र के विराधक हैं इसलिये उनमे भी सयम नही हो सकता है। अत उनकी अपेक्षा देश चारित्र की आराधना करने वाले गृहस्थो के सयम को अवश्य श्रेष्ठ कहा है। पर जो सर्वविरति प्रधान साधु है, उनका सयम सभी देशविरति साधको से अनुत्तर है। क्योकि उनमे द्रव्य-भाव दोनो प्रकार से चारित्र की उच्चता होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि चारित्र की न्यूनाधिकता चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय एव क्षयोपशम पर निर्भर है। अत जितना-जितना उक्त कर्म के क्षय एव क्षयोपशम मे पुरुषार्थ किया जाता है, उतनी-उतनी देशव्रत या सर्वव्रत के रूप मे धर्म की प्राप्ति अधिक होती है। आप इस बात का दृढ श्रद्धान करे कि आत्मा बधन की स्वय निर्मात्री है तो बधन को तोडने वाली भी आत्मा ही है। अत सद्-पुरुषार्थ को जागृत करे। सम्यक् धर्म आराधना की स्थिति जीवन मे अपनाये।

जो रत्नत्रय की आराधना भगवती सूत्र मे प्रभु ने बताई है, वही विषय स्थानाग सूत्र मे त्रिविध धर्म के रूप मे तथा तत्त्वार्थ सूत्र मे "सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग" और आगम गाथा मे अहिंसा, सयम और तप रूप मे दर्शाया गया है।

"धम्मो मगल मुक्किट्ठ, अहिसा सजमो तवो।"

आप आराधना करने के लिए यहाँ उपस्थित हुए है। अत आराधना का स्वरूप समझकर मनुष्य जीवन को सार्थक करने का प्रसग है। शास्त्र की बाते बहुत तत्त्वपूर्ण हैं, जिनके विवेचन मे बहुत समय अपेक्षित है। ऊपर-ऊपर की आदर्शभूत बाते तो कहने मे आ जाती है। पर वर्तमान जीवन मे कैसे आचरण की भूमिका पर आकर जीवन का रूपान्तरण कर सके। प्रेक्टिकल रूप किस तरह जीवन मे आये इत्यादि का विचार करने की स्थिति बहुत कम बनती है। सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप जो सारभूत रत्न-त्रय है, वही आत्मा की प्यास बुझाने वाला है। आध्यात्मिक सुख की तृप्ति कराने वाला है। अनन्त आनन्द मे अवगाहन कराने मे समर्थ है।

अनन्त शक्ति पैदा करने वाले ये तीन ही तत्त्व है। इनका आचार क्या है?—आचार का तात्पर्य है जीवन मे जो व्रत-प्रत्याख्यान ग्रहण करने मे आते है। उन्हे किस तरह जीवन मे उतारना, कैसे उनकी आराधना करना, यह पद्धति आचार कहलाती है। इसी क्रम मे तपस्या को जीवन के व्यवहार पथ मे लाना

भी ज्ञान का आचार है। जिस प्रकार—सम्यग्दर्शन को किस तरह जीवन मे लाया जाये, यह सम्यग्दर्शन का आचार है। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान को जीवन मे जागृत करने के लिये ज्ञान के आठ आचार का प्रसग भी आपके सामने चल रहा है। जो सम्यक् ज्ञान को प्राप्त कराने मे सहायक भूत है। उनमे से काल, विनय और बहुमान इन तीन आचारो का सक्षिप्त विवेचन तो मै कर चुका हूँ। चौथा आचार है—**उपधानाचार** अर्थात् उपधान तप, जिसका तात्पर्य है ज्ञान प्राप्त करते हुए आयम्बिल वगैरह तप करना। आज उपधान तप का जो मौलिक स्वरूप है, आज बहुत स्थानो पर वैसा नही हो रहा है। उसमे विकृति दृष्टिगत होती है। शास्त्र का जो आशय तप को लेकर रहा हुआ है, उसका सकेत मैं आपके सामने करना चाह रहा हूँ।

भीतर का अनन्त ज्ञान कैसे प्रकट हो सकता है, इसके लिये प्रभु ने अनेक उपायो के साथ उपधान तप भी बताया है। कई मनुष्य उपधान तप का अर्थ आयम्बिल तप करना मानते हैं और उसी अर्थ को आचार मे उतार कर सतुष्टि कर लेते है। पर उपधान का यह सीमित अर्थ नही है। अन्तर का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उपधान तप—आयम्बिल तप जरूर करना चाहिए। आयम्बिल तप करने से क्या होता है ? तथा उसी को उपधान तप क्यो बताया है। उसका रहस्य यह है कि आप उपवास करते हो, उससे पाँच इन्द्रियो के विषय एव चित्त के विकार उपशात हो जाते है। पर पाँचो इन्द्रियो मे विशेष विषय की तरफ झुकी हुई यह जिह्वा जितनी अपने विषय मे सशोधन की स्थिति को प्राप्त होती है, उतनी ही अवशेष चार इन्द्रिया भी शिथिल होती जाती है। उपवास के दिन जिह्वा भूखी रहने से चारो इन्द्रियाँ भी वशीभूत रहती हैं। पर दूसरे दिन जब पारणा किया जाता है तब जिह्वा की विषयपूर्ति होते ही अवशेष चार इन्द्रियाँ भी अपनी-अपनी विषय प्रवृत्ति को चालू कर देती हैं। उपवास तो फिर भी आप लोग महज कर लेते है, पर आयम्बिल करने से बहुत से मनुष्य कतराते हैं। कारण कि उसमे इस जिह्वा की विषयपूर्ति नही होती है। निरस पदार्थ खाने पडते है। उस निरस भोजन को खाना जिह्वा को वश मे रखना कोई सहज नही है। आपने धन्ना अणगार का वर्णन सुना होगा, जो बेले-बेले की तपस्या का पारणा आयम्बिल से करते थे और वह आयम्बिल का भोजन भी कैसा ? रक-भिखारी भी जिस भोजन को खाने की इच्छा नही करे, वैसा आहार लाकर उसे २१ बार पानी से धोकर करते थे तथा उस पानी को पीते थे। यदि आपको भी आयम्बिल के दिन ऐसी ही वस्तु मिले तो आप कितने आयम्बिल करेंगे ? बन्धुओ ! धन्ना अणगार जैसा उत्कृष्ट आयम्बिल करते थे, वही वास्तव मे उत्कृष्ट उपधान तप है। क्योकि कर्म निर्जरार्थ एव ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति मे उपधान तप है और उससे अनन्त ज्ञान राशि की प्राप्ति मे अधिक सहायता मिलती है। जब श्रेणिक महाराज ने प्रभु महावीर से प्रश्न किया कि हे

भगवन् ! आपके चौदह हजार शिष्यो मे सबसे ज्यादा निर्जरा करने वाला महान् तपस्वी कौन है ? तब प्रभु ने फरमाया कि हे श्रेणिक ! धन्ना अणगार है। क्योकि वह बेले-बेले का पारणा करता है। और पारणे मे भी उपधान तप आयम्बिल तप करता है। जिससे वह बहुत अधिक कर्म की निर्जरा कर रहा है। धन्ना अणगार के लिये जैसा कि अनुत्तरोपपातिक सूत्र मे पाठ मिलता है—

"तएणं से धण्णे अणगारे ज चेव दिवसं मु डे भवित्ता जाव पव्वइयाए तं चेव दिवसं भगवं महावीर वदइ नमंसइ वंदित्ता नमसित्ता एव वयासी—एवं खलु इच्छामिणं भन्ते ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समण्णे जावज्जीवाए छट्टं छट्टेण अणिक्खित्तेणं आयबिले-परिग्गहिएण तवो कम्मेण अप्पाण भावेमाणे विहरित्तए, छट्ठस्सवि य ण पारणगंसि कप्पइ मे आयंबिल पडिग्गहित्तए, णो चेव णं अणायबिल, तपि य संसट्टेणं णो चेव ण असंसट्टेणं, तपि य ण उज्झियधम्मियं, णो चेव णं अणुज्झियधम्मियं, तपि य ण ज अन्ने बहवे समणमाहणे अतिहि-किवण वणिमग्गा णावकखति ? अहासुय देवाणुप्पिया ! मा पडिबंध करेह ॥

तएण से धण्णे अणगारे समणेण भगवया महावीरेण अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठ-तुट्ठ जावज्जीवाए छट्ठ-छट्ठेण अणिखित्तेणं तवो-कम्मेण अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

इस तरह कर्मो की बहुत निर्जरा होती है। कर्म कटते है। ज्ञानावरणीय कर्म खपता है। साथ ही मोहनीय कर्म के खपने से विशिष्ट ज्ञान की उपलब्धि होती है। यह उपधान तप सम्यग् ज्ञान का आचार है। पर ऐसा आयम्बिल करने का प्रसग बहुत कम आता है। 'उप' का अर्थ है समीप, 'अधान' से तात्पर्य ज्ञान को प्राप्त करना। जो तप हमारे पास मे रही हुई अनन्त ज्ञान राशि को प्राप्त करने मे अर्थात् प्रकट करने मे सहायक होता है। वह **'उपधान तप'** है। यह आयम्बिल तप का विशिष्ट स्वरूप है। २४ घण्टो की मौन लेकर आश्रव के त्याग के साथ आयम्बिल किया जाय। वह भी एक दाने का हो चाहे एक धान का, उसमे नमक, काली मिर्च आदि कुछ भी न हो। ऐसे निरस आहार को पानी मे घोलकर आयम्बिल तप किया जाय। दिन भर मौन रखकर आत्मा के समीप जाने की कोशिश की जाय। तभी सम्यक् रूप से आपका यह आयम्बिल सार्थक होगा। तभी रसनेन्द्रिय को सही तरीके से जीता जा सकेगा जिससे कर्मो की निर्जरा होगी और सम्यक् ज्ञान की पुष्टि होगी। २४ घण्टे तक उपवास अथवा आयम्बिल का प्रसग आवे तो उसमे आश्रव को बन्द रख कर सवर की स्वाध्याय की आराधना की जाय। अन्तर की आत्म स्थिति मे अवगाहन किया जाय। क्योकि आत्म स्वरूप के नजदीक पहुँचने पर ही उपधान तप की पूर्ण सार्थकता हो सकेगी। पर खेद है कि आज कई स्थानो पर आयम्बिल का नाम लेकर

एकासना जैसी स्थिति अपनाकर आयम्बिल किया जाता है, यह उचित नही है। परन्तु आज क्या कुछ स्थिति इस तप की बन रही है। सो आप देख ही रहे हैं। विस्तार से कहने का प्रसग नही। मै तो सिर्फ शास्त्रीय बात बता गया हूँ। शास्त्र मे वर्णित आयम्बिल तप के सही स्वरूप को समझकर उसी रूप मे उसका यथाशक्ति सम्यक् अनुष्ठान किया जाय। आप अधिक से अधिक तप करे। मैं उसका अनुमोदक हूँ। पर उसे उसकी पद्धति के अनुसार ही करे। नाम तो आप आयम्बिल का करे एव पदार्थ अन्य ग्रहण करे, यह कहाँ तक उचित है ? क्या भगवान के समय मे इस तप की यही पद्धति थी ? आप जरा गहराई से विचार करे। यदि सही रूप से आयम्बिल तप का अनुष्ठान कर आत्मिक गुणो की अभिवृद्धि के साथ आत्मा के नजदीक पहुँचने की प्रवृत्ति मे ज्यादा से ज्यादा सलग्न बनोगे तो एक न एक दिन जरूर आप अनन्त कर्म निर्जरा के साथ अपने ज्ञान प्रकाश को जागृत कर सकोगे।

जिस तप की ज्यादा से ज्यादा प्रदर्शनी होती है, आत्मीय गुणो की सजावट के बजाय तप महोत्सव मनाते हुए शरीर को वस्त्राभूषणो से सजाया जाता है तो वहाँ तप की शक्ति एव आत्मीय गुण विलुप्त होते जाते हैं। वे वास्तविक कर्म निर्जरा से वचित हो जाते है। भौतिक सपत्ति को जिस तरह आप तिजोरी मे बद करके रखते हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक गुणो को भी आत्मा-रूपी तिजोरी मे स्थित करे। दिखावा नही करे, अन्यथा इनमे बाधा आयेगी। क्योकि लौकिक सपत्ति के प्रदर्शन मे भी कैसी बाधा आती है, इसके लिए एक दृष्टान्त दे देता हूँ। जिससे आप लोग आध्यात्मिक सम्पत्ति को गुप्त रखने का मूल्य समझ सके।

दृष्टान्त— मोतीलाल नाम के एक सेठ थे, उनके पास बहुत ज्यादा सपत्ति थी, वह अत्यधिक पाप अनुष्ठान से पूर्वजो द्वारा एकत्रित की हुई थी। एक बार रात्रि के समय मोतीलाल सेठ अपनी सपत्ति के विषय मे चिन्तन करने लगे और उन्हे यह महसूस हुआ कि मेरे पास इतनी अधिक सम्पत्ति है पर मेरी कोई प्रसिद्धि नही हुई है। रात भर यही चितन चलता रहा। प्रात काल अपने घर के सभी सदस्यो को बुलाकर कहने लगे कि रात्रि मे मुझे एक विचार आया, यदि आप लोग अनुमोदन करो तो मैं कहूँ। स्वीकृति मिलने पर उन्होने कहा कि— देखो, अपने घर मे इतनी सम्पत्ति है, पर अभी तक राज-दरबार मे मेरा कुछ भी मान-सम्मान नही है। अत अपने यहाँ राजा को जीमने के लिये बुलाकर सारी सम्पत्ति का दिग्दर्शन कराया जाये। अपना अतुल वैभव देखकर वे अपनी प्रशसा करेगे। इससे प्रजा भी अपना सम्मान करेगी। सभी ने एक स्वर मे सेठ की बात का अनुमोदन किया। छोटी पुत्रवधू जो कि गभीर मुद्रा मे सभी के बीच बैठी हुई थी। सारी बात श्रवण करने पर भी कुछ नही बोली, अपने विनय एव शिष्टाचार का निर्वाह कर रही थी। पर ज्योहि सेठ की दृष्टि उस पर गिरी तो

सहज ही पूछ लिया कि बहू, तुम चुप क्यो हो, तुमने मेरी बात के अनुमोदन मे कुछ भी नही कहा, ऐसा क्यो ? तब वह बडी विनम्रता पूर्वक बोली—"पिताजी ! मै क्या कहूँ, जो अपनी सम्पत्ति है, वह बाहर दिखाने की नही है। यदि आप इसका प्रदर्शन महाराजा के समक्ष करेगे, तो निश्चित ही आप सकट को बुलावा देगे। मुझे आपका यह प्रस्ताव उचित नही लगा, इसीलिए मै कुछ नही बोली। परन्तु सभी ने छोटी समझकर उसकी बात हँसी मे उडा दी। और बहुमत के अनुसार कार्य को क्रियान्वित किया गया। पुत्रो को गहनो से लाद दिया गया। माणक मोती से थाल भरकर बाजार के बीच से होते हुए, अपनी सम्पत्ति के प्रदर्शन का मुख्य लक्ष्य रखते हुए राज-दरबार मे पहुँचे। वह भेट राजा को अर्पित की और राजा को अपने घर भोजन के लिये पधारने का निमन्त्रण दिया, निमन्त्रण को स्वीकार करके ठीक समय पर राज्य के बडे-बडे अधिकारियो के साथ महाराजा राजसी ठाठ-बाट से सेठ के भवन पर पहुँचे, भवन की भव्य सजावट देखकर राजा आश्चर्य मे पड गये। क्या मेरे राज्य मे भी इतने धनवान सेठ है ? भोजन करने पहुँचे तो तरह-तरह के पकवान देखकर राजा की मन स्थिति कुछ और ही हो गई। सेठ के अतुल वैभव ने राजा के अन्तर मे लोभ वृत्ति जागृति कर दी, उसकी दृढ भावना बन गई कि किसी न किसी प्रकार से इस सेठ की सारी सम्पत्ति हडपनी है। जैसे-तैसे भोजन का कार्य निपटा कर सेठ का सत्कार-सम्मान ग्रहण करके अपने अन्दर की स्थिति गोपनीय रखते हुए पुन राजमहलो मे लौट आये। राजा को अन्यमनस्क देखकर मत्री ने कारण पूछा—तब राजा ने सारी हकीकत कह सुनाई और पूछा कि किस तरह इस सेठ की सारी सम्पत्ति अपने अधिकार मे ली जाय ? मत्री ने कुछ समय विचार करने के बाद कहा कि "आप कोई ऐसा प्रश्न सेठ के सामने रखें जिसका समाधान वह न कर सके और इस प्रसग पर उसकी सारी सम्पत्ति अपने अधिकार मे ले ली जाये। भोजन का निमन्त्रण लेकर के मन्त्री सेठ के घर गया और भोजन के लिये राजमहल मे पधारने का आग्रह किया। सेठ बडा ही प्रसन्न हुआ और सभी पारिवारिक जनो से कहने लगा कि "देखा तुम लोगो ने ? यह सब अपनी विपुल सपत्ति का ही प्रभाव है।" पर छोटी पुत्रवधू तो उस समय भी गभीरता को धारण किये बैठी रही। जबकि मन ही मन वह सारी बातें समझ रही थी। इधर सेठ मन ही मन मे अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ राजमहल मे पहुँचा। राजा ने बहुत ही आदर सत्कार किया एव अपने बराबर आसन पर बैठाकर भोजन करवाया। सम्राट यह सभी कार्य ऊपरी मन से करवा रहा था, पर भीतर ही भीतर तो वह अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिये उत्सुक हो रहा था। भोजन से निवृत्त होने के बाद बातो ही बातो मे सम्राट ने सेठ से कहा—"सेठ सा आप तो बहुत बुद्धिमान है, तभी तो अपार वैभव के स्वामी है। मेरे मन मे जो प्रश्न उभर रहे है। कोई भी उनका उत्तर नही दे सका। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इसका उत्तर दे देगे, पर इसके साथ

एक शर्त है यदि आप उत्तर नही दे सके तो आपकी सारी सपत्ति राज्याधिकार मे ले ली जायेगी। और यदि उत्तर दे देगे तो उपहार देकर बहुत मान-सम्मान दिया जायेगा। सेठ अपनी प्रशसा सुनकर फूला नही समा रहा था। अति उत्सुकता से पूछा—कौन से प्रश्न है ? आप जल्दी पूछिये मैं सुनने के लिये अतीव आतुर हूँ। तब महाराज दोनो प्रश्न सेठ के सामने रखते हुए कहने लगे—बताओ।

१. निरन्तर समाप्त होने वाली वस्तु कौनसी है ?

२ निरन्तर विस्तार प्राप्त करने वाली वस्तु कौनसी है ?

इन दोनो प्रश्नो को सुनकर सेठ साहब ठडे पड गये, विचार करने लगे कि इन प्रश्नो का जवाब तो मुझे आता नही, मैने अपनी जिन्दगी मे कभी ऐसे विचित्र प्रश्न नही सुने। अहो ! मुझे छोटी बहू की बात उस समय तो महत्त्व-पूर्ण नही लगी पर अब समझ मे आ रही है। उसने मुझे बहुत उचित सलाह दी थी पर अब पश्चाताप करने का समय नही है। अभी भी अवसर है, छोटी बहू बहुत बुद्धिमती है सभव है वह इन प्रश्नो का उत्तर देने मे समर्थ हो जाये। अत उसी से क्यो न पूछ लू। ऐसा विचार कर सेठ ने महाराजा से कहा कि, "राजन् ! आज बहुत गरिष्ठ भोजन खाने से मस्तिष्क भारी बना हुआ है। अत आप कृपा करके मुझे एक दिन की छुट्टी दे दीजिये।" राजा ने उसे एक दिन की छुट्टी दे दी। छुट्टी लेकर सेठ साहब घर पहुँचे और घर के सभी सदस्यो के सामने सारी हकीकत रखते हुए छोटी बहू से अपने कृत-कार्य के लिये माफी मागकर कहा कि—"बहू ! तुम तो बहुत बुद्धिशाली हो, तुम्हारी बात हमने नही मानी, इसलिये आज यह भारी सकट सामने उपस्थित हुआ है। राजा के दोनो प्रश्नो का क्या कुछ समाधान है ? यह कार्य मेरी बुद्धि से परे है, मुझे तुम्हारे ऊपर पूर्ण विश्वास है कि तुम उन दोनो प्रश्नो का उत्तर देने मे समर्थ हो सकती हो, अत बहू, तुम प्रश्नो का उत्तर देकर अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा करो। मेरी लाज रखो।"

वह छोटी बहू जो सारी बात गभीरतापूर्वक सुन रही थी। वह सेठ साहब को सात्वना देती हुई कहने लगी कि पिताजी ! आप कुछ भी चिता न करे, राजा को कहला दे कि आपके इन सामान्य प्रश्नो के उत्तर तो मेरी सबसे छोटी बहू भी दे सकती है। और आप मुझे राज्य-दरबार मे भेज दीजिये। मैं अपनी मर्यादा मे रहती हुई महाराज के इन दोनो प्रश्नो का उत्तर दे दूगी। सेठ यह सुनकर अतीव प्रसन्न हुआ तथा महाराजा को कहलवा दिया कि—आपके इन सामान्य प्रश्नो का उत्तर तो मेरी छोटी पुत्रवधू भी दे सकती है। दूसरे दिन वह पुत्रवधू सादी-सीधी पोशाक मे राज्य दरबार मे एक घास का भारा व एक दूध का कटोरा लेकर पहुँची। राजा ने पूछा कि "आप यहाँ कैसे ?" तब उसने कहा

कि "सेठजी के प्रश्नो का उत्तर देने आई हूँ।" तब राजा ने कहा—आप इन दोनो वस्तुओ को साथ मे क्यो लाई हो ? तब पुत्रवधू ने उत्तर दिया कि—यह घास का भारा तो दीवान को भेट करने के लिये लाई हूँ। यह सुनते ही दीवानजी की तो त्यौरियाँ चढ गई। वह पुत्रवधू आगे कुछ कहे उससे पूर्व ही दीवान ने अपना भारी तिरस्कार समझ, उससे प्रश्न किया कि—तुमने मुझे क्या समझा ? जो मेरे को भेट देने के लिये यह घास का भारा लाई हो। तब पुत्रवधू ने निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया कि- दीवानजी ! मैं सेठ साहब की तरह असत्य का पोषण करने वाली नही हूँ। जो जैसा होता है, उसे वैसी ही वस्तु की भेट देनी पडती है। आपकी बुद्धि पशु जैसी है। हालाकि दीवान की बुद्धि तो प्रजा हितैषी, व्यापक और विशाल होनी चाहिये। पर आप अपनी प्रजा के साथ ऐसा अन्याय करते हो, सम्राट को भी गलत मार्ग पर आगे बढा रहे हो। आपकी बुद्धि मे पशुता नही तो क्या है ? और जो पशु होता है, उसे खाने के लिये घास चाहिये। अत मैं आपके योग्य ही यह उपहार लाई हूँ। यह श्रवण कर मत्री और भी उत्तेजित हो गया, पर राजा ने उसे शात करते हुए उस पुत्रवधू से पूछा कि यह दूध का प्याला तुम किस लिये लाई हो ? तब पुत्रवधू ने कहा कि—दूध का प्याला आपके लिये लाई हूँ। कारण—यहाँ के राजा अर्थात् आप नन्हे बालक के समान है। जैसा दीवान कहता है, वैसा ही कार्य करते है। अपनी बुद्धि से कोई काम नही करते हैं। यह श्रवण कर राजा स्वय बहुत शर्मिन्दा हुआ और गलती महसूस करने लगा और उसकी बुद्धिमत्ता से अत्यधिक प्रभावित होता हुआ अपने प्रश्नो का उत्तर जानने के लिये उत्सुक बना। जब उसे दोनो प्रश्नो का उत्तर देने के लिये कहा तो वह निर्मल बुद्धि सम्पन्ना पुत्रवधू कहती है कि राजन् !

१ आयुष्य एक ऐसा तत्त्व है जो निरन्तर अर्थात् क्षण-क्षण मे कुछ भी विलम्ब किये बिना समाप्त हो रहा है।

२ आपके दूसरे प्रश्न का उत्तर है—निरन्तर विस्तार को प्राप्त करने वाली वस्तु तृष्णा है।

यह श्रवण कर राजा, दीवान और सारी राज परिषद् धन्य-धन्य का गुजार करती हुई, पुत्रवधू को शतश धन्यवाद समर्पित करती हुई, उसे बडे मान-सम्मानपूर्वक विदा करती है। दीवान, महाराजा से कहता है कि—"महाराज ! सेठ साहब के पुत्रवधू की कमाल की बुद्धि है। अपनी सारी योजना निरर्थक गयी। अब आप सेठ साहब की सम्पत्ति नही ले सकते है।" बन्धुओ, यह तो एक कथानक है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब भौतिक सम्पत्ति को प्रकट करने से इतनी विपत्ति आती है तो आध्यात्मिक गुणो का बखान करने से कैसे क्या होगा ? यह विचार करने की बात है। अत बाहरी प्रदर्शन का लक्ष्य न रखते हुए अधिकाधिक आत्मानुष्ठान की पवित्र चर्याओ मे अपने आपको सलग्न बनाकर अपने भीतर मे रहे हुए अनन्त-प्रकाश को उजागर करने मे कटिबद्ध हो

जाये । अपने जीवन की सारी प्रवृत्तियाँ विनय एव विवेक बुद्धि के साथ धर्ममय बनाये । आपका जीवन अवश्य मगलमय बनेगा ।

आज के युग मे प्रदर्शन बहुत बढता जा रहा है । उपधान तप के नाम से अनेक प्रकार का आडम्बर बढाया जा रहा है । अत उपधान का स्वरूप सही रूप से समझकर सम्यक् ज्ञान की वृद्धि के लिये विधिवत् तपानुष्ठान मे प्रवृत्ति करे ।

बधुओ ! शास्त्र का अमृतोपम तात्विक ज्ञान श्रवण करते हुए ज्ञेय तत्त्वो की जानकारी प्राप्त करे । हेय तत्त्वो का अपने जीवन से विसर्जन करे तथा उपादेय तत्त्वो से अपनी आत्मा को सवारने मे प्रयत्नशील बने । कर्म निर्जरा का प्रमुख लक्ष्य रखते हुए सम्यक् तपानुष्ठान से अपनी आत्मा को अनन्त वीर्य सम्पन्न, अनन्त ज्ञान सम्पन्न बनाकर सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक लक्ष्मी का वरण करे । इसी मंगल कामना के साथ ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

३१-७-८५
बुधवार

•□•

३२ अनिह्नवाचार

(सम्यक् ज्ञान का पाँचवा आचार)

इस ससार मे सबसे ऊँचा और श्रेष्ठ अगर कोई तत्त्व है, तो आत्मा ही है। और वही परमात्मा के रूप मे प्रकट होती है. जिन्हे ईश्वर, भगवान्, सिद्धादि किसी भी नाम से कहा जा सकता है। वही अनन्त सुख की स्वामी है, मनुष्य ससार मे रहता हुआ, सुख की प्राप्ति हेतु ज्ञान प्राप्त करता है। विचारता है कि अमुक पुरुष मुझे शाति देगे, मैं उनकी शरण मे जाऊँ। इस कल्पना को लेकर सासारिक मनुष्य ससार के कामो मे लगता है, आवश्यकता पडने पर राजा, महाराजा, सतो के चरणो की उपासना भी करता है और चाहता है कि ये मुझ पर मेहरबान हो जाएँ, पर उस पुरुष को यह पता नही है कि जिसको मैं स्वामी बनाकर चल रहा हूँ, वे स्वय दु ख मे डूबे हुए है, तो मुझे क्या शाति देंगे।

सुना जाता है कि अमेरिका मे १२७ मजिल की हवेली है, उसका मालिक १२७वी मजिल पर रहता है, जहाँ नीचे के जमीन की गर्म हवा भी (अपेक्षा से) उसे न लग सके, उसके पास डॉक्टर हर समय लगा रहता है, उसे यह भय हरदम बना रहता है, कि मेरी सपत्ति न लूट ली जाय, इस तरह उसकी स्वय की दशा क्या है ? आप उनको देखे या स्वय के भीतर अनुभव करे, जितनी-जितनी सपत्ति बढती है, उतनी-उतनी शाति मिलती है या अशाति बढती है ? स्पष्ट हो जाएगा कि भौतिकता की दृष्टि से शाति कम एव अशाति ही बढती है, अत भगवान् ही सर्व श्रेष्ठ हैं, उनके बतलाये मार्ग पर समर्पित हो जाऊँ, उनके ज्ञान मे तल्लीन बन जाऊँ, इस भावना के अनुरूप जो जीवन बना लेता है, उसकी मनोकामना स्वत पूर्ण हो जाती है, उसका मन इतना शक्ति सपन्न बन जाता है कि मन मे सकल्प आते ही वह भावना पूर्ण भी हो जाती है।

कामना हर सामान्य मनुष्य करता है, पर उसकी सभी भावना पूर्ण नही होती, किन्तु अध्यात्म पथ पथिक की हर भावना पूर्ण हो जाती है।

"जाको राखे साईयाँ, मारी सके न कोय।
बाल न बॉका करि सके, जो जग बैरी होय॥"

जो वीतराग उपदेश को जीवन मे ले लेता है और उस ज्ञान के अनुसार अपने जीवन को बना लेता है, उसके जीवन मे फिर कोई कमी नही रह पाती है।

जाये । अपने जीवन की सारी प्रवृत्तियाँ विनय एव विवेक बुद्धि के साथ धर्ममय बनाये । आपका जीवन अवश्य मगलमय बनेगा ।

आज के युग मे प्रदर्शन बहुत बढता जा रहा है । उपधान तप के नाम से अनेक प्रकार का आडम्बर बढाया जा रहा है । अत उपधान का स्वरूप सही रूप से समझकर सम्यक् ज्ञान की वृद्धि के लिये विधिवत् तपानुष्ठान मे प्रवृत्ति करे ।

बधुओ ! शास्त्र का अमृतोपम तात्विक ज्ञान श्रवण करते हुए ज्ञेय तत्त्वो की जानकारी प्राप्त करे । हेय तत्त्वो का अपने जीवन से विसर्जन करे तथा उपादेय तत्त्वो से अपनी आत्मा को सवारने मे प्रयत्नशील बने । कर्म निर्जरा का प्रमुख लक्ष्य रखते हुए सम्यक् तपानुष्ठान से अपनी आत्मा को अनन्त वीर्य सम्पन्न, अनन्त ज्ञान सम्पन्न बनाकर सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक लक्ष्मी का वरण करे । इसी मगल कामना के साथ ।

मोटा उपाश्रय ३१-७-८५
घाटकोपर, बम्बई बुधवार

• □ •

यह दुनिया तो दो रंगी है, लोग तो कहेंगे, दीक्षा लेने की भावना रखता था, दीक्षा की भावना तो ये आठों स्त्रियां भी उतार सकती थी, पर धन चला गया, इसलिये अब दीक्षा ले रहा है, इस लोकापवाद से बचने के लिये आज रात्रि को धन की चोरी न हो। बस इतना सा सकल्प किया और चोरो के हाथ पोटलियां पर चिपक गये। अदृश्य शक्ति से सभी चोरो के पाँव जमीन से चिपक गये। चोरो के सरदार प्रभव ने देखा कि मेरे ऊपर यह कौन आ गया, इधर-उधर देखा तो ऊपर प्रकाश नजर आया। वह वहाँ पहुचा। और प्रथम क्षण मे ही आश्चर्य मे पड गया कि यह कोई देवलोक तो नही है। दूसरे ही क्षण वह सभला और देखा—यह देवलोक नही है, श्रेष्ठी का लडका जम्बूकुमार है और ये उसकी पत्नियाँ है, मुझे इससे इसके पास की विद्या सीख लेनी चाहिए। यह सोचकर वह उन्हे वन्दना करता है और कहता है "आप जीते मै हारा"। अपने आपसे सौदा करले, मेरे पास दो विद्या है, वह तुम सीख लो और पैर चिपकाने की विद्या मुझे सिखा दो। जम्बूकुमार ने कहा मुझे कोई सौदा नही करना है, मै तो सब कुछ त्यागकर कल प्रात दीक्षा ग्रहण कर रहा हूं। मुझे कोई विद्या आती नही है, मैने तो मात्र सकल्प किया था कि "आज रात्रि मे सम्पत्ति की चोरी न हो।" यह सुनकर प्रभव विस्मित रह गया, उसने पूछा आपको यह सकल्प की दृढता कहा से मिली? जम्बूकुमार ने कहा कि मै तो वीतराग देव का परम उपासक हूँ, उनकी वाणी पर अगाध श्रद्धा रखता हूं, इसी कारण उनकी श्रद्धा के फल स्वरूप आत्म बल की उपलब्धि हुई है।

इस बात का प्रभाव यह पडा कि प्रभव अपने ५०० साथियों के साथ जम्बूकुमार की अध्यात्म शक्ति—आत्म बल के आगे झुक गया, प्रतिबुद्ध हो गया। वीतराग वाणी पर उसकी अटूट श्रद्धा हो गई और जम्बूकुमार के साथ ही सुधर्मा स्वामी के चरणो मे प्रव्रज्या (दीक्षा) अगीकार करली। सिर्फ एक व्यक्ति के आत्म बल ने, दृढ सकल्प ने सैकडो व्यक्तियो को प्रतिबोधित कर दिया।

सज्जनो! विचार करिये और आप भी भगवान् के दिव्य स्वरूप को सामने रखकर चलने का प्रयास करे। एकनिष्ठ बन जाएं तो सफलीभूत बन सकते है। जम्बूकुमार ने मात्र सकल्प किया, जिससे उसका कार्य सफल बन गया, ऐसी आत्म-शक्ति प्राप्त करने के लिए वीतराग देव के बताये ज्ञान के आचारो का दिव्य स्वरूप समझना है। पाचवा आचार अनिह्नवाचार अर्थात् जिससे ज्ञान प्राप्त किया है, उसके नाम को छिपाने की चेष्टा न करे, अध्यात्म का ज्ञान जिससे मिलता है, उन्हे भूलना नहीं चाहिये, चाहे वह छोटा व्यक्ति हो चाहे बडा। गुरुजी ने ज्ञान दिया और चेलाजी आगे बढ गये गुरु से, पर वह सोचे कि मुझे ज्ञान ज्यादा हो गया है, अब गुरुजी का नाम किस तरह बताऊं? इस तरह गुरु के नाम के गोपन से उसका वह प्राप्त ज्ञान भी विलुप्त हो जायेगा और जो

कवि कहता है, भगवन्, आपके ज्ञानलोचन को देख लेने से मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गए, अब मुझे कुछ भी आवश्यकता नही है ।

"विमल जिन सिद्धा लोयण आज ।
मारा सिद्धया वछित काज ।।"

तीर्थंकर देवो का जो विमल स्वच्छ निर्मल ज्ञान है, उसकी उपासना आचार नियमो के साथ करे, जिससे वह एक रोज उन दिव्य नेत्रो को देखने में समर्थ हो सकता है, जो पुरुष ज्ञान की परिपूर्ण प्राप्ति के लिए एकनिष्ठ बन जाता है, अन्य विषय गौण कर देता है, बस एकमात्र परमात्मा के साक्षात्कार का ज्ञान किस प्रकार होवे, इसमे तल्लीन बन जाता है, उसे मनोवछित प्राप्ति होती है ।

आपने जम्बूकुमार की बात सुनी होगी, आठ देवागना तुल्य कन्याओ के साथ शादी की । शादी की रात्रि मे ही उनको समझाने के लिए तत्पर हुए । पलग के चारो ओर आठो देवकन्यासम सोलह शृंगार से सजधजकर वे राज-कन्याये जम्बूकुमार को आर्कषित करने लगी, ऐसे समय मे व्यक्ति का मन अपने आप मे अकुश मे रह सकना, बडी कठिन बात है, पर सुधर्मा स्वामी के एक ही व्याख्यान से जो ज्ञान प्राप्त किया, उससे उनके ज्ञान चक्षु खुल गये कि "मै किस भूलभूलयाँ मे पडा हूँ, पूर्व जन्मो मे मैने क्या नही किया होगा ? पर मुझे शाति नही मिली, आत्मा की तृषा नही मिटी, मेरे मनोरथ पूर्ण नही हुए । अब मुझे तो सिर्फ एक निष्ठा है ज्ञान की आराधना करनी है, इन स्त्रियो के जाल मे नही उलझना है, ये मेरी आत्म तृप्ति को लूटने वाली है ।" अत- वे एकनिष्ठ होकर उनकी एक-एक बात का उत्तर देने लगे ।

उसी समय प्रभव चोर अपने ५०० साथियो के साथ चोरी करने निकला, उसे अनेक विद्याये सिद्ध थीं, पर वे सब भौतिक थी, सबको नीद मे सुला देने वाली और ताला तोडने वाली इन्ही दो विद्याओ के माध्यम से वह हवेली में चोरो करने के लिए पहुँचा । वहाँ दहेज मे आये हुए बहुमूल्य जवाहरात ६६ करोड सौनयाँ आदि की पोटलियाँ बाँधकर साथियो को आदेश देता है कि जल्दी से उठाओ इन पोटलियो को और चलो । अत्यन्त धीमे स्वर से—कहने पर भी उसकी आवाज जम्बूकुमार ने सुनली और सोचा कि यह सारा ही धन क्यो न ले जाय, मुझे दु ख नही है । मै तो कल सुबह होते ही वैसे ही सब कुछ त्याग कर प्रव्रज्या अगीकार करूँगा ।

समुद्र कभी मर्यादा नही छोडता पर वह भी यदि छोड दे, सूर्य ठडक नही देता पर वह भी यदि ठडक देने लग जाय, यहाँ तक कि प्रकृति के सब नियम उल्टे हो जाय पर मेरा सकल्प टूट नही सकता । मै निश्चय पर अटल हूँ, परन्तु

यह दुनिया तो दो रगी है, लोग तो कहेगे, दीक्षा लेने की भावना रखता था, दीक्षा की भावना तो ये आठो स्त्रियाँ भी उतार सकती थी, पर धन चला गया, इसलिये अब दीक्षा ले रहा है, इस लोकोपवाद से बचने के लिये आज रात्रि को धन की चोरी न हो। बस इतना सा सकल्प किया और चोरो के हाथ पोटलियो पर चिपक गये। अदृश्य शक्ति से सभी चोरो के पाँव जमीन से चिपक गये। चोरो के सरदार प्रभव ने देखा कि मेरे ऊपर यह कौन आ गया, इधर-उधर देखा तो ऊपर प्रकाश नजर आया। वह वहाँ पहुँचा। और प्रथम क्षण मे ही आश्चर्य में पड गया कि यह कोई देवलोक तो नही है। दूसरे ही क्षण वह सभला और देखा—यह देवलोक नही है, श्रेष्ठी का लडका जम्बूकुमार है और ये इसकी पत्नियाँ है, मुझे इससे इसके पास की विद्या सीख लेनी चाहिए। यह सोचकर वह उन्हे वन्दना करता है और कहता है "आप जीते मै हारा"। अपने आपसे सौदा करलें, मेरे पास दो विद्या है, वह तुम सीख लो और पैर चिपकाने की विद्या मुझे सिखा दो। जम्बूकुमार ने कहा मुझे कोई सौदा नहीं करना है, मै तो सब कुछ त्यागकर कल प्रात दीक्षा ग्रहण कर रहा हूँ। मुझे कोई विद्या आती नहीं हैं, मैने तो मात्र सकल्प किया था कि "आज रात्रि मे सम्पत्ति की चोरी न हो।" यह सुनकर प्रभव विस्मित रह गया, उसने पूछा आपको यह सकल्प की दृढता कहाँ से मिली ? जम्बूकुमार ने कहा कि मै तो वीतराग देव का परम उपासक हूँ, उनकी वाणी पर अगाध श्रद्धा रखता हूँ, इसी कारण उनकी श्रद्धा के फल स्वरूप आत्म बल की उपलब्धि हुई है।

इस बात का प्रभाव यह पडा कि प्रभव अपने ५०० साथियो के साथ जम्बूकुमार की अध्यात्म शक्ति—आत्म बल के आगे झुक गया, प्रतिबुद्ध हो गया। वीतराग वाणी पर उसकी अटूट श्रद्धा हो गई और जम्बूकुमार के साथ ही सुधर्मा स्वामी के चरणो मे प्रव्रज्या (दीक्षा) अगीकार करली। सिर्फ एक व्यक्ति के आत्म बल ने, दृढ सकल्प ने सैकड़ो व्यक्तियो को प्रतिबोधित कर दिया।

सज्जनो ! विचार करिये और आप भी भगवान् के दिव्य स्वरूप को सामने रखकर चलने का प्रयास करे। एकनिष्ठ बन जाएँ तो सफलीभूत बन सकते है। जम्बूकुमार ने मात्र सकल्प किया, जिससे उसका कार्य सफल बन गया, ऐसी आत्म-शक्ति प्राप्त करने के लिए वीतराग देव के बताये ज्ञान के आचारो का दिव्य स्वरूप समझना है। पाचवा आचार अनिह्लवाचार अर्थात् जिससे ज्ञान प्राप्त किया है, उसके नाम को छिपाने की चेष्टा न करे, अध्यात्म का ज्ञान जिससे मिलता है, उन्हे भूलना नहीं चाहिये, चाहे वह छोटा व्यक्ति हो चाहे बडा। गुरुजी ने ज्ञान दिया और चेलाजी आगे बढ गये गुरु से, पर वह सोचे कि मुझे ज्ञान ज्यादा हो गया है, अत गुरुजी का नाम किस तरह बताऊँ ? इस तरह गुरु के नाम के गोपन से उसका वह प्राप्त ज्ञान भी विलुप्त हो जायेगा और जो

उच्च स्थिति उसके जीवन मे है, वह नही रह पायेगी। इस वात को आप एक कथन के माध्यम से अच्छी तरह समझ सकते है।

एक नाई बडे शहर मे बाल साफ करने के लिये पहुँचा। उसके पास विद्या थी जिसके प्रभाव से उसके साथ वह बक्सा आकाश मे चलता था, जहाँ हजामत करनी होती, वहाँ वह बैठ जाता और इशारा करने पर बक्सा नीचे आ जाता, जिसे देखकर लोग आश्चर्य चकित हो जाते, इस तरह उसकी आमदनी बढती गई। एक सन्यासी जिसने घर बार त्याग कर भगवे वस्त्र धारण कर लिये थे, वह सोचने लगा कि यह विद्या मुझे मिल जाय तो मैं निहाल हो जाऊँ। जब वह नाई अपना कार्य निपटा कर मन्त्र विद्या से पेटी को आकाश मे रवाना किया और स्वय घर की ओर जा रहा था तब पीछे-पीछे सन्यासी भी चलने लगा। जब नाई के साथ वह सन्यासी उसके घर पर पहुँचा और उसके पाँवो पर गिरकर प्रार्थना करने लगा कि आपने यह विद्या कहाँ से सीखी ? मुझे भी सिखाने की कृपा करे, आपका यह उपकार मैं कभी नही भुलूगा, तब उस नाई ने कहा कि—मैंने तो यह विद्या एक सिद्धि प्राप्त महात्मा की कृपा से प्राप्त की है। यदि तुम्हारी भी सिखने की इच्छा हो तो तुमको भी सीखा सकता हूँ। इस प्रकार सरलतापूर्वक नाई ने सन्यासी को भी विद्या सिखा दी। विद्या सीखकर वह सोचने लगा कि जहाँ यह नाई रहता है। वहाँ मै विद्या का प्रयोग करूँगा तो मेरी प्रसिद्धि नही होगी। इस तरह सोचकर वह दूर किसी शहर मे चला गया और वहाँ मत्र के प्रयोग से इसी तरह अपने कमडल, मोर, पीछी, चिमटादि उपकरणो को आकाश मे रवाना कर देता। लोग यह चमत्कार देखते तो आश्चर्य मे पड जाते, प्रशसा करते कि यह तो कोई सिद्ध पुरुष है। राजा ने सुना तो मत्री से कहा कि मैं उस सिद्ध पुरुष के दर्शन करना चाहता हूँ। पर मत्री ने कहा कि यह चमत्कार नही है, कोई एकनिष्ठा से इसने सिद्ध की है। यह कोई साधु नही है, साधु होता तो अकेला नही घूमता। पर जब राजा ने आग्रह किया और उसके दर्शन करने के लिए तरस बताई तो राजा से कहा—आप न पधारे मै भोजन के लिए उन्हे यही बुला लेता हूँ। ऐसा कहकर मत्री ने उस योगी को भोजन के लिए आमत्रण दिया। आमत्रण पाकर वह बडा प्रसन्न हुआ, खुशी-खुशी राजमहल मे आया। राजा ने भोजन का निवेदन किया और वह भोजन करने लगा। सम्मान से भोजन कराने के बाद राजा ने योगी को सम्मान के साथ बैठाकर बातचीत की और पूछा कि यह विद्या आपने कहाँ से सीखी ? यह सुनकर वह सन्यासी विचार करने लगा कि मेरी आज इतनी प्रसिद्धि है, लोग जगह-जगह मेरे चमत्कार की प्रशसा कर रहे है, जब ये पुरुष मुझे सिद्ध पुरुष कह रहे हैं, अगर मै इनको बता दूँ कि मैंने यह विद्या एक नाई से प्राप्त की है तो ये लोग मेरी हँसी उडायेंगे और मेरी पोजीशन डाउन हो जाएगी तथा समाज मे मेरी कुछ भी इज्जत नही रहेगी। ऐसा सोचकर उसने कहा कि—किसी महात्मा के पास मैंने लम्बे समय तक कठिन साधना की, उस लम्बे समय की

कठिन साधना के फलस्वरूप ही मुझे यह विद्या प्राप्त हुई है । उस सन्यासी का यह कहना था कि आकाश मे स्थित वे सारे उपकरण आकर धडाम से उसके सामने जमीन पर गिर गये । यह देखकर वह हतप्रभ रह गया, सोचने लगा कि अभी तक ऐसा नही हुआ फिर आज यह इस तरह यकायक क्यो हुआ ? गहराई से सोचने पर विचार आया कि अहो मैंने ज्ञानदाता गुरु के नाम का गोपन किया है, इसी कारण मेरी स्थिति आज यह बन गई है । उसे मन-ही-मन बहुत पश्चाताप हुआ । राजा ने जब उससे पूछा कि कहिये आपकी साधना कहाँ गयी, तब उसने पश्चाताप पूर्ण स्वर मे कहा कि—जिसने मुझे विद्या सिखाई उसका नाम गोपन करके मैंने योगी का नाम लिया—इसी कारण मेरी सारी विद्या नष्ट हो गई । इसी तरह जो आध्यात्मिक शिक्षा देने वाले हैं उनका नाम छिपाये नही । विचार करने की बात है कि गुरु अनल्प उपकार करके वीतराग वाणी का ज्ञान देते है, अत उनके उपकार को विस्मृत करते हुए उनका नाम नही छिपाना चाहिये ।

आज की स्थिति क्या बन रही है, नवयुवक लोग ऊँची-ऊँची शिक्षा प्राप्त करके बडे-बडे ऑफिसर बन जाते है, पर जब उनसे अपने पिताजी का नाम पूछा जाता है तो वे अपने पिता का नाम बताने मे भी शरम महसूस करते है, पर वह स्थिति उन्हे किसकी बदोलत मिली । इस तरह उपकारी के उपकार का गोपन करने से वे उच्च स्थिति मे नही पहुँच सकते हैं । और पहुँच भी गये तो ज्यादा समय तक स्थिर नही रह पायेंगे । अत ज्ञान के आचारो को ध्यान मे रखते हुए पाँचवा जो अनिह्नवाचार है, उसे यथाविधि से जीवन मे उतारना अति आवश्यक है । जो भी भव्य मुमुक्षु आत्मा ज्ञानाचारो का परिपालन वीतराग भगवान् के द्वारा बतलाई गई प्रक्रिया के अनुरूप करेगा वह अपना जीवन अवश्यमय मगलप्रद अवस्था से आगे बढाने मे सुसफल बनेगा । इन्ही शुभ भावनाओ के साथ ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

१-८-८५
वृहस्पतिवार

□ □ □

३३

व्यञ्जन–अर्थ–तदुभय

(सम्यक् ज्ञान का छठा, सातवाँ, आठवाँ आचार)

वीतराग देव की परम पाविनी वाणी का आस्वादन करने के लिये महाप्रभु का सस्मरण याद करना आवश्यक है। जो केवलज्ञान दर्शन से सम्पन्न तीर्थंकर पद पर आसीन हुए, उपदेश दिया, वह कितना सरस और जीवन को सस्पर्श करनेवाला है।

केवलज्ञान की अनुभूति से जो विचार करता है, वीतराग वाणी मे रत्नत्रय का उल्लेख है, उसमे सम्यक्ज्ञान का प्रथम उल्लेख मिलता है। प्रभु ने बताया "पढम नाण तओ दया एव चिट्ठई सव्वसजए" और अपुट्ठ वागरणा मे उत्तराध्ययन सूत्र के ३२ वे अध्याय मे "नाणस्स सव्वस्स पगासणाए" गाथा कही गई है, जिसमे बतलाया गया है कि ज्ञान को प्रगट करो तो आत्मप्रकाश जागृत होगा, राग-द्वेष दूर हटेगा।

जो अनाज है, उसमे ककर मिल जाते है, तो बहिने ध्यान से चुग-चुगकर उन्हे अलग-अलग कर देती है। इसी प्रकार दुनिया मे ज्ञान अज्ञान के अनेक शास्त्र है—उनमे वीतराग देव के सिद्धान्त को अपनी पैनी मति से खोजकर उसे प्राप्त कर तदनुसार गति करना, आत्मा के लिए सुखप्रदायक है।

ज्ञान प्राप्त करने के लिये मनुष्य को आठ बातो का अधिक से अधिक ख्याल रखकर पालन करना होता है। तभी सच्चा ज्ञान प्राप्त हो सकता है। सम्यक्ज्ञान का छठा आचार **व्यञ्जनाचार** है, अर्थात् शब्दो का उच्चारण अच्छी तरह किया जाय। यदि उच्चारण शुद्ध नही है तो ज्ञान का सरस आनन्द प्राप्त नही हो पाता। उसका अर्थ भी सही रूप मे समझ मे नही आ पाता।

मनुष्य मानस मे मनकल्पित योजना जमाले और उसके अनुसार वीतराग वाणी का पान करे तो यह उचित नही है, बल्कि अपनी मनकल्पित योजनाओ को परे रखकर विचार करे कि वीतराग वाणी मे अनत ज्ञान है, अनन्त पर्याय है पर मुझमे इतनी योग्यता नही कि उनका वर्णन कर सकू, वह तो यही सोचे कि मैं तो जितना अर्थ मेरी बुद्धि मे यथातथ्य रूप मे ग्रहण किया है, श्रद्धा के साथ मैं उसी को लेकर चल रहा हूँ। और समभावपूर्वक उसी का प्रतिपादन कर रहा हूँ।

साधक के जीवन मे यदि विषमता है, तब वह अर्थ करने बैठता है तो वीतराग वाणी का अर्थ सम्यक् न करके मनकल्पित कर लेगा, जो कि स्व और पर दोनो के लिए घातक होगा, ऐसा व्यक्ति भव-भवान्तर तक भटकता रहता है। अत वीतराग वाणी को जो व्यक्ति बिना किसी शका आदि से उतारता है, जीवन मे तटस्थ भाव से परम श्रद्धा के साथ शास्त्रो का उच्चारण अच्छी तरह से करता है, तो उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, विवरित, घोष, महाघोष आदि का ध्यान रखते हुए अर्थ का प्रतिपादन भी सम्यक् प्रकार से कर सकता है। सम्यक्-ज्ञान पाने के लिये कितनी प्रबल इच्छा होनी चाहिये। इसके लिए मै आपको महापुरुषो के जीवन मे घटित उदाहरण प्रस्तुत कर देता हूँ।

पूर्व मे आचार्य श्री अजरामर जी म० सा० हुए है, उनका जीवन तो चोपडी, पुस्तको मे मिल जाएगा। अत मै उनके जीवन को विस्तार से कहने की स्थिति मे नही हूँ, पर उनका जीवन का अध्ययन, जब मेरा सौराष्ट्र मे विचरण करने का प्रसग आया, तभी मुझे कुछ करने को मिला। उनके मन मे प्रान्तीय भावना नही थी। उनकी जिज्ञासा जबर्दस्त थी। आचार्य पद पर आरूढ होते हुए भी वीतराग वाणी का अर्थ ग्रहण करने मे जो शब्द उच्चारण किये गये वह सही है या नही, इसकी जिज्ञासा बनी रहती थी, इसके लिए प्रमाण मिलता है कि सूरत मे उन्होने सूत्रसार पढा, अध्ययन किया पर उससे उनके हृदय मे सतुष्टि नही हुई। क्योकि जिसके पास अध्ययन किया, उनका विचार-आचार वीतराग वाणी के अनुकूल नही था। स्वाभाविक है जो वीतराग वाणी के प्रति श्रद्धा नही रखता है, और मनकल्पित विचार दुनिया के सामने रखता है, तो उस पर श्रद्धा नही होती। यह तथ्य है, मनोवैज्ञानिक बात है।

एक बहुत बडा पडित है, उसका प्रभाव समाज पर उतना स्थायी नही पडता जितना कि एक साधक का पडता है। क्योकि वह जीवन मे अनुभूति से उपलब्ध ज्ञान को लेकर चलता है, वह वाणी के अनुकूल आचरण करता हुआ सीधीसादी शैली मे उपदेश देता है, तो भी उसका ज्यादा प्रभाव पडता है।

जहाँ कही छोटे मोटे सुदूर ग्रामो मे सन्त अपनी मर्यादा मे रहते हुए नही पहुँच पाते है, वहाँ श्रद्धानिष्ठ श्रावको का यह कर्तव्य हो जाता कि वे स्वय अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अधिक नही तो कम से कम पर्युषण के आठ दिनो मे तो समय निकालकर वहाँ दया पालें एव वीतराग वाणी का सरल रीति से प्रतिपादन करें ताकि वीतराग देव के सिद्धान्तो का सम्यक् प्रचार हो सके। आज तो श्रावक प्राय आजीविका के लिये ही सारे समय लगे रहते है, पर जहाँ सन्त न पहुँच सकें वहा जाकर धर्म की प्रभावना करने की प्रवृत्ति बहुत कम दिखाई पडती है। आज के लोग सोचते हैं कि साधुओ को अपनी मर्यादा छोडकर प्रचार करना चाहिये, पर यह मूल में भूल है कि उन्हे साधु की मर्यादा का ख्याल रखते

हुए प्रचार एव प्रसार का कार्य अपनी जिम्मेदारो पर लेना चाहिये। युगद्दष्टा आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने भी यह स्पष्ट फरमाया था, कि आप साधु को, मर्यादा का उल्लघन न करावे, अपितु ब्रह्मचारियो का ऐसा वर्ग हो जो पर्युषणादि मे छोटे-छोटे गाँवो मे वीतराग वाणी का प्रचार कर सके, जहाँ कि सन्त समागम कम मिलता हो।

क्रान्तद्दष्टा, ज्योतिर्धर आचार्य श्री के गहराइयो से उद्‌भूत चिन्तन का ही यह प्रभाव है कि आज स्थानकवासी समाज मे अनेक सस्थाएँ स्वाध्याय का प्रचार-प्रसार कर रही है। पर्युषणो मे भाई-बहनो को वे सस्थाये धर्मप्रचारार्थ भेजने के लिए प्रयत्नशील है। यह आचार्यप्रवर के अनुभूति परक चिन्तन का ही परिणाम है। स्वाध्यायियो को वीतराग वाणी का प्रचार-प्रसार करते समय यह विशेष ध्यान रखना चाहिये कि किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर जिनवाणी से प्रतिकूल कथन कभी नही करना चाहिये। साथ ही जीवन मे त्याग-प्रत्याख्यान भी करना चाहिये। आप देख रहे है—गुमानमल जी सा० चौरडिया उपस्थित है, जिन्होने लगभग ३८ वर्ष की अवस्था मे सजोडे शीलव्रत अगीकार किया है, चार वर्ष से एकान्तर चल रहा है और आठ द्रव्य प्रतिदिन रखते है। मन पर कट्रोल रखकर चल रहे है, भौतिकता से सम्पन्न होकर भी साधना पथ पर बढ रहे है, यह अन्यो के लिये भी प्रेरणास्पद है। हाँ तो मै कह रहा था कि अजरामर जी म० सा० जब सूरत मे पढकर भी सतुष्ट नही हुये तब सूरत से तो वे लीम्बडी पहुँचे, वहाँ के सघ से कहा कि मै मारवाड जाने की इच्छा रखता हूँ। उन्होने पहले मजाक समझा पर दुबारा पूछा कि क्यो ? तो कहा कि पढने के लिये जाना चाहता हूँ। पूछा किसके पास पढोगे तो कहा कि आचार्य श्री दौलतराम जी म० सा० के पास, वे आचार-विचार मे बहुत दृढ है, अत उनसे जो ज्ञान मुझे मिलेगा, वह अभूतपूर्व होगा। सघ ने निवेदन किया कि आपश्री वहाँ पधारेगे और अकेले ही लाभ लेंगे, हमारा सघ तो यो ही रह जायेगा। अत क्या ही अच्छा हो कि आचार्य श्री दौलतरामजी म० सा० को यहाँ पधारने की विनती की जाय। यदि हम इसमे सफल न हो सके तो आप मारवाड पधार जाएँ। सघ ने आचार्य श्री को विनती की। आचार्य प्रवर ने उनकी विनती स्वीकार कर जब अहमदाबाद पधार गये तो जो सघ का प्रतिनिधि जो साथ आ रहा था, उसने यह बात लिम्बडी जाकर सघ को सूचित की तो सघ ने खुश होकर उस व्यक्ति को लिम्बडी सघ की ओर से १,२५१ रुपये भेंट मे दिये। उस समय उन लोगो मे यह भावना नही थी कि ये मारवाड के सन्त अपने गुजरात मे आकर हमारा प्रभाव कम कर देगे, उस समय न तो कोई प्रान्तवाद था, न सम्प्रदायवाद। प्राय सभी सघ गुणग्राही थे। आचार्यप्रवर श्री दौलतरामजी म० सा० लिम्बडी पधारे। वीतराग वाणी का गहरा निचोड वहाँ के सघ को दिया और अजरामराचार्यजी म० सा० को परम सतुष्टि प्रदान की। यह उनकी महानता थी। पर उस समय प्राय साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध

सघ निर्ग्रन्थ-श्रम-सस्कृति की सुरक्षा के लिये जागरूक था। अत. उनमे गुजराती अथवा मारवाडी के प्रति जरा भी विरोधी भावना नही थी (होनी भी नही चाहिये) मेरा आप लोगो से भी यही आह्वान है। निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की सुरक्षा के लिये अधिक से अधिक आत्मभोग दे, चाहे साधु हो या श्रावक। क्योकि महाप्रभु ने साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका के लिये कोई प्रान्तीय भेद नही किया था। उन्होने स्पष्ट कहा कि साधु-साध्वी चाहे किसी भी प्रान्त मे हो, पर जो भाव से जागृत है वही सच्चा साधु है। जो भाव से सुप्त है वह साधु नही है।

"सुत्ता अमुणी मुणिणो सया जागरति ।।"

जो श्रावक-श्राविका साधुओ की मर्यादा जानते है। उन्हे पूरा ध्यान रखना चाहिये कि साधु मोटा भाई है और श्रावक छोटा भाई है। जब मोटा भाई आगे चलता है तो छोटा भाई का कर्तव्य है कि उसका अनुकरण करे। जब श्रावक सामायिक, पौषध करता है, तो दो करण तीन योग से सावद्य कार्यो का त्याग करता है। तब सवत्सरी के दिवस पर माइक पर प्रतिक्रमण करे तो व्रत भग होता है और यह श्रमण सस्कृति का अपमान भी है। आपका क्या कर्तव्य है, विचार करे। निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति को सुरक्षित रखना है। माइक सभी दृष्टियो से अनुपादेय है। इस विषयक चर्चा फिलहाल अभी न करके प्रसग आने पर करने की भावना रखता हूँ। आचार्य श्री अजरामर जी महाराज ने जहाँ गुजरात और सौराष्ट्र मे अमर क्रान्ति बुलन्द की थी, श्रमण सस्कृति की सुरक्षा के लिये जैसा कि वीरजी भाई ने कहा—आपका सघ भी बडा है, आप भी गहराई से विचार करे और इस सुरक्षा मे सक्रिय सहयोग दे। इस पुण्यतिथि पर आपको सहभागी बनना हो तो जहाँ-जहाँ हिंसा का प्रसग हो, लाइट, माइक आदि का प्रसग हो वहाँ पर सामायिक-प्रतिक्रमण न करे, आज के दिवस पर क्रान्तिकारी कदम उठाते हुए यह प्रत्याख्यान अगीकृत करे। आचार्य श्री जवाहर-लालजी म० सा० की भी यह क्रान्तिभूमि है। जब आगमिक धरातल से भी क्रान्ति के एक-दो पगले उठते हैं, तो लोगो की उँगलियाँ उस ओर भी उठ जाती है। अन्यथा भी कहने लगते है, पर भविष्य मे वे ही सभी उँगलियाँ जुडकर वन्दन करने लग जाती है धन्य-धन्य कहने लगते है लोग। और चल पडते है उसी राह पर। अत आगमिक धरातल पर, क्रान्ति के पथ पर अवश्य ही बढते जाना चाहिये। आप गुणग्राही दृष्टि रखे। अजरामर जी म० सा० के गुणो का अवलोकन करे एव उनके क्रान्तिकारी विचारो को ध्यान मे रखते हुए उन्होने जो राह बतायी है उसकी सुरक्षा के लिए सजग बने कटिबद्ध होवे। किसी भी प्रकार से मर्यादित रूप मे हमे निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की रक्षा करनी है, पूर्व पुरुषो की गुणावली को अपने हृदय मे उतारनी है, तभी जीवन मगलता की ओर प्रयाण कर सकेगा। ज्ञानाचार के पाँचवे आचार सूत्र, अर्थ, तदुभय के लिए आदर्श रूप है अजरामर जी महाराज।

जो अर्थ का अनर्थ करता है उसका परिणाम कैसे क्या होता है, इसके लिए एक कथानक उपस्थिति कर देता हूँ।

यदि रास्ते मे कोई काच का टुकडा पडा है, तो जौहरी उसे उठाता नही पर अशुचि मे पडे अमूल्य हीरे के टुकडे उठाने मे वह कतराता भी नही, इसी प्रकार आप भी अपनी दृष्टि को गुणग्राही बनाये।

खीरकदम्बाचार्य के पास बहुत से विद्यार्थी पढने आते थे। पर मै अभी नारद, पर्वत, वसु तीन विद्यार्थियो का ही उल्लेख कर रहा हूँ। वसु राजकुमार था, पढाई पूरी करने के बाद वसु राजा बना, वह जिस सिंहासन पर बैठकर न्याय करता था वह आकाश मे अधर मे रहता था। लोग कहते थे कि यह सिंहासन महाराज वसु की न्यायप्रियता की निशानी है। जिस दिन सम्राट वसु न्याय के बदले अन्याय का सहारा लेगे उस दिन यह सिंहासन अधर मे नही रहेगा, अपितु जमीन पर आजाएगा। सम्राट के न्याय की सुदूर प्रशसा फैली हुई थी। एक बार पर्वत यज्ञ कर रहे थे, यज्ञ मे 'अज' शब्द आया। उन्होने बकरी अर्थ किया। तभी नारद भी घूमते-फिरते वहाँ पहुँच गये। उन्होने कहा—तू गलत अर्थ कर रहा है, गुरुजी ने तो इसका अर्थ धान बताया पर पर्वत नही माना। दोनो विवाद मे उतर आये तब किसी ने सलाह दी कि राजा वसु के पास जाकर इसका न्याय कराना चाहिये। आपस मे शर्त कि जिसकी बात सही होगी उसे इनाम मिलेगा और जिसकी बात गलत होगी उसे मृत्युदण्ड मिलेगा। पर्वत की माँ को जब यह ज्ञात हुआ तो सोचने लगी कि मेरा पुत्र गलत अर्थ बता रहा है, मै जानती हूँ कि इसके गुरुजी ने अज का अर्थ पुराना धान बताया है। पर यदि यह मामला सम्राट के सामने चला गया तो वे तो बहुत न्यायप्रिय है, जब न्याय करेगे तो मेरे पुत्र की गलती साबित हो जाएगी और निश्चय ही उसे प्राण-दण्ड मिलेगा। इस प्रकार सोचकर वह पुत्र की रक्षा के लिये सम्राट के पास जाकर चरणो मे सिर रखकर बोली कि पर्वत और नारद दोनो विवाद में पडे है, पर्वत गलत अर्थ बता रहा है। न जाने वह भूल गया है या स्वार्थ मे पडकर ऐसा कह रहा है और सारी बात बताकर दोनो के बीच हुई शर्त भी बतायी, तथा पुत्र के प्राण-बचाने के लिये बहुत जोर दिया। सम्राट वसु ने उसे आश्वासन देकर विदा किया और स्वय सोच मे पड गये कि अब किस प्रकार से न्याय करूँ। विचारो मे मन्थन चलने लगा, पर्वत उसका सहपाठी एव उसके अनल्प उपकारी गुरु का पुत्र है, गुरु पत्नी माँ के तुल्य होती है, और वह मेरे पास पुत्र के प्राणो की भीख लेकर आयी है। गुरु के अनत-अनत उपकारो से मै कभी विस्मृत नही हो सकता अत विचार करने का समय नही है. जैसे भी हो मुझे न्याय पर्वत के पक्ष मे ही देना होगा। ऐसा सोचकर वह न्याय सिंहासन पर आसीन हो गया। दोनो मित्र पहुँचे और न्याय मागा। वे सही बात जानते थे फिर भी उन्होने नारद और पर्वत की अलग-अलग बात सुनी और सब कुछ जानते हुए भी निर्णय

पर्वत के पक्ष मे दिया, अर्थात् अज का अर्थ बकरा ही बताया । उनके यह निर्णय देते ही वे सिंहासन सहित जमीन पर आ गये । कथानक बहुत लम्बा चौडा है विस्तार से कहने का समय नही, बस इतना अवश्य समझना है कि जब वैदिक सिद्धान्त मे भी गलत अर्थ करने पर ऐसा प्रसग उपस्थित होता है, तो वीतराग सिद्धान्त का जो गलत अर्थ करता है तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उसका ससार बढ जाता है, अनत-अनत कर्मों का उपार्जन कर लेता है। वही यदि सरल सरस रीति से वीतराग वाणी के अनुसार सिद्धान्त को समझाता है और कहता है कि जैसा मैने वीतराग वाणी से पाया है, वही मैं बता रहा हूँ । विशेष क्या कुछ है ये तो ज्ञानी ही जाने, उनकी गहरी दृष्टि का अवलोकन करने की मुझमे पूर्ण क्षमता नही है। इस प्रकार से चलनेवाला ज्ञान के पचम आचार का सम्यक् तया पालन कर साधना पथ पर आगे बढ जाता है । सभी को इसी विषय मे विचार करना है, अधिक से अधिक सरलता जीवन मे अपनाये। निर्ग्रन्थ श्रमण की सुरक्षा के लिये ही हर एक कार्य हो, हर प्रवृत्ति हो । वीतराग वाणी के अनु-सार अपने जीवन को बनाये । वीतराग सिद्धान्तानुसार ही दूसरो को बताये, तभी जीवन की सार्थकता होगी, इससे दूसरो का तो उपकार करेंगे ही साथ ही स्वय का जीवन भी वीतराग वाणी के अनुरूप आचरण से चमक उठेगा, और मगलमय दशा को प्राप्त हो जाएगा ।

मोटा उपाश्रय		२-८-८५
घाटकोपर, बम्बई		शुक्रवार

□ • □
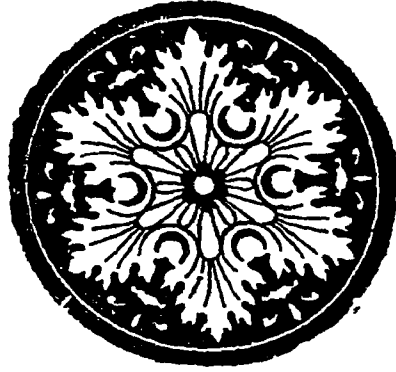
सम्यक् - चारित्र

[जीवन के विशुद्ध आचरण की विधि]

आठ आचार

- ईर्या समिति
- भाषा समिति
- एषणा समिति
- आदान भड़ मत निक्षेपणा समिति
- उच्चार प्रस्वण-खेल-जल्लमल सिंघाण परिस्थापनिका समिति
- मन गुप्ति
- वचन गुप्ति
- काया गुप्ति

३५

देखो स्वयं को स्वयं के आइने में

(चारित्राचार के आठ आचार)

इस वर्तमान युग मे आत्माओ की विचित्र दशाएँ देखने को मिल रही है। आत्मा के विविध रूपो को विविध पर्यायो मे देखने का प्रसग आ रहा है। आत्मा स्वय एक रूप मे रहती हुई भी स्वय के कृत कर्मो के उदय से विभिन्न रूप धारण करती है, इस आत्मा को रूप बनाने की कोई यह प्रेरणा नही देता है कि तुम अमुक तरह का कर्म करो। वह तो स्वय, स्वय कृत्यो से रूप धारण करती रहती है।

"ईश्वर प्रेरितो गच्छेत् स्वर्ग वा श्वभ्रमेववा" की धारणा अर्थात् ईश्वर की प्रेरणा से प्राणी स्वर्ग और नरक मे जाता है, यह मानना युक्तिसगत नही है, वीतराग अवस्था प्राप्त ईश्वर मे यह राग-द्वेष नही है।

इस मानव जाति के शरीर पिण्ड मे रहता हुआ, यह चैतन्य देव अपने स्वय की सत्पुरुषार्थ शक्ति से आत्मा के गुणो को घात करने वाले घातिक कर्मो को स्वय से विलग करके केवलज्ञान, केवलदर्शन से सम्पन्न बन जाता है। इस परम पवित्र स्वरूप मे रहती हुई आत्मा समग्र विश्व की आत्माओ का रूप किन-किन पर्यायो से हो रहा है, इनका भी विज्ञान उनके ज्ञान मे अभिव्यक्त हो जाता है। प्रभु ने केवलज्ञान की अवस्था मे रहते हुए भव्यात्माओ को जो उपदेश दिया, वह उपदेश भी मित्र की तरह वस्तु स्वरूप का कथन किया था, ग्रहण या विसर्जन के लिए कोई आग्रह नही किया था। वीतराग अवस्था प्राप्त महाप्रभु ने तटस्थ दृष्टा एव ज्ञाता के रूप मे रहकर आत्मानन्द का रसास्वादन करते हुए भव्यजनो को मनुष्य जीवन की सार्थकता का स्वरूप निर्दर्शन किया था, वह उपदेश आज भी दुनिया के लिए प्रकाश पुज का कार्य कर रहा है, अन्धकार मे भटकने वाली आत्मा उस उपदेश से स्वय को प्रकाशित करे तभी मनुष्य जीवन की विशेषता है।

मनुष्य इन शरीर की क्रियाओ को अवलोकित जरूर कर रहा है, लेकिन उसका अवलोकन सही ढग से नही हो पा रहा है। ससारी सभी आत्माओ के अन्दर क्रिया एव प्रतिक्रिया होती है। क्योकि जहाँ क्रिया होती है वहाँ प्रतिक्रिया भी होती है, आघात का प्रत्याघात, ध्वनि की प्रतिध्वनि भी होती है। कौन किस के लिये क्या सोच रहा है, उसके मन की कल्पना पास बैठा हुआ साथी भले

नही जानता हो, क्योकि वह अपूर्ण है, पर मन की क्रिया की गति बडी तीव्र होती है । जिस पुरुष के लिए वह मन की क्रिया कर रहा है, उस क्रिया का प्रभाव मनुष्य के चर्मचक्षु से परे होता हुआ भी सम्बन्धित व्यक्ति के मन तक पहुँच जाता है, और उसकी प्रतिक्रिया उसके मन मे अदृश्य रूप मे होती है । यह विषय मन से सम्बन्धित है । मन की गतिविधि का जिसको विशेष विज्ञान नही है, वह भी यह तो अनुभव कर रहा है कि मेरी जितनी भी हलन-चलन की क्रिया हो रही है, यह सब करने वाला कौन है ? हाथ स्वत: उठ नही सकता, यह हाथ अपने आप उठे तो मुर्दे शरीर के भी उठने चाहिये । आँखे स्वत झपकने लगे तो मुर्दे की भी आँखे झपकनी चाहिये, किन्तु यह नही होता है । इस अनुभव से यह निष्कर्ष सामने आता है कि इस शरीर की सरचना मे ऐसी कोई महत्त्वपूर्ण शक्ति का समावेश है जिससे ये सारी क्रियाएँ हो रही है, जिसे शास्त्रीय भाषा मे आत्मा कह सकते है ।

शरीर की बनावट की तरह ही द्रव्य मन की भी बनावट होती है, लेकिन उसकी अध्यक्षता चैतन्य देव आत्मा करता है, वह जैसा-जैसा कर्म करता है, उसके अनुरूप उसके शरीर की रचना, उसका द्रव्य मन बनता है । इस सब स्पष्टीकरण से स्पष्ट होता है कि इस शरीर तत्र के बीच मे इसका चालक कोई स्वतन्त्र कर्ता है, वह स्वय अपनी इच्छानुसार कार्य सम्पादन करता है, वह शरीर से बाहर नही रहकर शरीर प्रमाण अवस्थान मे ही रहता है । उसको कोई जबर्दस्ती कार्य कराने मे कामयाब नही होता, दूसरा अगर कोई करना चाहे तो उसका मन होता है तो ही उस कार्य की परिणति होती है । अत सर्वशक्तिमान तो आत्मा ही है । पर कर्मो से दबी होने से अपना स्वरूप प्रकट नही कर पा रही है । जब आत्मा, मौलिक स्वरूप समझकर उसे निखारने के लिए सत्पुरुषार्थशील होती है, तब आत्मिक शक्ति निखरने लगती है, यदि एकाग्र रूप से किया गया पुरुषार्थ भी आश्चर्यजनक शक्ति देने वाला होता है । सती सीता ने गृहस्थावस्था मे पातिव्रत धर्म का अच्छी तरह पालन किया था, उसी का परिणाम था कि रावण की सीता पर बलात्कार करने की शक्ति नही रही थी । रावण भी कितना बलशाली था, पर उसने भी एक ही बात रखी कि मैं सीता पर बलात्कार नही कर सकता, वह जानता था कि इस सती पर मैं बलात्कार करने जाऊँगा तो मेरी यह सारी क्रिया सफल नही होगी, क्योकि जो शक्ति सम्पन्न चैतन्य देव है, वह नारी जाति के शरीर मे भी विद्यमान है और सीता के भीतर तो विद्यमान आत्मा जागृत है । जहाँ आत्मा जागृत है, वहाँ अन्य बल चल नही सकता । अबोध को बोध देने मे बल चल सकता है, पर समझदार को नही । यही स्थिति सारे ससार मे रहने वाले मनुष्य की है । यह मन शरीर मे रहता है, लेकिन सम्यक् ज्ञान के अभाव मे यदि यह कार्य करता है तो उसका कार्य शातिप्रद नही होता । अन्ततोगत्वा उसे पश्चाताप ही पल्ले पडता है । प्रभु महावीर ने अर्थ रूप मे जो वाणी का उपदेश दिया, वह द्वादशागी के रूप मे सकलित किया गया । आत्मा को

उन्नति पथ पर ले जाने वाला यदि कोई सारभूत तत्व है तो द्वादशागी मे वर्णित अष्ट प्रवचन है। जो मातृ स्थान को लेकर चलते है। वे पाँच सुमति तीन गुप्ति के रूप मे हैं। पाँच सुमति तीन गुप्ति के लिये कभी व्यक्ति विचार करे कि ये तो सन्तो के लिये ही हैं, पर जहाँ मैं गहराई से चितन करता हूँ तो लगता है कि ये प्रत्येक भव्यो के लिये है। प्रत्येक प्राणी को सम + इ = समगति मे लाने वाले है। मन मिला, शरीर की प्राप्ति हुई लेकिन मन की गति समिति युक्त है या विषम के साथ है। यह सभी के समझने की वस्तु है। एक कथानक के माध्यम से समझिये।

जहाँ भयकर जगल मे एक डकैत ऐसा बलकारी था, कि जहाँ-जहाँ लूट-पाट करने जाता वहाँ अपनी इच्छानुसार सम्पत्ति लेकर अपने स्थान पर पहुँच जाता। किसी की भी पकड मे नही आता था, उसी जगल मे एक निस्पृह साधक जो पाँच समिति—तीन गुप्ति से युक्त थे, स्व की गति और पर की गतिविधि को जानते थे और पहचानते थे, वे निर्भय होकर भयकर अरण्य मे पहुँचे। उन्हे देखकर डाकू विचार करता है कि यह मनुष्य कौन है? यहाँ तो मेरा ही साम्राज्य है। यहाँ दूसरा कोई नही आ सकता है। मेरा नेतृत्व स्वीकार करने वाला ही यहाँ आ सकता है, पर यह कौन आ रहा है। इस मनुष्य को मै जगल का स्वरूप समझाऊँ। इसे मैं मेरे नियन्त्रण मे लूँ। यह भावना लेकर वह महात्मा के निकट आया और कहने लगा, "तुम रुक जाओ", महात्मा निर्भय थे, वे स्वय की समित गति के साथ चल रहे थे, महात्मा ने कहा, "मैं तो रुका हुआ हूँ, तुम रुक जाओ।" डाकू विचार करता है कि यह कैसा मनुष्य है, जो मुझे यह कह रहा है कि तुम रुक जाओ, वह इस अबूझ पहेली को समझ नही पाया। अत यह समस्या डाकू के मन मे खडी हो गई और वह विचार करने लगा यह कोई साधारण नही विशिष्ट पुरुष है। इसका रहस्य जानना चाहिये। डकैत महात्मा को कहने लगा, "तुम उल्टी बात कैसे बोल रहे हो और मैं रुका हुआ हूँ फिर भी तुम ऐसा कैसे बोल रहे हो।" तब महात्मा ने कहा, 'तुम ऊपरि दृष्टि के मनुष्य हो। तुम पैरो की गति को ही गति (चलना) मान रहे हो। पर तुम्हारा मन खडा है या चल रहा है? महात्मा बोले कि यही तो भ्रान्ति है, तुम शरीर से तो खडे हो पर मन की प्रक्रिया चल रही है। जिस मनुष्य का मन नियन्त्रण मे आ जाय, आत्मस्थ हो जाय, तो वह पैरो से चलता हुआ भी खडा है, तुम्हारा मन विषम है, तुम्हारी मान्यता पशु जैसी है। पशु भी यही मानता है कि यह जगल मेरा है, सिंह मानता है कि यहाँ मेरा राज्य है। चूहा श्रृगालादि भी यही मानते है। तुम विचार करो कि यह जगल किसका है? महात्मा की समित गति का, मन की क्रिया का प्रभाव डकैत पर पडा और मन की प्रक्रिया को समझने के लिए वह महात्मा के चरणो मे गिर पडा और कहने लगा कि मैं अज्ञानी हूँ, मूर्ख हूँ, यह जगल सम्पूर्ण विश्व का है, आज तक मैं सकुचित विचारो को लेकर ही चल रहा था। महात्मा ने कहा कि वीतराग वाणी के आधार से यह

नही जानता हो, क्योकि वह अपूर्ण है, पर मन की क्रिया की गति बडी तीव्र होती है। जिस पुरुष के लिए वह मन की क्रिया कर रहा है, उस क्रिया का प्रभाव मनुष्य के चर्मचक्षु से परे होता हुआ भी सम्वन्धित व्यक्ति के मन तक पहुँच जाता है, और उसकी प्रतिक्रिया उसके मन मे अदृश्य रूप मे होती है। यह विषय मन से सम्वन्धित है। मन की गतिविधि का जिसको विशेष विज्ञान नही है, वह भी यह तो अनुभव कर रहा है कि मेरी जितनी भी हलन-चलन की क्रिया हो रही है, यह सब करने वाला कौन है ? हाथ स्वत: उठ नही सकता, यह हाथ अपने आप उठे तो मुर्दे शरीर के भी उठने चाहिये। आँखे स्वत झपकने लगे तो मुर्दे की भी आँखे झपकनी चाहिये, किन्तु यह नही होता है। इस अनुभव से यह निष्कर्ष सामने आता है कि इस शरीर की सरचना मे ऐसी कोई महत्त्वपूर्ण शक्ति का समावेश है जिससे ये सारी क्रियाएँ हो रही है, जिसे शास्त्रीय भाषा मे आत्मा कह सकते है।

शरीर की वनावट की तरह ही द्रव्य मन की भी वनावट होती है, लेकिन उसकी अध्यक्षता चैतन्य देव आत्मा करता है, वह जैसा-जैसा कर्म करता है, उसके अनुरूप उसके शरीर की रचना, उसका द्रव्य मन बनता है। इस सब स्पष्टीकरण से स्पष्ट होता है कि इस शरीर तत्र के बीच मे इसका चालक कोई स्वतन्त्र कर्ता है, वह स्वय अपनी इच्छानुसार कार्य सम्पादन करता है, वह शरीर से बाहर नही रहकर शरीर प्रमाण अवस्थान मे ही रहता है। उसको कोई जबर्दस्ती कार्य कराने मे कामयाब नही होता, दूसरा अगर कोई करना चाहे तो उसका मन होता है तो ही उस कार्य की परिणति होती है। अत सर्वशक्तिमान तो आत्मा ही है। पर कर्मो से दबी होने से अपना स्वरूप प्रकट नही कर पा रही है। जब आत्मा, मौलिक स्वरूप समझकर उसे निखारने के लिए सत्पुरुषार्थशील होती है, तब आत्मिक शक्ति निखरने लगती है, यदि एकाग्र रूप से किया गया पुरुषार्थ भी आश्चर्यजनक शक्ति देने वाला होता है। सती सीता ने गृहस्थावस्था मे पातिव्रत धर्म का अच्छी तरह पालन किया था, उसी का परिणाम था कि रावण की सीता पर बलात्कार करने की शक्ति नही रही थी। रावण भी कितना बलशाली था, पर उसने भी एक ही बात रखी कि मैं सीता पर बलात्कार नही कर सकता, वह जानता था कि इस सती पर मैं बलात्कार करने जाऊँगा तो मेरी यह सारी क्रिया सफल नही होगी, क्योकि जो शक्ति सम्पन्न चैतन्य देव है, वह नारी जाति के शरीर मे भी विद्यमान है और सीता के भीतर तो विद्यमान आत्मा जागृत है। जहाँ आत्मा जागृत है, वहाँ अन्य बल चल नही सकता। अबोध को बोध देने मे बल चल सकता है, पर समझदार को नही। यही स्थिति सारे ससार मे रहने वाले मनुष्य की है। यह मन शरीर मे रहता है, लेकिन सम्यक् ज्ञान के अभाव मे यदि यह कार्य करता है तो उसका कार्य शातिप्रद नही होता। अन्ततोगत्वा उसे पश्चाताप ही पल्ले पडता है। प्रभु महावीर ने अर्थ रूप मे जो वाणी का उपदेश दिया, वह द्वादशागी के रूप मे सकलित किया गया। आत्मा को

उन्नति पथ पर ले जाने वाला यदि कोई सारभूत तत्व है तो द्वादशागी मे वर्णित अष्ट प्रवचन है। जो मातृ स्थान को लेकर चलते है। वे पाँच सुमति तीन गुप्ति के रूप मे हैं। पाँच सुमति तीन गुप्ति के लिये कभी व्यक्ति विचार करे कि ये तो सन्तो के लिये ही है, पर जहाँ मैं गहराई से चितन करता हूँ तो लगता है कि ये प्रत्येक भव्यो के लिये हैं। प्रत्येक प्राणी को सम + इ = समगति मे लाने वाले है। मन मिला, शरीर की प्राप्ति हुई लेकिन मन की गति समिति युक्त है या विषम के साथ है। यह सभी के समझने की वस्तु है। एक कथानक के माध्यम से समझिये।

जहाँ भयकर जगल मे एक डकैत ऐसा बलकारी था, कि जहाँ-जहाँ लूट-पाट करने जाता वहाँ अपनी इच्छानुसार सम्पत्ति लेकर अपने स्थान पर पहुँच जाता। किसी की भी पकड मे नही आता था, उसी जगल मे एक निस्पृह साधक जो पाँच समिति—तीन गुप्ति से युक्त थे, स्व की गति और पर की गतिविधि को जानते थे और पहचानते थे, वे निर्भय होकर भयकर अरण्य मे पहुँचे। उन्हे देखकर डाकू विचार करता है कि यह मनुष्य कौन है ? यहाँ तो मेरा ही साम्राज्य है। यहाँ दूसरा कोई नही आ सकता है। मेरा नेतृत्व स्वीकार करने वाला ही यहाँ आ सकता है, पर यह कौन आ रहा है। इस मनुष्य को मैं जगल का स्वरूप समझाऊँ। इसे मैं मेरे नियन्त्रण मे लूँ। यह भावना लेकर वह महात्मा के निकट आया और कहने लगा, "तुम रुक जाओ", महात्मा निर्भय थे, वे स्वय की समित गति के साथ चल रहे थे, महात्मा ने कहा, "मैं तो रुका हुआ हूँ, तुम रुक जाओ।" डाकू विचार करता है कि यह कैसा मनुष्य है, जो मुझे यह कह रहा है कि तुम रुक जाओ, वह इस अबूझ पहेली को समझ नही पाया। अत यह समस्या डाकू के मन मे खडी हो गई और वह विचार करने लगा यह कोई साधारण नही विशिष्ट पुरुष है। इसका रहस्य जानना चाहिये। डकैत महात्मा को कहने लगा, "तुम उल्टी बात कैसे बोल रहे हो और मैं रुका हुआ हूँ फिर भी तुम ऐसा कैसे बोल रहे हो।" तब महात्मा ने कहा, 'तुम ऊपरि दृष्टि के मनुष्य हो। तुम पैरो की गति को ही गति (चलना) मान रहे हो। पर तुम्हारा मन खडा है या चल रहा है ? महात्मा बोले कि यही तो भ्रान्ति है, तुम शरीर से तो खडे हो पर मन की प्रक्रिया चल रही है। जिस मनुष्य का मन नियन्त्रण मे आ जाय, आत्मस्थ हो जाय, तो वह पैरो से चलता हुआ भी खडा है, तुम्हारा मन विषम है, तुम्हारी मान्यता पशु जैसी है। पशु भी यही मानता है कि यह जगल मेरा है, सिंह मानता है कि यहाँ मेरा राज्य है। चूहा शृगालादि भी यही मानते हैं। तुम विचार करो कि यह जगल किसका है ? महात्मा की समित गति का, मन की क्रिया का प्रभाव डकैत पर पडा और मन की प्रक्रिया को समझने के लिए वह महात्मा के चरणो मे गिर पडा और कहने लगा कि मैं अज्ञानी हूँ, मूर्ख हूँ, यह जगल सम्पूर्ण विश्व का है, आज तक मैं सकुचित विचारो को लेकर ही चल रहा था। महात्मा ने कहा कि वीतराग वाणी के आधार से यह

धर्मास्तिकायादि पचास्तिकायमय है। द्रव्यानुयोग का गहराई से जो बोध दिया जिससे डकैत का मन चोरी करने मे ज्यादा आगे बढा हुआ था पर जहाँ महात्मा की अमृतोपम वीतरागवाणी को सुनकर महात्मा के समित मन की प्रक्रिया का प्रभाव पडा और डकैत का जीवन परिवर्तित हो गया, तो क्या अन्य का नही हो सकता ?

महात्मा के मुँह से वीतराग वाणी सुनकर डकैत का कितना परिवर्तन हो गया, पर वही वाणी सत-सती सुनाते है, तो फिर परिवर्तन कैसे नही होता ? जब तक मनुष्य की दृष्टि भौतिक तत्त्वो को देखने मे ही रहेगी, वहाँ तक जीवन का रूपान्तरण नही हो सकता। जिसका आन्तरिक जीवन उस मानसिक क्रिया के साथ प्रतिक्रिया को समझ ले तो उसका रूपान्तर हुए बिना नही रहता। जम्बू ने सुधर्मा स्वामी का एक ही उपदेश सुना था, उनके जीवन मे परिवर्तन हो गया। कहावत है कि "एक हाथ से कभी ताली नही बजती" वीतराग वाणी का उपदेश जीवन रूपान्तरण के लिये दिया जाता है। श्रोतागण उस उपदेश को गहराई से हृदय मे ग्रहण करे तो ही परिवर्तन हो सकता है। सूर्य की किरणे सभी को प्रकाश देती है, पर रात्रि का राजा (गुग्गु) उल्लू जिसको सूर्य की किरणे भ्रमर की टाग की तरह काली-काली लगती है तो दोष किसका है ? सूर्य की किरणो का है या उसे ग्रहण करने वाले का ? उसी जिनवाणी को ग्रहण करने वाला सही नही है तो दोष जिनवाणी का नही है। जिस प्रकार समान स्तर पर ही व्यक्ति हाथ मिला सकता है। वैसे ही अपनी आत्मा मे परमात्मा के स्वरूप की अभिव्यक्ति भी समान स्तर पर ही हो सकती है, मन्द आत्मा कर्मो से काली है तो उसमे परमात्मा की अभिव्यक्ति नही हो सकती। जैसे एक मनुष्य का अशुचि से हाथ भरा है, उससे दूसरा व्यक्ति हाथ मिलाने की कोशिश करे तो वह मिला नही सकता, इसी तरह जीवन का सशोधन करना है तो चारित्राचार को समझने की आवश्यकता है। बाहर का कितना ही विज्ञान प्राप्त करले, बाहरी डिग्रियाँ कितनी भी क्यो न प्राप्त कर ले पर वह स्व-पर के जीवन को नही जान सकता। केवल ऊपर-ऊपर से विचार करने वाला वास्तविक रूप से दूसरो के दिल को रूपान्तरित नही कर सकता। इसी तथ्य को एक पौराणिक आख्यान से समझिये।

एक सम्राट विचार करता था कि मैं राजा हूँ। अत मुझे प्रजा की सुख-दु ख की बात सुननी है। रात्रि का समय परिवार के सभ्य स्वय के सुख-दु ख की बाते ज्यादा करते है। अत वेश परिवर्तन कर सम्राट रात को नगर का अवलोकन करता हुआ परिभ्रमण कर रहा था। एक बगले के पास गया, बगले की खिडकियाँ खुली थी और कमरे मे कुछ प्रकाश था। स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि कमरे मे चार कन्याएँ बैठी आपस मे वार्तालाप कर रही थी। सम्राट सुनने लगा कि ये क्या बाते कर रही हैं, सुख-दु ख की बाते कर रही है या अन्य ?

एकान्त मे होने से सम्राट को शका हुई कि इनके मन में चारित्रहीनता की बात भी पैदा हो सकती है। राजा दिवाल से सटकर खडा हो गया और ध्यान से उनकी बाते सुनने लगा—

एक बाला ने दूसरी से कहा कि वह जा रहा है। दूसरी ने इशारा करते हुए कहा—वह नही है। तीसरी ने उसकी बात का समर्थन करते हुए कहा—वह होता तो जाता ही क्यो ? तब चौथी ने उपेक्षा करते हुए कहा—जाय तो जाने दो न अपना काम तो हो गया। इस विचित्र सवाद को सुनकर सम्राट स्वय की बुद्धि से विचार करने लगा कि मैं तो चारित्र की प्रतिष्ठा के लिये प्रयास कर रहा हूँ, पर आज तो ये "दिये तले अन्धेरा वाली बात हो गई।" ये चारो चारित्र भ्रष्टा हैं। ये पर-पुरुष की आकाक्षा करने वाली है। वह आगे बढा और घूमता हुआ अपने स्थान पर पहुँच गया। रात मे राजा को नीद भी नही आयी और उसके मन मे यह विचार हुआ कि मेरे राज्य मे यह चारित्र-हीनता मैं नही चाहता हूँ। सवेरे ही चारो को राज सभा मे बुलाकर दड दूँगा। सवेरे होते ही बगला नम्बर देकर कर्मचारी को वहाँ भेजा और कन्याओ को बुलवाया। कन्याएँ समझ गयी कि लगता है रात्रि की बात राजा ने सुनली है। उसे सुनकर ही हमे बुलाया गया है। अत वे तैयार हो गई और जाने लगी। तो सर्वत्र उनके चारित्रहीनता की बात हो रही थी। पर वे किसी की परवाह किये बिना वहाँ पहुँची और निर्भयतापूर्वक राजा को हाथ जोडे बिना ही एक दूसरी को कहने लगी। पहली ने कहा—यह तो वही है। दूसरी ने कहा वह तो है पर इसके वे नही है। तीसरी ने कहा—वे होते तो इन्हे यहाँ आने ही कौन देता। चौथी ने कहा—यदि असावधानी से यहाँ आ भी जाते तो डण्डा मारकर सभा से बाहर निकाल देते।

उनकी इन बातो को सुनकर सम्राट विचार करने लगा कि रात की बात से तो मै उलझन मे पडा हुआ था ही और यह बात और खडी हो गई। मैने रात की बात सुनकर इनकी चारित्रहीनता की बात फैला दी, पर यह अच्छा नही किया। ये लडकियाँ कुलीन लगती है। इस प्रकार विचारो के महासागर मे गोते लगाते हुए राजा ने रात्रि की और अभी की बात पूछी तो उन कन्याओ ने कहा - राजन् ! आपकी मन की गति समित है या नही ? कही हमारी बातो को सुनकर आप गलत काम कर दो तो ? क्योकि आप भले ही सम्राट हो, पर मन की स्थिति से आप सम्राट नही हो। सम्राट ने कहा— रात को तुम क्या बोली थी ? वह कहने लगी कि आपकी मन की क्रिया अच्छी होती तो आप यही सोचते और मन की क्रिया और प्रतिक्रिया का अध्ययन कर लेते। राजा ने कहा—पर मुझे तो तुम्हारी बातो से ही तुम्हारे चारित्र पर शका हो गयी थी। वे कहने लगी—दिन मैं हम दूसरे कार्य सम्पादन करने मे लगी रहती है, पर पिता के कार्य को पूर्ण करने मे रात को सहयोग देती है। जब तक पिता के घर है तब

तक हमारा कर्तव्य है कि पिता के अवशेष कार्य को निपटाने के लिए हम प्रयास करे। राजा ने कहा कि तुम्हारा कथन मुझे कुछ भी नही समझ आ रहा है। उन्हे स्पष्ट कर समझाओ। तब उन बहिनो ने कहा—सत्य कटु होता है। कही आप सुनकर नाराज तो नही हो जाओगे। तब राजा ने कहा—नहीं मैं तुम्हे सौगुना अपराध माफ करता हूँ। जो सच-सच है वह बतला दो। तब वे बालाएँ बतलाने को तैयार हुई। बोली कि अभी की बात समझाएँ या पहले की ? तब सम्राट ने कहा—पहले अभी की ही सुनाओ। तब वे कहने लगी—सम्राट ! मन को समित रखना, विषम मत बनाना। हमने अभी जो कहा कि "यह तो वह है" अर्थात् आप सम्राट है, सम्राट का उत्तरदायित्व महान् होता है। राज्य धुरा चलाने के लिए विचारो की निर्मलता और बुद्धि का तीक्ष्ण होना परम आवश्यक है। किन्तु खेद है, न आपके विचार शुद्ध है और न बुद्धि ही पैनी है। आपने छिपकर रात्रि मे कही हमारी बाते सुनली और पूर्वापर प्रसग का विचार न कर हमारे ऊपर चरित्रहीनता का आरोप लगा दिया, जिससे मेरी एक बहिन ने कहा कि ये सम्राट नही पशु है। पशु मे अक्ल नही होती, इसमे भी अक्ल का दिवाला है। दूसरी बहिन ने जो बात कही थी, उसका आशय है—"यह साधारण पशु नही है, यह तो सीग पूछ रहित विचित्र पशु है। तीसरी बहिन के कथन का अभिप्राय है, यदि इसके सीग पूछ होते तो इसे राज सिहासन पर कौन बैठाता और मैने कहा था यदि इसके सीग पूछ होते तो इसे मार पीटकर बाहर निकाल देते। किन्तु अब इसे किस प्रकार निकाले। ये मेरी भूल हो गई और आपको पशु कहा पर अब रात की बात सुनो। तब सम्राट एकदम से चौक गया। सोचा इन बहिनो ने तो मुझे भरी सभा के बीच पशु बना दिया, पर मैंने इन्हे सौ गुना अपराध माफ किया है। अत इन्हे कुछ भी नही कह सकता। दूसरी बात ये बहुत होशियार और सुशील है। फिर राजा ने रात्रि की बात पूछी तब उन लडकियो ने कहा—राजन् ! रात मे मेरी एक बहिन ने कहा वह जा रहा है अर्थात् दिये की रोशनी जा रही है, तब दूसरी ने कहा वह नही है अर्थात् तेल नही है, इसलिये वह जा रहा है। तीसरी ने कहा वह होता तो नही जाता अर्थात् तेल होता तो जाता ही नही। चौथी बोली जाये तो जाने दे अपना काम तो हो गया। सम्राट कन्याओ की बातो को सुनकर अपनी शका का समाधान होते ही अत्यधिक प्रसन्न हुआ और स्वय के जीवन को परिवर्तन कर लिया। आज भी लोगो मे परिवर्तन का प्रसग आ सकता है। जो समझ गया हूँ वही सत्य है, ऐसा न सोच कर जिस दृष्टि से यथा तथ्य समझाते है, उसी दृष्टि से समझने का प्रयत्न करे तो ये सम्यक् रीति से समझ मे आ सकता है। हठाग्रही या अभवी को तीर्थंकर भी आ जाय तो भी नही समझा सकते हैं।

मन की गतिविधि क्रिया-प्रक्रिया को समझने की आवश्यकता है। चारित्राचार के द्वारा जीवन के आचारो को, प्रवचन माता के स्वरूप को समझोगे

तो स्वय को स्वय के आइने मे देख सकोगे। अन्यथा वास्तविक रूप मे जीवन का परिवर्तन नही हो सकेगा।

एक पागल बाजार मे सत्य बोलो, सत्य करो कहता हुआ चलता है तो कौन माने। क्योकि स्व के आचरण मे आयी हुई वस्तु ही अन्य पर प्रभाव डालती है, पागल मे वह स्थिति नही है। सत्य का स्वरूप क्या है, इसके लिए साधु-साध्वी आदि सभी के स्वरूपो को आचार सहिता का विचार करे कि मेरा विचार, मेरा ज्ञान ही सब कुछ नही है, इससे भी विराट् विशाल ज्ञान-विज्ञान अभी बाकी है, शान्ति के क्षणो मे बैठकर ही विधिपूर्वक सबका ज्ञान प्राप्त हो सकता है। श्रावक एव श्राविका भी समिति–गुप्ति का पालन कैसे कर सकते है आदि का अच्छी तरह ज्ञान करने पर ही स्वय के जीवन मे उस सम्राट की भाति सद्ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्रत्येक मानव यह चिन्तन करे कि मेरा जीवन कैसा होना चाहिये ? वर्तमान मे मैं कैसे जी रहा हूँ। इन सभी का विज्ञान प्राप्त कर आगे की स्थिति मे अग्रसर होने का प्रयास करेंगे, तभी भव्यात्माओ का जीवन मगलमय दशा की ओर प्रयाण कर सकेगा।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

४–८–८५
रविवार

• □ •

तक हमारा कर्तव्य है कि पिता के अवशेष कार्य को निपटाने के लिए हम प्रयास करे। राजा ने कहा कि तुम्हारा कथन मुझे कुछ भी नही समझ आ रहा है। उन्हे स्पष्ट कर समझाओ। तब उन बहिनो ने कहा—सत्य कटु होता है। कही आप सुनकर नाराज तो नही हो जाओगे। तब राजा ने कहा—नही मैं तुम्हे सौगुना अपराध माफ करता हूँ। जो सच-सच है वह बतला दो। तब वे बालाएँ बतलाने को तैयार हुई। बोली कि अभी की बात समझाएँ या पहले की ? तब सम्राट ने कहा—पहले अभी की ही सुनाओ। तब वे कहने लगी—सम्राट ! मन को समित रखना, विषम मत बनाना। हमने अभी जो कहा कि "यह तो वह है" अर्थात् आप सम्राट हैं, सम्राट का उत्तरदायित्व महान् होता है। राज्य धुरा चलाने के लिए विचारो की निर्मलता और बुद्धि का तीक्ष्ण होना परम आवश्यक है। किन्तु खेद है, न आपके विचार शुद्ध है और न बुद्धि ही पैनी है। आपने छिपकर रात्रि मे कही हमारी बाते सुनली और पूर्वापर प्रसग का विचार न कर हमारे ऊपर चरित्रहीनता का आरोप लगा दिया, जिससे मेरी एक बहिन ने कहा कि ये सम्राट नही पशु है। पशु मे अक्ल नही होती, इसमे भी अक्ल का दिवाला है। दूसरी बहिन ने जो बात कही थी, उसका आशय है—"यह साधारण पशु नही है, यह तो सीग पूछ रहित विचित्र पशु है। तीसरी बहिन के कथन का अभिप्राय है, यदि इसके सीग पूछ होते तो इसे राज सिंहासन पर कौन बैठाता और मैंने कहा था यदि इसके सीग पूछ होते तो इसे मार पीटकर बाहर निकाल देते। किन्तु अब इसे किस प्रकार निकाले। ये मेरी भूल हो गई और आपको पशु कहा पर अब रात की बात सुनो। तब सम्राट एकदम से चौंक गया। सोचा इन बहिनो ने तो मुझे भरी सभा के बीच पशु बना दिया, पर मैंने इन्हे सौ गुना अपराध माफ किया है। अत इन्हे कुछ भी नही कह सकता। दूसरी बात ये बहुत होशियार और सुशील है। फिर राजा ने रात्रि की बात पूछी तब उन लडकियो ने कहा—राजन् ! रात मे मेरी एक बहिन ने कहा वह जा रहा है अर्थात् दिये की रोशनी जा रही है, तब दूसरी ने कहा वह नही है अर्थात् तेल नहीं है, इसलिये वह जा रहा है। तीसरी ने कहा वह होता तो नही जाता अर्थात् तेल होता तो जाता ही नही। चौथी बोली जाये तो जाने दे अपना काम तो हो गया। सम्राट कन्याओ की बातो को सुनकर अपनी शका का समाधान होते ही अत्यधिक प्रसन्न हुआ और स्वय के जीवन को परिवर्तन कर लिया। आज भी लोगो मे परिवर्तन का प्रसग आ सकता है। जो समझ गया हूँ वही सत्य है, ऐसा न सोच कर जिस दृष्टि से यथा तथ्य समझाते हैं, उसी दृष्टि से समझने का प्रयत्न करे तो ये सम्यक् रीति से समझ मे आ सकता है। हठाग्रही या अभवी को तीर्थंकर भी आ जाय तो भी नही समझा सकते हैं।

मन की गतिविधि क्रिया-प्रक्रिया को समझने की आवश्यकता है। चारित्राचार के द्वारा जीवन के आचारो को, प्रवचन माता के स्वरूप को समझोगे

तो स्वय को स्वय के आइने मे देख सकोगे । अन्यथा वास्तविक रूप मे जीवन का परिवर्तन नही हो सकेगा ।

एक पागल बाजार मे सत्य बोलो, सत्य करो कहता हुआ चलता है तो कौन माने । क्योकि स्व के आचरण मे आयी हुई वस्तु ही अन्य पर प्रभाव डालती है, पागल मे वह स्थिति नही है । सत्य का स्वरूप क्या है, इसके लिए साधु-साध्वी आदि सभी के स्वरूपो को आचार सहिता का विचार करे कि मेरा विचार, मेरा ज्ञान ही सब कुछ नही है, इससे भी विराट् विशाल ज्ञान-विज्ञान अभी बाकी है, शान्ति के क्षणो मे बैठकर ही विधिपूर्वक सबका ज्ञान प्राप्त हो सकता है । श्रावक एव श्राविका भी समिति-गुप्ति का पालन कैसे कर सकते है आदि का अच्छी तरह ज्ञान करने पर ही स्वय के जीवन मे उस सम्राट की भाति सद्ज्ञान प्राप्त हो सकता है । प्रत्येक मानव यह चिन्तन करे कि मेरा जीवन कैसा होना चाहिये ? वर्तमान मे मैं कैसे जी रहा हूँ । इन सभी का विज्ञान प्राप्त कर आगे की स्थिति मे अग्रसर होने का प्रयास करेगे, तभी भव्यात्माओ का जीवन मगलमय दशा की ओर प्रयाण कर सकेगा ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

४-८-८५
रविवार

• ▭ •

२६ चारित्राचार के साथ ध्यान योग का समन्वय

समस्त विशिष्ट लक्षणो से सम्पन्न परम पवित्र वीतराग स्वरूप को अभिव्यक्त करने के लिए तीर्थंकर देव का नाम सुनने से कई मनुष्य विचार करते है कि ये तो जैनो के देव हैं, पर जब अर्थ ध्यान मे आता है तो मालूम होता है कि वे जाति-पाति वर्ग विशेष से सम्बद्ध नही है। जिनका रागद्वेष मिट गया है, वे सभी के है। मानव मात्र के ही नही, प्राणी मात्र के हितैषी है। उनका उपदेश अमुक वर्ग के लिये ही है, यह नही होता। उनका उपदेश सभी के लिये कल्याणकारी है। आज की दुनिया मे जो अशाति, दु ख और द्वद्व है, उन सबका अन्त इस उपदेश से हो सकता है। आवश्यकता है, वैसा ही पुरुषार्थ करने की। विमल प्रभु की प्रार्थना मे उनके लोचन देखने की बात आई है। उनके लोचन नेत्र विशिष्ट नेत्र याने ज्ञान नेत्र के लिए कहा है। उसे देखने के लिए वैसे ही नेत्र पैदा करने होगे। आचाराङ्ग सूत्र मे कहा है—भगवान् के नेत्र बहुत बडे हैं, जो लोक को तो देखते हैं, पर अलोक को भी देखते हैं, ऐसे ज्ञान चक्षु से जो आत्मा को देख लेता है वही विमलनाथ भगवान् के नेत्रो का साक्षात्कार कर सकता है। विचार करना है कि भीतर के नेत्र कैसे देखे जाय। इसके लिए प्रभु ने उपदेश दिया है, जिसमे ज्ञान, दर्शन, चारित्र तीनो का उल्लेख है। उमास्वाति ने पहले दर्शन फिर ज्ञान कहा है। सम्यक् ज्ञान व दर्शन के आचारो का उल्लेख, मैं आपके सामने कर गया हूँ। अब विचार करना है कि चारित्र के आठ आचार कौन से है। चारित्र की पालना जैन धर्म मे कई मनुष्य करते है, पर चारित्र की पालना करते-करते विमलनाथ भगवान् जैसे नेत्र उन्हे प्रगट हुए या नही, इसके लिए साधु के पाँच महाव्रत और श्रावक के पाँच अणुव्रत बताये हैं। इनका आचरण करके जो प्राण रूप तत्त्व ग्रहण कर लेता है, वही वैसे नेत्रो का साक्षात्कार कर सकता है। जिस शरीर मे प्राण नही रहते, वह प्राणी नही कहलाता। इसी प्रकार आचरण तो करने मे आता है, पर उसके भीतरी ध्यान योग को जाने विना उन नेत्रो का साक्षात्कार नही हो सकता।

आज बहुत से मनुष्य, शब्दो का उच्चारण तो करते है पर उसके अर्थ को नही जानते, ग्रहण नही करते। आज के कई मनुष्य बहुत से शास्त्र पढ लेते है, उसका अर्थ विवेचन भी पढ लेते हैं, पर उनके दिल मे ध्यान योग की साधना नही आती। सोचते है कि यह तो दूसरो के पास है, हमारे धर्म मे नही है।

पर यह मानना सही नही है, जैन धर्म मे ध्यान योग का पर्याप्त विवेचन मिलता है ।

ध्यान साधना चारित्र का प्राण है, इसमे जो दत्तचित्त हो जाता है, उसके भीतर के नयन खुल जाते है, पर इसकी साधना करने वाला चाहे साधु हो या श्रावक, सभी को बहुत कम समय मिलता है । कारण कि मन एकाग्र करना पडता है । शुरू में कठिनाई अवश्य होती है, पर करते-करते यह हाइवे रोड के समान सुबोधगम्य बन जाती है । शुरू-शुरू मे धैर्य की आवश्यकता है । ध्यान रूपी चारित्र का प्राण जब चारित्र के साथ रहता है, तो उसका किस तरह विकास होता है, यह जानने की बात है । पानी का लक्षण क्या है, यही तो, जो मनुष्य की तृषा शात करे, ठडक प्रदान करे, वही जल है, पर यदि ये गुण उसमे नही हैं तो उसे मीठा पेय नही कहा जा सकता । समुद्र के पानी से प्यास नही बुझती ।

ध्यान आत्मा की तृषा बुझाने वाला है, पर वह हो चारित्र रूप पानी के साथ । आज बहुत से साधक चारित्र की पालना कर रहे है, पर उन्हे अन्तर की सतुष्टि नही मिलती । कठिन-से-कठिन क्रिया की जा रही है, पर ध्यान रूप प्राण को छोडकर ही सब कुछ किया जा रहा है, इसीलिये आत्म सतुष्टि नही मिल पा रही है । वीतराग देव ने ध्यान को महत्त्वपूर्ण बताया है ।

प्राणायाम मे जो श्वास ग्रहण की जाती है और छोडी जाती है, वह ऊपर की वस्तु है । ध्यान योग नही । ध्यान और योग दो शब्द है । योग क्या है ? मन, वचन, काय इन तीनो की गतिविधि ध्यान मे लगा दे तो हो सकती है । दूसरी-दूसरी जो योग साधना है वे खतरनाक है, ज्यादा तो उसमे प्राण वायु को रोकने का प्रसग आता है, हवा रोकी जाती है तो अन्दर कुम्भक होता है । उन बारीक नसो पर बहुत दबाव पडता है, जिससे मस्तिष्क की नसो पर ज्यादा दबाव पडने से कभी-कभी मनुष्य पागल हो जाता है । कई बार सुनने मे आता है कि वह बहुत विद्वान् था, पर योग साधना मे श्वास रोकते-रोकते पागल हो गया । कारण स्पष्ट है कि नियन्त्रण नही रहा कुम्भक पर ।

ब्यावर का प्रसग है । एक व्यक्ति इसी तरह ध्यान साधना किया करता था, पर एक समय ऐसा प्रसग बना कि श्वास रोकते-रोकते कुम्भक पर इतना अधिक प्रभाव पडा कि मस्तिष्क की नसे खिंचने लगी और वह पागल हो गया । यह मेरी आँखो देखी घटना है । रोग मिटाने के लिए औषध लेने मे आती है, वह भी कई तरह की होती है । उदाहरण है—एक चिकित्सक यह कहे कि मेरी दवाई से रोग मिटे या न मिटे पर दूसरी बीमारी हो सकती है । दूसरा कहे कि मिटने का चान्स तो है, पर दूसरा रोग भी लग सकता है । तीसरा कहे दवाई तो दे दें पर उससे रोग मिटे यह निश्चित नही, किन्तु दूसरी बीमारी नही

हो सकती । चौथा कहे कि मेरी दवा से रोग तो मिट ही जायेगा और ताकत भी बढ जाएगी तो बताइये आप कौन से चिकित्सक की दवा लेंगे ? उत्तर है, चौथे की । तो बन्धुओ, वीतराग देव ऐसे ही डॉक्टर थे । उन्होने घनघातिक कर्मो का नाशकर जो सुन्दर औषध दी है, वह है चारित्र पालना मे ध्यान योग की साधना । आप चारित्र के साथ ध्यान के प्राण को जोडे । चारित्राचार के जो आठ भेद हैं—आठ प्रवचन माता । जो आप सब जानते ही होगे । प्रवचन माता क्या करती है ? प्राण रूप दूध देती है, पर वह दूध आपने ग्रहण किया या नही ? जैनाचार्य ने इस विषय को स्पष्ट करते हुए दुनिया के सामने एक दृष्टि दी है । सत्वेषुमैत्री - ससार की सभी आत्माओ के प्रति मैत्री भाव हो । हरिभद्र सूरिजी ने भी इसीलिए मिथ्यादृष्टि का वर्णन किया है । यह सब ध्यान योग के लिये है । इसलिये ध्यान साधना किस तरह की जाय ? यह मैं समय-समय पर बताता रहता हूँ । पर उसमे आपकी अरुचि आ गई तो सब निरर्थक हो जाएगा । जो साधक पहले अपेक्षित ध्यान साधना न साधकर चारित्र का पालन करता है तो उसे पूरे फल की सिद्धि नही मिल सकती । इसे एक रूपक के माध्यम से स्पष्ट कर देता हूँ ।

पुष्पभूति नाम के आचार्य थे । वे अपने बहुत से शिष्यो को चारित्र के साथ-साथ ध्यान साधना की भी शिक्षा देते थे । अध्यापक चाहे कैसा भी उपदेश दे, पर यदि शिष्य सही रूप मे स्वीकारे तो उस उपदेश की सार्थकता है । पुष्पभूति आचार्य का पुष्पमित्र नामक शिष्य बहुत ही गुणवान्, विनयी एवं शास्त्रो की गहराइयो मे उतरने वाला था । वह उस ध्यान साधना को पाने के लिए हरेक क्रिया का ध्यान रखता था और सदा निवेदन करता कि ध्यान साधना व चारित्राराधना का मार्ग बताये । मै साधना मे तल्लीन बनना चाहता हूँ । इस प्रकार ध्यान साधनादि मे वह गीतार्थ हो गया ।

एक दिन आचार्य प्रवर मन मे विचार करने लगे कि मै चारित्र पालना के साथ ध्यान साधना मे विशेष लक्ष्य रखता हूँ तो सघ से अलग होना पडेगा । ध्यान साधना के लिए एकाकी रहना होगा । तब सघ को कौन समझायेगा, कौन संभालेगा ? चिन्तन करने के बाद उन्होने शिष्य पुष्पमित्र को बुलाकर कहा मै ध्यान साधना विशेष रीति से करना चाहता हूँ, आगे बढना चाहता हूँ । अत. कोई भी दर्शन करने के लिये आये तो तुम उन्हे बाहर ही रोकोगे, उन्हे संभालोगे । क्योंकि आज भी ऐसा देखने को मिलता है, जो लोग दर्शन करने आते हैं तो जोर से 'मत्यएण वंदामि' कहते हैं । ताकि मोटे महाराज के कान मे उनके शब्द पहुँच जाय और जब तक वे आपकी वन्दना न झेलेगे "दया पालो" न कह दें, तब तक आप अपनी की गई वन्दना को सार्थक नही मानते । पर इसमे विवेक रखने की आवश्यकता है । सयमी जीवन का हर एक कार्य अपनी सीमा मे होता है । अत. आपको धैर्य के साथ रहना चाहिये । दूर

से ही वन्दनादि कर लेनी चाहिये। वे आचार्य जानते थे कि सभी मनुष्य एक सरीखे नही होते है, कोई आकर मेरे पाव मे भी माथा लगा देगा तो ध्यान साधना मे खलन पडेगा। लोग आकर पावो मे माथा लगाते है। तो यह नही सोचते कि इनके ध्यान मे मै बाधक बन रहा हूँ। इनकी साधना मे विघ्न उपस्थित कर रहा हूँ। इस तरह मै इन्हे अन्तराय तो दे ही रहा हूँ, पर साथ ही स्वय भी कर्मो का उपार्जन कर रहा हूँ।

शिष्य पुष्पमित्र ने गुरुदेव की बात सुनकर कहा—कि मै तन, मन से समर्पित हूँ, आप ध्यान साधना मे विराजे, मै एक भी शब्द आपके कान तक नही पहुँचने दूँगा। सभी व्यक्तियो को बाहर से ही लौटा दूँगा। शिष्य के विनीत वचनो को सुनकर एव आश्वासन पाकर आचार्य श्री ध्यान साधना मे, तन, मन, काया की साधना मे तन्मय हो गए, दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो समिति के साथ गुप्ति की साधना मे तन्मय हो गए। सभी साधु, गुरु भ्राता अन्य कोई भी आते और कहते कि दर्शन करना है, तो पुष्पमित्र यही कहते कि यही से कर लो। कुछ दिन तो सभी को सतुष्टि प्रदान की। पर कई साधु प्राण रूप चारित्र जीवन की ध्यान साधना क्या होती है ? यह नही जानते थे। अत कुछ दिन बाद पुष्पमित्र को कहने लगे कि तुम जाने नही देते, दर्शन नही करने देते आदि कहकर उसकी इस प्रकार आशातना करने लगे। पुष्पमित्र का तिरस्कार करते, पर पुष्पमित्र यही कहते कि आचार्य श्री ध्यान साधना मे सलग्न है, उनके समीप जाने से विघ्न उपस्थित होगा, उनकी ध्यान साधना मे। पर वे ध्यान साधना से अनभिज्ञ साधु न माने और एक दिन जब पुष्पमित्र आवश्यक कार्य से निपटने के लिए जगल गए हुए थे, तब वे लोग अन्दर पहुँच गये, देखा तो सोचा—अरे ! आचार्य श्री का स्वर्गवास हो गया है, यह पुष्पमित्र हमको अन्तराय दे रहा है। पुष्पमित्र आया तो उसे भी बहुत कुछ कहने लगे। उसने समझाया कि ये महान् है, ध्यान साधना मे सलग्न है, आप इन्हे बाधा न पहुँचाये, पर उन्होने उसकी बात पर विश्वास नही किया। वे लोग शवदाह करने के लिए कहने लगे। इधर पुष्पमित्र अकेला था, फिर भी उसने उन्हे नही ले जाने दिया तब वे लोग वहाँ के राजा के पास पहुँचे—कहा कि आचार्य श्रीजी न तो हिलते-डुलते है और न कुछ बोलते ही है, लगता है उनका स्वर्गवास हो गया है, पर मुनि पुष्पमित्र उनका दाह सस्कार नही करने दे रहा है। तब सम्राट स्वय वहाँ पहुँचे और पूछा तो पुष्पमित्र ने कहा कि ये साधु महाव्रत लेकर चल रहे हैं, सम्यक् चारित्र का आचरण कर रहे हैं, पर उससे जो रस आता है, उसे समझ नही रहे हैं। आचार्य श्रीजी को मृत घोषित कर रहे हैं। आप इन्हे समझाएँ कि ये उत्कृष्ट ध्यान साधना मे विराजे हुए हैं, पर साधु लोग कहने लगे कि अहो ! विद्वान् तो यही है, हमने इतने शास्त्र यो ही पढे हैं, इस तरह प्रलाप करने लगे। तब पुष्पमित्र ने मौन धारण करली कि जो ईर्ष्या एव क्रोध से अन्धे हो रहे हैं, उन्हे

कुछ समझाना बेकार है। राजा आचार्य श्रीजी के समीप गये, उनके हाथ पाव आदि हिलाकर देखा, उनकी नस टटोली, श्वास देखी, पर सब कुछ स्पदन रहित देखकर कहा कि पुष्पमित्र की बात गलत है, ये सभी साधु ठीक कह रहे है। सम्राट ने उनकी शव क्रिया के लिये तैयारी करने की आज्ञा दे दी। तब पुष्पमित्र ने सोचा कि आचार्य श्री तो ध्यान साधना खोलेगे नही, मुझे सकेत बताया था कि जब कभी आवश्यक कार्य होवे तो मेरे अमुक अग को स्पर्श करना, तब मै ध्यान की स्थिति से पूर्व अवस्था मे लौट आऊँगा। उन्होने सोचा कि अब रुकने का समय नही है। ये लोग तो इनका दाह सस्कार करने की तैयारी कर रहे है। अत वे आचार्यश्री के पास गए और उनके सकेतित अग पर हाथ लगाया। आचार्य श्री ने ध्यान खोला और कहा कि यह क्या किया ? मेरी ध्यान साधना मे यह विघ्न उपस्थित क्यो किया ? तब पुष्पमित्र ने विनय के साथ करबद्ध होकर सारी स्थिति स्पष्ट की और कहा कि चारित्र की पालना, ध्यान की साधना का भगवन् ! इन साधुओ को कुछ भी ध्यान नही है। आप तो ध्यान साधना मे तल्लीन थे, पर उन्होने आपको मरा हुआ समझ लिया। मैंने बहुत समझाया कि आप ध्यान साधना मे तल्लीन है, पर वे नही माने और आपकी शव क्रिया करने के लिये ले जाने की तैयारी करने लगे। अत मैंने आपकी साधना मे विघ्न उपस्थित किया, ताकि इन साधुओ को सच्चाई ज्ञात हो सके और इनके नेत्र खुल सके। तब आचार्य श्री ने उन समस्त साधुओ को सम्बोधित करते हुए कहा कि तुम लोग इसीलिये अधूरे रह गये हो। केवल ऊपर की वस्तुओ को देखते हो, गहराई मे नही उतरते हो। अपने ज्ञान को ही महान् समझते हो, गुरु को कुछ नही समझते। न पुष्पमित्र का तुम लोगो ने विनय किया। ध्यान साधना मे तुम लोगो की रुचि नही है—और जो रुचि रखते हैं, उनकी साधना मे तुम लोग बाधा उपस्थित करते हो। मेरी समाधि भी तुम लोगो ने अपनी असावधानी से भग करवा दी। अब मुझे नये सिरे से ध्यान करना होगा।

बन्धुओ ! इस उदाहरण से वस्तु स्थिति स्पष्ट हो जाती है कि साधना किस प्रकार करनी चाहिये। सम्यक् चारित्र के आठ आचारो का विशिष्ट रूप मे पालन करने के लिए ध्यान योग की कितनी आवश्यकता है। केवल बाहरी क्रियाओ मे हो साधक समिति-गुप्ति का पालन करे और अन्तरग की ओर ध्यान न दे तो साधना सफल नही हो सकती। क्योकि शास्त्रकारो ने कहा है कि बाह्य रूप से चारित्र पालन क्यो न गौतमस्वामी जैसा कर लिया जाय, पर मन मे समित अवस्था नही है, वचन की प्रवृत्ति समित नही है, तो वह आचार मुक्तानुलक्ष्यी नही हो सकता। साधक को सम्यक्चारित्र के आठ आचारो क[illegible] करने के लिये मन को ध्यान योग मे सम्यक्रित्या नियोजित करन[illegible] है। इसलिये महाप्रभु ने सहजिक ध्यान योग भी बताया है कि [illegible]

करते समय ध्यान उसी मे रहे। जब मन इतना सधेगा, तभी चारित्राचार की परिपूर्ण पालना मे ध्यान की विशिष्ट साधना सध सकेगी। केवल ऊपरी तौर पर चारित्र ग्रहण कर लिया, ३२ शास्त्रो का शाब्दिक अध्ययन कर लिया, पर चारित्र के साथ ध्यान साधना नही की तो क्या स्थिति होगी ? विचार करिये, चिन्तन मनन करिये कि आज जैन समाज मे लोगो का विशिष्ट प्रक्रिया की ओर आकर्षण कम लगता है। केवल ऊपरी-ऊपरी ध्यानो की ओर ही आकर्षण ज्यादा है। आज के तथाकथित ध्यान साधक भी ज्यादातर ऊपरी ध्यान की ओर ही लगे हैं, ऊपरी दृष्टि रखकर चले जा रहे है। स्वय को देखने के बजाय पर को देखा जा रहा है। कई तो यही सोचते रहते है कि अमुक ने मुझे वन्दना नही की, अमुक ने नमस्कार नही किया, अमुक ने मेरा सत्कार-सम्मान नही किया, अमुक मेरा भक्त कैसे बने, मेरे नाम पर सस्थान कैसे हो। इन बाहरी बातो मे ही उलझते जा रहे है। इन बाहरी बातो से ध्यान साधना का लक्ष्य तिरोहित होता चला जा रहा है। दशवैकालिक सूत्र मे तो साधक के लिये साफ बतलाया है—

"जे न वदे न से कुप्पे, वदिओ न समुक्कसे।
एवमन्नेसमाणस्स, सामण्णमणुचिट्ठई।"

अर्थात्—वन्दना नही करने वाले पर क्रोधित न हो और वन्दन करने वाले पर अभिमान न करे। इस प्रकार का वर्तन करने वाला साधक ही श्रमण धर्म का शुद्ध पालन कर सकता है।

बन्धुओ ! मैं आपसे कह रहा था कि चारित्राचार सत जीवन के साथ-साथ श्रावको के लिए भी ज्ञेय-उपादेय है। उन्हे यथायोग्य रूप मे अपनाकर ध्यान योग के साथ रमण करने पर ही दिव्य नयनो को देख सकेंगे। विशेष ज्ञान चर्म नयनो तक ही सीमित नही है। जीवन का तत्त्व एव दिव्य नेत्र अवलोकन करने की चीज है। उसे यो ही सहज ही प्राप्त नही किया जा सकता। चारित्राचार के आठ भेदो को समझ कर गहराई से चिन्तन-मनन करते रहे, तभी चारित्र की पालना के साथ-साथ ध्यान योग की साधना जीवन मे परिपूर्ण रूप से उतार कर मगलमय दशा को प्राप्त कर सकेंगे।

मोटा उपाश्रय ५-८-८५
घाटकोपर, बम्बई सोमवार

• ○ •

३७ मित्रता हो सभी आत्माओं पर

वीतराग देव को प्रतिदिन भावात्मक दृष्टि से स्मृति मे उभारा जाता है, क्योकि सभी आत्माओ का मौलिक रूप वीतराग स्वरूप है। अपने शरीर मे जो आत्मा है, उसका भी यही स्वरूप है। भव्यात्माओ का लक्ष्य होता है एक न एक दिन वीतराग देव के सम बन जाना। इसलिये लगभग प्रतिदिन इनको याद करने का प्रसग बन जाता है, चाहे तीर्थंकर के नाम से याद करे या वीतराग देव के नाम से।

सभी की भावना आज यही है कि वीतराग दशा प्राप्त की जाय। लक्ष्य नही होगा तो सभी एकत्व भावना मे नही आ सकेंगे। एक को साधने वाला ही सब को साधकर सत्य को पा सकता है। कहा भी है—

"एके साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।"

अर्थात् यदि एक को साध लेंगे तो सभी कार्य सध जायेंगे, पर यदि सभी कार्यो को एक साथ साधने जायेंगे तो मुख्य काम तो बिगडेगा ही, साथ ही सभी कार्य भी बिगड जायेंगे। वट वृक्ष आपने देखा होगा, उसका मूल बडा होता है और पत्तियाँ आदि हरी होती हैं। कोई मनुष्य उसकी पत्ती पकडकर चलता है और दूसरा जड को लेकर चलता है, जड को ग्रहण करने वाला तो फूल-पत्ती आदि सब कुछ पा लेता है, पर पत्ते को पकडकर रहने वाले के हाथ कुछ नही आता, वह पत्ता भी एक दिन पककर झड जाता है, इस तरह वीतराग दशा को जीवन मे लाने का प्रयत्न करने वाली आत्मा सब कुछ पा सकती है, किन्तु जो आत्मा इन्द्रियो से विभिन्न सुख को पाने का प्रयत्न करती है, वह कुछ भी नही पा पाती है, वीतराग स्वरूप की प्राप्ति के लिए सम्यक् चारित्र की आराधना के साथ समीक्षण ध्यान का समन्वय करने पर आत्मा का वीतराग स्वरूप निखर सकता है।

सुखविपाक-सूत्र मे आप सुन रहे है, मूल को पकड कर चलने वाले सुबाहु-कुमार का वर्णन। जो कि वीतराग दशा को प्राप्त करने मे सफल बन जायेंगे, अभी तो देवलोक में गए हैं। आत्मा को उज्ज्वल बनाने मे प्रमुख कारण चारित्र है और उसका प्राण है—समीक्षण ध्यान। वीतराग देव द्वारा प्ररूपित समीक्षण ध्यान ही चारित्र का प्राण है। ध्यान की साधना कैसे होती है ? यह विचार

करने की बात है। जो विषय आज अपने जीवन के लिये आवश्यक है, उस विषय की बाते चाहे गुजराती मे हो' चाहे हिन्दी मे, मूल विषय एक ही है और उसे हो सबको पकडना है। हाँ तो मैं कह रहा था, ध्यान योग साधना किस माध्यम से हो ? हमारा यह शरीर जो दिख रहा है, उसके अन्दर दो शरीर और है— तेजस्, कार्मण। ये दोनो ही इस आत्मा को स्वरूप से अलग कर रहे है, स्वरूप का ध्यान लगाने मे बाधा पहुँचा रहे है।

आत्मा तो इतनी प्रखर तेजस्वी है कि सूर्य के प्रकाश की उपमा भी नही दी जा सकती। सूर्य मे कितना तेज होता है, पर जब बादल आ जाते है सूर्य के चारो तरफ, उस वक्त सूर्य का प्रकाश दिखाई नही देता है, पर सूर्य की किरणे इतनी प्रखर है कि बादल ज्यादा टिक नही सकते। जिस प्रकार सूर्य की प्रखर किरणो के तेज से सारे बादल हट जाते है और सूर्य अपने सम्पूर्ण प्रकाश के साथ प्रकट हो जाता है, इसी प्रकार सूर्य से भी अधिक यह आत्मा प्रकाशवान् है। यदि इसके तेज से कर्मो को हटा दे तो आत्मा का निर्मल स्वरूप कर्म रहित होकर चमक सकता है, औदारिक शरीर मे से आत्मा का भौतिक स्वरूप निखर उठेगा। आत्मा इन शरीरो की मालिक है, उसे चाहिये कि वह अपनी सुख शक्ति को जाने। कर्मो के बादल को हटाकर अनत ज्ञान का प्रकाश प्रकट करे।

बादल किससे पैदा हुआ ? सूर्य की किरणो के माध्यम से ही वे आकाश मे जाते है और एक दिन उसे ही आवरण मे ले लेते है, ठीक इसी प्रकार आत्मा, शरीर, मन, वाणी, व्यवहार से कर्म रूपी बादल को इकट्ठा करती है तो उसे हटाने का कार्य भी यह आत्मा ही करती है। पर उसे हटाने मे सम्यक्ज्ञान के साथ सम्यक् चारित्र का पुरुषार्थ हो तो शाश्वत शाति की दिशा मे आगे बढा जा सकता है।

जैसे आपने अपने हाथो से किसी को रस्सी से बाँधा है, वो एक दिन हाथो से ही उसकी रस्सी भी खोलेगा, पाँवो से नही, ठीक इसी प्रकार मन, वचन, काया के द्वारा ही कर्म बँधे है, इन्ही के द्वारा वे नष्ट भी होगे। मन, वचन, काया को सम्यक् करे। सही सशोधन करने वाला ही योगी होता है, गुफा मे बैठने वाला ही योगी नही हो जाता।

वीर्यान्तिराय कर्म के क्षयोपशम से जो मन, वचन, काया की प्रवृत्ति होती है, वह योग है। आपकी जानी मानी चीज अर्थात् जो आप रोजाना बिजली को काम लेते हो, वह बिजली पावर हाउस से जुडी हुई है, शक्ति पावर हाउस मे है। पर प्राय कई कार्यो मे बिजली का उपयोग होता है, अर्थात् पावर का सचार पावर हाउस के होते हुए भी प्रकाश का माध्यम अलग होता है। उसी प्रकार क्रियाएँ मन, वचन, काया से होते हुए भी शक्ति का सचार तो आत्मा के द्वारा ही होता है। जिस प्रकार बिजली का पावर हाउस एक है, पर माध्यम

अलग-अलग है, उसी प्रकार आत्मा का प्रकाश पुञ्ज एक है, पर इसके मन, वचन, काया तीन मुख्य माध्यम हैं, जिनके द्वारा वीर्य शक्ति प्रकट हो रही है, पर आज के प्राय. मनुष्य उसका दुरुपयोग कर रहे है। जैसे रात्रि के समय बिजली खुली रह गई तो उसमे अनर्थदण्ड की हिंसा होती है, जिसका कि श्रावक के त्याग होता है। तो फिर कैसे उसके अणुव्रत की सुरक्षा हो सकती है ? इसी प्रकार मन, वचन, काया का दुरुपयोग भी अशुभ कर्मो का वन्धन कराने वाला बनता है। मनुष्य स्वय अपनी शक्तियो का दुरुपयोग कर रहा है। लेकिन जो योगो का उपयोग वीतराग दशा की प्राप्ति की ओर करता है तो उसके कर्म निर्जरा का भव्य प्रसग भी उपस्थित हो सकता है। लेकिन आज मनुष्य की स्थिति कहाँ जा रही है ? पानी के नल से पानी की आवश्यकता थी, जितना भरा बाद मे नल को खुला छोड दिया। व्यर्थ ही पानी वह रहा है, इसमे पानी का तो दुरुपयोग हो ही रहा है, पर साथ ही आपके कर्मबन्ध की स्थिति भी बन रही है। पानी के इस प्रकार बहने से अनतानन्त जीवो का हनन होता है। पानी जीवो का पिण्ड है, पर कई अविवेकी व्यक्ति उन जीवो का घात व्यर्थ ही कर बैठते है। इसी तरह आज जीवन की शक्ति योगो के माध्यम से नष्ट-विलुप्त हो रही है। कर्मबन्ध की स्थिति बनती जा रही है। वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त वीर्य-शक्ति का दुरुपयोग हो रहा है। कम से कम धर्मस्थान मे तो भव्यात्माओ को ज्यादा से ज्यादा सदुपयोग करना चाहिये। धर्मस्थान मे बैठते समय श्रावक यह समझे कि मै सभी जीवो का मित्र हूँ। हरिभद्रसूरि प्रतिपादित आठ दृष्टियो मे से एक मित्रा दृष्टि भी है। सभी प्राणियो के साथ उसके जीवन मे अहिंसा की भावना आ जानी चाहिये। जिसका तात्पर्य है कि—

'खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा वि खमतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वैर मज्झ न केणई ।।"

इस प्रकार सभी के प्रति आत्मीय व्यवहार लेकर जितने समय तक भी वह चलता है, उसकी आत्मा मे एक विशेष प्रकार की आत्मीयता एव सुखानुभूति जागृत होती है। लेकिन आज धर्मस्थान मे रहकर भी अशुभ अध्यवसायो के माध्यम से कर्मो के वन्धन की स्थिति बनती है, तो वह आत्मा के लिए घातक है, क्योकि कहा है—

"अन्यस्थाने कृत पाप, धर्मस्थाने विमुच्यते ।
धर्मस्थाने कृत पाप, वज्रलेषो भविष्यति ।।"

अन्य स्थान पर किये पाप से छुटकारा धर्मस्थान मे मिलता है, पर धर्मस्थान मे जो पापक्रिया करके वध की स्थिति बनाते है, उसका विमोचन कहाँ होगा ?

बन्धुओ ! वीतराग वाणी को जीवन साधना के साथ जोडे । हमारे पाँच महाव्रत है और आपके पाँच अणुव्रत है । हमारे एव आपके सभी के लिए यह ध्यान देने की बात है । यह धर्मस्थान है, सभी पापो का विमोचन यहाँ किया जाता है । अन्त करण से जिस समय माफी मॉगी जाती है, तब योग का दण्डा नीचे रखा जाता है अर्थात् मन, वचन, काया के दण्डो को झुकाये । आप लोग इसे समझे और जीवन मे उतारे । जीवो की पिटाई, हिंसा कम से कम धर्मस्थान मे न करे, उन्हे अभयदान देकर चले तभी जीवन का सारा स्वरूप बदलेगा, सहायता मिलेगी । जिसके भी जीवन मे ऐसा प्रसग आता है, उसके अन्त करण मे क्षमाभावना से आत्मज्योति देदीप्यमान होती है ।

एक छोटी-सी बात कह देता हूँ । दो मित्र थे, बचपन से ही साथ-साथ पढते खेलते थे । पढाई पूर्ण हो जाने पर दोनो ने व्यापार करने का निश्चय किया और सम्पत्ति कमाने के लिए विदेश जा रहे थे । आज जितनी यातायात की सुविधाएँ है उस समय नही थी । वे पैदल चलते-चलते राह भूल गये, जगल मे चले गये, अब वहाँ किससे मार्ग पूछा जाय । वहाँ तो कोई मनुष्य मिलता नही, अत वृक्ष पर चढकर चारो तरफ देखा, तो उन्हे एक पहाड के मध्यभाग मे झोपडी दिखाई दी, नीचे उतरकर मित्र ने कहा कि कुछ दूरी पर एक झोपडी है, अत सभव है वहाँ कोई न कोई व्यक्ति मिल ही जाएगा तो चलो वहाँ चलकर उससे किसी शहर का रास्ता पूछा जाए । दोनो मित्र चलकर उस झोपडी के पास आए और देखा कि झोपडी के पास साधना की पूर्वभूमिका-मित्राद‍ृष्टि को प्राप्त करके सीधी-सादी पोषाक मे एक साधक बैठे हुए थे । व्यापारियो की दृष्टि किनको पहचानती है ? व्यापारियो को वस्तुओ की पहचान हो सकती है, साधको की नही । वे विचार करने लगे, जगल मे रहनेवाला यह जगली है । वे उस साधक को जाकर कहने लगे, अरे जगली ! यह सम्बोधन सुनकर साधक सोचने लगा कि ये अपने अह मे डूबे हुए है, पर मुझे क्या करना ? मैं तो आत्मरमण की स्थिति मे चल रहा हूँ । इनके इस सम्बोधन से मेरी आत्मा पर कोई फर्क नही पडने वाला है । ये मुझे नही पहचानते है, क्योकि ये व्यापारी है, अत पैसो को पहचानते है, यह सोचकर वह योगी बोला—मित्रो ! पधारो ।

उस योगी के ये शब्द सुनकर वे विचार करने लगे, अहो यह तो सभ्य है । उसने उन्हे अन्दर ले जाकर बैठाया और कहा कि आपकी आकृति से लगता है कि आप प्यासे है, उन्हे झरना बताया कि वहाँ जाकर अपना कार्य निपटाकर प्यास बुझालो । फिर कहा कि आपकी तृषा तो शान्त हो गई, पर लगता है कि आप लोग भूखे भी है । उन्होने कहा—हाँ, भूखे तो है, पर यहाँ जंगल मे कोई ऐसा वृक्ष नही है, जो कि फलो से लदा हो और हमारी भूख मिटा सके । तब उस साधक ने कहा कि फल आदि के लिये आप क्यो चिंता करते हैं, व्यर्थ मे वनस्पति की हिंसा करने से क्या लाभ ? मेरे लिए प्रतिदिन भोजन आता है,

अलग-अलग है, उसी प्रकार आत्मा का प्रकाश पुञ्ज एक है, पर इसके मन, वचन, काया तीन मुख्य माध्यम है, जिनके द्वारा वीर्य शक्ति प्रकट हो रही है, पर आज के प्राय: मनुष्य उसका दुरुपयोग कर रहे हैं। जैसे रात्रि के समय बिजली खुली रह गई तो उसमे अनर्थदण्ड की हिसा होती है, जिसका कि श्रावक के त्याग होता है। तो फिर कैसे उसके अणुव्रत की सुरक्षा हो सकती है ? इसी प्रकार मन, वचन, काया का दुरुपयोग भी अशुभ कर्मो का बन्धन कराने वाला बनता है। मनुष्य स्वय अपनी शक्तियो का दुरुपयोग कर रहा है। लेकिन जो योगो का उपयोग वीतराग दशा की प्राप्ति की ओर करता है तो उसके कर्म निर्जरा का भव्य प्रसग भी उपस्थित हो सकता है। लेकिन आज मनुष्य की स्थिति कहाँ जा रही है ? पानी के नल से पानी की आवश्यकता थी, जितना भरा बाद मे नल को खुला छोड दिया। व्यर्थ ही पानी बह रहा है, इसमे पानी का तो दुरुपयोग हो ही रहा है, पर साथ ही आपके कर्मबन्ध की स्थिति भी बन रही है। पानी के इस प्रकार बहने से अनतानन्त जीवो का हनन होता है। पानी जीवो का पिण्ड है, पर कई अविवेकी व्यक्ति उन जीवो का घात व्यर्थ ही कर बैठते हैं। इसी तरह आज जीवन की शक्ति योगो के माध्यम से नष्ट-विलुप्त हो रही है। कर्मबन्ध की स्थिति बनती जा रही है। वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त वीर्य-शक्ति का दुरुपयोग हो रहा है। कम से कम धर्मस्थान मे तो भव्यात्माओ को ज्यादा से ज्यादा सदुपयोग करना चाहिये। धर्मस्थान मे बैठते समय श्रावक यह समझे कि मैं सभी जीवो का मित्र हूँ। हरिभद्रसूरि प्रतिपादित आठ दृष्टियो मे से एक मित्रा दृष्टि भी है। सभी प्राणियो के साथ उसके जीवन मे अहिसा की भावना आ जानी चाहिये। जिसका तात्पर्य है कि—

'खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा वि खमतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वैर मज्झ न केणई ।।"

इस प्रकार सभी के प्रति आत्मीय व्यवहार लेकर जितने समय तक भी वह चलता है, उसकी आत्मा मे एक विशेष प्रकार की आत्मीयता एव सुखानुभूति जागृत होती है। लेकिन आज धर्मस्थान मे रहकर भी अशुभ अध्यवसायो के माध्यम से कर्मो के बन्धन की स्थिति बनती है, तो वह आत्मा के लिए घातक है, क्योकि कहा है—

"अन्यस्थाने कृत पाप, धर्मस्थाने विमुच्यते ।
धर्मस्थाने कृत पाप, वज्रलेपो भविष्यति ।।"

अन्य स्थान पर किये पाप से छुटकारा धर्मस्थान मे मिलता है, पर धर्मस्थान मे जो पापक्रिया करके बध की स्थिति बनाते हैं, उसका विमोचन कहाँ होगा ?

बन्धुओ ! वीतराग वाणी को जीवन साधना के साथ जोडे । हमारे पाँच महाव्रत हैं और आपके पाँच अणुव्रत है । हमारे एव आपके सभी के लिए यह ध्यान देने की बात है । यह धर्मस्थान है, सभी पापो का विमोचन यहाँ किया जाता है । अन्त करण से जिस समय माफी माँगी जाती है, तब योग का दण्डा नीचे रखा जाता है अर्थात् मन, वचन, काया के दण्डो को भुकायें । आप लोग इसे समझे और जीवन मे उतारे । जीवो की पिटाई, हिसा कम से कम धर्मस्थान मे न करे, उन्हे अभयदान देकर चले तभी जीवन का सारा स्वरूप वदलेगा, सहायता मिलेगी । जिसके भी जीवन मे ऐसा प्रसग आता है, उसके अन्त करण मे क्षमाभावना से आत्मज्योति देदीप्यमान होती है ।

एक छोटी-सी बात कह देता हूँ । दो मित्र थे, बचपन से ही साथ-साथ पढते खेलते थे । पढाई पूर्ण हो जाने पर दोनो ने व्यापार करने का निश्चय किया और सम्पत्ति कमाने के लिए विदेश जा रहे थे । आज जितनी यातायात की सुविधाएँ हैं उस समय नही थी । वे पैदल चलते-चलते राह भूल गये, जगल मे चले गये, अब वहाँ किससे मार्ग पूछा जाय । वहाँ तो कोई मनुष्य मिलता नही, अत वृक्ष पर चढकर चारो तरफ देखा, तो उन्हे एक पहाड के मध्यभाग मे झोपडी दिखाई दी, नीचे उतरकर मित्र ने कहा कि कुछ दूरी पर एक झोपडी है, अत. सभव है वहाँ कोई न कोई व्यक्ति मिल ही जाएगा तो चलो वहाँ चलकर उससे किसी शहर का रास्ता पूछा जाए । दोनो मित्र चलकर उस झोपडी के पास आए और देखा कि झोपडी के पास साधना की पूर्वभूमिका-मित्रादृष्टि को प्राप्त करके सीधी-सादी पोषाक मे एक साधक बैठे हुए थे । व्यापारियो की दृष्टि किनको पहचानती है ? व्यापारियो को वस्तुओ की पहचान हो सकती है, साधको की नही । वे विचार करने लगे, जगल मे रहनेवाला यह जगली है । वे उस साधक को जाकर कहने लगे, अरे जगली ! यह सम्बोधन सुनकर साधक सोचने लगा कि ये अपने अह मे डूबे हुए है, पर मुझे क्या करना ? मैं तो आत्म-रमण की स्थिति मे चल रहा हूँ । इनके इस सम्बोधन से मेरी आत्मा पर कोई फर्क नही पडने वाला है । ये मुझे नही पहचानते है, क्योकि ये व्यापारी है, अत पैसो को पहचानते है, यह सोचकर वह योगी बोला—मित्रो ! पधारो ।

उस योगी के ये शब्द सुनकर वे विचार करने लगे, अहो यह तो सभ्य है । उसने उन्हे अन्दर ले जाकर बैठाया और कहा कि आपकी आकृति से लगता है कि आप प्यासे है, उन्हें झरना बताया कि वहाँ जाकर अपना कार्य निपटाकर प्यास बुझालो । फिर कहा कि आपकी तृषा तो शान्त हो गई, पर लगता है कि आप लोग भूखे भी है । उन्होने कहा—हाँ, भूखे तो हैं, पर यहाँ जंगल मे कोई ऐसा वृक्ष नही है, जो कि फलो से लदा हो और हमारी भूख मिटा सके । तव उस साधक ने कहा कि फल आदि के लिये आप क्यो चिंता करते हैं, व्यर्थ मे वनस्पति की हिसा करने से क्या लाभ ? मेरे लिए प्रतिदिन भोजन आता है,

आज का भोजन अभी तक रखा हुआ है, सो आप लोग वह भोजन ग्रहण कर अपनी क्षुधा शान्त करिये । उन लोगो को बडा आश्चर्य हुआ, पूछने लगे कि यह भोजन हम लोग खा लेगे तो आप क्या खायेगे ? तब उसने कहा, मेरी चिन्ता न करो । इस तरह बहुत ही प्रेम से उन्हे जिमाया । भोजन करके तृप्त हुए तब उनकी दृष्टि पडी कि अहो, यह भी कोई व्यक्ति है, कितना शिष्ट एव सभ्य है, उन्होने शिष्टता से पूछा कि हमे शहर का रास्ता बताओ । तब साधक ने पूछा, शहर क्यो जा रहे हो ? तो कहा, आजीविका के लिए । योगी ने कहा कि क्या तुम्हारे गॉव मे पेट भरने का साधन नही मिलता ? तो वे बोले, मिलता तो है, पर हमे अधिक साधन की अपेक्षा है । तब योगी ने कहा—मै समझ गया तुम पेट नही पेटी भरना चाहते हो । पर मुझे इससे मतलब नही । मै मित्रा-दृष्टि रखकर चल रहा हूँ । मेरे लिए सभी व्यक्ति समान है, यहॉ आनेवाले सभी व्यक्ति मेरे मित्र है, जो भी मेरा अतिथि बनकर आता है, उसे अपनी सेवा से सतुष्ट करना मेरा कर्त्तव्य है । तुम्हे शहर का मार्ग तो बता देता हूँ, पर उससे पहले तुम्हे एक काम की बात बताता हूँ, तुम ध्यान से उसे सुनलो ।

दोनो मित्रो ने सोचा कि यह जगल मे रहकर साधना कर रहा है, जरूर इसने कोई ऐसी जडी बूटी सिद्ध की है, जिसके रासायनिक प्रयोग से स्वर्ण धातु की उपलब्धि होती है । मन ही मन बडे प्रसन्न होते हुए प्रकट मे कहा कि हाँ ! हॉ ! जरूर बताओ । हम ध्यान से सुन रहे है । तब उस साधक ने कहा कि मै ऐसी जडी बूटी जानता हूँ, जिसके प्रयोग से स्वर्ण बनाया जाता है, पर मै ऐसी परिश्रम से प्राप्त होने वाली वस्तु आपको नही बता रहा हूँ । बल्कि बिना किसी पुरुषार्थ के सीधे ही आपको रत्न और स्वर्ण की प्राप्ति हो जाए, ऐसी बात बता रहा हूँ । मेरे पीछे जो गुफा है, उसमे आगे जाते हुए बहुत से वृक्ष तुम्हे दिखाई देगे, उनके बीच मे जो दो वृक्ष एक समान है, उनके नीचे तुम्हे चन्द्रकान्त, सूर्य-कान्त मणियाँ स्वर्णादि मिल जाएँगे । जिसके प्रकाश के सहारे तुम अँधेरे मे भी सब कुछ देख सकोगे । गुफा अन्धेरी है एव लम्बी है । वहॉ किसी प्रकाश के साधन के सहारे से ही पहुँचा जा सकता है, मेरे पास दो टार्च है, जिसमे बहुत कम मसाला है । टार्च का प्रयोग सोच समझकर करना, यदि इधर-उधर देखने मे इसका मसाला खत्म कर दिया तो गुफा मे भटक जाओगे और फिर कभी वापिस निकल नही पाओगे और यदि टार्च का सही प्रयोग करते हुए बिना इधर-उधर दृष्टि डाले, एकाग्र चित्त से अपने लक्ष्य की ओर बढते जाओगे तो निश्चित ही तुम्हे ढेर सारे स्वर्ण एव चन्द्रकान्त तथा सूर्यकान्त मणियो की उपलब्धि होगी । लौटते वक्त जबकि टार्च का मसाला खत्म हो जाएगा पर मणियो का तेज तुम्हारा मार्ग प्रकाशित करेगा और उस प्रकाश मे तुम गुफा भी अच्छी तरह देख सकोगे । दोनो खुश हो गये, उस योगी के पाँव पकड लिये । बैटरियाँ ली और चलने लगे, आगे जाने वाला सोचने लगा कि यह योगी बहुत महान्, निष्पृह है, इतनी सम्पत्ति का स्वामी है, पर इसमे जरा भी लोलुपता नही है, नि स्वार्थ

भाव से उस खजाने का रहस्य इसने हमे बताया है, इसके कथनानुसार ही माग कार्य करना चाहिये। यह सोचकर वह एकाग्र मन से टार्च के प्रकाश को इधर-उधर न फेंकते हुए अपने गतव्य की ओर चलने लगा। पर दूसरे मित्र ने सोचा कि यह साधक बड़ा ही चालाक व्यक्ति लगता है, इसकी बातो का क्या भरोसा ? हो सकता है गुफा मे इधर-उधर नजदीक मे ही अपार धन सम्पत्ति पड़ी हो, और हमे दूर भेजना चाहता हो, ऐसा विचार कर कभी इधर तो कभी उधर टार्च का प्रकाश फेंकते हुए चलने लगा। परिणामस्वरूप मसाला खत्म हो गया और वह गुफा के अन्धकार मे रास्ता भटक गया।

पहला मनुष्य योगी के कहे अनुसार वहाँ पहुँच गया, रत्नादि उसे मिल गए, वह चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त मणि एव यथाशक्ति सोने की पोटलियाँ बाँधकर चल पड़ा, और उस साधक को बार-बार धन्यवाद देने लगा। फिर पीछे मुडकर देखा तो साथी नही था। वह अकेला ही लौटने लगा, तब लौटते वक्त मणि के प्रकाश मे गुफा भी देखी एव बाहर आकर सभी धन साधक के चरणो मे रख दिया, पर उस साधक ने कहा मुझे इसकी चाहना नही है, मै तो मित्राहष्टि लेकर आत्म-कल्याण की स्थिति मे चल रहा हूँ। यह सब तुम अपने पास रखो। उसके मन मे यह उथल-पुथल मची हुई थी कि मेरा मित्र पीछे कैसे रह गया ? अभी तक आया क्यो नही ? वह कहाँ है ? अत उसने साधक से पूछ लिया कि मेरा मित्र कहाँ है ? तब उस साधक ने कहा कि तुम्हारे मित्र ने मुझ पर अविश्वास किया, अश्रद्धा की। मेरी आज्ञा का पालन नही किया, और बैटरी के मसाले का दुरुपयोग किया, जिससे उसका मसाला खत्म हो गया और अन्धकार मे रास्ता नही सूझने के कारण मार्ग भटक गया है। अब वह आने वाला नही है। अपने मित्र की यह दशा सुनकर पहला मित्र व्याकुल हो उठा। उसने कहा कि मैं सूर्यकान्त मणि लेकर जाऊँ और उसके प्रकाश से अपने मित्र को खोजकर बाहर ले आऊँ, तब उस साधक ने कहा कि सब व्यर्थ है। उस गुफा मे गुफा के भीतर गुफा है, तुम स्वय भटक जाओगे, पर खोज नही पाओगे, अपने मित्र को। अब तुम्हारा मित्र कभी भी वापस बाहर नही आ सकता। अत तुम लौट जाओ। वह धन एव मणिये लेकर अपने घर लौट आया। इस तरह जिसने साधक की आज्ञा का पालन किया वह तो सुखी हो गया और जिसने आज्ञा का पालन नही किया, उसे अपने जीवन से ही हाथ धोना पड़ा।

बन्धुओ ! यह तो कथानक है। पर आप सभी को विचार करना है कि मनुष्य जन्म की बैटरी सबको मिली है, पर इसमे मसाला-आयु कम है। अब अपना कार्यभार पुत्रो को सौपकर आप इस मसाले को उपयोग मे लेते हुए ससार की घनघोर गुफाओ मे से चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त मणिरूप केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त करें। उस अनत ज्ञान के प्रकाश मे अपनी आत्मा को निखारते हुए परम निर्वाण की अवस्था को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये।

भगवान् की वाणी बता रही है कि वीर्यान्तिराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त दुर्लभ मणि का जो प्रकाश मिला है, जो यह शक्ति मिली है, उसका यदि सदुपयोग नही करेंगे तो दूसरे साथी की स्थिति प्राप्त करोगे। धर्मस्थल मे बैठकर वीतराग देव की आज्ञा का परिपालन करते हुए परम पवित्र आदर्श के साथ योग साधना का उपयोग करोगे तो निहाल हो जाओगे, अन्यथा दूसरे मित्र की सी स्थिति बन जाएगी। अत वीतराग देव की आज्ञा का पूरा पालन करे, भरपूर नही हो सकता हो तो कम से कम धर्मस्थानक मे तो उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये। यदि आप पूर्णरूप से वीतराग देव की आज्ञा का पालन करेंगे तो आपको अवश्य चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त मणि के समान केवलज्ञान-केवलदर्शन का आलोक प्राप्त होगा, जिससे आप ससार की इन भयानक अँधेरी गुफाओ को देखते हुए सुरक्षित निकलकर अपने लक्ष्य तक पहुँच सकेंगे।

तप भी कर्म के कोहरे को हटाने मे एक महत्त्वपूर्ण उपयोगी साधन है। मैं आपका मित्र हूँ, और मित्र किसी पर जबर्दस्ती करता नही। आप तो सकेत से ही समझने वाले है। इशारा ही पर्याप्त है।

अरिष्टनेमि महाप्रभु के इशारे को पाकर तो सारथि ने प्राणियो को अभय दे दिया था। आपको मालूम होगा कि अरिष्टनेमि भगवान् विवाह करने के लिए बारात लेकर विवाहस्थल पर पहुँचे, वहाँ बहुत से पशु-पक्षी पिजरो मे बन्द आकुल-व्याकुल होकर करुण क्रन्दन कर रहे थे। अरिष्टनेमि ने अपने सारथी से पूछा कि ये पशु-पक्षी यहाँ क्यो बन्द किये गये है। बन्धुओ। विचार करना है कि भगवान् अरिष्टनेमि क्या अनभिज्ञ थे ? तीन ज्ञान के धारक थे, क्या उन्हे पता नही था, कि ये पशु क्यो बद किये गये हैं, पर वे अपने इगित से सारथी को भी अवगत कराना चाहते थे। देखना चाहते थे कि सारथी उनके इगितानुसार कार्य करने मे सक्षम है या नही ? उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन मे कहा गया है कि—

"आणाणिद्देसकरे, गुरुणमुववायकारए ।
इगियागारसपण्णे, से विणीए त्ति वुच्चई ।।"

शिष्य की गुरु के प्रति इतनी समर्पणा होनी चाहिये, कि वह गुरु की आँखो के सकेत मात्र से समझ जाय। यही समर्पणा दास की स्वामी के प्रति भी होनी चाहिये। सारथी अरिष्टनेमि के चेहरे को देखकर उनके मन के भाव समझ गया। उसने कहा, प्रभु ! ये सारे पशु-पक्षी आपकी बारात मे आए मेहमानो के भोजन के लिए है। यह सुनते ही अरिष्टनेमि करुणाद्र हो उठे, उनकी भावनाओ को समझते हुए सारथी ने सभी प्राणियो को बन्धन मुक्त कर दिया। तत्काल आज्ञा का पालन किया गया। बन्धन मुक्त होते ही सारे पक्षी प्रसन्नता से कलरव करते हुए, पख फडफडाते हुए उड गये, उडते हुए मानो उन्होने मूकवाणी से अरिष्टनेमि कुमार को आशीर्वाद दिया कि जिस तरह आपने हमे इस कठोर

बन्धन से मुक्त करके व्योमविहारी बनाया है, उसी तरह आप भी इन अष्ट कर्मो के बन्धन से मुक्त बनकर मुक्ति के अनन्त गगन मे विचरण करेगे। पक्षियो को मुक्त करवाने के बाद भगवान् अरिष्टनेमि ने अपने अलकार आभूषण उतारकर सारथी को दे दिये एव रथ लौटा दिया। इस पर कई यह तर्क करते है कि भगवान् को दीक्षा लेनी थी, इसीलिये अपने जेवर दान मे दिये, जीव रक्षा के लिये नही, पर विचार करें कि उन्होने उसी समय दीक्षा नही ली, पर राज्य मे लौट आये। वर्षीदान दिया और पुन बहुमूल्य गहनो से अलकृत होकर दीक्षा लेने पधारे और उस समय पुन गहनो का दान करते हुए श्रमण पर्याय अगीकार की। उन्होने सारथी को जो इनाम दिया, उसके कार्य से खुश होकर उसकी योग्यता की पहचान कर ही दिया क्योकि वह "इगियागार सपण्णे" था।

जो व्यक्ति इगितानुसार नही चलता है, उसकी क्या हालत होती है, उसे भी एक रूपक से समझा देता हूँ।

एक सेठ की लडकी बडी हो गयी तो सेठ ने सेवकों को कहा कि तुम लोग जाओ और मेरी लडकी के अनुरूप कोई २० वर्ष का अच्छा सा लडका खोजकर उसके साथ सगाई पक्की कर दो। सेवको ने वर खोजने के लिए प्रस्थान कर दिया। उनके मन मे उत्साह था, उमग थी कि सेठजी के मन मुताबिक कार्य करेंगे तो खूब सारा इनाम मिलेगा। वे गॉव-गॉव मे घूमे, पर लडकी के अनुरूप बीस साल का कोई लडका उन्हे नही मिला। वे चिन्ता मे पड गये एव विचार करने लगे कि अब क्या किया जाय? तभी उनके मन मे विचार आया कि क्यों न १०-१० वर्ष के दो लडको के साथ इसकी सगाई पक्की कर दी जाय। उन्होने ऐसा ही किया और उसी उमग और उत्साह के साथ आकर सेठजी को बधाई दी कि २० वर्ष का लडका तो हमे कही नही मिला, अत. १०-१० वर्ष के दो लडको के साथ हमने आपकी लडकी की सगाई पक्की कर दी। पर अब उन्हे क्या इनाम मिलेगा? जो सेवक सेठ के इगितानुसार कार्य नही करता वह इनाम का भागीदार नही हो सकता।

बन्धुओ! मैं आपको कह रहा था कि आप लोग यह सोचें कि महाराज हम कहे कि इतना करो, यह तप करो ही, ऐसा आग्रह मै नही करता, पर मै सकेत कर देता हूँ, आप अपनी शक्ति अनुसार तप करे। मै तो प्रेरणा देता हूँ। तपस्या करके ध्यान साधना मे अपने जीवन को जोडते हुए आगे बढ़ेगे तो आपका जीवन मगलप्रद अवस्था को प्राप्त करेगा।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

६-८-८५
मगलवार

☐ ☐ ☐

भगवान् की वाणी बता रही है कि वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त दुर्लभ मणि का जो प्रकाश मिला है, जो यह शक्ति मिली है, उसका यदि सदुपयोग नही करेंगे तो दूसरे साथी की स्थिति प्राप्त करोगे । धर्मस्थल मे बैठकर वीतराग देव की आज्ञा का परिपालन करते हुए परम पवित्र आदर्श के साथ योग साधना का उपयोग करोगे तो निहाल हो जाओगे, अन्यथा दूसरे मित्र की सी स्थिति बन जाएगी । अत वीतराग देव की आज्ञा का पूरा पालन करे, भरपूर नही हो सकता हो तो कम से कम धर्मस्थानक मे तो उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये । यदि आप पूर्णरूप से वीतराग देव की आज्ञा का पालन करेंगे तो आपको अवश्य चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त मणि के समान केवलज्ञान-केवलदर्शन का आलोक प्राप्त होगा, जिससे आप ससार की इन भयानक अँधेरी गुफाओ को देखते हुए सुरक्षित निकलकर अपने लक्ष्य तक पहुँच सकेंगे ।

तप भी कर्म के कोहरे को हटाने मे एक महत्त्वपूर्ण उपयोगी साधन है । मैं आपका मित्र हूँ, और मित्र किसी पर जबर्दस्ती करता नही । आप तो सकेत से ही समझने वाले है । इशारा ही पर्याप्त है ।

अरिष्टनेमि महाप्रभु के इशारे को पाकर तो सारथि ने प्राणियो को अभय दे दिया था । आपको मालूम होगा कि अरिष्टनेमि भगवान् विवाह करने के लिए बारात लेकर विवाहस्थल पर पहुँचे, वहाँ बहुत से पशु-पक्षी पिंजरो मे बन्द आकुल-व्याकुल होकर करुण क्रन्दन कर रहे थे । अरिष्टनेमि ने अपने सारथी से पूछा कि ये पशु-पक्षी यहाँ क्यो बन्द किये गये है । बन्धुओ । विचार करना है कि भगवान् अरिष्टनेमि क्या अनभिज्ञ थे ? तीन ज्ञान के धारक थे, क्या उन्हे पता नही था, कि ये पशु क्यो बद किये गये है, पर वे अपने इगित से सारथी को भी अवगत कराना चाहते थे । देखना चाहते थे कि सारथी उनके इगितानुसार कार्य करने मे सक्षम है या नही ? उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन मे कहा गया है कि—

"आणाणिद्देसकरे, गुरुणमुववायकारए ।
इगियागारसपण्णे, से विणीए त्ति वुच्चई ।।"

शिष्य की गुरु के प्रति इतनी समर्पणा होनी चाहिये, कि वह गुरु की आँखो के सकेत मात्र से समझ जाय । यही समर्पणा दास की स्वामी के प्रति भी होनी चाहिये । सारथी अरिष्टनेमि के चेहरे को देखकर उनके मन के भाव समझ गया । उसने कहा, प्रभु ! ये सारे पशु-पक्षी आपकी बारात मे आए मेहमानो के भोजन के लिए है । यह सुनते ही अरिष्टनेमि करुणाद्र हो उठे, उनकी भावनाओ को समझते हुए सारथी ने सभी प्राणियो को बन्धन मुक्त कर दिया । तत्काल आज्ञा का पालन किया गया । बन्धन मुक्त होते ही सारे पक्षी प्रसन्नता से कलरव करते हुए, पख फडफडाते हुए उड गये, उडते हुए मानो उन्होने मूकवाणी से अरिष्टनेमि कुमार को आशीर्वाद दिया कि जिस तरह आपने हमे इस कठोर

बन्धन से मुक्त करके व्योमविहारी बनाया है, उसी तरह आप भी इन अष्ट कर्मो के बन्धन से मुक्त बनकर मुक्ति के अनन्त गगन मे विचरण करेगे। पक्षियो को मुक्त करवाने के बाद भगवान् अरिष्टनेमि ने अपने अलकार आभूषण उतारकर सारथी को दे दिये एव रथ लौटा दिया। इस पर कई यह तर्क करते है कि भगवान् को दीक्षा लेनी थी, इसीलिये अपने जेवर दान मे दिये, जीव रक्षा के लिये नही, पर विचार करें कि उन्होने उसी समय दीक्षा नही ली, पर राज्य मे लौट आये। वर्षीदान दिया और पुन. बहुमूल्य गहनो से अलकृत होकर दीक्षा लेने पधारे और उस समय पुन· गहनो का दान करते हुए श्रमण पर्याय अगीकार की। उन्होने सारथी को जो इनाम दिया, उसके कार्य से खुश होकर उसकी योग्यता की पहचान कर ही दिया क्योकि वह "इगियागार सपण्णे" था।

जो व्यक्ति इगितानुसार नही चलता है, उसकी क्या हालत होती है, उसे भी एक रूपक से समझा देता हूँ।

एक सेठ की लडकी बडी हो गयी तो सेठ ने सेवकों को कहा कि तुम लोग जाओ और मेरी लडकी के अनुरूप कोई २० वर्ष का अच्छा सा लडका खोजकर उसके साथ सगाई पक्की कर दो। सेवको ने वर खोजने के लिए प्रस्थान कर दिया। उनके मन मे उत्साह था, उमग थी कि सेठजी के मन मुताबिक कार्य करेगे तो खूब सारा इनाम मिलेगा। वे गाँव-गाँव मे घूमे, पर लडकी के अनुरूप बीस साल का कोई लडका उन्हे नही मिला। वे चिन्ता मे पड़ गये एव विचार करने लगे कि अब क्या किया जाय? तभी उनके मन मे विचार आया कि क्यों न १०-१० वर्ष के दो लडको के साथ इसकी सगाई पक्की कर दी जाय। उन्होने ऐसा ही किया और उसी उमग और उत्साह के साथ आकर सेठजी को बधाई दी कि २० वर्ष का लडका तो हमे कही नही मिला, अतः १०-१० वर्ष के दो लडको के साथ हमने आपकी लडकी की सगाई पक्की कर दी। पर अब उन्हे क्या इनाम मिलेगा? जो सेवक सेठ के इगितानुसार कार्य नही करता वह इनाम का भागीदार नही हो सकता।

बन्धुओ! मै आपको कह रहा था कि आप लोग यह सोचे कि महाराज हम कहे कि इतना करो, यह तप करो ही, ऐसा आग्रह मै नही करता, पर मै सकेत कर देता हूँ, आप अपनी शक्ति अनुसार तप करे। मै तो प्रेरणा देता हूँ। तपस्या करके ध्यान साधना मे अपने जीवन को जोड़ते हुए आगे बढेंगे तो आपका जीवन मगलप्रद अवस्था को प्राप्त करेगा।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

६-८-८५
मगलवार

□□□

भगवान् की वाणी बता रही है कि वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त दुर्लभ मणि का जो प्रकाश मिला है, जो यह शक्ति मिली है, उसका यदि सदुपयोग नही करेगे तो दूसरे साथी की स्थिति प्राप्त करोगे। धर्मस्थल मे बैठकर वीतराग देव की आज्ञा का परिपालन करते हुए परम पवित्र आदर्श के साथ योग साधना का उपयोग करोगे तो निहाल हो जाओगे, अन्यथा दूसरे मित्र की सी स्थिति बन जाएगी। अत वीतराग देव की आज्ञा का पूरा पालन करे, भरपूर नही हो सकता हो तो कम से कम धर्मस्थानक मे तो उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये। यदि आप पूर्णरूप से वीतराग देव की आज्ञा का पालन करेगे तो आपको अवश्य चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त मणि के समान केवलज्ञान-केवलदर्शन का आलोक प्राप्त होगा, जिससे आप ससार की इन भयानक अँधेरी गुफाओ को देखते हुए सुरक्षित निकलकर अपने लक्ष्य तक पहुँच सकेगे।

तप भी कर्म के कोहरे को हटाने मे एक महत्त्वपूर्ण उपयोगी साधन है। मैं आपका मित्र हूँ, और मित्र किसी पर जबर्दस्ती करता नही। आप तो सकेत से ही समझने वाले है। इशारा ही पर्याप्त है।

अरिष्टनेमि महाप्रभु के इशारे को पाकर तो सारथि ने प्राणियो को अभय दे दिया था। आपको मालूम होगा कि अरिष्टनेमि भगवान् विवाह करने के लिए बारात लेकर विवाहस्थल पर पहुँचे, वहाँ बहुत से पशु-पक्षी पिंजरो मे बन्द आकुल-व्याकुल होकर करुण क्रन्दन कर रहे थे। अरिष्टनेमि ने अपने सारथी से पूछा कि ये पशु-पक्षी यहाँ क्यो बन्द किये गये है। बन्धुओ। विचार करना है कि भगवान् अरिष्टनेमि क्या अनभिज्ञ थे ? तीन ज्ञान के धारक थे, क्या उन्हे पता नही था, कि ये पशु क्यो बद किये गये हैं, पर वे अपने इगित से सारथी को भी अवगत कराना चाहते थे। देखना चाहते थे कि सारथी उनके इगितानुसार कार्य करने मे सक्षम है या नही ? उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन मे कहा गया है कि—

> "आणाणिद्देसकरे, गुरुणमुववायकारए।
> इगियागारसपण्णे, से विणीए त्ति वुच्चई॥"

शिष्य की गुरु के प्रति इतनी समर्पणा होनी चाहिये, कि वह गुरु की आँखो के सकेत मात्र से समझ जाय। यही समर्पणा दास की स्वामी के प्रति भी होनी चाहिये। सारथी अरिष्टनेमि के चेहरे को देखकर उनके मन के भाव समझ गया। उसने कहा, प्रभु। ये सारे पशु-पक्षी आपकी बारात मे आए मेहमानो के भोजन के लिए है। यह सुनते ही अरिष्टनेमि करुणार्द्र हो उठे, उनकी भावनाओ को समझते हुए सारथी ने सभी प्राणियो को बन्धन मुक्त कर दिया। तत्काल आज्ञा का पालन किया गया। बन्धन मुक्त होते ही सारे पक्षी प्रसन्नता से कलरव करते हुए, पख फडफडाते हुए उड गये, उडते हुए मानो उन्होने मूकवाणी से अरिष्टनेमि कुमार को आशीर्वाद दिया कि जिस तरह आपने हमे इस कठोर

बन्धन से मुक्त करके व्योमविहारी बनाया है, उसी तरह आप भी इन अष्ट कर्मो के बन्धन से मुक्त बनकर मुक्ति के अनन्त गगन मे विचरण करेगे। पक्षियो को मुक्त करवाने के बाद भगवान् अरिष्टनेमि ने अपने अलकार आभूषण उतारकर सारथी को दे दिये एव रथ लौटा दिया। इस पर कई यह तर्क करते है कि भगवान् को दीक्षा लेनी थी, इसीलिये अपने जेवर दान मे दिये, जीव रक्षा के लिये नही, पर विचार करें कि उन्होने उसी समय दीक्षा नही ली, पर राज्य मे लौट आये। वर्षीदान दिया और पुन बहुमूल्य गहनो से अलकृत होकर दीक्षा लेने पधारे और उस समय पुन गहनो का दान करते हुए श्रमण पर्याय अगीकार की। उन्होने सारथी को जो इनाम दिया, उसके कार्य से खुश होकर उसकी योग्यता की पहचान कर ही दिया क्योकि वह "इगियागार सपण्णे" था।

जो व्यक्ति इगितानुसार नही चलता है, उसकी क्या हालत होती है, उसे भी एक रूपक से समझा देता हूँ।

एक सेठ की लडकी बडी हो गयी तो सेठ ने सेवको को कहा कि तुम लोग जाओ और मेरी लडकी के अनुरूप कोई २० वर्ष का अच्छा सा लडका खोजकर उसके साथ सगाई पक्की कर दो। सेवको ने वर खोजने के लिए प्रस्थान कर दिया। उनके मन मे उत्साह था, उमग थी कि सेठजी के मन मुताबिक कार्य करेंगे तो खूब सारा इनाम मिलेगा। वे गॉव-गॉव मे घूमे, पर लडकी के अनुरूप बीस साल का कोई लडका उन्हे नही मिला। वे चिन्ता मे पड गये एव विचार करने लगे कि अब क्या किया जाय ? तभी उनके मन मे विचार आया कि क्यो न १०-१० वर्ष के दो लडको के साथ इसकी सगाई पक्की कर दी जाय। उन्होने ऐसा ही किया और उसी उमग और उत्साह के साथ आकर सेठजी को बधाई दी कि २० वर्ष का लडका तो हमे कही नही मिला, अत. १०-१० वर्ष के दो लडको के साथ हमने आपकी लडकी की सगाई पक्की कर दी। पर अब उन्हे क्या इनाम मिलेगा ? जो सेवक सेठ के इगितानुसार कार्य नही करता वह इनाम का भागीदार नही हो सकता।

बन्धुओ ! मैं आपको कह रहा था कि आप लोग यह सोचे कि महाराज हम कहे कि इतना करो, यह तप करो ही, ऐसा आग्रह मैं नही करता, पर मैं सकेत कर देता हूँ, आप अपनी शक्ति अनुसार तप करें। मै तो प्रेरणा देता हूँ। तपस्या करके ध्यान साधना मे अपने जीवन को जोडते हुए आगे बढेगे तो आपका जीवन मगलप्रद अवस्था को प्राप्त करेगा।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

६-८-८५
मगलवार

□□□

३८ समति गुप्ति की साधना करें

जब जीवात्माएँ बहुत तरह से अशाति का अनुभव करती है, तब कही उसके मन मे शाति की जिज्ञासा पैदा होती है। चारो तरफ से जब कष्ट के बादल मडराते है, तब व्यक्ति सोचता है, कैसे इनसे मुक्ति मिले और मैं जीवन को आगे बढाऊँ।

ससार मे जिधर दृष्टि डालिये कही भी सर्वात्मना कष्ट रहित अवस्था नहीवत् मिलती है, ऊपर से भले कोई कह दे कि मैं शाति से, सुख से रह रहा हूँ, पर अन्त करण मे दु ख अनुभव करता है। वह सोचता है, भले ही मुझे धन वैभव मिला है, पर अन्तर मे सतुष्टि नही है, तृष्णा रहती है कि यह प्राप्त करूँ, वह प्राप्त करूँ। यह ससार का रूप प्राय सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। जब बच्चा जन्मता है तो विशेष कोई आवश्यकता नही रहती, मात्र दूध की आशा रखता है, वह मिलने के बाद वह सतुष्ट हो जाता है, पर वास्तविक रूप मे नही हो पाता क्योकि धीरे-धीरे दूध के बाद खाने की ओर चाह बढती है, उसके बाद फिर कुछ और उसके बाद तो ९९ का चक्कर उसे सताने लगता है, जो उसे चैन से नही रहने देता।

मनोवाछित, ससारी सभी कामनाएँ पूर्ण नही होती। होगी कैसे ? जब तक जीवन मे तृष्णा है, उसके रहते सन्तोष आ नही सकता। म्यान मे अन्य वस्तु है तो तलवार नही समा सकती और तलवार है तो अन्य वस्तु नही समा सकती। ठीक इसी प्रकार मनुष्य का मन, किसी एक मे ही समा कर रह सकता है, जब तक इसमे भौतिक सुख, इन्द्रिय के विषयो की लालसा हिलोरे लेती रहती है, तब तक उसे दु ख से छुटकारा नही मिलता है। जब इससे मन को खाली करता है, तभी उसमे वास्तविक सुख और शाति भर सकती है। जवाईजी आते हैं तो आप पहले से तैयारी करते हैं कि उनको कहाँ पर बैठाना है, कहाँ पर उनका आसन लगाना है। ठीक उसी प्रकार आत्मशाति को पाने के लिए मन को सजाना होगा।

इस जीवन मे एक बहुत बडी शान्ति का स्थान पाना है, तो जगह निश्चित कर लेनी चाहिये। क्योकि यह सदा के लिए चलेगी। तीर्थंकर देवो ने बहुत ही सुन्दर तरीके से बताया कि जहाँ तुम शाति रखना चाहते हो तो देखलो कि वहाँ

क्या है ? चर्मचक्षु से मन को नही देखा जा सकता । मन हैरान है, खिन्न है आखिर क्यो ? एक रूपक है—एक सेठ था, बाहरी वैभव से परिपूर्ण था, चेहरा हस रहा था, अच्छी तरह बोल रहा है, पर मुनीम ने आकर तार पकड़ा दिया मात्र दो शब्द लिखे, कि जो जहाजे आ रही थी, उनमे करोडो की सम्पत्ति थी, वे सारी जहाजे डूब गयी । यह पढकर उसका चेहरा मुरझा गया, शरीर शिथिल हो गया, सारी प्रफुल्लता नष्ट हो गई, बताओ वह प्रफुल्लता कहाँ थी ? क्या आँखो मे ? शरीर के भीतर जिसे मन कह सकते है, अथवा मस्तिष्क मे । मन मे कल्पना चल रही थी अरबपति होने वाला हूँ, करोडो का माल आ रहा है, यही उमग थी, उसके मन मे, पर तार पढते ही वह सारी उमग भीतर से नष्ट हो गई । सुख-दु ख का माध्यम-स्थान मन है । ये जो टेम्परेरी अवस्थाएँ है, उनको बाहर निकाल दिया जाय एव शाति को स्थान दे दिया जाय । जो कभी घटे नही, हटे नही, ऐसा प्रयास किया जाय तो वर्तमान की उपलब्धि सार्थक हो सकती है । ज्ञानीजनो का कथन है कि तुम योग साधना करते हो तो यह महत्त्व-पूर्ण हो जाती है । साधना का अर्थ मन, वचन, काया को साधना और आत्मा को पवित्र बनाना है । इन तीनो को साधने पर ही आत्मा पवित्र बनती है और इन तीनो को साधने का जो सेन्टर है, वह मस्तिष्क है, पर उसमे पहले से जो कचरा भरा है, उसे अलग कर दे, अन्यथा नयी वस्तु वहाँ नही बैठ सकेगी । अत ज्ञानीजनो का कथन है कि ध्यान साधना से आत्मा को पवित्र बनाना है, तो योग साधना को पहचानो, स्वीकार करो । यदि तुम इसे जीवन मे उतार लोगे तो सदा-सदा के लिए वह सुख और शान्ति कल्पवृक्ष की भाति तुम्हारे जीवन मे आ जायेगी । प्रभु के सारगर्भित उपदेश का मक्खन हर कोई नही निकाल सकता, क्योकि आज के मानव को फुर्सत नही है । अत प्रभु महावीर ने मक्खन रूप मे जो सार दिया है, उसको दुनिया पहचाने, जीवन मे स्थान दे, तब तो उसका कार्य सिद्ध हो सकता है । प्रभु ने उत्तराध्ययन सूत्र के ३२वे अध्ययन की तीसरी गाथा मे बताया कि—

"एयाओ अट्ठ समिईओ, समासेण वियाहिया ।
दुवालसग जिणक्खाय, माय जत्थ उपवयण ।।"

इस गाथा मे अनन्त सुख का विधान रख दिया है । पाँच समिति बताई है । समिति का तात्पर्य, सक्षिप्त रूप से द्वादशागी अर्थात् तीर्थंकर देवो की सार रूपवाणी—१२ अग मे तो दृष्टिवाद अभी उपलब्ध नही है, ११ अग भी विस्तार से पढने की फुर्सत नही रखते हो, अत १२ अगो का सार जो प्रवचन माता है, उसकी गहराई से चिन्तना करे । बच्चा कितना ही छटपटाता है पर जब उसकी माता उसके पास चली जाती है, तो उसका रोना-धोना बन्द हो जाता है, वैसे ही मनुष्य दु ख-द्वन्द्वो से घबरा रहे है तो अनन्त तीर्थंकरो ने यह बात कही है । कल्पना करिये कि चार व्यक्ति जन्माध है, उन्होने सूर्य कभी देखा नही, सयोगवश

एकाकी दृष्टि खुलती है, वह भी निर्मल, उसने सूर्य को, शुद्ध स्वरूप को देखा तो उसका वर्णन करेगा । दूसरे की भी दृष्टि खुली । उसने सूर्य को देखा तो वह भी वैसा ही बतायेगा, वैसे ही जितने तीर्थंकर होते है, इस भूधरा तल पर । वे सभी एक दृष्टि से केवलज्ञान प्राप्त कर लेते है, जो उनका निर्मल नेत्र है, उसी के द्वारा वे अपने ज्ञान चक्षुओ का प्रयोग कर रहे है । बच्चा छोटा होता है तो माँ की अपेक्षा रखता है, पर बडा होते ही माँ को भूल जाता है, पर दु ख की तपन जब उन्हे जलाती है तो प्रवचन माता की गोद मे बैठकर निर्भय बन जाता है । यदि और कोई शास्त्र याद नही हो तो, लो इन आठ प्रवचन दया माता को याद करो, इसके शुद्ध रूप को पाले । मन, वचन, काया तीन गुप्ति है, इन्हे गोपने का प्रभु ने सकेत दिया कि ये तीनो शक्तियाँ तुम्हारे दु ख को वढाने वाली है, अतः इन्हे तुम रोक दो और भीतर का कचरा निकाल दो । यह सब मन के माध्यम से ही होता है । २२,६५,१२० कि मी एक सैकण्ड मे मन की गति वैज्ञानिको ने बताई है, तीव्रमन्द चलता यह मन विषम बन जाता है । अत. इस विषम गति को समित करो । मन मे समिती आ जायेगी तो सब कुछ आसान हो जाएगा । मन मे समित अवस्था आ जायेगी, कुमति निकल जायेगी ।

जहाँ सुमति वहाँ सम्पत्ति नाना ।
जहाँ कुमति वहाँ विपत्ति निधाना ।।

अर्थात् जहाँ सुमति है वहाँ सम्पत्ति आते देर नही लगती और जहाँ कुमति है वहाँ तो विपत्ति का खजाना है । उसी सुमति को प्राप्त करने के लिए योग साधना है जो मन को समित करती है । जब मन की क्रिया समित नही होती है, तो उसका जीवन बिगड जाता है । हरिकेशी अनगार, चाण्डाल कुल मे क्यो आए ? इसमे एक कारण मन को समित नही करने का भी था और जब उन्होने मन को समित किया तो वे साधना पथ पर बढते चले गये ।

एक बार की घटना है कि एक समय हरिजनो को बैठने के लिए जाजम बिछी हुई थी । सभी हरिजन उस पर बैठे हुए थे, उस समय हरिकेशी भी उस पर बैठने लगे तो सभी ने हसी उडाकर उसका तिरस्कार कर दिया । उसे जाजम पर नही बैठने दिया, वह विचारने लगा कि सजातीय भाइयो के साथ बैठने पर भी इतना तिरस्कार क्यो ? क्या मै अपने जाति भाइयो के साथ बैठने के भी योग्य नही ? इसमे मेरा दोष ही क्या ? यही कि मैं इनके समान वर्ण एव रूप वाला नही ? तभी जाजम के पास एक काला सर्प निकल आया । सभी मे हडबड मच गयी, तब बडे मनुष्यो ने लाठी से उसे वही खत्म कर दिया । तभी एक और सर्प निकला । सभी बालक कहने लगे, पर उसे देखने के बाद लोगो ने कहा यह तो दुमुही है, इसमे जहर नही होता, यह किसी को काटता नही । इसका निकलना तो लौकिक दृष्टि से शुभ माना जाता है, इस प्रकार आपस मे बोलते हुए सभी उसकी पूजा करने लगे ।

एक किनारे पर खडा-खडा हरिकेशी विचार करता है, दोनो एक जाति के प्राणी हैं, पर एक का तिरस्कार दूसरे का सम्मान। विचार करते-करते मन की गहराई मे उतर कर सोचने लगा कि मेरे पुरातन कर्मो का उदय है, अत मेरी जबान मे जहर है। जिस तरह कि सर्प को जहरीला समझकर ये लोग मारते है। मेरे जीवन मे भी कुमति है, मैं अब सुमति की आराधना करूँगा। इस प्रकार विचार करते-करते गहराई मे पहुँचा और इससे उसे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। देखने लगा कि पूर्व जन्म मे, मैं आठ प्रवचन माता की गोद मे आध्यात्मिक क्रीडा कर रहा था, उस समय मेरे मानस मे विपरीत परिणाम आये। जिससे मेरी वर्तमान मे यह विपरीत दशा बन रही है। उसने पुन उसी आठ प्रवचन माता की गोद मे जाने का निर्णय लिया और प्रवचन माता की गोद का आश्रय भी ले लिया। साधु बन गये। महाव्रत अगीकार किया, और महाव्रत की प्राणरूप ध्यान साधना मे लग गये। परिपूर्ण सयम की साधना मे सलग्न बन गये।

भगवान् ने बताया कि साधु छ कारण से आहार करे और छ कारण से छोडे। अत वे प्राण रक्षा के लिए आहार करते है, जिससे प्राण सुरक्षित रहने पर रत्नत्रय की सम्यक् आराधना भी सम्यक् रीति से हो सके।

अन्नमय कोश, प्राणमय कोश यह शरीर है, इसके द्वारा ही शरीर की गति चलती है, यह समझने की बात है कि जब तक हरिकेशी के मन मे कुमति थी तब तक शान्ति नही मिली। जब सुमति आ गई तो हरिकेशी अपनी स्थिति से बहुत आगे बढ गये। मन, वचन, काया की एकाकारता को अपनी आत्मा के साथ जोडा और उसी आत्मा को परमात्मा के साथ जोडकर आज सिद्ध भगवान् बन गये। अत विचार करना है कि समिती के साथ सुमति और सुमति से आध्यात्मिक सम्पत्ति प्राप्त होती है। कुमति का विनाश करके ही अजरामर अवस्था को प्राप्त करने मे सक्षम बन सकते है। यदि जीवन मे सुख चाहिए तो आठ प्रवचन रूप माता की भव्य तरीके से साधना करें, जिससे इस जीवन मे तो सुख समृद्धि प्राप्त होगी ही और परभव मे भी आप उच्च दशा को प्राप्त कर सकेंगे। इन्ही शुभ भावनाओ के साथ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

७-८-८५
बुधवार

□ □ □

३९ जीवन जीने की कला

मनुष्य जीवन विमलता की प्राप्ति के लिये, विमल स्वरूप को वरने के लिए, विमल की परम ज्योति प्रकट करने के लिये ही प्राप्त हुआ है। इस मनुष्य जीवन मे विविध विचित्रताए रही हुई है। इसके भीतर जब देखने का प्रसग आता है, तब बाहर की कितनी भी रमणीय अवस्था हो, उनसे लगाव हट जाता है। जब तक व्यक्ति को कोई बढिया वस्तु देखने को नही मिलती, तब तक वह घटिया वस्तु मे ही आनन्द मानकर चलता है। जैसा कि देखने को मिलता है कि जिन वस्तुओ को व्यक्ति प्रतिदिन देख रहा है, उससे कोई अलौकिक रचना उसके देखने मे आती है तो उसे प्राप्त किये बिना नही रहता।

जहाँ धर्मस्थान मे श्रोतागण धर्म के स्वरूप को, शास्त्रीय वाणी को सुनने के लिये पहुँचते है। धर्म की प्रवृत्ति अपनाने की कोशिश करते है पर इतना सब कुछ होते हुए भी कइयो के जीवन की पद्धति मे विशेष परिवर्तन नजर नही आता। तब मनुष्य की बुद्धि सहज ही खोजने लगती है कि जिस प्रक्रिया से बढकर कोई अन्य नही, उसे श्रवण किया, आचरण मे लाने का प्रसग आया फिर भी जीवन उसी स्थिति से चल रहा है तो श्रवण मे दोष है या आचरण मे, व्यवहार आदि मे कोई गलती है। इसकी खोज चिन्तक पुरुष अवश्य करता है। उत्तम क्रिया उत्तम ही रहती है। उसमे कोई कमी नही आती, पर कभी व्यक्ति उसे जिस विधि से अपनानी चाहिये, उसमे नही अपनाता है, देखादेखी करता है। शास्त्रीय रीति से साधना नही करता इसलिये आचरण मे पवित्रता नही आ पाती।

चौपडी पढी जा सकती है, पर जीवन मे भूल कहाँ हो रही है इसका सशोधन वह नही दे सकती, मन मे शका उठती है और बुद्धि से जो समाधान लिया वह सही है या गलत इसकी पुष्टि भी नही कर पाती। कई विचारवान् पुरुष इस पर विचार करते है और गहराई मे पहुँचते है तो सारी जानकारी हो जाती है। वीतराग के सिद्धान्त अति उत्तम है। चाहे कभी भी किसी से भी श्रवण करे। वीतराग देवो के सिद्धान्तानुकूल यदि इस जीवन मे श्रेष्ठ धर्म का स्वरूप पाना है तो आपको वीतराग देव की शरण मे जाना ही होगा, इसमे कोई सशय नही। आज की दुनिया खोजी हो चुकी है। कौनसी वस्तु कहाँ कितनी मात्रा मे कितने रूप मे मिलती है इसकी खोज मे आज का मानव तत्पर है।

आज फॉरेन मे लोग वैभव की स्थिति से उदास हो रहे है, जीवन की खोज मे आगे बढने के लिये अन्वेषण कर रहे है। जहाँ हिन्दुस्थान के लोग अमेरिकादि के लुभावने दृश्यो को देख मुग्ध बन रहे है। वहाँ के लोग स्वय की आन्तरिक स्थिति को प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु हो रहे हैं। डॉ कुन्दनसिहजी संघवी पहले बम्बई मे विज्ञान की अणुभट्टी मे कई वर्षो तक रहे हैं। जैन धर्म के अनुयायी होने के कारण जिज्ञासु भी हैं। स्वर्गीय आचार्य श्री जब उदयपुर विराजमान थे तब वे कई दफा आते थे और अपनी जिज्ञासाओं का सम्यक् समाधान पाया करते थे। अभी कई वर्षो से वे अमेरिका मे है। बतलाते है कि वहाँ उन्हे बहुत ऊँचा स्थान मिला है। कभी-कभी जब भारत भी आते है। धार्मिक सस्कारो का उनमे शुरू से लगाव है। अत वे जहाँ भी मैं विचरता रहता हूँ, वहाँ पहुँच जाते है। जब मैं देवगढ मे था तब उन्हे हिन्दुस्थान के वैज्ञानिको को निर्देश देने के लिये सरकार ने भारत बुलाया था, तब वे काम से समय निकालकर मेरे पास आये। दर्शन, व्याख्यान सुनने के बाद एकान्त मे समय लेकर पहला ही प्रश्न पूछा कि "जीवन तो मिला है, पर जिये कैसे ? जिससे शाति मिले।" मैंने कहा—अमेरिका जैसे वैभव सम्पन्न देश मे रहकर भी आपको शाति नही मिली। तब उन्होने कहा कि अमेरिका के लोग अब अपने वैभव धन सम्पत्ति से ऊब गये हैं। वहां के मनमोहक दृश्य भी उनको आकर्षित नही कर पाते। वे इससे भी कुछ ऊँची चीज पाना चाहते है और वह है—शान्ति। वे आत्मा की आन्तरिक स्थिति को प्राप्त करने के लिये जिज्ञासु बन रहे है। जीवन क्या है ? यह जानना चाहते हैं। तब उनको मैंने आत्मा की शान्ति के विषय मे समझाया। इसी के साथ मैंने पूछा कि वैज्ञानिक दृष्टि से निर्जीव पदार्थो मे भी हलन-चलन होती है क्या ? जैन दर्शन मे तो सजीव की तरह निर्जीव तत्त्वो मे भी गति स्वीकार की गई है। इस पर आपका वैज्ञानिक अभिमत क्या है ?

तब उन्होने कहा कि पहले तो विज्ञान निर्जीव तत्त्वो मे गति नही मानता था, पर अब वह भी मानने लगा है।

बन्धुओ ! यह जैन दर्शन का स्पष्ट अभिमत है कि पुद्गल स्कन्ध जितने हल्के होते चले जाते हैं, उतनी उनमे गति बढती जाती है। जब वह एक परमाणु रूप मे रह जाता है तो उसकी लोकान्त तक गति हो जाती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सजीव की तरह निर्जीव तत्त्व भी गति करता है। अतः गति के दृश्यमान होने मात्र से गतिशील पदार्थ जीव है, यह नही माना जा सकता। आत्मा भी जब कर्मपरमाणुओ से परिपूर्णत हट जाती है। तो वह एक ही समय मे ऊर्ध्वलोकान्त सिद्ध क्षेत्र मे जा विराजती है। आत्मा को कर्म विमुक्त करने के लिए समीक्षण ध्यान योग की अत्यन्त आवश्यकता है। वैसे देश विदेश मे भी ध्यान योग सम्बन्धी बहुत प्रक्रियाएँ चल रही है। जनता का आकर्षण उस ओर जा भी रहा है। जैनो के अनुयायी भी उस ओर आकर्षित हो रहे है। वे पूछते है

कि अपने जैन धर्म मे योग पद्धति है या नही ? ऐसे व्यक्ति सशयशील है। मैं उनसे कहता हूँ कि आपने जैन दर्शन को अच्छी तरह श्रवण नही किया होगा और यदि श्रवण किया भी है तो ध्यान से नही। जैसे किसी ने कहा कि चिन्तामणि रत्न भोजन की पूर्ति करने वाला है। मनोवाछा पूर्ण करने वाला है। तीन दिन का भूखा व्यक्ति चिल्ला रहा है। मेरी भूख मिटाओ, दु ख दूर करो। तब एक सुज्ञ व्यक्ति ने कहा कि अमुक सम्राट के पास जाओ, वह चिन्तामणि रत्न देगा, जिससे तुम्हारी भूख प्यास मिट जायेगी, तुम्हारे सारे कष्ट दूर हो जायेंगे। वह उस सम्राट के पास गया तथा अपनी गरीबी की करुण कथा सुनाते हुए दु ख मिटाने की फरियाद की। राजा ने ध्यान से उसकी सारी बात सुनी और अपने खजाची को आदेश दिया कि खजाने मे से एक चिन्तामणि रत्न निकालकर इसे दे दो। आज्ञानुसार कार्य किया गया। रत्न पाकर वह मन ही मन खुश होता हुआ अपने निजी स्थान पर लौट आया। उस रत्न को हाथ मे लेकर उलटने-पुलटने लगा। फिर सोचा जोरदार भूख लगी है पहले अपनी क्षुधा शान्त करलूँ। अत उस रत्न को अपने मुँह मे डालकर जोर-जोर से दाँतो से चबाने लगा, जिससे दाँत टूट गये, वह दु खी होकर कहने लगा कि लोग झूठ बोलते हैं कि चिन्तामणि रत्न सुख देने वाला है, मनोकामना पूर्ण करने वाला है, इसने तो मेरे दु ख को और बढा दिया। विचार करे कि दोष, देने वाले का है या ग्रहण करने वाले का है या चबाने वाले का है ? स्वय को ही विचार करना है कि वह चिन्तामणि रत्न क्या था, एक पत्थर अर्थात् जड ही तो था पर आज चिन्तामणि से भी ज्यादा मूल्यवान यह मनुष्य तन मिला है। इसकी दशा क्या बन रही है ? इसका उपयोग किस तरह करना चाहिये और किस तरह करने मे आ रहा है ? विचार करने की बात है। मैं कहता हूँ कि जैन दर्शन मे जितनी साधना की पद्धति है, उतनी कही भी नही है और वह है निरुपद्रवकारी। आवश्यकता है स्वय के जीवन को जानने के लिए समय निकालने की। आप कुछ समय निकाल कर साधना का पूर्ण स्वरूप समझे। अन्य सासारिक कार्यों को देखने के लिये आपको समय मिल जाता है पर वह महत्त्वपूर्ण है या मनुष्य जीवन ? विचार करे, आज जब यह आँखे टिमटिमा रही हैं, तब तक सारा वैभव है, पर जब यह बन्द हो जायेगी तो इस अपार वैभव का क्या होगा ? जो आज वर्तमान का जीवन है, उसे मूल्यवान बनाये। इसके लिए ध्यान साधना व समाधि के लिये कुछ समय निकाले। पर इतनी फुर्सत कहाँ है ? घर पर टी वी आ जाती है तो उसे देखने का आपके पास टाइम है। आप अपना आवश्यक कार्य निपटाकर या छोडकर टी वी अवश्य देख लेगे।

बन्धुओ ! यदि आपको आत्म-शाति पाना है तो भौतिकता के इस आकर्षण से हटकर वीतराग वाणी को सुनने का प्रयास करना होगा। जितने भी तीर्थंकर सर्वज्ञ सर्वदर्शी आदि बन गये है, उन्होने द्वादशागी मे जीवन का सार

भर दिया है और उसका सार आठ प्रवचन माता मे दिया गया है। अत उसकी साधना करे। आत्मसाधना मे अवलम्बन की आवश्यकता है पर वह अवलम्बन विनाशी न होकर अविनाशी होना चाहिये। एक बार जब मैं धार मे गया तो वहाँ गजानन्द शास्त्री पूछने लगे कि क्या अन्तर की साधना मे कोई अवलम्बन की आवश्यकता रहती है? यदि है, तो फिर किसका लिया जाय? मैंने कहा कि आप किस भावना से अवलम्बन लेना चाहते हो, अविनाशी बनने के लिए या नाशवान बनने के लिए। उन्होने कहा—अविनाशी बनने के लिए। मैंने कहा आप अवलम्बन ले सकते है, पर वह अविनाशी हो। वीतराग देव की पद्धति मे जाने का प्रसग है, तो उसमे अवलम्बन भी वैसा ही हो।

आनन्दघनजी ने तीर्थंकरो की प्रार्थना मे कहा है—शुद्ध आलवन होना चाहिये। शुद्ध की क्या पहचान? यही कि जिसे शुद्ध करना हो उसमे चमक शाश्वत रूप मे आ जाय तो वह शुद्ध है अन्यथा अशुद्ध है। जड तत्त्वो मे शाश्वत चमक नही आती। अत अशुद्ध आलबन है। अभौतिक तत्त्व आत्मा का स्वरूप ज्ञानमय, दर्शनमय और चारित्रमय है। इन तीनो आलम्बनो को लेने के लिये ही भगवान् ने उत्तराध्ययन सूत्र के चौबीसवे अध्ययन की पाचवी गाथा मे फरमाया है कि—

"तत्थ आलबण णाण, दसण चरण तहा।
काले य दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पहवज्जिए॥"

ज्ञान कैसा? भौतिक तत्त्वो का ज्ञान नही। अपितु आन्तरिक स्वरूप के यथावत् ज्ञान के साथ श्रद्धा एव चारित्र रूप आचरण का आलबन होने से आत्मा मे शाश्वत रूप से चमक ही चमक आती जाएगी। तब आध्यात्मिक वैभव ऋद्धि का आलोक स्वय ही प्रगट हो जायेगा।

वैज्ञानिक यह खोज जरूर कर रहे हैं, पर वे भौतिक तत्त्वो तक ही पहुँचे है। पर अनिर्वचनीय वस्तु की खोज भौतिक विज्ञान वाले नही कर सकते। क्योकि उनकी खोज अधिकाशतया दृश्यमान तत्त्वो पर आधारित है। जिस प्रकार बाहरी सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए आप कितना प्रयत्न कर रहे है ताला लगाते है, पहरेदार लगाते है, जिससे आपकी वह सम्पत्ति कही चली न जाय। लूट न ली जाय। पर जीवन की सुरक्षा के लिए आप क्या प्रयत्न कर रहे हैं। जीवन का, योग का, अन्त साधना का जो श्रेष्ठ विषय है उन्हे जब तक अलग-अलग रीति से न समझाया जायेगा, तब तक वह समझ मे नही आएगा। क्योकि आज का युग तर्क का है, पर ज्ञानीजनो का कथन है कि कभी-कभी ज्यादा तर्क करने से भी सम्यक् ज्ञान की उपलब्धि नही हो पाती। आप विचार करें कि

हमारे जीवन मे समीक्षण ध्यान, योग साधना किस प्रकार आये, हम किस प्रकार धर्म के स्वरूप को जाने ।

'पन्नासमिखए धम्मम्"

अर्थात प्रज्ञा के द्वारा धर्म का समीक्षण किया जा सकता है। कई व्यक्ति बाजार मे बैठे हैं। एक बहिन सोलह श्रृंगार कर सज धजकर अपने भाई को राखी बाधने जा रही है। बाजार मे बहुत से व्यक्ति बैठे है, उसमे उसके पिता भी है। उस लडकी को देखकर पिता कहेगा कि यह मेरी पुत्री जा रही है, भाई कहेगा कि यह मेरी बहिन जा रही है। उसका पति होगा तो वह कुछ और ही दृष्टि से उसे देखेगा और यदि कोई कामान्ध व्यक्ति होगा तो उसकी दृष्टि कुछ और ही रहेगी। एक साधु महात्मा भी उसे देखेगा तो उसकी दृष्टि मे पवित्रता होगी। देख सभी रहे है, पर जिसके जैसे विचार है, उसी रूप मे देख रहे है। यदि विषम दृष्टि है, राग द्वेष परिपूर्ण दृष्टि है तो वह वैसा ही स्वरूप देखेगे। अत वीतराग भगवान ने कहा है कि रग का चश्मा उतारकर सम दृष्टि से, तटस्थ दृष्टि से, प्रज्ञा से धर्म की समीक्षा करो। सच्चा धर्म बाहरी भौतिक तत्त्वो मे नही है। यह तो यूनीफार्म है, पहचान कराने वाले हैं। वास्तविक धर्म तो आत्मा मे है। प्रज्ञा से अन्तर का निरीक्षण करे कि मेरा जीवन का लक्ष्य क्या है, अवलम्बन क्या है ? इस तरह आध्यात्मिक दृष्टि से स्वय का निरीक्षण करे तभी वास्तविक सुख की स्थिति जीवन मे प्राप्त हो सकेगी।

आज के युग मे कही प्राणायाम चल रहा है तो कही विपश्यना ध्यान साधना चल रही है तो कही और कुछ। पर हठ योग जैसे ध्यानो मे कई खतरे है। पर सम्पूर्ण खतरो एव व्यवधानो से रहित यह सरस रीति वाली जैन धर्म की ध्यान पद्धति है। इसमे जितनी आत्मलीनता बनती है। उतनी किसी से नही। जहाँ बाल मन्दिर मे छोटे-छोटे बालक जाते हैं और खेलते-खेलते ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार वीतराग देव ने बहुत बडा उपदेश दिया है। आठ प्रवचन माता की गोद मे खेलते हुए इस साधना पद्धति का अभ्यास करें। तभी उस साधना का सरस फल प्राप्त हो सकेगा। अन्यथा चिन्तामणि रत्न को खाने वाले व्यक्ति जैसी हालत होगी। प्राप्त तो कुछ नही कर पायेगे दु ख और बढ जाएगा।

यदि आप यह भावना लेकर आये है कि मेरा झूठा मुकदमा है। अत मागलिक सुन लूँ। जिससे मेरा कार्य सफल हो जाएगा तो आप चिन्तामणि रत्न को प्राप्त करके भी उसका मुह मे चबाने की तरह दुरुपयोग कर रहे है। यदि आपने इस अमूल्य जीवन की साधना सही ढग से नही की तो आहार, निंद्रा, भय और मैथुन के इस चक्र मे उलझकर पशुवत् अपने जीवन की अमूल्यता को

गवा देंगे। जैसे खाली हाथ आप यहाँ आये है, वैसे ही हाथ पसार कर यहाँ मे प्रस्थान कर देगे।

अत तटस्थ भाव से समीक्षण ध्यान की पद्धति, आठ प्रवचन माता आदि के रूप मे जो वीतराग देव ने वतायी है। उसका उपयोग किस तरह बैठे-बैठे करना है और किस तरह चलते-फिरते करना है। यह सव गहराई से विचार करे एव ध्यान साधना की गहराई मे उतरे। तभी आपके जीवन को सही रूप मे जीने की कला प्राप्त हो सकेगी।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

८-८-८५
गुरुवार

४० मूल्यांकन करो समय का

जीवन के किसी भी क्षेत्र मे सफलता प्राप्त करने के लिए समय का मूल्याकन करना आवश्यक है। जिस प्रकार बू द-बू द करके घट भर जाता है वैसे ही एक-एक समय का मूल्याकन करने वाला एक दिन महान् कार्यो को सिद्ध करने मे सफल हो जाता है। महाप्रभु ने आचारांग सूत्र मे स्पष्ट शब्दो मे कहा है—"खण जाणाहि पडिए" हे भव्य साधक ! क्षण-समय को पहचान। समय को पहचानने वाला ही पडित होता है। जो अवसर को नही जानता वह सही माने मे पडित नही कहला सकता।

कई व्यक्ति व्यर्थ की बातो मे जीवन के अमूल्य क्षणो को खो बैठते हैं। ऐसे व्यक्ति कभी भी कार्य मे सफलता प्राप्त नही कर पाते। जिस प्रकार डॉक्टर बनने वाला विद्यार्थी अपना समय डॉक्टरी अध्ययन मे ही लगाता है, तो वह एक दिन सफल डॉक्टर बन सकता है। वकील बनने वाला व्यक्ति अपना समय वकालत मे ही लगाता है तो वह एक दिन सफल वकील बन जाता है। कोई भी किसी भी रूप मे अपने आपको बनाना चाहे, पर वह यदि अपने जीवन के बहुमूल्य क्षण उसी मे लगाता है तो वह वैसा ही बन जाता है। वैसे ही जो व्यक्ति आध्यात्मिक साधना मे अपने जीवन के बहुमूल्य क्षणो को लगा देता है तो एक दिन वह उसमे सफलता प्राप्त कर ही लेता है।

आध्यात्मिक जीवन मे समय का बहुत महत्त्व है। इसीलिये भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी को सावधानी दिलायी, चेतावनी देते हुए उत्तराध्ययन सूत्र के १० वे अध्ययन मे कहा —

परिजूरइ ते सरीरय केसा पडुरया हवन्ति ते।
से सव्व बले य हायई, समय गोयम ! मा पमायए ॥

हे गौतम ! तुम्हारे शरीर की जो वर्तमान स्थिति है वह क्षण विनाशी है। क्षण-क्षण मे क्षीण हो रही है और शरीर जीर्णता को प्राप्त हो रहा है। जब शरीर जीर्ण होने लगेगा तो उसके आश्रित रहने वाली इन्द्रिया भी जीर्ण हुए बिना नही रहेगी। शरीर के बलवान होने पर ही इन्द्रिया भी बलवान रह सकती हैं। शास्त्रकारो ने दस प्राण बताये है, उनमे श्रोतेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, मन, वचन, काय, श्वासोच्छ्वास और आयुष्य बलप्राण ये दस वलप्राण है।

विचार करना है कि इन सभी बलप्राणो मे ज्यादा किसका महत्त्व है ? वैसे तो सभी अपनी-अपनी स्थिति से महत्त्वपूर्ण है, पर जब तक काया स्थिर रहती है, तो काय बलप्राण स्थिर रहता है, तभी तक सभी बताये प्राण स्थिर रहते हैं। भगवान् ने काया व स्पर्श दोनो को अलग-अलग बलप्राण बताये है। स्पर्शनेन्द्रिय ऊपर-ऊपर का भाग है। बाकी सब भीतर का भाग काया बलप्राण है। यह आप अनुभव कर सकते है। आपने कभी डॉक्टर से इजेक्शन लिया होगा। जब स्पर्शनेन्द्रिय मे लगाया जाता है तो ज्यादा दर्द होता है पर भीतर का ढाचा जहाँ काया बलप्राण है उसमे उतना दर्द नही होता। सभी बलप्राण प्राय काया के आधार पर है। इसीलिए प्रभु महावीर ने गौतम स्वामी को सबोधित करते हुए कहा कि—तुम्हारा काय बलप्राण क्षीण हो रहा है। तुम कब चेतोगे। जब तक काय का बल क्षीण नही होता, तब तक इन्द्रिया अपने-अपने बल को धारण कर सकती हैं, अत जब तक ये काया सशक्त है तब तक समय मात्र का भी प्रमाद मत करो। समय किसे कहते है ? इसकी क्या उपमा है ? इसे भी समझ लेना आवश्यक है। आँख की एक पलक झपकने मे असख्यात समय निकल जाता है। यह जो उपदेश गौतम स्वामी को इगित करके दिया गया वे तो प्रमाद का त्याग करके जाज्वल्यमान केवल-ज्ञान की ज्योति प्राप्त करके, मोक्ष मे चले गये। लेकिन यह उपदेश सभी के लिए है। आज के प्राय मनुष्य मे समय का पाबन्द नही है। नियत समय पर नियत कार्य न होने से मन की गति चचल हो जाती है। योग साधना, भगवान् की भक्ति, नाम स्मरण आदि करने की इच्छा बहुतो की रहती है, पर जब तक मन की चचलता स्थिर नही होती, कुछ भी नही हो सकता। क्या बाहरी किसी भी पदार्थ ने आकर आप का मन चचल बनाया या अन्य किसी वस्तु विशेष ने ? पर जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है वहाँ आपकी आत्मा ही मन को चचल बना रही है। आप यह अनुभूति कर सकते हैं।

मान लीजिये—आप भोजन करते हैं, तो जो समय आपका खाने का है उसी वक्त आप रोज खाने बैठ जाते है। इस प्रकार एक-डेढ महीने तक आप उसी समय खाते रहेगे, तब आपको घडी की आवश्यकता न रहेगी। ठीक समय पर आपको क्षुधा लगने लगेगी। ठीक इसी प्रकार ठीक समय पर जीवन का समीक्षण किया जाय तो अन्तर मे जो-जो रचना है उनका ज्ञान भी एक न एक रोज आप कर सकेंगे। ठीक समय पर भोजन करने से पाचन क्रिया खराब नही होती। पर आज का मनुष्य इस नियम पर पाबन्द नही है, तो फिर अन्य कार्यो मे कैसे पाबन्द हो सकता है। अनिश्चित समय पर भोजन करने से जठराग्नि विकृत हो जाती है। उसी प्रकार अनिश्चित समय पर किया गया समीक्षण भी पूर्ण लाभदायक नही होता। जैसे किसी व्यक्ति को अफसर से मिलना होता है तो वह आपको मिलने के लिए निश्चित समय देता है। उसी निश्चित समय पर यदि वह व्यक्ति वहा पहुँच जाय तो वह उसका बहुत ही अच्छी तरह से

कार्य कर देता है, पर वह यदि पहुँचने मे लेट कर देता है तो फिर न तो वह आपका कार्य सम्पन्न कर सकता है और न अपना ही। अर्थात् उसका दिमाग अस्थिर हो जाता है। कुछ समय अपना निरर्थक जाने पर वह अपने काम मे लग जाता है। फिर वह व्यक्ति उसके पास जाए भी तो उसे टाइम नही मिलता है, अत आज जीवन का नियमित स्वरूप हर मनुष्य को बनाना है। यह नियमित जीवन की कला शुरू से आ जाए तो कही भी कुछ विकृति नही आयेगी। अत जीवन को नियमित बनाना आवश्यक है। क्योकि जीवन की सुरक्षा नियमित समय पर निश्चित कार्य करने से ही हो सकती है। वर्तमान मे जो शरीर, इन्द्रिय एव निरोगी काया मिली है उसका नियमित उपयोग लेने से ही सारा कार्य सपन्न हो सकता है। प्रभु वीतराग देव की वाणी को ख्याल मे रखते हुए अपने लक्ष्य को स्थिर करे। फिर एक घटे का समय निश्चित करे और उस समय प्रतिदिन आध्यात्मिक साधना करने मे निरत हो जाय।

रात्रि का पिछला समय ध्यान योग साधना के लिए विशिष्ट है। प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय, द्वितीय प्रहर मे ध्यान, तृतीय प्रहर मे निन्द्रा एव रात्रि के पिछले अर्थात् चतुर्थ प्रहर मे ध्यान, योग साधना आदि करना, यह प्रभु का निर्देश भी है। चौथे प्रहर मे जो प्रक्रिया होती है, वह मन को स्थिर करने के लिए विशेष उपयोगी होती है। चतुर्थ प्रहर, योग साधना के लिए बहुत ही अच्छा समय है। सूर्योदय होने के बाद तो शोर बढ जाता है, बाहरी व्यवधान उपस्थित होने लगते है तब मन बाहरी अनेक कार्यो मे बिखर जाता है। ऐसे समय मे आपका मन योग साधना मे लग नही सकता। जिस प्रकार साईकिल के पैडल को घुमाकर छोड दे तो वह लम्बे समय तक घूमता ही रहता है, उसी प्रकार सूर्योदय के बाद मन का पहिया बाहरी कार्यो मे उलझकर घूमना शुरू हो जाता है तो वह शाम के समय सूर्यास्त तक भी उसी वेग से प्राय घूमता ही रहता है। सूर्यास्त के बाद वह मन रूप पैडल उपशान्त हो सकता है और रात्रि मे विश्राम अच्छी तरह मिल जाय तो मन व इन्द्रियाँ शान्त बन जाती है, प्रशात हो जाती है। तब चौथे प्रहर मे उत्कृष्ट योग साधना का प्रसग बन सकता है। अत समय की पाबन्दी सभी को करनी है, आप अपने मन को आदेश देवे कि चार बजने मे सात मिनट बाकी रहे तो मुझे जगा देना। आप देखेगे कि ठीक समय पर आपकी आखे खुल जायेगी। घडी मे अलार्म भरने की तरह आप अपने मन मे अलार्म भरे तो आपका मन व्यवस्थित रूप से चलेगा। बिस्तर से उठकर नीद को उडाने के लिए भगवान् ने जो साधना की विधि बताई है। जागृत होने के लिए भगवान् ने वन्दन की विधि बतायी है, यह रूढि नही, बल्कि विशिष्ट यौगिक प्रक्रिया है। आप किस तरह वन्दन करते हैं, यह अलग बात है पर आप दोनो हाथ जोडकर ऊपर से नीचे घुमाते हुए दोनो घुटने टेक कर मस्तक को नमाते हुए जमीन पर लगाया जाय तो ही प्रभु की बतायी गई विधि सध सकती है। यह विधि ज्ञान शक्ति को तरोताजा करती है। इन्द्रियो की

शिथिलता दूर करती है। कम से कम ५ वन्दन और अधिक से अधिक ६ बार वन्दन सुबह उठते ही करना चाहिए। वैसे इससे ज्यादा यथासमय किया जा सकता है। सुबह-सुबह वन्दना करने से जो नसे आपके चिन्तन मे, योग-साधना मे, काम आने वाली है, वे सभी जागृत होकर स्फुरित हो जाती है, पर आज के मनुष्य इसे बहुत कम स्वीकार करते हैं, सोचते हैं, यह तो धार्मिक क्रिया है, यौगिक नही। उनका यह मानना भ्रान्ति पूर्ण है, क्योकि धार्मिक साधना के साथ ही इससे मन की साधना अच्छी तरह साधी जाती है। डॉक्टरो का कहना है कि हमारे शरीर मे छोटी-छोटी नसो का जाल बिछा हुआ है। रात्रि विश्राम के समय कभी-कभी उनमे ब्लड सर्कुलेशन की गति मद पड जाती है, ये बारीक नसे हमारे हार्ट मे ज्यादा रहती है अत जब सुबह-सुबह उठकर वन्दना करते हैं तो खून का प्रवाह पुन शुरू हो जाता है, और शरीर मे स्फुर्ति आ जाती है। मनुष्य के सीने मे दर्द क्यो होता है? उसमे बारीक-बारीक नसे है, जिनमे रक्त की रुकावट बन जाती है तो हार्ट फेल भी हो जाता है। पर यदि रक्त प्रवाह बराबर चल रहा है तो ऐसी स्थिति एकाएक नही आती। हार्ट अटेक होने पर आपको बहुत दु ख होता है पर आप यह नही सोचते कि यदि शुरू से ही शरीर का साधन रखा जाता, महाप्रभु द्वारा प्रतिपादित वन्दना विधि को विधिवत् अपनाया जाता तो हार्ट अटेक का प्रसग शायद नही आता। भगवान महावीर की प्रति-पादित यह जो सहज प्रक्रिया है। वह प्रक्रिया मनुष्य करे तो आगे जाकर वह समीक्षण ध्यान योग साधना भी सुन्दर रीति से साध सकता है। पर मैं आपको क्या कहूँ, आज आपके पास इसके लिए समय ही कहाँ रह गया है। आप अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिए वाचमेन नियुक्त करते है, पर मैं पूछता हूँ कि आत्मा की सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए आप किसको नियुक्त करते हैं। उस सम्पत्ति की रक्षा के लिए आप क्या कुछ कर रहे हैं?

एक पटेल पूर्व जन्म की पुण्यवानी लेकर आया था। जिसके आधार पर खूब आगे बढ गया था। अत गर्व मे आकर विचार करने लगा कि अहो! मेरे भाई कितने पीछे रह गये हैं, पर मैं कितना वैभव सम्पन्न हूँ। अत अब मुझे सत्सग से क्या लाभ? पर उसकी पटेलन सभी कार्यो को छोडकर सत्सग मे पहले जाती। वहा से ज्ञान प्राप्त करके सोचती कि यह जो अपार वैभव, धन, सम्पत्ति आदि मुझे मिली है, वह सब पूर्व जन्म मे कृत शुभ कर्मो का ही फल है। अत पूर्व पुण्यवानी के साथ वर्तमान की शक्ति को, पुण्यवानी को भी बढाना चाहिए। अत. वह अपने पति से कहती है कि सारा समय आप इन कार्यो मे न बितायें, सत्सग मे भी चले। धन और इन्द्रियो मे इतने आसक्त न बने। क्योकि यह सब वैभव तो पूर्व कृत पुण्यवानी का परिणाम है। अत इस पर अभिमान कैसा? यह पुण्यवानी भी अमर नही है। जब पुण्यवानी का अत आयेगा तो पुण्य भी पाप मे परिर्वातित हो जायेगा। अत आप गहराई से विचार करें एव कुछ समय सत्सग मे बितायें पर वह पटेल सुनी अनसुनी कर देता। धर्म का

नाम भी उसे पसन्द नही था । इस तरह करते-करते एक समय ऐसा आया कि पुण्यवानी खत्म होते ही सारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी । एक समय की रोटी भी नसीब नही होती । सोचा अब क्या किया जाए । पटेलन ने कहा जाओ नौकरी करो । सुनकर वह बोला कि क्या मै इतना वडा पटेल होकर नौकरी करूँ ! पर मरता क्या नही करता ? उसे जाना पडा । जहा वह जा रहा था, वही एक सेठ की हवेली थी, जिसका रुपया पटेल के पास बाकी था । उसने देखा तो आवाज दी और कहा कि मेरा रुपया कब लौटाओगे तो उसने कहा कि अभी मेरे पास फूटी कौडी भी नही है तो आपका रुपया किस तरह लौटाऊ । जब मुझे सम्पत्ति प्राप्त होगी तो मैं आपके बिना कहे ही आपका सारा धन ब्याज सहित लौटा दू गा । पर उस सेठ ने उसकी बात पर विश्वास नही किया और कहा कि मैं क्या तुम्हारी स्थिति नही जानता हूँ कि तुम लाखो की सम्पत्ति के मालिक हो, अत लाओ ! मेरा रुपया मुझे लौटा दो । क्योकि उसने सोचा कि इसकी नियत खराब हो गई है, यह धन का गबन करना चाहता है । अत सेठ ने उस पर पहरा लगवा दिया । जेल मे बन्द करते है तो कम से कम रोटी तो खाने को दे देते है, पर वहाँ वह पटेल तीन दिन तक भूखा प्यासा बैठा रहा, पर किसी ने उसकी खोज खबर नही ली । तीन दिन बाद जब सेठ बाहर आया और उसने पटेल को बैठा देखा तो पूछा तू यही बैठा है ? क्या रुपया लाया है ? तब उसने कहा नही । तो सेठ ने कहा कि जाओ रुपया लेकर आओ । पटेल उठा । तीन दिन का भूखा-प्यासा था, चक्कर आने लगे । किसी तरह उठकर घर आया और अपनी पत्नी से कहने लगा कि मैं तीन दिन का भूखा प्यासा हूँ । अब मुझ से कोई काम नही होता । तुम अपने धान के कोठे को झाड बुहार कर साफ करो । पाव भर धान तो निकल ही जायेगा । उसे पीस कर आटा बना लो एव उस आटे की राबडी बनाकर उसमे पॉयजन मिला दो, जिसे खा पीकर हम सो जाये, ताकि समस्त दु खो से छुटकारा मिल जायेगा । पटेलन ने उससे सारी बात पूछी और विचार करने लगी कि यह हमारे अशुभ कर्मो का उदय है । अत आर्त व रौद्र ध्यान की स्थिति मे पडकर कर्म बन्ध को न बढाते हुए समभाव रखना है । तब पटेलन ने उसको समझाया कि पूर्व कृत पापो के उदय से तो यह दशा प्राप्त हुई है । फिर इस तरह आत्मघात करने से कितने क्या कर्मो का बन्ध होगा । क्या आपने सेठ को अपनी वर्तमान स्थिति से अवगत नही कराया तो पटेल ने, नही कहा । तब पटेलन ने उसे कहा कि तुम पुन उसी सेठ के पास जाओ और बिना किसी सकोच के अपनी वर्तमान की सारी हकीकत सुना दो । वह सेठ इतना निर्दयी नही है, दयालु है, उससे कहना कि पहले का कर्जा तो है ही, आप मुझे सवा मन अनाज और दे देवें । यदि मेरी स्थिति पुन चमक उठी तो मैं ब्याज सहित सारा धन और सवा मन अनाज चुका दूँगा और यदि नही चुका सका तो आप यही सोच लेना कि जहाँ इतना धन डूबा वहा सवा मन अनाज और सही । इससे आपके व्यापार मे अथवा धनराशि मे कुछ भी फर्क नजर नही

आयेगा। पत्नी की बात मानकर वह गया। सेठ दयालु थे। उसकी आकृति देखकर उन्हें विचार आया। पूछा कि तुम रुपये लेकर आये हो? उसने कहा नही, तो पूछा कि तुम्हारा चेहरा उदास क्यो है? क्या हुआ? तब उसने अपनी सारी हकीकत सुनायी। सेठ सा. ने सुनकर उसके कन्धे पर हाथ रखा और कहा चिन्ता की कोई बात नही, तुम मेरे भाई हो, इस तरह उसे अन्दर ले गये और सब कुछ विस्तार से पूछा—उसने कहा कि मैं आपकी हवेली पर आया। तीन दिन तक भूखा-प्यासा बैठा रहा, फिर निराश होकर घर लौटा एव जहर पीकर मरने की सोचने लगा। पर मेरी पत्नी ने समझा-बुझाकर सवा मन अनाज लाने के लिए पुन आपके पास भेजा है, अत. आप इच्छा पूर्ण कीजिये। जब सेठ को यह ज्ञात हुआ कि उसने तीन दिन से भोजन नही किया है तो पहरेदार को बुलाकर उसे डाटते हुए कहा कि यह क्या किया? तुमने इसे भोजन भी नही करवाया? जाओ उसे बढिया भोजन खिलाकर इसकी क्षुधा शान्त करो। पर पटेल ने कहा कि नही, मैं अकेला भोजन नही करूँगा? हमारे घर मे यह रीति है कि जो भी मिलता है उसे हम सभी पारिवारिकजन आपस मे मिल करके बाटकर खाते है। कोई भी व्यक्ति अकेले नही खाता। मेरी पत्नी भी तीन दिन की भूखी है, मैं खाऊगा तो उसके साथ ही और मरूगा तो उसके साथ ही। उसकी ऐसी भावना देखकर सेठ बडा खुश हुआ और बोला कि तुम दो मन अनाज ले जाओ। सेठ की बात सुनकर उसके मन मे ताकत आ गयी। यह है मन की प्रतिक्रिया। धान की बडी सारी पोटली लेकर घर की ओर चला। पटेलन ने दूर से आते देखा तो सामने गयी और कहा इतना अनाज? वास्तव मे वह सेठ बडा दयालु है। इसने हम पर कितनी बडी अनुकम्पा की है, विपत्ति के इस भयानक समय मे इसने हमारी कितनी बडी रक्षा की है। ऐसे समय मे अन्य लोग तो हसी उडाते है, उपेक्षा करते हैं, पर इनकी महानता देखो कि इन्होने हमको गले लगाया है। ऐसी अवस्था मे जो हमारे प्राण बचाने के लिए अनाज दे, उसका उपकार हमे जीवन भर नही भूलना चाहिए। पटेल भी विचार मे पड गया। उसने रात भर जगकर विचार किया कि मैं इस सेठ का कर्जा लेकर नही मरूगा, चाहे जैसे भी हो मुझे यह कर्जा उतारना है। सोचा—मेहनत मजदूरी से कर्जा उतार नही पाऊँगा। इसके लिए तो चोरी ही करनी पडेगी। ऐसा सोचकर चोरी करने की भावना से वह आधी रात को घर से निकला। रास्ते मे उसे चोर मिले। पूछा कौन? तो कहा चोर? उसने कहा तुम कौन हो? कहा चोर? चोर-चोर मौसेरे भाई। सभी मिल गये। २६ के तीस हो गये। बडी हवेली मे चोरी करेंगे। जो पहले घुसेगा उसे दुगुना हिस्सा मिलेगा। उसने सोचा मैं चोर नही चोर का जाया नही। सिर्फ कर्जा उतारने के लिए चोर बना हूँ, यदि दुगुना हिस्सा मिल जाए तो एक बार मे ही सारा कर्जा चुक जायेगा। अत उसने कहा कि मै पहले प्रवेश करूगा। वे सब एक हवेली के पिछले भाग मे पहुचे। पहले पटेल उस हवेली के पिछवाडे से खड्डा करके उसमे घुसकर धीरे

से हवेली के भीतर आ गया। पर भीतर जाते ही देखा तो विचार करने लगा कि यह तो मेरे सेठ की हवेली है, जो कि मेरे उपकारी हैं। इस घर का दाना पानी अभी भी मेरे पेट मे है। अत चाहे मेरे प्राण जाय तो जाय पर इस सेठ की सम्पत्ति नही जाने दूँगा। जब अन्य चोरो ने पूछा कि क्यो भाई ? क्या बात है ? इतनी देर कैसे लगा दी ? तो उसने कहा कि नही-नही मैं यहाँ चोरी नही करने दूँगा। यह तो मेरे सेठ की हवेली है। सभी चोर हसने लगे कि चोरी करने निकला है और कहता है कि यह मेरा सेठ है। उन्होने कहा कि चलो हटो, हमे तो चोरी करने दो। बडे सेठ की हवेली है, आज खूब माल हाथ लगेगा। पर उस पटेल ने हल्ला कर दिया, जिससे वे २९ चोर तो भाग गये, अकेला पटेल ही पकडा गया। पहरेदार उसे पकडकर ले गये। प्रात जब उसे सेठ के सामने उपस्थित किया गया तो उसे देखते ही सेठ बोला—अरे रामा पटेल। तुम यहाँ ? तो उसने कहा हाँ सेठ साहब, आपका कर्जा चुकाने के लिए ही मैंने यह मार्ग अपनाया था। सोचा था कि यह पाप करके मै उसका सच्चे हृदय से प्रायश्चित कर लूगा। अत २९ चोरो के साथ मैं चोरी करने निकल पडा। पर जब देखा कि यह आपकी हवेली है, तो आपके उपकार के बोझ से दबे हुए मैंने चोरी करने से साफ इन्कार कर दिया और हल्ला कर दिया। जिससे वे २९ चोर तो भाग गये और मैं अकेला पकडा गया। यह सारी बात सुनकर सेठ विचार करने लगा कि यदि वे २९ चोर जिस स्वभाव के थे, उस स्वभाव का यह भी होता तो क्या मेरा धन सुरक्षित रहता ? इस पटेल ने सच्ची वफादारी निभायी है। अत. उस सेठ ने उसे स्वय अपने हाथो से बन्धन मुक्त करके कर्जे से मुक्त कर दिया। यह तो एक रूपक है, आपको जो शरीर वैभवादि सम्पत्ति मिली है, वह पुण्यवानी के योग से मिली है।

"बहु पुण्य केरा पुंज थी शुभ देह मानव को मल्यो।"

बधुओ, जरा विचार कीजिये कि दिन-रात के २४ घण्टे है और २४ घण्टे के कितने मुहूर्त्त ३०। यदि उसमे से एक मुहूर्त्त ध्यान साधना मे लगाये तो आपकी सपूर्ण सम्पत्ति की सुरक्षा हो सकती है। यह जीवन की आध्यात्मिक सम्पत्ति को बढाने के लिए घडी भर की ध्यान साधना मे अन्तर ज्योति को प्राप्त कर ध्यान योग पद्धति को जीवन मे उतार कर आठ प्रवचन माता की सम्यक् आराधना करने का भव्य प्रसग है। जिस प्रकार एक पटेल ने चोरो का विरोध किया तो सेठ की सारी सम्पत्ति सुरक्षित रह गई। इसी प्रकार २९ मुहूर्त्त व्यर्थ जा रहे हैं, पर यदि एक भी मुहूर्त्त आपने सार्थक कर लिया तो वह मुहूर्त्त पटेल की तरह आत्मा रूपी सम्पत्ति की रक्षा कर सकेगा। अत विचार करे कि अधिक से अधिक समय सार्थक बनाते हुए जोवन को सही रूप मे जीने की कला सीखे।

यदि एक मुहूर्त्त भी समीक्षण ध्यान साधना मे सही रूप मे लगाया गया तो वह आपके सारे जीवन को सुख की सुरभि से सुरभित कर देगा।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

९-८-८५
शुक्रवार

४१ | योग का सही प्रयोग

मनुष्य की लम्बे काल से जो अभिलाषा चल रही है, वह यह है कि मुझे तृप्ति मिले, पर जिन-जिन पदार्थो का वह प्रयोग कर रहा है, उन-उन पदार्थो से सतुष्टि नही हो पा रही है । क्योकि वे तृप्ति देने वाले सही पदार्थ नही है । जैसे प्यासा मनुष्य कोई भी द्रव पदार्थ देखता है तो पानी की तरह पीने की चेष्टा करता है और वह पीता भी जरूर है, पर तृप्ति नही होती, वैसे ही चैतन्य देव आत्मा इस लम्बे चौडे विराट् ससार मे परिभ्रमण करती हुई कई वक्त मनुष्य जन्म भी प्राप्त किया और मनुष्य जीवन मे आने के बाद मन की गति भी प्राप्त हुई । ५ इन्द्रिय और मन की प्राप्ति हो जाने पर भी वह तृप्त नही हो रहा है । वह सोचता है कि मैं प्यासा हूँ इसको बुझाने के लिए मै कई वस्तुएँ काम मे ले रहा हूँ, ताकि मुझे सतुष्टि मिले । अमुक व्यापार करूँ जिससे इतना धन मिले ऐसी कल्पना भी करता है और उसके पीछे दौडता भी है । पर उसे सतुष्टि नही मिलती, कभी सोचता है ५ इन्द्रिय के विषय मे अधिक रस लू, जिससे मुझे शाति मिले, वहाँ भी वह विफल हो जाता है । जैसे आग धधक रही है, तब कोई यह सोचे कि यह भूखी है, इसे खाना दिया जाय तो उसका खाना सूखी घास लकडी घासलेट या घी है, ये उसे दे दिये जाये तो आग की तृप्ति होगी या और अधिक भडकेगी ? जैसे इन पदार्थो को देने पर अग्नि शान्त नही होती है, अपितु अधिकाधिक भडकती है । वैसे ही मानव मन ५ इन्द्रियो के विषयो मे डूबकर पिपासा मिटाना चाहता है पर उसकी तृष्णा, वासना बढती ही जाती है । वस्तुत इसको ऐसा कोई रस नही मिल रहा है, जिससे यह सतुष्टि प्राप्त करे । इस मन की तृप्ति का जो हेतु है, वह जब तक नही मिलता है, तब तक मन भटकता रहता है । एकाग्र नही रहता ।

मन की चचलता को रोकने के लिए, स्थिर करने के लिये अतिम तीर्थंकर प्रभु महावीर ने कितनी गहरी बात योग साधना की पद्धति से बतायी है । १२ अगो का सार रूप ५ समिति, ३ गुप्ति है । मेरे भाई और बहिन इसे थोकडे के रूप मे अच्छी तरह से रट लेते हैं और पढकर विस्तार से वर्णन भी कर सकते है । पर सोच नही पाते है कि ५ समिति, तीन गुप्ति मे हमारी अन्तर की तृप्ति की योग साधना कहाँ रही हुई है ?

कइयो का तो यह अभ्यास ही बन गया है कि केवल मूल पाठ का

स्वाध्याय कठस्थ कर लेते है। और उनकी गाथाओं को भी सुना देते है, केवल इस तोता रटन की तरह रट लेने मे ही सार्थकता नही, परन्तु जब तक इसका रस आपके अन्तर मे नही आयेगा, तब तक सारा जीवन इसके आवर्तन और प्रवर्तन मे ही चला जायेगा और इस तरह के प्रयास से स्वय की पूर्ण तृप्ति नहीं होगी। तृप्ति के लिए जिज्ञासा होनी चाहिए और वह भी आन्तरिक हो।

जो यह मान लेता हैं कि—मैंने ५-४ व्यक्तियो को निरुत्तर कर दिया। अमुक-अमुक कार्य कर लिया तो बस अब मैं पूर्ण हो गया, मुझे अब अन्य किसी की भी आवश्यकता नही है। ऐसा मनुष्य कभी ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा नही कर सकता। तथा वीतराग देव के वचनो का सार रूप रस पी नहीं सकता।

मै कल कुछ बात रख गया था योग साधना की दृष्टि से। भगवान् ने जहाँ १२ अगो का सार इस योग साधना मे बताया और योग साधना की व्याख्या भी बडे सुन्दर शब्दो मे की है। योग का अर्थ जोडना और समाधि का अर्थ साध्य को प्राप्त करना है। हरिभद्र सूरि ने भी जहाँ दृष्टियो का प्रतिपादन किया है वहाँ मन, वचन, काया की क्रियाओ को योग के उद्देश्य के साथ जोड देना बताया है। तीर्थकर देवो ने बिना पूछे ही आपको योग साधना का अवलबन बता दिया है कि—

> "तत्थ आलबणं णाण दसण चरण तहा।
> काले य दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पहवज्जिए॥"

तुम्हारी योग साधना का अवलबन ज्ञान, दर्शन, चारित्र है। इसी मे तू अपने योगो को जोड। योग की एकाग्रता के साथ शरीर और वाणी की एकाग्रता तो जुडी हुई है पर वचन और शरीर को चचल बनाने वाला मन है। सबसे मुख्य प्रश्न यही है, इसीलिए इस मन की वृत्ति को समझे। नियत समय पर बैठकर योग की साधना करे। कल मैं नियत समय के विषय मे कुछ सकेत कर गया था। मै अनुभव करता हूँ कि योग साधना की पद्धति को सुनने वाले साधक ही यहाँ आये है। ऐसी बात नही है। आत्म शुद्धि के प्रयत्न की भावना से ही आप सभव है, सुनने आते होगे। बधुओ! जहाँ जिन श्रोता गणो को यह ख्याल नही कि मैं आत्मिक शुद्धि कैसे करू, वे भले ही ऊपरी कथा आदि को चाहे पर आत्म जिज्ञासुओ को चाहिए कि वे अन्तर के मन को सशोधित करे, तभी आत्मा की वास्तविक शुद्धि होगी। पर्युषण और सवत्सरी आकर चले जाएँगे। प्रतिक्रमण हो जायेगा। खमत-खामणा भी आप अवश्य कर लेंगे, पर यह चिन्तन नहीवत् होगा कि १२ महिनो मे मेरी आत्म-शुद्धि नही हुई, अन्तर की सतुष्टि नही आयी, जो शुद्धि का काम करना चाहिए वह नही कर पाया।

तो इन आठ दिवसो मे अपने योगो को सशोधित कर लूँ, ऐसे सोचने वाले वहुत कम मिलते है।

एक भाई के पास कई दिनो से वस्त्र मैले हो गये। विचार किया कि एक ही साथ इन कपडो को धो डालूँ। बडी सन्दूक मे सारे कपडे भर के उसमे ताला लगा दिया। फिर सोचा कपडे ज्यादा है तो साबुन की बट्टियाँ भी वहुत लगेगी। बाजार गया और ले आया और तालाब पर पहुँच कर, सारी बट्टियाँ पेटी पर रगड-रगड कर खत्म कर दी और सतुष्टि प्राप्त कर ली कि मैने अपने सारे कपडे साफ कर लिये हैं। पर वस्तुत उसका परिश्रम निरर्थक गया है। जरा चिन्तन करे कि कही आप भी ऐसा पुरुषार्थ तो नही कर रहे है। अन्तर की सफाई किये बिना बाहरी सफाई निरर्थक होगी। सवत्सरी पर्व आ रहा है। उस रोज भीतर के मैले कपडे जो विचारो के, राग-द्वेष के उन्हे निकाल-निकाल कर क्षमा साधना से धोते हुए मन को सशोधित करे ताकि वचन और काय भी सशोधित होगी। मन की तिजोरी को साफ किये बिना साबुन की ऊपरी रगड की तरह बाहरी रूप से सामायिक, प्रतिक्रमण, तप आदि करने से आत्मिक शुद्धि नही होगी। यही नही प्रतिदिन भी आप नियत समय पर बैठकर के भगवान् द्वारा बतायी गयी योग साधना के माध्यम से अपने आप के अन्दर मे प्रवेश करने का प्रयास करें। हमारे योग का लक्ष्य क्या है ? पद्धति क्या है ? हमारे ज्ञान दर्शन, चारित्र पर जो मल-आवरण आ गया है, उसे हटाना है या बढाना है ?, इसका विचार करे।

एक रूपक है—चार भाइयो मे से दो भाइयो ने गलती की। जिससे कपडे पर चिकना सा धब्बा लग गया। अन्य दोनो भाई विचार करने लगे कि इन लोगो ने प्रमाद वश ऐसा किया है, अब चीटिया आएगी और इन्हे काट खाएगी। उन्होने समझाया कि प्रमाद मत करो। ये धब्बे लग गये हैं तो उन्हे धोकर साफ कर लो। पर वे दोनो कहते है कि एक दो धब्बे लग गये है तो इससे क्या फर्क पडता है। पर वे दो के चार और होते-होते सारे कपडे उनसे भर गये, तेल के चिकनास से युक्त कपडो मे दाग लग जाने से वे बहुत गदे हो गये एव साफ होने योग्य न रहे। इसी प्रकार अन्य दो भाइयो के कपडो पर भी इसी तरह चिकनास युक्त धव्वे लग गये, पर उन्होने प्रमाद नही किया, सुज्ञजनो की सलाह के अनुसार हाथो-हाथ कपडे धो डाले। जिससे वह चिकनास कपडो मे जमा नही और कपडे बिल्कुल स्वच्छ हो गये। ठीक इसी प्रकार जो व्यक्ति नियत समय पर वैठकर योग साधना से जीवन को धोने का प्रयास नही करता है तो उसके जीवन मे विचारो की गदगी वढती जाती है, किन्तु जो नियत समय पर योग साधना से आत्म शुद्धि कर लेता है तो उसकी अन्तरग की सफाई हो जाती है। जहाँ दर्द है वही दवा लगाने से लाभ हो सकता है, दर्द तो है सिर मे और दवा हो रही है पेट की, तो यह दर्द कभी भी ठीक नही हो सकता।

जो यह वीतराग देव की योग साधना है, इसमे आप नियत समय पर बैठने की कोशिश करे तथा बारीकी से इसका अध्ययन करे। जिस रोज आप प्रतिक्रमण करे उस रोज तो विशेष रूप से मन पर लगे पापो का शुद्धिकरण करने का प्रयास करे। मन चचल है, इसीलिए पाप वध विशेष होता है, अत सोचना है कि मन-चचल क्यो है ? यह योग साधना के माध्यम से ज्ञात किया जाता है। योग पद्धति मे जाने के बाद योग की विक्षिप्तता आ गयी, तो अनर्थ हो जाएगा। अरणक मुनि की बात सुनी होगी। पिता के साथ दीक्षित होकर मुनि बने और ज्ञान ध्यान का अभ्यास करने लगे, उनके पिता ने कहा—तुम पूरा समय ज्ञान-ध्यान करो, सारा कार्य मैं करूँगा। पर योग साधना की पद्धति पाँच समिति तीन गुप्ति का प्रयोगात्मक रूप नही सिखाया—कहा कि जब तुम बडे हो जाओगे तो तुम्हे साधना की यह पद्धति सिखाऊँगा। इस तरह सुकुमार अवस्था मे रखते हुए कुछ भी कार्य नही करने देते, दिन भर ज्ञान ध्यान सिखाते। साधु जीवन मे जहाँ गोचरी पानी आदि का प्रसग आता है तो एक साधु गोचरी लाता है, तो दूसरा साधु धोवन पानी आदि। इस तरह अप्रमत्तावस्था मे रहकर सभी मुनि मिलजुल कर कार्य करते है। ये कार्य भी साधु जीवन के आवश्यक अग है। पर मुनि अरणक के प्रति उनके पिता-मुनि का वात्सल्य प्रेम था। वे उन्हे खूब ज्ञानाभ्यास कराना चाहते थे। वे सोचते थे कि अभी से ही साधु जीवन की चर्या के कार्यो मे लगा दिया गया तो इसे अध्ययन मे चाहिए, उतना समय नही मिल पाएगा। और प्रगति मे बाधा आएगी। ऐसा सोचकर वे स्वय तो अपना कार्य करते ही थे, साथ ही मुनि अरणक के हिस्से का कार्य भी स्वय ही करते थे। पर उसकी सुकुमार अवस्था को देखते हुए उन्होने उसे प्रयोगात्मक रूप से समिति गुप्ति आदि का ज्ञान नही कराया, जो कि जीवन व्यवहार के लिए अत्यन्त आवश्यक है। गृहस्थाश्रम मे पुत्र रहता है, उसे आप शाला मे पढने के लिए भेजते है, वह सीखता है। घर आने पर आप उसे पूछते हैं कि ५-५ कितने होते है तो वह कहता है कि मुझे नही पता। वह कहता है कि शाला मे पढता हूँ और वहाँ ५-५ दस होते है। पर उसे यह नही ज्ञात कि जो प्रयोग वह शाला मे कर रहा है उसका उपयोग यहाँ भी करना है। यही है योग साधना का अभाव। मुनि अरणक के पिता-मुनि काल कर गये। अब उन्हे सारा साधु जीवन का कार्य स्वय ही करना था। योग साधना से अनभिज्ञ अरणक मुनि को अन्य गुरु भ्राताओ ने समझाया कि तुम भिक्षा के लिए जाओ तो तुम्हारा योग का लक्ष्य मस्तिष्क मे होना चाहिए। दृष्टि भूमि पर होनी चाहिए और भिक्षा की विधि को ख्याल मे रखते हुए किसी भी घर मे जाओ, वहाँ विवेक पूर्वक अपनी दृष्टि से गृहस्थ की सामग्री देखो और विचार करो कि यह सामग्री मेरे योग मे दोष लगाने वाली तो नही है। उसके बाद सब कुछ देखकर निर्दोष आहार ग्रहण करो और पानी लेने जाओ तो देखकर पक्का पानी ही लाना। मुनि अरणक विचार करने लगे—पिताजी तो

स्वर्गवासी हो गये, उन्होने मुझे योग साधना की यह प्रक्रिया बतायी नही, पर अब तो जाना ही पडेगा । गोचरी के लिए निकले, पर सूर्य के प्रचड ताप से सडक जल रही थी, सुकुमार थे मुनि ! उनके पाँव जलने लगे, पास ही एक बडी हवेली की छाया थी । वे उस छाया मे जाकर खडे हो गये । उस हवेली मे एक महिला थी । उसने ऊपर से देखा । उसकी दृष्टि योग की नही भोग की थी । विचारने लगी कि अहो ! इतनी तरुण वय मे सुकुमारता मे यह कठोर सयम साधना । ये गर्मी से बेचैन हो रहे हैं । अत इन्हे ऊपर लेकर जाऊँ, यह सोच वह नीचे उतरी और मुनि को ऊपर पधारने की प्रार्थना की । अरणक मुनि ने शास्त्र पढे थे । अध्ययन भी खूब किया था, पर अध्ययन के साथ योग साधना से सम्बन्ध नही जोडा । वे घबरा रहे थे, अत उस सुन्दरी ने आमत्रण दिया और मुनि अरणक गर्मी से बेहाल बने और उसके पीछे-पीछे भवन मे जाकर ऊपर चढने लगे । बन्धुओ, योग के आन्तरिक स्वरूप को जो समझ सकता है, वही समझ सफल हो सकती है, पर मुनि अरणक योग साधना के प्रयोगात्मक रूप को समझ नही सके, इसी कारण अकेली बहिन के पीछे-पीछे चल दिये । वह बहिन सोचने लगी कि यह मुनि योग का रस नही जानते, इसलिए मेरे साथ ऊपर आ गये है, अत यह कच्चे मुनि है, मेरे वश मे आ सकते है । उसने अच्छा सरस भोजन उन्हे बहराया और अरणक मुनि से कहने लगी—आप कष्ट पा रहे हैं, यह गोचरी लेकर धर्म स्थानक मे किस तरह जाएँगे, यही बैठकर भोजन कर लें । जब सूर्य का तेज कम पड जाएगा, मौसम मे ठडक आ जाएगी तब आप खुशी-खुशी उपाश्रय पधार जाना । मुनि अरणक कुछ सोच नही पाये कि क्या करना और क्या नही करना । उन्होने पहली गलती तो यह की कि अकेली बाई के साथ मकान मे गये । दूसरी गलती यह की कि गृहस्थी के घर बैठकर ही भोजन कर लिया । बन्धुओ ! भले ही मुनि अरणक ने शास्त्राभ्यास किया था । पर ज्ञानीजनो का कथन यह है कि ज्ञान के साथ जब तक क्रिया नही होगी, आचरण नही होगा, तब तक योग साधना की, चारित्र आराधना की सही पद्धति सध नही सकेगी ।

आज आप जो सत-सती को वन्दनीय पूजनीय मानते हैं, ये महावीर की योग साधना को लेकर चल रहे है, पर आप विचार करे कि वे जो जमाने के पीछे वर्तमान की सुख सुविधाओ मे बह रहे हैं और चाहते है कि यह चाहिये, हमारे वह चाहिये तो समझना चाहिये कि वे सही माने मे साधु नही है । वे भगवान् की योग साधना की पद्धति से बहुत दूर चल रहे है । आप कई भाई विचार करते है कि साधु को आधुनिक होना चाहिए, पर सोचे कि आप क्या कर रहे है । क्या श्रमण वर्ग को अपनी अवस्था मे ले आयेंगे ? क्या श्रावक और साधु दोनो की एक ही स्टेज रह जायेगी ? फिर साधु को वन्दनीय पूजनीय मानने से क्या लाभ ? अरणक मुनि साधना की योग पद्धति की मर्यादा को

तोडकर वहाँ भोजन करने लगे। फिर उनकी साधना भ्रष्ट हो गयी। वे वही पर रह गये। यह घटना उसकी माँ ने सुनी जो कि दीक्षित थी। बडी-बडी आशा लेकर चल रही थी कि मेरे पति के पास मेरा पुत्र भी दीक्षित हुआ है। मेरे पति ने उसे जी जान से ज्ञान ध्यान करवाया है, आगे जाकर खूब नाम रोशन करेगा, शुद्ध अन्तरकरण द्वारा आत्म ज्योति जगाएगा। पर जब यह सुना कि वह कही चला गया, लौटकर वापिस नही आया तो उसके मन मे विक्षेप आ गया। धर्म स्थानक से निकल कर जोर-जोर से आवाज देने लगी। अरणक मुनि, अरणक मुनि। वह विक्षिप्त हो गयी, उसकी मानसिक दशा खराब हो गई। योग पद्धति सारी भ्रष्ट हो गयी, खाने का ध्यान नही, पीने का ध्यान नही रहा, इस प्रकार घूमते-घूमते एक दिन ये शब्द अरणक के कान मे पडे तो वह सोचने लगा अहो! ये शब्द तो मेरी माता के है। उसे सब कुछ स्मरण हो आया। मन पश्चाताप मे डूब गया। अहो कहाँ मेरी वह सयमी चर्या और कहाँ मैं यहाँ आकर फस गया, धिक्कार है मुझे। मैं पतित हो गया अपने महान् लक्ष्य से। काश, मेरे मुनि पिता मुझे बचपन मे ही समझा देते, अध्ययन के साथ आचार पालन की पद्धति सिखा देते, योग साधना की सुन्दर रीति समझा देते तो आज मेरी यह स्थिति नही होती। मै यो कायर न बनता। सयम से भ्रष्ट नही होता ओह! यह मैंने क्या किया? इस प्रकार प्रायश्चित का पावन जल उसके मनोमन्दिर का प्रक्षालन करने लगा। अरणक नीचे उतर आया और बोला—माँ, जिस अरणक को तुम पुकार रही हो तुम्हारा वही अरणक मैं हूँ। माँ ने कहाँ अरे! तुम्हारी क्या दशा हो गयी। तू मेरी गोद को उजालने वाला था, पर तूने तो सयम की इस श्वेत चादर पर काला धब्बा लगा दिया। मेरे उज्ज्वल कुल को कलकित कर दिया, पर बेटा दोष तेरा नही। तेरे पिता ने तेरा जीवन उच्च बनाने के लिए सिर्फ ज्ञानाभ्यास करवाया, इस कारण से योग साधना की बारीकियो का तुम अध्ययन न कर सके। अरणक पश्चाताप पूर्णक स्वर मे अपनी माँ से बोला—अब मैं क्या करूँ? तो माँ ने कहा कि इसका एकमात्र उपाय यही है कि तू पडित मरण स्वीकार करो, योग साधना को नष्ट करने की अपेक्षा जीवन का विसर्जन करना ही श्रेष्ठ है। दशवैकालिक सूत्र मे आया है—

"धिरत्थु तेऽजसोकामी जो त जीविय कारणा।
वत इच्छसि भावेउ सेय ते मरण भवे॥"

रथनेमि जब सयम से विचलित होकर भोग की कामना करने लगता है तो सती राजमति उसे कहती है कि वमन किये हुए भोगो को भोगने की अपेक्षा तो मर जाना ही श्रेयस्कर है। अत अरणक की माता कहने लगी—हे पुत्र तू पुनः सयम मे स्थिर होकर, कठोर साधना से अपने शरीर का त्याग कर दो, तुम्हारे लिए यही प्रायश्चित है।

बन्धुओ ! मै आपको एक ही बात बता रहूँ कि जो योग साधना अच्छी तरह से नही साध सकता वह अपनी स्थिति से गिर जाता है तो आपका कर्तव्य है कि उन्हे प्रतिबोध देकर पुन साधना मे स्थिर करे। आप स्वय भी विचार करे कि हमारा जीवन क्या है ? इसकी साधना क्या है ? सत-सतियो के पास जाएँ और साधना की बारीकियो को सावधानी से, गहराई से समझे। उन्हे जीवन मे थोडा-थोडा भी करके उतारे पर उतारे अवश्य ही।

आप विचार करे कि अन्तर की शुद्धि की बाते, आत्मा को पवित्र बनाने की आध्यात्मिक बाते सत-सतियो के पास ही मिलेगी, अन्य वस्तुएँ तो कही भी मिल सकती है पर आध्यात्मिक उत्थान की बाते तो आध्यात्मिक मन्दिर मे ही मिलेगी। अत आप यहाँ नियत समय पर आकर साधना की पद्धति को स्वीकार करे। पर्युषण के दिवस आ रहे है। आत्मा के मैल को किस तरह साफ करना है। पेटी बन्द करके उसे ऊपर से धोना है या वस्त्र अलग-अलग करके उन्हे शुद्ध रीति से धोना है, विचार करले। साधना की सही पद्धति को जीवन मे उतारने का प्रयास करे। सहजिक योग साधना हर तरह से जीवन मे रम जाए—ऐसा प्रयास लेकर प्रयत्नशील रहेगे तो एक दिन योग साधना के माध्यम से आप उस उच्च दशा को प्राप्त कर सकेगे।

मोटा उपाश्रय, १०—८—८५
घाटकोपर, बम्बई शनिवार

□ □ □

४२ साइक और मुनि धर्म

वर्तमान समय, मनुष्य जीवन के लिए स्वर्णिम अवसर है। यह मनुष्य जीवन इस सृष्टि का विशिष्ट जीवन है। सारी ही सृष्टि के मनुष्यो को तथा अन्य सभी प्राणियो को सही दृष्टि से देखने की कोशिश करे तो आपको लगेगा कि सारी सृष्टि मे मनुष्य जीवन ही एक ऐसा श्रेष्ठ जीवन है कि जिससे इच्छित फल की प्राप्ति हो सकती है। मनोवाछित पूर्ण किया जा सकता है। मानव जीवन एक चौराहा है। मनुष्य जीवन से यह आत्मा, चैतन्य देव जहाँ भी जाना चाहे जा सकता है। जैसा भी बनना चाहे बन सकता है। इस जीवन के लिये वीतराग देव ने महत्त्वपूर्ण घोषणा की कि यह जीवन सर्वतत्र स्वतत्र है। इस जीवन मे किसी की परतत्रता का प्रसग नही आता। शर्त यह है कि इस शरीर को धारण करने वाला चैतन्य देव स्वय के स्वरूप को समझ ले। अपने स्वरूप को समझने के लिए उसे विशिष्ट महापुरुषो के सदेश को समझने की आवश्यकता है जिन्होने अपने त्रिकाल अबाधित आत्मिक स्वरूप को प्रकट कर लिया, राग-द्वेष, काम-क्रोध की ज्वालाएँ नष्ट कर दी, विकारो की परछाइयाँ, जड तत्त्वो की बाधाएँ जिनके जीवन मे नही रही है, ऐसी विशिष्ट शक्ति सम्पन्न आत्मा जो है उन्हे आप वीतराग, परमात्मा या परिपूर्ण शुद्ध चैतन्य देव के स्वरूप से सबोधित कर सकते है। उन्होने जो दिव्य सदेश दिया, वह मुख्य रूप से मानव के लिये है और गौण रूप से सभी के लिये है क्योकि मानव वीतराग देव की आज्ञा मे समर्पित होकर चलता है और उस आज्ञा को अपने जीवन मे स्थान दे सकता है। आत्मा मे जब समर्पणा होती है तो परमात्मा का शुद्ध स्वरूप स्वय मे दिखाई देने लगता है। उस स्वरूप को साधने के लिये वीतराग देव को जो साधना है, उस पर आगे बढा जा सकता है और वह साधना साहसिक योग की साधना है। मैं कुछ दिनो से योग साधना की बात कह रहा हूँ, वही साधना का विषय आगे लेना है। वीतराग देव ने बताया कि ध्यान, योग-साधना यह आत्मा के नवनीत पाने की साधना है। फूलो के मकरन्द की साधना है। वृक्षो का राजा आम वृक्ष है, उसके सार रूप फल की साधना है। यह विषय प्रत्येक सुज्ञजनो को समझना है। आप जानते है जहाँ आम का वृक्ष सुरक्षित है, किसी भी प्रकार का जन्तु उसमे नही लगा है, वही वृक्ष आम्र फल दे सकता है। लेकिन कोई पुरुष यह विचारे कि आम्र वृक्षो की मुझे आवश्यकता नही, मुझे तो सिर्फ फल ही चाहिए तो क्या वह पुरुष आम्र वृक्ष की उपेक्षा करके आम्र फल पा सकता है? बुद्धि-

मान व्यक्ति ऐसा नहीं सोच सकता। पुष्प रस का इच्छुक सोचे कि मैं फूल की अवगणना करके उसका रस ले लूं, तो वह रस नहीं पा सकता है अत फलित होता है कि जिस सार तत्त्व की आवश्यकता है, उस सार तत्त्व का जिसके साथ अविनाभावी संबंध है, ऐसे तत्त्व को भी महत्त्व देकर चलता है तो ही वह सार पा सकता है।

परमात्मा रूप को अभिव्यक्ति इस मनुष्य जीवन की अंतिम साधना है। एक जीवन मे भी तीर्थंकर देव की आज्ञा की आराधना सही रूप मे कर लेते हैं, तो अंतिम साधना तक पहुँच सकते है। अंतिम साधना का सार है—समाधि। आपकी धर्म साधना तभी फलवती होगी, जब कि ध्यान साधना का क्रम उसके साथ संयुक्त होगा। वीतराग भगवन्तो ने इस ध्यान को साहजिक योग साधना की दृष्टि से ५ महाव्रत मूलगुण और १० पच्चक्खाण उत्तरगुण बताया है। पतजलि योग दर्शन मे यम और नियमादि बतलाये है। पतजलि दर्शन बाद का है लेकिन अनन्त तीर्थंकरो ने जो सार बताया है, वह यह है कि अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इसी का छोटा रूप श्रावक का अणुव्रत है। ये दोनो ही वृक्ष के रूप हैं। इसको चारित्र कह सकते है, पर यह चारित्र सार्थक कब होगा? जब ध्यान का मकरन्द जीवन मे आयेगा। ५ महाव्रत रूप आम्र वृक्ष और इसका फल साधना के रूप में ले सकते हैं। श्रावक के (५ अणुव्रत, ३ गुण व्रत और ४ शिक्षा व्रत) १२ व्रतो की भावना भी इस चारित्र के साथ योग का रस देने वाली है। पर यदि कोई संत चाहे कि मुझे महाव्रत रूप आम्र वृक्ष की आवश्यकता नहीं अतः इन्हे छोड़ दूँ और ध्यान का मकरद रूप फल ले लूँ तो क्या वह ले सकता है? ध्यान की साधना महाव्रत के साथ की गई तो ही फलवती होगी, अन्यथा मकरद की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती।

पर्युषण की समीपता के साथ आज छुट्टी का दिन भी आ गया है, सात दिन उसकी उपासना के हैं। उसमे क्या करना चाहिये, इन सात दिनो मे आठवें दिन की साधना की परिपूर्ण तैयारी करले, पर तैयारी क्या है? भगवान् की आज्ञा की आराधना १२ महिने मे जितनी हुई उतनी तो हुई, पर ये आठ दिन उनकी आज्ञा मे परिपूर्ण समर्पित होने के है। परिपूर्ण समर्पित होने का तात्पर्य—आठ दिनो मे अधिक से अधिक अहिंसा, सत्य, आचौर्यादि व्रतो को धारण कर अहिंसक बनकर शक्ति अनुसार १८ पापो से निवृत्त होकर चलने का प्रयास करे। क्योंकि भगवान् भी परिपूर्ण रूप से पापो का त्याग करके ५ महाव्रतो के साथ पूर्ण अहिंसक बने थे। इसी वीतराग देव की साधना के लिये भव्यजनो को आठ दिन मे वैसी ही साधना करके दिखा देना चाहिये। यदि वीतराग वाणी की आराधना नहीं की गई तो सम्यक्त्व भी सुरक्षित रहेगी या नहीं? इसका गभीरता से चिंतन करना है।

४२ | साइक और मुनि धर्म

वर्तमान समय, मनुष्य जीवन के लिए स्वर्णिम अवसर है। यह मनुष्य जीवन इस सृष्टि का विशिष्ट जीवन है। सारी ही सृष्टि के मनुष्यो को तथा अन्य सभी प्राणियो को सही दृष्टि से देखने की कोशिश करे तो आपको लगेगा कि सारी सृष्टि मे मनुष्य जीवन ही एक ऐसा श्रेष्ठ जीवन है कि जिससे इच्छित फल की प्राप्ति हो सकती है। मनोवाछित पूर्ण किया जा सकता है। मानव जीवन एक चौराहा है। मनुष्य जीवन से यह आत्मा, चैतन्य देव जहाँ भी जाना चाहे जा सकता है। जैसा भी बनना चाहे बन सकता है। इस जीवन के लिये वीतराग देव ने महत्त्वपूर्ण घोषणा की कि यह जीवन सर्वतत्र स्वतत्र है। इस जीवन मे किसी की परतन्त्रता का प्रसग नही आता। शर्त यह है कि इस शरीर को धारण करने वाला चैतन्य देव स्वय के स्वरूप को समझ ले। अपने स्वरूप को समझने के लिए उसे विशिष्ट महापुरुषो के सदेश को समझने की आवश्यकता है जिन्होने अपने त्रिकाल अबाधित आत्मिक स्वरूप को प्रकट कर लिया, राग-द्वेष, काम-क्रोध की ज्वालाएँ नष्ट कर दी, विकारो की परछाइयाँ, जड तत्त्वो की बाधाएँ जिनके जीवन मे नही रही है, ऐसी विशिष्ट शक्ति सम्पन्न आत्मा जो है उन्हे आप वीतराग, परमात्मा या परिपूर्ण शुद्ध चैतन्य देव के स्वरूप से सबोधित कर सकते है। उन्होने जो दिव्य सदेश दिया, वह मुख्य रूप से मानव के लिये है और गौण रूप से सभी के लिये है क्योकि मानव वीतराग देव की आज्ञा मे समर्पित होकर चलता है और उस आज्ञा को अपने जीवन मे स्थान दे सकता है। आत्मा मे जब समर्पणा होती है तो परमात्मा का शुद्ध स्वरूप स्वय मे दिखाई देने लगता है। उस स्वरूप को साधने के लिये वीतराग देव को जो साधना है, उस पर आगे बढा जा सकता है और वह साधना साहसिक योग की साधना है। मैं कुछ दिनो से योग साधना की बात कह रहा हूँ, वही साधना का विषय आगे लेना है। वीतराग देव ने बताया कि ध्यान, योग-साधना यह आत्मा के नवनीत पाने की साधना है। फूलो के मकरन्द की साधना है। वृक्षो का राजा आम वृक्ष है, उसके सार रूप फल की साधना है। यह विषय प्रत्येक सुज्ञजनो को समझना है। आप जानते है जहाँ आम का वृक्ष सुरक्षित है, किसी भी प्रकार का जन्तु उसमे नही लगा है, वही वृक्ष आम्र फल दे सकता है। लेकिन कोई पुरुष यह विचारे कि आम्र वृक्षो की मुझे आवश्यकता नही, मुझे तो सिर्फ फल ही चाहिए तो क्या वह पुरुष आम्र वृक्ष की उपेक्षा करके आम्र फल पा सकता है? बुद्धि-

मान व्यक्ति ऐसा नही सोच सकता । पुष्प रस का इच्छुक सोचे कि मैं फूल की अवगणना करके उसका रस ले लू, तो वह रस नही पा सकता हे अत फलित होता है कि जिस सार तत्त्व की आवश्यकता है, उस सार तत्त्व का जिसके साथ अविनाभावी सबध है, ऐसे तत्त्व को भी महत्त्व देकर चलता है तो ही वह सार पा सकता है ।

परमात्मा रूप की अभिव्यक्ति इस मनुष्य जीवन की अतिम साधना है । एक जीवन मे भी तीर्थंकर देव की आज्ञा की आराधना सही रूप मे कर लेते हैं, तो अतिम साधना तक पहुँच सकते है । अतिम साधना का सार है—समाधि । आपकी धर्म साधना तभी फलवती होगी, जब कि ध्यान साधना का क्रम उसके साथ सयुक्त होगा । वीतराग भगवन्तो ने इस ध्यान को साहजिक योग साधना की दृष्टि से ५ महाव्रत मूलगुण और १० पच्चक्खाण उत्तरगुण बताया है । पतजलि योग दर्शन मे यम और नियमादि बतलाये हैं । पतजलि दर्शन बाद का है लेकिन अनन्त तीर्थंकरो ने जो सार बताया है, वह यह है कि अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इसी का छोटा रूप श्रावक का अणुव्रत है । ये दोनो ही वृक्ष के रूप है । इसको चारित्र कह सकते है, पर यह चारित्र सार्थक कब होगा ? जब ध्यान का मकरन्द जीवन मे आयेगा । ५ महाव्रत रूप आम्र वृक्ष और इसका फल साधना के रूप मे ले सकते है । श्रावक के (५ अणुव्रत, ३ गुण व्रत और ४ शिक्षा व्रत) १२ व्रतो की भावना भी इस चारित्र के साथ योग का रस देने वाली है । पर यदि कोई सत चाहे कि मुझे महाव्रत रूप आम्र वृक्ष की आवश्यकता नही अत इन्हे छोड दूँ और ध्यान का मकरद रूप फल ले लूँ तो क्या वह ले सकता है ? ध्यान की साधना महाव्रत के साथ की गई तो ही फलवती होगी, अन्यथा मकरद की प्राप्ति कदापि नही हो सकती ।

पर्युषण की समीपता के साथ आज छुट्टी का दिन भी आ गया है, सात दिन उसकी उपासना के है । उसमे क्या करना चाहिये, इन सात दिनो मे आठवे दिन की साधना की परिपूर्ण तैयारी करले, पर तैयारी क्या है ? भगवान् की आज्ञा की आराधना १२ महिने मे जितनी हुई उतनी तो हुई, पर ये आठ दिन उनकी आज्ञा मे परिपूर्ण समर्पित होने के है । परिपूर्ण समर्पित होने का तात्पर्य—आठ दिनो मे अधिक से अधिक अहिंसा, सत्य, आचौर्यादि व्रतो को धारण कर अहिंसक बनकर शक्ति अनुसार १८ पापो से निवृत्त होकर चलने का प्रयास करे । क्योकि भगवान् भी परिपूर्ण रूप से पापो का त्याग करके ५ महाव्रतो के साथ पूर्ण अहिंसक बने थे । इसी वीतराग देव की साधना के लिये भव्यजनो को आठ दिन मे वैसी ही साधना करके दिखा देना चाहिये । यदि वीतराग वाणी की आराधना नही की गई तो सम्यक्त्व भी सुरक्षित रहेगी या नही ? इसका गभीरता से चिंतन करना है ।

आज का युग परिवर्तन का युग है। आपको मालूम होगा एक समय पत्थर का युग था। समय के साथ युग बदलते रहते हैं। भगवान् ऋषभदेव के समय का युग आया, फिर राजाओ का युग आया, गाधी युग आया, जनतत्र का युग आया, ये सारे वाहर के परिवेश का परिवर्तन है। किन्तु आत्मिक मौलिक स्वरूप का परिवर्तन तीन काल से भी नही हो सकता। मूलत आत्मा १८ पापो से रहित है, ऐसा मौलिक स्वरूप है। किन्तु कर्मो से आवद्ध होने से पापो मे रम रही है। आत्मा का इसलिए प्रभु ने सकेत दिया कि चातुर्मास प्रारम्भ के वाद १२० रात्रि मे कम से कम सम्यक्-धर्म की आराधना तो अवश्य करे। भगवान् की आज्ञा का आराधक बने। इन दिनो मे श्रावक व्रत की, सम्यक्त्व की सुरक्षा करोगे तो एक न एक दिन परिपूर्ण समाधि की स्थिति आ सकती है। पर आराधना मे कही कोई भूल तो नही है। आज के इस यात्रिकी युग मे परिवर्तन आ रहा है, जिसमे कइयो की आवाज उठती है कि भगवान् की आज्ञा की आराधना करते हुए, माइक का प्रयोग कर लिया जाय तो क्या हरकत है? मैं उन भाइयो का अनादर नही करता, पर मैं उनसे परामर्श मागता हूँ कि आप इस विषय का थोडा स्वरूप समझ लीजिये और फिर भगवान् की आज्ञा का इसके साथ कितना क्या तालमेल वैठता है? यह विचार कीजिये।

जहाँ तक यत्र का प्रसग है, वह तो निर्जीव है पर उसमे जो प्रवाहित होने वाली विजली है, उसे तीर्थंकरो ने तेऊकाय के रूप मे वताया है, इस विजली को वादर तेउकाय मे गिना है। तथा भगवान् ने प्रत्येक साधक को सकेत दिया है कि षटकायिक जीवो के साथ मैत्री-भाव के साथ मेरी आज्ञा की आराधना करो। भगवान् ने छ काया मे वादर तेउकाय को सबसे वडा भयकर शस्त्र वताया। भगवान् की प्रथम देशना आचाराग सूत्र है, उसमे कहा 'जे दीह लोय सत्थस्स खेयण्णे, से असत्थस्स खेयण्णे। जे असत्थस्स खेयण्णे, ते दीह लोय सत्यस्स खेयण्णे।' इस मूल पाठ मे किसी का वाद-विवाद नही है। इसके मूल अर्थ मे कोई अलग अर्थ नही निकलता है। मूल पाठगत शस्त्र तलवार, वन्दूक, वम्व आदि के लिए नही समझें, आजकल के युग का शस्त्र न समझे। अनन्त तीर्थंकरो ने कहा कि "वादर तेउकाय सारे लोक को भस्मीभूत करने वाली है। अत. वादर तेउकाय दीर्घलोक शस्त्र है। और ये विद्युत सचित्त वादर तेउकाय है। देरावासी समाज के राजेन्द्र सूरिश्वर ने अभिधान राजेन्द्र कोष के ४० पडितो को वैठाकर भगवान के समस्त शास्त्रो को इकट्ठे करके जो ७ भाग वनाये है। ऐसी जानकारी हुई है। उन्हे भी देख सकते है। उसमे वताया कि ये वादर तेउकाय व्यवहार और निश्चय से सचित्त है। व्यवहार से सचित्त, छाणे-कडे के अगारे, लकडी के अगारे इत्यादि। पर भट्टियो के वीच मे जलने वाली सब अग्नि और विद्युत निश्चय से सचित्त है। उत्तराध्ययन सूत्र के ३६वें अध्ययन मे तथा पन्नवणा सूत्र आया है—

"सघरिस समुट्ठिए"

सघर्ष से उत्पन्न होने वाली अग्नि सचित्त है। विजली सघर्प-घर्पण से उत्पन्न होती है। चाहे सूक्ष्म रूप सघर्पण हो या स्थूल, पर होता अवश्य है। इसलिये वह भी सचित्त है, जीवयुक्त है। जितनी भी विजली की अग्नि है, वह सारी बादरी तेउकाय है और वह सारे ससार को भस्मीभूत करने वाली है।

आकाश की विजली जब पृथ्वी पर गिरती है तो पानी के जीव तो मरते ही है पर वनस्पति के जीव भी मरते है। उस विजली के वृक्ष पर गिरने मे वृक्ष समाप्त होता है, वृक्ष के कोपर मे जहाँ पक्षियो के घोसले है, अडे है, उनके वच्चे हैं वे भी सारे के सारे समाप्त हो जाते है। पानी मे जो ७ प्रकार के जीव है, वे सभी मर जाते है। एक ही बिजली के प्रत्यक्ष प्रयोग से आप देख सकते है कि कितनी हिंसा होती है। भगवान् महावीर ने इससे वढकर कोई शस्त्र नही वताया है। इससे वही बच सकता है जो वीतराग देव की आज्ञा का आराधक हो।

जब आगमिक दृष्टिकोण से विद्यु त सचित्त प्रमाणित हो जाती है तव विद्यु त के सचालित सारे साधन भी सचित्त, जीव युक्त ही प्रमाणित होते है। जिनमे बोलने से या उनका प्रयोग करने से अवश्य जीवो की हिंसा होती है। लाउडस्पीकर मे बोलने वाला या विद्यु त के साधनो का उपयोग करने वाला साधक फिर भगवान् की आज्ञा का आराधक कैसे रह सकता है ? व्यावहारिक दृष्टि से भी इस बात को समझले। जैसे कोई एक सूई अन्य के भी लगाता है और अपने स्वय के भी चुभाता है, तब उसे अनुभव होता है कि इससे स्वय को कितना क्या दु ख होता है ? इसी तरह विद्यु त, विजली के करेन्ट को भी अन्य जीवो को लगाते हैं तो स्वय को भी लगाने पर ज्ञान होगा कि जितना दर्द आपको होगा, उतना अन्य आत्मा को भी होगा। बधुओ, चिंतन के क्षणो मे बैठकर इस विषय को गहनता से समझने की आवश्यकता है और आप तटस्थ दृष्टि से चिंतन कर सकते हैं कि ऐसे भयकर शस्त्र का थोडे सुनने के पीछे प्रयोग कैसे कर सकते है ?

हमने प्रतिज्ञा की है कि तीन करण और तीन योग से छ काया के जीवो की हिसा करना नही, करवाना नही और करने वाले की अनुमोदना भी नही करना, मन, वचन, काया से।

यह प्रतिज्ञा व्यक्तिगत नही है, वीतराग देव की वताई हुई प्रतिज्ञा लेकर हम चलते है।

आपकी एक सामायिक भी अहिंसा की साधना है। आप उसमे बैठते हैं, पौपध करते है, उसमे आप भी २ करण ३ योग से प्रतिज्ञा लेकर बैठते हैं पर हमारी सामायिक यावतजीवन की सामायिक है। तीन करण और तीन योग की सामायिक है।

दूसरी बात यह है कि खुले मुह बोलने वाला भगवान् की आज्ञा का आराधक नही होता, क्योकि भगवान् ने भगवती सूत्र मे खुले मुह बोलने वालो की भाषा सावद्य कही है ।

बन्धुओ ! जरा आप विचार करे कि इधर तो मुह पर जीव रक्षा हेतु कपडा लगाया है और उधर षड्कायिक जीवो की विराधना कर लाउडस्पीकर मे बोल रहे है । यह आपकी कैसी साधना है । खून से रजित वस्त्र कभी खून से नही धोया जा सकता । आप ठडे दिमाग से विचार करे कि इस तरह १२ महीनो की हिसा से एक दिन भी आप निवृत्त नही हो सकते । एक तरफ तो कहते है कि हम भगवान् की आज्ञा की परिपालना कर रहे है दूसरी तरफ ऐसी बात लाउडस्पीकर मे बोलकर जीवो की हिसा कर रहे है । बन्धुओ ! ये दिन आत्म शुद्धि के आ रहे है, इन दिनो मे भी जीवन की शुद्धि नही करोगे तो फिर कब करोगे ?

शास्त्रकारो की दृष्टि से आप इस धर्मस्थान मे आकर इन आठ दिनो मे ध्यान-साधना, मौन-साधना करके आत्मा की धुलाई करे । आप प्रश्न करते है कि पब्लिक की अधिकता मे हमे सुनाई न दे तो फिर क्या करे ? पर भगवान् की आज्ञा का उल्लघन करके हिसा करके सुनना भी कोई जरूरी नही है । सुनाई न दे तो ध्यान और मौन की साधना भी कर सकते हैं ।

आजकल राजनैतिक दृष्टि से सरकार कानून बनाती है एसेम्बली मे, पर कितना परिपालन हो रहा है, कानून—कौन परिपालन कर रहा है ? मेरे भाई कहते हैं मा सा समय व परिस्थिति के अनुसार कानून भी तोडे जा रहे हैं । इसलिये आप भी बदलिये । लेकिन बन्धुओ ! यह विचारने का विषय है । जहाँ मौलिक मर्यादा का अनुपालन नही होता है, वहाँ सयमी जीवन टिक नही सकता । साधु ने सयम लिया है, उसका प्रमुख उद्देश्य आपको सुनाने का नही है । उसका सर्व प्रथम मौलिक उद्देश्य आत्म शुद्धि के लिए महाव्रतो की अनुपालना करना है । यदि महाव्रतो को तोडकर सुनाने का काम करता है, तो वह न तो भगवान् की आज्ञा का आराधक रहता है और न ही अपने आपका सही आत्म सशोधन ही कर सकता है । यदि समुद्र जन कल्याण की भावना से अपनी मर्यादा तोड दे, तो कल्याण नही प्रलय हो सकता है वैसे ही साधु भी भले जन कल्याण की भावना से महाव्रतो को तोडता है, तो वह आगमिक दृष्टि से अपना व दूसरो का सरक्षण नही ससार सवर्धन कर रहा है । सुज्ञ सज्जनो । जरा यह गहराई से समझने का विषय है, आप इसे समझने के साथ ही किसी का प्रश्न रह गया हो तो मेरा खुला प्लेटफार्म है । मैं सबको खुली छूट देता हूँ कि आप बाद मे भी समयानुसार प्रश्न कर सकते है । मैं यथोचित समाधान देने के लिए तत्पर हूँ ।

आप लोगो ने सुन तो बहुत कुछ लिया है अब आचरण मे लाने की आवश्यकता है । आप इन सात दिनो मे ध्यान व मौन की साधना का शिक्षण

लीजिये । त्रास दिये जाने वाले प्राणियो से क्षमायाचना कर उन्हे अभयदान दीजिये । व्यक्ति एक तरफ तो सवत्सरी के रोज क्षमायाचना करते है और दूसरी तरफ लाउडस्पीकर मे बोल करके उन्हे करेन्ट लगा रहे है, उन्हे मार रहे है तो यह कैसी आत्म शुद्धि होगी ? यह आत्म शुद्धि का कौनसा रूप होगा ? भगवान् ने तो कहा है कि इस जीवन मे जहाँ वचन का भी करेन्ट नही लगावे वहा पर बिजली का करेन्ट लगाकर धर्म साधना कैसे की जा सकती है । अत इन सावद्य साधनो को छोडकर छोटे से छोटे जीवो को अभयदान देकर क्षमा-याचना का भव्य प्रसग उपस्थित करना चाहिए ।

आप इस महानगरी के प्रबुद्ध नागरिक है, अत· मुझे ज्यादा कहने की आवश्यकता नही रह जाती ।

कल्पना करिये—सोचे, इधर तो प्रतिक्रमण चल रहा हे और उधर अचानक पावर बद हो जाय तो उस समय मे प्रतिक्रमण कराने वाले के मन मे कैसी भावना आयेगी, और समझ लो, लाउडस्पीकर मे व्याख्यान चल रहा है । तो व्याख्यानदाता के मन मे क्या भावना चलेगी कि जल्दी से जल्दी पावर हाउस चले । एक वेश्या भी यही सोचेगी कि पावर हाउस जल्दी से चालू हो जाय, जिससे मेरा भी काम हो । जिस पावर से कतलखाना चल रहा है, वे भी यही सोचेगे कि पावर आ जाय, एक जुआरी भी उक्त प्रकार का ही विचार करेगा, तो अब बोलिये इस पावर हाउस के आने की जुदी-जुदी कल्पना करने वाले कितने भागीदार होगे ? क्या वे इस महापाप के भागीदार नही होगे ?

भगवान् ने जीव वधादि के अनुमोदन मे भी पाप माना है तब पावर को जल्दी से जल्दी आने की भावना रूप अनुमोदन से होने वाले जीवो की हिंसा आदि अनेक पापो के भागीदार भी बनेंगे । अत इस प्रकार के महापाप से कम से कम धर्म कार्यों मे तो बचने का प्रयास करना चाहिए ।

पर्युषण अथवा संवत्सरी के प्रसग से जहाँ छोटे से छोटे जीवो को भी अभयदान देने की स्थिति उपस्थित करनी है । पर जहाँ इस महापाप की सस्था का अनुमोदन किया जाय तो कैसी क्या स्थिति बनेगी ?

ब्यावर का प्रसग है । मेरे सामने ही जो कान्फ्रेंस के अध्यक्ष थे उनकी उपस्थिति मे डॉ डी एस कोठारी जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक हैं उनसे प्रश्न किया कि डाक्टर साहब ! बिजली सजीव है या निर्जीव । तब उन्होने कहा—हमारा विज्ञान निर्जीव-सजीव की परिभाषा से नही सोचता है पर आप छाणा-कोयला की आग को, आकाश की बिजली एव भट्टी की आग को सचित्त मानते हो तो बिजली निश्चित सचित्त है अत वैज्ञानिक दृष्टि से भी विद्युत मे सजीवता स्पष्ट हो जाती है ।

डाक्टर साहब ने यह भी साफ कहा कि सचित्त अग्नि के अचित्त की बात तो है ही, पर लाउडस्पीकर लगाकर साधु के नया परिग्रह नही लगाना चाहिए। क्योकि वे इसके अधीन हो गये, तो फिर इसके बिना वोल ही नही सकेंगे— टाइम्स आफ इण्डिया मे एक अजैन लेखक ने ध्वनियो की विवेचना करते हुए कहा कि धर्म साधना का क्षेत्र धर्म स्थान मे तो इन लाउडस्पीकर जैसी चीजो की आवाज कतई नही होनी चाहिए। देरावासी अनुभवी आचार्यो ने भी इसे सचित्त अग्नि बताई है। मेरे कुछ भाई लोग सोचते है कि म सा ! यह तो सव कुछ होता है पर आप थोडी देर के लिए हमे वीतराग वाणी (माइक के जरिये) सुना दो और फिर थोडा प्रायश्चित ले लो। बन्धुओ ! यह कैसा प्रायश्चित, यह कैसा दड ? आप व्यापारी है। सरकार की ओर से दूकान पर लगे भाव सूची-पत्र को तोडकर किसी व्यापारी ने २ नम्बर का पैसा इकट्ठा करके परोपकार मे लगा दिया। सरकार को मालूम हुआ कि इस व्यापारी ने भाव सूचो तोडी है तो इसका दड मिलेगा या नही ? अवश्य मिलेगा। वह व्यापारी कहता है मैने तो सारा घन परोपकार मे लगा दिया है तो बताइये अब मुझे दड किस बात का है ? पर सरकार उसे नही छोडती, क्योकि उसने सरकार की चोरी की है।

बन्धुओ ! जब आपकी सरकार भी नही छोड सकती है तो क्या हमारी वीतराग देव की सरकार इतनी कच्ची है, इतनी कमजोर है। जब आपको भी छूट नही मिलती है तो वीतराग देव की सरकार मे कैसे छूट मिलेगी ? अत पुण्य क्या है, हिंसा किसमे है, धर्म क्या है, इस विषय का विश्लेषण हर भाई-बहिन को लेना चाहिये।

एक बार का प्रसग है कि कवि आनन्दघनजी के पास एक सन्यासी आया और बोला कि देखो महात्मन् ! आप आध्यात्मिक साधना कर रहे हो, पर हमारे गुरूजी ने इतनी साधना की कि जिसके प्रभाव से उन्होने एक ऐसा रसायन प्राप्त किया है, जिसकी एक बूद से पत्थर का सोना बनाकर परोपकार मे लगा सकते हो। उस सन्यासी ने कहा, मेरे गुरूजी ने इस रासायनिक तत्त्व की शीशी आपको देने के लिए ही मुझे भेजा है, अत आप इस शीशी को ले लीजिये।

वह सन्यासी आनन्दघनजी को शीशी देता है तो आनन्दघनजी ने कहा— यह स्वर्ण पैदा करने की रासायनिक शीशी तुम मुझे देना चाहते हो पर मुझे तो आध्यात्मिक रस की शीशी चाहिए। तुम केवल जड तत्त्वो की सिद्धि मे ही लगे हुए हो। चारित्र की साधना ज्ञान की साधना के साथ ही सध सकती है। तुमने अभी तक आध्यात्मिक जीवन को नही समझा। यह भौतिक तत्त्व कोई महत्त्व-पूर्ण नही है यदि इसकी एक बूद से लाखो मन सोना बन सकता है तो एक टोपे से क्या कोई आध्यात्मिक जीवन का सोना बन सकेगा ? तो वह बोला कि ऐसा तो नही होगा। आनन्दघनजी ने कहा कि आध्यात्मिक जीवन की साधना को

न तुमने समझा है और न तुम्हारे गुरूजी ने ही। आध्यात्मिक जीवन की उपलब्धि सच्ची साधना से ही हो सकेगी। वह इन चन्द चाँदी के टुकडो मे नही हो सकती। आनन्दघनजी के इतना समझाने पर भी वह बार-बार कहने लगा और नही माना तो आनन्दघनजी ने उसके हाथ से शीशी ले ली। और जो रस लाखो मन सोना बनाने वाला था, उसे अपने हाथ मे लेकर पत्थर पर फेंक दिया और वोसिरा दिया।

यह देखकर सन्यासी को बहुत क्रोध आया और आग बबूला हो, आनन्दघनजी को कहने लगा—आपने इस लाखो मन सोना बनाने वाले रासायनिक तत्त्व को मिट्टी मे मिला दिया। तो आनन्दघनजी ने बडी गम्भीरता के साथ कहा कि लाखो मन सोना महत्त्वपूर्ण है या आध्यात्मिक जीवन की साधना अधिक महत्त्वपूर्ण है। वह कहने लगा कि क्या आपकी ऐसी कोई आध्यात्मिक साधना की शक्ति है कि जिससे तुम भी सोना बना सको। महात्मा ने कहा—जिसकी आध्यात्मिक साधना सच्ची है तो उस साधना की निश्चित रूप से अचिन्त्य शक्ति होती है। मैं चमत्कार दिखाना नही चाहता पर फिर भी कुछ नमूना तुम्हे बताता हूँ। बन्धुओ! कमल की सुवास सारी दुनिया को सुरभित कर सकती है। आनन्दघनजी ने एक पत्थर को शिला पर लघुशका कर दी जिससे सारी शिला सोने की बन गयी। यह आत्मिक शक्ति का चमत्कार देखकर वह नतमस्तक हो गया और उनके चरणो मे गिर गया। आध्यात्मिक साधना मे वास्तव मे अनन्त शक्ति भरी पडी है। पर इस साधना को छोडकर जो यह परिग्रह सारे पापो की जड है, जो इसमे पडता है वह अपने जीवन को पतन की राह पर धकेल देता है। आध्यात्मिक जीवन की साधना तो इन सब बाह्य परिग्रहो से ऊपर उठकर ही हो सकती है।

जो साधक साधना मे बढकर भी यश लिप्सा प्रसिद्धि के इच्छुक बन जाते है और अपनी प्रसिद्धि के पीछे मर्यादाओ का भी ख्याल नही रखते, माइक आदि हिंसात्मक साधनो का प्रयोग भी करते है। वे निर्दोष कैसे रह सकते है? लाउडस्पीकर मे बोलकर सुनाने वाले कई साधक ऐसे भी कहते हुए पाये जाते है कि गृहस्थ लाकर रख देते हैं, तब हमारा क्या दोष? यह थोथी कल्पना है। क्योकि गृहस्थ साधु की इच्छा बिना कुछ भी नही कर सकता। जैसे कि घाटकोपर की बात है कि मैंने पहले ही यह स्पष्ट कर दिया था कि सयमीय मर्यादा के अनुसार स्थिति बने तो ही मैं चातुर्मास के लिए सोच सकता हूँ तो आपने भी वैसा ही विवेक रखा। इस प्रकार साधु स्पष्ट निषेध करदे तो गृहस्थ की हिम्मत नही है कि वह उसके सामने लाउडस्पीकर की बात ला दे। अजमेर मे आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा के सामने लाउडस्पीकर की बात चली तो कहते है ४० हजार की जनता के बीच मे यह कहते हुए आचार्य प्रवर निकल गए कि "मैं लाउडस्पीकर मे नही बोलू गा। किसकी हिम्मत कि जो मुझे जबरन

बुलाए"। आचार्य प्रवर की इस घोर गर्जना के सामने कोई भी नही आया । अत अनिच्छा होते हुए भी गृहस्थ रख देते है, यह मानना तो बिल्कुल गलत है । यदि ऐसे उपयोग करने लगेंगे तो फिर वे गृहस्थ तो कार, मोटर, एयरकडीशन आदि सब व्यवस्था कर देगे । तब साधु जीवन कहा रह जायेगा ? यदि यह कहा जाय कि इसके लिए हम प्रायश्चित लेते हैं तो यह भी आगमिक दृष्टि से उपयुक्त नही है क्योकि प्रायश्चित वही आता है जहाँ सयम जीवन की सुरक्षा मे खतरा हो रहा है, वहा यदि अपवाद का सेवन किया जाय तो अविधि मे प्रायश्चित की स्थिति बनती है । लेकिन लाउडस्पीकर मे नही बोलने से सयम जीवन मे कोई खतरा नही आने वाला है जिससे कि व्रत तोडकर प्रायश्चित लिया जाय । अपवाद का सेवन वहाँ किया जा सकता है जहाँ उत्सर्ग की स्थिति नही निभ रही है । कहा है "उत्सर्गाद परिभ्रष्टस्य अपवाद गमनम् ।"

लाउडस्पीकार मे नही बोलने मे उत्सर्ग स्थिति मे कोई नही जा रहा है और लाउडस्पीकर मे बोलना भी अपवाद का सेवन नही है एक बात और है कि जिनवाणी के प्रचार-प्रसार के नाम से यदि साधुओ के लिए लाउडस्पीकर खोला जाय तो फिर विदेशो मे प्रचार करने के लिए हवाई जहाज भी खुल जायेंगे, जो कि देखने को मिल ही रहे हैं । सत्य है नाव मे एक छिद्र हो जाने पर भी वह पूरी नाव को डुबो देता है वैसे ही साधु जीवन मे एक दोष का प्रवेश भी उसके सारे साधु जीवन को दूषित कर सकता है ।

दूसरी बात यह है कि बहुत ज्यादा भीड-भाड हर समय नही होती है । कभी-कभी ही होती है, जब दीक्षा आदि का कोई ऐसा प्रसग हो तो उस समय श्रोता सुनने के लिए कम, देखने के लिए ज्यादा आते है, जिसके सुनने की सच्ची जिज्ञासा है, वह ऐसे प्रसगो को टालकर आ सकता है जिससे उसे सुनने को मिल सके । किन्तु सुनने के नाम से साधु को उसकी मर्यादा से नीचे गिराना कतई उपयुक्त नही है ।

यह भी एक हास्यास्पद बात होगी कि जहाँ वायु के जीवो की रक्षा के लिए तो मुख पर वस्त्रिका को बाधते है और अग्नि से होने वाली महा हिंसा की ओर ध्यान न देकर घडल्ले से लाउडस्पीकर मे बोल रहे है ।

आज कई साधक भीनासर सम्मेलन का नाम लेकर भी यह कहते हुए पाये जाते हैं कि लाउडस्पीकर तो उस समय ही खुल गया था, पर उनका यह मानना भ्रान्ति मूलक है—क्योकि भीनासर मे १–४–५६ को जो प्रस्ताव पारित हुआ, वह यह था—

प्रस्ताव न १० ध्वनिवर्धक यत्र विषयक—"ध्वनिवर्धक यत्र मे बोलना, मुनिधर्म की परम्परा नही है । यदि अपवाद मे बोलना पडे तो उसका प्रायश्चित

लेना होगा। किन्तु स्वच्छन्द रूप से ध्वनिवर्धक यत्र का उपयोग नही करना चाहिए।"

उपरोक्त प्रस्ताव बहुमत के आधार पर ही पारित हुआ, सर्वसम्मति से नही। इस प्रस्ताव के भावो की व्याख्या निम्न प्रकार है —

इस प्रस्ताव के प्रथम वाक्य मे "ध्वनिवर्धक यत्र मे बोलना मुनिधर्म की परम्परा नही है", यह कहकर उत्सर्ग मार्ग मे ध्वनिवर्धक यत्र के उपयोग का कतई निषेध कर दिया है।

दूसरे वाक्य के प्रथम अश मे "यदि अपवाद मे बोलना पडे" तो कह कर मुनि की विवशता व्यक्त की गई और साथ ही ऐसी अपवाद की स्थिति मे भी अनिवार्य रूप से प्रायश्चित का कथन किया गया है। और दूसरे वाक्य के दूसरे अश मे तो स्वच्छन्द रूप से बोलने का कतई निषेध है।

अपवाद की स्थिति, सयम रक्षा के लिए अथवा जीवन व धर्म की सकटा-वस्था के समय ही आती है। अपवाद की स्थिति क्या हो सकती है? स्वच्छन्दता क्या है? और प्रायश्चित क्या लेना? इसका भीनासर सम्मेलन मे निर्णय नही हुआ। इन तीनो शब्दो की व्याख्या नही हुई, इसको आचार्य श्री जी म. सा. ने भी स्वीकार किया है जिसका हम आगे उल्लेख करेंगे। परन्तु फिर भी भीनासर सम्मेलन के बाद, आचार्य श्री जी म सा ने अपने शिष्यो को ध्वनिवर्धक यत्र मे बोलने की आज्ञा प्रदान कर दी। इससे श्रमणवर्ग और सयम प्रेमी चतुर्विध सघ मे हलचल मच गई।

उन दिनो मे श्रमण सघ के प्रधानमत्री पद पर व्या वा प रत्न श्री मदनलालजी म सा, श्रमण सघ का कार्य सुचारु रूप से कर रहे थे। स्वाभाविक था कि ध्वनिवर्धक यत्र के खुले उपयोग होने से, समाज मे जो उथल-पुथल हुई उसकी शिकायत प्रधानमत्रीजी म सा के पास आती और ऐसी शिकायते उनके पास पहुँची। तब आचार्य श्री जी म. सा और प्रधानमत्रीजी म सा के बीच मे श्रमण सघ सम्बन्धित पत्र व्यवहार आदि के प्रसग मे जो वातावरण बना और जो कटुता का अनुभव हुआ उससे प्रधानमत्री जी म सा ने प्रधान मत्री पद का त्याग पत्र आचार्य श्री म सा की सेवा मे पेश कर दिया। उस त्याग पत्र का मुख्य अश यहाँ उद्धृत कर रहे हैं।

प्रधानमत्री श्री मदनलालजी म सा ने अपने त्याग पत्र मे लिखवाया कि–"ध्वनियत्र विषयक प्रस्ताव मे निहित, अपवाद, प्रायश्चित और स्वच्छन्दता" की परिभाषा स्पष्ट हुए बिना ही आचार्य श्री जी म सा ने अपने शिष्य वर्ग को ध्वनिवर्धक यत्र मे बोलने की आज्ञा देकर, सघ मे एक अव्यवस्था पैदा कर दी है। हमारे पास स्पष्टता के लिए माग आई है, आदि।[1]

---

१ श्रमणसघीय विषयो पर विश्लेषणात्मक निवेदन से साभार।

बुलाए"। आचार्य प्रवर की इस घोर गर्जना के सामने कोई भी नही आया । अत अनिच्छा होते हुए भी गृहस्थ रख देते है, यह मानना तो बिल्कुल गलत है । यदि ऐसे उपयोग करने लगेगे तो फिर वे गृहस्थ तो कार, मोटर, एयरकडीशन आदि सब व्यवस्था कर देगे । तब साधु जीवन कहा रह जायेगा ? यदि यह कहा जाय कि इसके लिए हम प्रायश्चित लेते है तो यह भी आगमिक दृष्टि से उपयुक्त नही है क्योकि प्रायश्चित वही आता है जहाँ सयम जीवन की सुरक्षा मे खतरा हो रहा है, वहा यदि अपवाद का सेवन किया जाय तो अविधि मे प्रायश्चित की स्थिति बनती है । लेकिन लाउडस्पीकर मे नही बोलने से सयम जीवन मे कोई खतरा नही आने वाला है जिससे कि व्रत तोडकर प्रायश्चित लिया जाय । अपवाद का सेवन वहाँ किया जा सकता है जहाँ उत्सर्ग की स्थिति नही निभ रही है । कहा है "उत्सर्गादि परिभ्रष्टस्य अपवाद गमनम् ।"

लाउडस्पीकार मे नही बोलने मे उत्सर्ग स्थिति मे कोई नही जा रहा है और लाउडस्पीकर मे बोलना भी अपवाद का सेवन नहीं है एक बात और है कि जिनवाणी के प्रचार-प्रसार के नाम से यदि साधुओ के लिए लाउडस्पीकर खोला जाय तो फिर विदेशो मे प्रचार करने के लिए हवाई जहाज भी खुल जायेंगे, जो कि देखने को मिल ही रहे है । सत्य है नाव मे एक छिद्र हो जाने पर भी वह पूरी नाव को डुबो देता है वैसे ही साधु जीवन मे एक दोष का प्रवेश भी उसके सारे साधु जीवन को दूषित कर सकता है ।

दूसरी बात यह है कि बहुत ज्यादा भीड-भाड हर समय नही होती है । कभी-कभी ही होती है, जब दीक्षा आदि का कोई ऐसा प्रसग हो तो उस समय श्रोता सुनने के लिए कम, देखने के लिए ज्यादा आते है, जिसके सुनने की सच्ची जिज्ञासा है, वह ऐसे प्रसगो को टालकर आ सकता है जिससे उसे सुनने को मिल सके । किन्तु सुनने के नाम से साधु को उसकी मर्यादा से नीचे गिराना कतई उपयुक्त नही है ।

यह भी एक हास्यास्पद बात होगी कि जहाँ वायु के जीवो की रक्षा के लिए तो मुख पर वस्त्रिका को बाधते है और अग्नि से होने वाली महा हिसा की ओर ध्यान न देकर धडल्ले से लाउडस्पीकर मे बोल रहे है ।

आज कई साधक भीनासर सम्मेलन का नाम लेकर भी यह कहते हुए पाये जाते हैं कि लाउडस्पीकर तो उस समय ही खुल गया था, पर उनका यह मानना भ्रान्ति मूलक है—क्योकि भीनासर मे १–४–५६ को जो प्रस्ताव पारित हुआ, वह यह था—

प्रस्ताव न १० ध्वनिवर्धक यत्र विषयक—"ध्वनिवर्धक यत्र मे बोलना, मुनिधर्म की परम्परा नही है । यदि अपवाद मे बोलना पडे तो उसका प्रायश्चित

लेना होगा। किन्तु स्वच्छन्द रूप से ध्वनिवर्धक यत्र का उपयोग नही करना चाहिए।"

उपरोक्त प्रस्ताव बहुमत के आधार पर ही पारित हुआ, सर्वसम्मति से नही। इस प्रस्ताव के भावो की व्याख्या निम्न प्रकार है —

इस प्रस्ताव के प्रथम वाक्य मे "ध्वनिवर्धक यत्र मे बोलना मुनिधर्म की परम्परा नही है", यह कहकर उत्सर्ग मार्ग मे ध्वनिवर्धक यत्र के उपयोग का कतई निषेध कर दिया है।

दूसरे वाक्य के प्रथम अश मे "यदि अपवाद मे बोलना पडे" तो कह कर मुनि की विवशता व्यक्त की गई और साथ ही ऐसी अपवाद की स्थिति मे भी अनिवार्य रूप से प्रायश्चित का कथन किया गया है। और दूसरे वाक्य के दूसरे अश मे तो स्वच्छन्द रूप से बोलने का कतई निषेध है।

अपवाद की स्थिति, सयम रक्षा के लिए अथवा जीवन व धर्म की सकटा-वस्था के समय ही आती है। अपवाद की स्थिति क्या हो सकती है ? स्वच्छन्दता क्या है ? और प्रायश्चित क्या लेना ? इसका भीनासर सम्मेलन मे निर्णय नही हुआ। इन तीनो शब्दो की व्याख्या नही हुई, इसको आचार्य श्री जी म. सा ने भी स्वीकार किया है जिसका हम आगे उल्लेख करेंगे। परन्तु फिर भी भीनासर सम्मेलन के बाद, आचार्य श्री जी म. सा ने अपने शिष्यो को ध्वनिवर्धक यत्र मे बोलने की आज्ञा प्रदान कर दी। इससे श्रमणवर्ग और सयम प्रेमी चतुर्विध सघ मे हलचल मच गई।

उन दिनो मे श्रमण सघ के प्रधानमत्री पद पर व्या वा प रत्न श्री मदनलालजी म. सा, श्रमण सघ का कार्य सुचारु रूप से कर रहे थे। स्वाभाविक था कि ध्वनिवर्धक यत्र के खुले उपयोग होने से, समाज मे जो उथल-पुथल हुई उसकी शिकायत प्रधानमत्रीजी म सा. के पास आती और ऐसी शिकायते उनके पास पहुँची। तब आचार्य श्री जी म. सा और प्रधानमत्रीजी म सा के बीच मे श्रमण सघ सम्बन्धित पत्र व्यवहार आदि के प्रसग मे जो वातावरण बना और जो कटुता का अनुभव हुआ उससे प्रधानमत्री जी म सा ने प्रधान मत्री पद का त्याग पत्र आचार्य श्री म सा की सेवा मे पेश कर दिया। उस त्याग पत्र का मुख्य अश यहाँ उद्धृत कर रहे है।

प्रधानमत्री श्री मदनलालजी म सा ने अपने त्याग पत्र मे लिखवाया कि— "ध्वनियत्र विषयक प्रस्ताव मे निहित, अपवाद, प्रायश्चित और स्वच्छन्दता" की परिभाषा स्पष्ट हुए बिना ही आचार्य श्री जी म सा ने अपने शिष्य वर्ग को ध्वनिवर्धक यत्र मे बोलने की आज्ञा देकर, सघ मे एक अव्यवस्था पैदा कर दी है। हमारे पास स्पष्टता के लिए माग आई है, आदि।[1]

---

१ श्रमणसघीय विषयो पर विश्लेषणात्मक निवेदन से साभार।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय लाउडस्पीकर नही खुला था। जब वह मुनि धर्म की परम्परा मे ही नही है तो वह खुल भी कैसे सकता है अत भीनासर सम्मेलन के नाम से लाउडस्पीकर खुल गया, ऐसा कहना साधक के सत्य महाव्रत को सशकित करता है। भीनासर सम्मेलन मे स्थानकवासी सघ के बडे-बडे मूर्धन्य मुनिराज थे। जब वहाँ भी यह स्पष्ट निर्णय था कि यह मुनि धर्म की परम्परा के अनुकूल नही है तब उसका अब प्रयोग करना मुनिधर्म के अनुरूप हो ही नही सकता।

साधु मर्यादा की दृष्टि से देखें तो आप सोचिये कि साधु बारीक वर्षा की बूदो मे भी पाँच कदम चलकर व्याख्यान नही दे सकता। भले पाडाल मे दस हजार की जनता बैठी हो। क्योकि जाने पर पानी के जीवो की हिंसा होती है तब अग्नि की हिंसा करके लाउडस्पीकर मे बोलकर उपदेश कैसे दिया जा सकता है? वैज्ञानिको ने तो यहाँ तक कहा कि लाउडस्पीकर की आवाज अप्राकृतिक आवाज है। इसे सुनने से बहरापन, रक्तचाप आदि बीमारियाँ आ सकती है। अत. स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है। इस बात को सुबोध गम्य बनाने के लिए एक व्यावहारिक रूपक देता हूँ।

एक व्यक्ति उपवास करके १० हजार मनुष्यो का जीमण करता है। वह सबको जिमाना चाहता है। पर बाहर के व्यक्तियो को यह शका हो गई कि इस जीमन मे बनाई गई मिठाई मे पॉइजन है तो वे भोजन करने को तैयार नही हुए और वे लोग उसे कहते हैं कि आप भोजन कर लो हम सभी १० हजार व्यक्ति जीम लेंगे, पर उसके उपवास है। यदि आप नही जीमते हैं तो हम सारे के सारे भूखे रहेगे। अब आप ही विचार करो कि आप क्या करेगे। उपवास तोड देना या नही (श्रोताओ मे से उत्तर) एक कहता है नही तोडेगे और कोई कहता है समय व परिस्थिति की दृष्टि से तोड दे तो कोई हरकत नही है। अच्छा, अब बतलाइये, उपवास तोड दिया, उन्हे जिमा दिया, बाद मे आपसे कोई पूछे कि आपके उपवास है? तो क्या कहोगे? उपवास नही तोडा ऐसा तो नही कहेगे। श्रोताओ का उत्तर—नही ऐसा नही कहेगे। यो कहेगे कि उपवास तो था। लेकिन इन लोगो को जिमाने के लिए तोड दिया। अब मेरे उपवास नही है। बहुत अच्छा—अब आप विचार करिये कि एक भाई कहता है कि हम उपवास नही तोडेंगे, भले लोग भूखे जाय। आपका उपवास तो पत्ते की तरह और साधु के महाव्रत वृक्ष की मूल की तरह हैं। आप उत्तरगुण उपवास को तोडकर भी लोगो को नही जिमाना चाहते तो एक साधु अपने महाव्रतो को तोडकर किस लिए उपदेश देना चाहेगा? समझ लीजिये उसने लोगो को जिमाने की तरह लोगो को सुनाने के लिए महाव्रत तोड दिये। अब मूलगुण की दृष्टि से निर्दोष कैसे रहा? तब उसे कोई पूछे कि आप पाच महाव्रतधारी साधु है, तो वह क्या कहेगा? जब आप भी उपवास तोडकर यह कहते है कि मेरे उपवास नही है, तो उसे अवश्य कहना होता है कि मै पहले

पाँच महाव्रतधारी साधु था, पर लोगो को सुनाने के लिए मैंने महाव्रतो मे दोष लगाया है। अब मेरे महाव्रत सुरक्षित नही हैं। लेकिन वह ऐसा न कहकर अपने आपको पूर्ण पच महाव्रतधारी साधु माने तो उसमे नैतिकता भी कैसे रह सकती है ?

जैसे एक उपवास तोडने का प्रायश्चित डबल उपवास का प्रायश्चित आता है तो वैसे ही महाव्रत तोडने पर कितना दीक्षा छेद का प्रायश्चित आयेगा, आप विचार कीजिये। इसी तरह वीतराग प्रभु द्वारा दिये गये नियमो को तोडकर वीतराग देव की वाणी का भोजन जिमाने बैठोगे तो कहना पडेगा कि हमारे ५ महाव्रत पूरे नही है। यह चिन्तन करने का विषय है, मैंने वस्तु स्वरूप रख दिया, अब आप बतलाइये, मेरे सामने ऐसे प्रसग आवे तो क्या करना चाहिए ?

क्या लोगो को सुनाने के लिए वीतराग वाणी से विपरीत चलकर महाव्रत मे दोष लगाया जाय या महाव्रत की सुरक्षा करते हुए जितना लोग सुन सके उतना सुनाया जाय ? उत्तर—लोगो की आवाज है—पहले महाव्रत की सुरक्षा अपेक्षित है। इस आध्यात्मिक जीवन की साधना और भगवान् की आज्ञा की आराधना पर्व के दिनो मे गृहस्थ वर्ग भी सामायिक, पौषध आदि मे हिंसा करते हुए कैसे कर सकेंगे ? आप सामायिक, प्रतिक्रमण कुछ भी करो, उस समय खुले मुँह रखकर कुछ नही बोल सकते हो।

सुज्ञो ! मैं आपको स्पष्ट बतला देता हूँ कि प्रचार-प्रसार के नाम पर आप साधुओ को उनकी मर्यादा से नीचे न उतारे। लेकिन स्वर्गीय क्रान्त दृष्टा आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा ने जो मध्यम मार्ग का सकेत दिया है अत मध्यम वर्ग बनाकर सत महापुरुषो से ज्ञान प्राप्त कर प्रचार-प्रसार करने मे आप स्वतन्त्र हैं। जिस प्रकार वैज्ञानिक लोग दवा बनाते है तो बनाने वाले दूसरे होते हैं और प्रचार प्रसार करने वाले दूसरे होते है। बनाने वाले ही यदि प्रचार करने मे लग जाय तो निर्माण कौन करेगा ? वैसे ही साधु को अपनी मर्यादा मे रखे। उन्हे महाव्रतो से हटाने के लिए कभी प्रोत्साहित नही करना चाहिए और गृहस्थ को भी सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध आदि मे हिंसक साधनो का उपयोग नही करना चाहिए।

बन्धुओ ! जिसके मन मे किसी भी प्रकार की जिज्ञासा हो तो पूछ सकते हो, मेरा तो खुला प्लेटफार्म है और यह मेरा उत्तर नही वीतराग देव की वाणी का दृष्टिकोण है, यह पहले भी कह गया हूँ। यह मेरी स्वय की बात नही, वीतराग देव के सिद्धान्त की बात है। इस पर तटस्थ दृष्टि से चिंतन कर, आने वाले पर्युषण के दिनो मे वीतराग देव की आज्ञा की सम्यक् आराधना करके आगे बढोगे तो आप साधु जीवन को पवित्र रखते हुए अपने जीवन को पूरी भव्य रीति से ऊँचा उठा सकोगे। इसी भावना के साथ।□

मोटा उपाश्रय,
घाटकोपर, बम्बई

११–८–८५
रविवार

४३ | योगों का संशोधन हो

वीतराग देव के वचनों का सस्मरण करने का प्रसग है। जिन्होने केवलज्ञान मे सारे ससार की अवस्था का अवलोकन करके जो निर्देश महाप्रभु ने दिया है, उस निर्देश को याद करने का प्रसग है। जहां चार अगो की दुर्लभता बताई गई है। यथा—

"चत्तारि परमगाणि, दुल्लहाणीह जतुणो।

माणुसत्त सुई सद्धा, सजमम्मि य वीरिय॥"

श्रुत का श्रवण करना एक बात है, श्रुति का पैदा होना दूसरी बात है। जब अतर से श्रुति जागृत हो जाय तो फिर उसके हृदय मे स्वभावत श्रद्धा, रुचि पैदा हो जाती है। कई मनुष्यो मे श्रद्धा का प्रसग सुनकर भी आता है। 'माणुसत्त' सबसे पहले मनुष्य जीवन की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। किन्तु आज जो आत्माएँ मनुष्य जीवन प्राप्त करके अलग-अलग कार्य कर रही हैं, इस मनुष्य जीवन मे क्या कार्य करने का है। इस जीवन मे हाथ, पाँव आदि पाँचो इन्द्रियाँ मिली हैं, पर इसका उपयोग कहाँ करना है। इस विषय का विज्ञान बहुत कम मनुष्य प्राप्त करते है। जब तक इस विषय का विज्ञान व शुद्ध रूप से श्रुत का प्रसग न आएगा, तब तक श्रुत का सदुपयोग नही हो सकता। ये बात वीतराग देव ने स्वय की साधना से बताई है, श्रुत का लाभ सिर्फ मनुष्य जन्म मे ही मिल सकता है। मनुष्य पर्याय बहुत महत्त्वपूर्ण है। आत्मोन्नति की अनत सभावनाएँ इसी मनुष्य जीवन मे रही हुई हैं। यहां से जो साधना करने की हैं, वे करलें तो महत्त्वपूर्ण है और मनुष्य जीवन मे जो साधना न करे तो मिट्टी के ढेले की भाति यह देह मिली और नष्ट हो जायेगी। यदि कुछ भी न कर सके तो जीवन व्यर्थ ही जाएगा। श्रुत का अनुभव आत्मा मे उदित होता है तो आत्मा की क्या-क्या अवस्था होती है, इसका वर्णन शब्दो से नही कर सकते हैं पर अनुभव से किया जा सकता है।

आत्मा की अवस्था का विचार करने पर आयेगा कि सूखे घास की अग्नि भी प्रकाश दे सकती है और जलाने मे तो आती ही है। इसी तरह आत्मा की अवस्था होती है। इसी तरह छाणे की आग ज्यादा टिक सकती है, उससे आगे

४३ योगों का संशोधन हो

वीतराग देव के वचनो का सस्मरण करने का प्रसग है। विराट् केवलज्ञान मे सारे ससार की अवस्था का अवलोकन करके जो निर्देश महाप्रभु ने दिया है, उस निर्देश को याद करने का प्रसग है। जहाँ चार अगो की दुर्लभता बतलाई गई है। यथा—

"चत्तारि परमगाणि, दुल्लहाणीह जतुणो।
माणुसत्त सुई सद्धा, सजमम्मि य वीरिय ॥"

श्रुत का श्रवण करना एक बात है, श्रुति का पैदा होना दूसरी बात है। जब अतर से श्रुति जागृत हो जाय तो फिर उसके हृदय मे स्वभावत श्रद्धा, रुचि पैदा हो जाती है। कई मनुष्यो मे श्रद्धा का प्रसग सुनकर भी आता है। 'माणुसत्त' सबसे पहले मनुष्य जीवन की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। किन्तु आज जो आत्माएँ मनुष्य जीवन प्राप्त करके अलग-अलग कार्य कर रही है, इस मनुष्य जीवन मे क्या कार्य करने का है। इस जीवन मे हाथ, पाँव आदि पाँचो इन्द्रियाँ मिली हैं, पर इसका उपयोग कहाँ करना है। इस विषय का विज्ञान बहुत कम मनुष्य प्राप्त करते है। जब तक इस विषय का विज्ञान व शुद्ध रूप से श्रुत का प्रसग न आएगा, तब तक श्रुत का सदुपयोग नही हो सकता। ये बात वीतराग देव ने स्वय की साधना से बताई है, श्रुत का लाभ सिर्फ मनुष्य जन्म मे ही मिल सकता है। मनुष्य पर्याय बहुत महत्त्वपूर्ण है। आत्मोन्नति की अनत सभावनाएँ इसी मनुष्य जीवन मे रही हुई है। यहा से जो साधना करने की हैं, वे करलें तो महत्त्वपूर्ण है और मनुष्य जीवन मे जो साधना न करें तो मिट्टी के ढेले की भाति यह देह मिली और नष्ट हो जायेगी। यदि कुछ भी न कर सके तो जीवन व्यर्थ ही जाएगा। श्रुत का अनुभव आत्मा मे उदित होता है तो आत्मा की क्या-क्या अवस्था होती है, इसका वर्णन शब्दो से नही कर सकते हैं पर अनुभव से किया जा सकता है।

आत्मा की अवस्था का विचार करने पर आयेगा कि सूखे घास की अग्नि भी प्रकाश दे सकती है और जलाने मे तो आती ही है। इसी तरह आत्मा की अवस्था होती है। इसी तरह छाणे की आग ज्यादा टिक सकती है, उससे आगे

लकडी और दीपक की आग मे तफावत है । इसी तरह योग की साधना भी है । साधना का प्रकाश घास से या अन्य प्रकाश से नही आयेगा । जीवन की शुद्धि तो अतर से ही प्रकट होगी, जव अतर मे प्रकट हो जाय तो मन चचल नही रह सकता । मन को इच्छित वस्तु की प्राप्ति न हो जाय तव तक मन चचल रहता है । वच्चा कव तक रोता है ? जव तक उसे खिलौने न मिल जाये । भ्रमर गुनगुनाता है पर कब तक ? जब तक कि उसे मकरद न मिल जाय, मकरद मिल जाय तो उस पर वह चुपचाप बैठ जाता है । उसी प्रकार आत्मा को श्रुत एव चारित्र के माध्यम से जीवन का मौलिक रस प्राप्त होता है तो आत्मा भी फिर उस रस को पाने मे निमग्न हो जाती है । जिसका मन प्रभु के श्रुत-चारित्र रूप पाच महाव्रत, तीन गुप्ति का गुण मकरद लेने मे लग जाये, तो आत्मा की साधना सध सकती है । किन्तु आज के मानव मे ज्ञान, दर्शन और चारित्र का महत्त्व कम है, इसलिये धर्म का स्वरूप जीवन मे नही आ पाता । कारण कि उसका मन चचल है इसलिये धर्म की ओर ध्यान नही जाता । पर जो व्यक्ति देवलोक के इन्द्र, नरेन्द्र, चक्रवर्ती, सम्राट् की सम्पत्ति भी तृण तुल्य गिनता है । पत्थर के कटके (टुकडे) की तरह ससार के पदार्थों को मानता है, वह व्यक्ति योग साधना मे सफल हो सकता है । श्रावक के मूल व्रतो को यथाशक्य लिये विना ध्यान साधना ठीक तरह से नही हो सकती है । जो मनुष्य इनको छोडकर साधना करना चाहे तो नही हो सकती है । वह तो आम्र वृक्ष को छोडकर आम्र फल की इच्छा करने के तुल्य है ।

दशवैकालिक सूत्र मे प्रभु ने कहा कि—जब सयम जीवन के अतरग मे आता है तो उसके मन, वचन और काया मे भी सयम आ जाता है—"हत्थ-सजए-पाय-सजए वाय सजए-सजए इन्दियस्स" वीतराग देव के वचनो को जीवन मे विचारोगे तो आपको समझ मे आ सकेगा । स्वय के भीतर जो अपूर्व खजाना है, उसे प्रकट करने के लिये सबसे पहले तीन गुप्ति का गोपन करो ।

कल्पना करिये आपके बगले पर कोई निमित्तक आकर कहे कि आपके आगन मे सोना, चादी, मणि-माणिक्यादि के चरू गडे हुए हैं तो आप क्या करोगे ? घर का दरवाजा वद करके धन के चरू निकालने का प्रयत्न करोगे या क्या करोगे ? वृद्धावस्था मे भी उसका आकर्षण है । इस तरह अनत तीर्थंकर डके की चोट से वता रहे है कि शरीर रूपी बगले मे अपूर्व अनिर्वचनीय शक्ति रूपी सम्पत्ति भरी पडी है, जो सारे ससार के वैभव की तुलना से भी अधिक है पर उसे निकालने के लिये सवसे पहले योगो के दरवाजे वद करने की आवश्यकता है । इसके लिये ज्ञान, दर्शन और चारित्र अदर मे प्रकट हो, अगर अपूर्व शक्ति की लाइट जीवन मे आ जायेगी तो 'हत्थसजए' आदि से सारी शक्ति प्रकट हो जायेगी ।

इन योगो की साधना किस तरह करनी है, यह चितन प्रत्येक भव्यो को करने की आवश्यकता है। यह विषय आज का नही पूर्व के तीर्थकरो के समय मे भी था और वर्तमान का भी है। पूर्व के श्रावक सामायिक, पौषधादि करते थे, १२ व्रतो का भी ज्ञान था। इन सभी नियमो का पालन करते हुए, ध्यान साधना की प्रक्रिया भी करते थे। उस समय की श्राविकाओ का नाम भी आगे आया।

मगध सम्राट् श्रेणिक की पत्नी चेलना महारानी थी। श्रेणिक, जैन मुनि पर आस्था नही रखते थे जबकि महारानी चेलना वीतराग देव के सिद्धान्तो को जानती थी और उसे उस पर अगाध विश्वास था, योग पद्धति का भी ज्ञान था। महारानी चेलना श्राविका व्रत मे रहती हुई श्रेणिक सम्राट् को धर्म समझाने का प्रयत्न करती थी। एक बार वह श्रेणिक के पास राज भवन के झरोखे वैठी थी। उस समय राजमार्ग पर बढते हुए जैन मुनि को देखा सिर्फ बाहरी रूप से। श्रेणिक की दृष्टि मुनि के जीवन पर नही थी। श्रेणिक भावना रखते थे कि इनका प्रभाव कैसे कम हो, मै देखू तो सही, महारानी मुझे हमेशा कहती है, इनकी साधना कैसी उत्कृष्ट है। सयोग से एक मुनि भिक्षार्थ राज भवन के सामने आ रहे थे। दूर से महारानी चेलना ने साधु को देखा और देखते ही दूर से ही, वही बैठी-बैठी स्वय हाथ से सकेत देकर तीन अगुली ऊँची की। देखिये वह कितनी आध्यात्मिक जीवन की योग साधना को जानने वाली थी। मुनि वही खडे हो गये और एक अगुली नीची करके, दो अगुली ऊँची कर भद्रिक भाव से चले गये। थोडी देर बाद दूसरे मुनि आये तो उनके सामने भी महारानी चेलना ने तीन अगुली ऊँची की तो उन मुनिराज ने भी एक अगुली नीची करके दो अगुलियें ऊँची करके चले गये। इसी तरह तीसरे मुनि भी आये वे भी उक्त मुनियो की भाति दो अगुली ऊँची करके आगे चले गये। सकेत करते हुए किसी ने किसी को कुछ कहा नही। श्रेणिक विचार करने लगे कि मेरी महारानी धर्मात्मा कहलाती है, फिर साधुओ के सामने तीन अगुलिया ऊँची कर इशारा कैसे कर रही है—और मुनिराज क्रमश· दो अगुली ऊँची कर, एक अगुली नीचे करके चले गये। इसका रहस्य क्या है ? मेरी ये महारानी भगवान् के सिद्धान्तो की गहराई मे जाने वाली है पर इस तरह इशारा क्यो करती है ? श्रेणिक महारानी के पास आकर कहने लगे कि—तुम धर्म की जानकार हो पर जो अगुलियाँ तुमने उन मुनिराजो को दिखाई, उनका रहस्य क्या है ? उस रहस्य को जानने के लिये मैं उत्सुक हूँ। तुम वीतराग धर्म पर श्रद्धा रखने वाली होकर भी मुनियो को नमस्कार न करके इशारा क्यो किया ? महारानी चेलना ने बडी गम्भीरता से उत्तर दिया कि राजन्! इनका रहस्य मै नही बताऊँगी, उन साधुओ से ही पूछो और उनसे ही जो आपको उत्तर मिले, उसे स्वय के जीवन मे जमाओ और फिर मुझसे पूछो। श्रेणिक के मन मे

उथल-पुथल मचने लगी । वह मुनिराजो के पास गया और महात्मा से पूछा कि—महात्मन् ! आपने महारानी के तीन अगुली दिखाने पर दो अगुली क्यो उठाई ? महात्मा के जीवन मे वीतराग देव के सिद्धान्तो का रस रग-रग मे रम रहा था । कहने लगे कि—आपकी महारानी वीतराग योगो का सरस रीति से ज्ञान रखती है और वीतराग योग पद्धति को जीवन मे स्थान रखकर उसने सकेत दिया कि तुम साधु बने हो । जो पाच महाव्रतो के प्राण रूप पाच समिति तीन गुप्ति है, तो तुम्हारे जीवन मे तीन गुप्ति का अनुभव कितना हुआ ? यह बात पूछने के लिये तीन अगुली ऊची की और मुझे वीतराग देव द्वारा दर्शित तीन गुप्ति के विषय मे पूछा । तब सम्राट् ने कहा कि आपने दो अगुली बताकर क्या सकेत किया ? मुनि ने कहा—मैंने दो अगुली ऊपर उठाई । इसका तात्पर्य-मेरी दो गुप्ति तो सध गयी पर एक नही सधी, इसलिये दो अगुली ऊँची की । देखिये साधु जीवन की सरलता । साधु का जीवन सरल होना चाहिये । जो ऋजुभूत होता है, उसके जीवन मे ही धर्म आता है । उस साधु ने सम्राट् श्रेणिक से कहा—राजन् ! मन गुप्ति और वचन गुप्ति को तो मैंने रोका पर काया गुप्ति वश मे नही रही । श्रेणिक ने कहा—काया से क्या किया ? तो महात्मा ने कहा—और तो कुछ नही । मैं वीतराग की बतलाई हुई ध्यान साधना मे बैठकर शुद्ध ज्योति को प्राप्त कर रहा था, उस समय नजदीक मे आग की गर्मी मालूम हुई तो मेरा शरीर खिसक गया तो काया की गुप्ति वश मे नही रह सकी । मैंने सोचा—आग कभी मेरे निकट आ जायेगी तो इस शरीर का क्या होगा ? मुझे काया पर मोह था, इसलिये मैंने सरलता से कह दिया तो महारानी ने कहा कि तुम्हारी तीन गुप्ति सधी हो तो ही प्रवेश करना । इसी कारण मैं महारानीजी को दो अगुली बताकर राज-भवन मे प्रवेश किये बिना ही लौट गया । यह सुनकर सम्राट् आश्चर्य करने लगे कि इतनी सरलता, अपनी इस गलती को महारानी के समक्ष स्वीकार करली ।

सम्राट् दूसरे सत के पास गये, पूछने पर दूसरे मुनिराज ने कहा—काया व वचन की गुप्ति तो सधी पर मन की गुप्ति नही सधी । यह सुनकर सम्राट् ने पूछा क्यो ? तो मुनि कहने लगे कि एक दिन एक बहिन मुझे वदन करने आयी तो दृष्टि के माध्यम से मेरा मन उसके पाँवो पर गया और विचार आया कि ऐसे ही पाँवो वाली मेरी धर्म पत्नी थी । मेरा मन उस बहिन के पाँवो को देखकर विचलित हो गया । इसलिये मैं दो अगुली बताकर चला गया । सम्राट् श्रेणिक ने तीसरे मुनि को भी इसका कारण पूछा तो मुनिराज ने उत्तर दिया—राजन् ! मेरी मन की शक्ति मजबूत है और काया की भी, पर मैं वचन पर नियत्रण नही रख सका, क्योकि ज्ञान, दर्शन और चारित्र की वृद्धि हो वही पर साधु को वचन का प्रयोग करना चाहिये, परन्तु एक दिन मैं गोचरी जा रहा था तो वहा एक सम्राट् एक मैदान के किनारे खडा असमजस मे पडा हुआ था ।

उसके सामने बडी समस्या थी और वही पास मे कुछ बच्चे भी हार-जीत का खेल-खेल रहे थे। एक पार्टी दो-तीन बार हार गयी, हारने वाली पार्टी उदास होकर खडी थी तो उस समय मेरे मुह से स्वाभाविक रूप से निकल पडा कि उदास क्यो होते हो, उत्साह के साथ काम करोगे तो सफलता मिल सकती है। यह कहकर मैं तो चला गया पर वहाँ जो सम्राट् खडा था वह थोडे दिनो बाद मेरे पास आया और चरणो मे गिरकर कहने लगा कि—आपकी कृपा से मैं विजयी हो गया हूँ। मैंने पूछा कि आप कब आये थे मेरे पास ? तब सम्राट् ने मैदान मे खेलते हुए बच्चो की हार-जीत देखकर मुनि द्वारा निकले हुए वचनो को दोहराते हुए कहा कि—उस समय वे वचन मैंने भी सुने थे और उन्ही वचनो के प्रमाणानुसार उत्साहित होकर मैं युद्ध करने गया और पूर्ण विजय पाई। मुनि ने सोचा कि मैंने इस वाणी का प्रयोग व्यर्थ मे किया। मैंने तो सम्राट् को कुछ नही कहा—खेलने वाले बच्चो को कहा था, पर सम्राट् द्वारा उन वचनो को पकडने से व्यर्थ की हिंसा का प्रसग बना। इस तरह मेरे वचनो की स्खलना हुई। इसी कारण मैं महारानीजी को दो अगुली बताकर चला गया। मुनिराजो द्वारा सकेतो का स्पष्टीकरण सुनकर सम्राट् श्रेणिक जैन मुनियो से प्रभावित हुआ।

बधुओ ! आप भी मन मे एक ऐसी स्फुरणा पैदा करे कि वीतराग देव के सिद्धान्तो के अनुसार जो ग्रहण करने की बाते है, उन्हे ग्रहण करे और जो छोडने योग्य हो उन्हे छोडकर साधना मे सफल बने।

प्रभु की योग साधना का गुण मकरद लेकर चले तो जीवन की दशा कितनी सुन्दर बन सकती है। उस साधना का फल मधुर अनुभूतिगम्य होगा। बधुओ ! पर्यु षण के दिवस समीप आ रहे है। इन आने वाले आठ दिनो मे पाँच समिति और तीन गुप्ति का स्वरूप स्व-जीवन मे उतारने का प्रयास करें।

परिपूर्ण अहिंसक बनकर आत्मा को जागृत बनावे तथा प्राणीमात्र को अपना मित्र बनाकर चलेंगे तभी हमारे जीवन मे परमात्म दशा की परम ज्योति जल सकेगी।

पर्यु षण का प्रसग, आत्मा के विशेष शुद्धिकरण का प्रसग है अत उन महान् आत्माओ का जीवन आदर्श हमारे सामने आने वाला है जो स्वय के लिये आदर्श रूप होगा।

राजस्थान मे यह प्रक्रिया है कि अन्तगड—दशाग सूत्र, कल्प सूत्र आदि का वाचन पर्यु षण पर्व के आठ दिनो मे किया जाता है। जिसमे, उन महान्

उथल-पुथल मचने लगी। वह मुनिराजो के पास गया और महात्मा से पूछा कि—महात्मन्! आपने महारानी के तीन अगुली दिखाने पर दो अगुली क्यो उठाई? महात्मा के जीवन मे वीतराग देव के सिद्धान्तो का रस रग-रग मे रम रहा था। कहने लगे कि—आपकी महारानी वीतराग योगो का सरस रीति से ज्ञान रखती है और वीतराग योग पद्धति को जीवन मे स्थान रखकर उसने सकेत दिया कि तुम साधु बने हो। जो पाच महाव्रतो के प्राण रूप पाच समिति तीन गुप्ति है, तो तुम्हारे जीवन मे तीन गुप्ति का अनुभव कितना हुआ? यह बात पूछने के लिये तीन अगुली ऊची की और मुझे वीतराग देव द्वारा दर्शित तीन गुप्ति के विषय मे पूछा। तब सम्राट् ने कहा कि आपने दो अगुली बताकर क्या सकेत किया? मुनि ने कहा—मैंने दो अगुली ऊपर उठाई। इसका तात्पर्य-मेरी दो गुप्ति तो सध गयी पर एक नही सधी, इसलिये दो अगुली ऊँची की। देखिये साधु जीवन की सरलता। साधु का जीवन सरल होना चाहिये। जो ऋजु-भूत होता है, उसके जीवन मे ही धर्म आता है। उस साधु ने सम्राट् श्रेणिक से कहा—राजन्! मन गुप्ति और वचन गुप्ति को तो मैंने रोका पर काया गुप्ति वश मे नही रही। श्रेणिक ने कहा—काया से क्या किया? तो महात्मा ने कहा—और तो कुछ नही। मैं वीतराग की बतलाई हुई ध्यान साधना मे बैठकर शुद्ध ज्योति को प्राप्त कर रहा था, उस समय नजदीक मे आग की गर्मी मालूम हुई तो मेरा शरीर खिसक गया तो काया की गुप्ति वश मे नही रह सकी। मैंने सोचा—आग कभी मेरे निकट आ जायेगी तो इस शरीर का क्या होगा? मुझे काया पर मोह था, इसलिये मैंने सरलता से कह दिया तो महारानी ने कहा कि तुम्हारी तीन गुप्ति सधी हो तो ही प्रवेश करना। इसी कारण मैं महारानीजी को दो अगुली बताकर राज-भवन मे प्रवेश किये बिना ही लौट गया। यह सुनकर सम्राट् आश्चर्य करने लगे कि इतनी सरलता, अपनी इस गलती को महारानी के समक्ष स्वीकार करली।

सम्राट् दूसरे सत के पास गये, पूछने पर दूसरे मुनिराज ने कहा—काया व वचन की गुप्ति तो सधी पर मन की गुप्ति नही सधी। यह सुनकर सम्राट् ने पूछा क्यो? तो मुनि कहने लगे कि एक दिन एक बहिन मुझे वदन करने आयी तो दृष्टि के माध्यम से मेरा मन उसके पाँवो पर गया और विचार आया कि ऐसे ही पाँवो वाली मेरी धर्म पत्नी थी। मेरा मन उस बहिन के पाँवो को देखकर विचलित हो गया। इसलिये मैं दो अगुली बताकर चला गया। सम्राट् श्रेणिक ने तीसरे मुनि को भी इसका कारण पूछा तो मुनिराज ने उत्तर दिया—राजन्! मेरी मन की शक्ति मजबूत है और काया की भी, पर मैं वचन पर नियत्रण नही रख सका, क्योकि ज्ञान, दर्शन और चारित्र की वृद्धि हो वही पर साधु को वचन का प्रयोग करना चाहिये, परन्तु एक दिन मैं गोचरी जा रहा था तो वहा एक सम्राट् एक मैदान के किनारे खडा असमजस मे पडा हुआ था।

उसके सामने बडी समस्या थी और वही पास मे कुछ बच्चे भी हार-जीत का खेल-खेल रहे थे। एक पार्टी दो-तीन बार हार गयी, हारने वाली पार्टी उदास होकर खडी थी तो उस समय मेरे मुह से स्वाभाविक रूप से निकल पडा कि उदास क्यो होते हो, उत्साह के साथ काम करोगे तो सफलता मिल सकती है। यह कहकर मैं तो चला गया पर वहाँ जो सम्राट् खडा था वह थोडे दिनो बाद मेरे पास आया और चरणो मे गिरकर कहने लगा कि—आपकी कृपा से मैं विजयी हो गया हूँ। मैंने पूछा कि आप कब आये थे मेरे पास ? तब सम्राट् ने मैदान मे खेलते हुए बच्चो को हार-जीत देखकर मुनि द्वारा निकले हुए वचनो को दोहराते हुए कहा कि—उस समय वे वचन मैंने भी सुने थे और उन्ही वचनो के प्रमाणानुसार उत्साहित होकर मै युद्ध करने गया और पूर्ण विजय पाई। मुनि ने सोचा कि मैंने इस वाणी का प्रयोग व्यर्थ मे किया। मैंने तो सम्राट् को कुछ नही कहा—खेलने वाले बच्चो को कहा था, पर सम्राट् द्वारा उन वचनो को पकडने से व्यर्थ की हिंसा का प्रसग बना। इस तरह मेरे वचनो की स्खलना हुई। इसी कारण मैं महारानीजी को दो अगुली बताकर चला गया। मुनिराजो द्वारा सकेतो का स्पष्टीकरण सुनकर सम्राट् श्रेणिक जैन मुनियो से प्रभावित हुआ।

बधुओ ! आप भी मन मे एक ऐसी स्फुरणा पैदा करे कि वीतराग देव के सिद्धान्तो के अनुसार जो ग्रहण करने की बाते है, उन्हे ग्रहण करे और जो छोडने योग्य हो उन्हे छोड़कर साधना मे सफल बने।

प्रभु की योग साधना का गुण मकरद लेकर चले तो जीवन की दशा कितनी सुन्दर बन सकती है। उस साधना का फल मधुर अनुभूतिगम्य होगा। बधुओ ! पर्यु षण के दिवस समीप आ रहे है। इन आने वाले आठ दिनो मे पाँच समिति और तीन गुप्ति का स्वरूप स्व-जीवन मे उतारने का प्रयास करें।

परिपूर्ण अहिंसक बनकर आत्मा को जागृत बनावे तथा प्राणीमात्र को अपना मित्र बनाकर चलेंगे तभी हमारे जीवन मे परमात्म दशा की परम ज्योति जल सकेगी।

पर्यु षण का प्रसग, आत्मा के विशेष शुद्धिकरण का प्रसग है अत उन महान् आत्माओ का जीवन आदर्श हमारे सामने आने वाला है जो स्वय के लिये आदर्श रूप होगा।

राजस्थान मे यह प्रक्रिया है कि अन्तगड–दशाग सूत्र, कल्प सूत्र आदि का वाचन पर्यु षण पर्व के आठ दिनो मे किया जाता है। जिसमे, उन महान्

आत्माओ ने अपनी अतिम अवस्था मे किस प्रकार समभाव की साधना करते हुए अपना जीवन सार्थक वनाया तथा पडित मरण को प्राप्त कर कर्मो का अत करते हुए अक्षय, अव्यावाध सुखो के स्वामी वने, उनका सागोपाग वर्णन आता है ।

इन महापुरुषो का वर्णन यदि वर्ष मे एक वार भी श्रद्धा के साथ सुना जाये तो आपकी आत्मा को अवश्यमेव खुराक मिल सकेगी और आपको उच्चतम लक्ष्य की ओर आगे वढने मे सहायता मिल सकेगी । इन्ही मगल भावो के साथ . . ।

मोटा उपाश्रय,
घाटकोपर, वम्बई

१२-८-१९८५
सोमवार

४४ बाहर से हटें, भीतर मे झांकें

(पर्यु षण पर्व--प्रथम दिवस)

चातुर्मास काल का यह परम पावन प्रसग, पर्युषण के रूप मे हमारे सामने आ चुका है। पर्यु षण पर्व वर्ष मे एक वार ही आता है। इस पर्व का निर्देशन देने वाले सर्वज्ञ-सर्वदृष्टा महाप्रभु वीतराग देव थे।

यद्यपि वर्ष भर मे आने वाले सभी दिन गतिमान है तथापि इन आठ दिवसो को महत्त्वपूर्ण इसलिये बतलाया गया है कि इन दिनो मे व्यक्ति अधिक से अधिक आत्म-साधना के लिए प्रयत्नशील वने।

तीर्थंकर देव, विशाल वैभव का त्याग कर साधना पथ पर बढते है। वे पाँच इन्द्रियो के विषयो से मन की सकल्प-विकल्प जनित दशाओ से उठकर ऐसे अवस्थान मे पहुँचते हैं, जहा अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव होता है। वह अनुभूतिगम्य ही हो सकता है अभिव्यक्ति मे नही आ सकता। तीर्थंकर भगवतो ने सयम जीवन अगीकार कर साधना पथ पर बढकर पहले घनघातिक कर्म-क्षय कर हस्तामलकवत् सम्पूर्ण विश्व को देखने वाले ज्ञान को प्राप्त किया। तदनन्तर उन्होने सम्पूर्ण प्राणी वर्ग के लिये हितकारी, कल्याणकारी, कर्म कलिमलहारी उपदेश दिया था।

उन वीतराग देव ने अपने केवलालोक मे देखा कि प्राणी जगत मे यह बहुमूल्य प्राणी, जो मानव है उसे प्राय यह ज्ञान नही हो पाया है कि यह मानव जीवन किस उद्देश्य की सिद्धि के लिये है। वे तो पाँच इन्द्रियो के पोषण मे ही भटक रहे है। कान, आँख, नाक, जिह्वा, चर्म आदि के विषयो को पाने मे ही सम्पूर्ण जीवन को समाप्त कर देते है। इस प्रकार बहुमूल्य जीवन को व्यर्थ ही खो बैठते हैं। जिस हीरे से सब कुछ भौतिक साधन पाये जा सकते है उस हीरे को मुट्ठी भर चने मे वेचने वाले अज्ञानी व्यक्ति की तरह मानव जिस शरीर से मोक्ष सुख पा सकता है साधना के बल पर, उसी शरीर को मुट्ठी भर चने की तरह भौतिक सुख पाने मे खर्च कर रहा है।

इस तरह जीवन का निरर्थक बनाने वाले व्यक्तियो को साधना पथ पर आगे बढाने के लिए वीतराग वाणी परम सहायकभूत है। जिनवाणी मे किसी भी व्यक्ति विशेष पर कोई आग्रह-दुराग्रह नही है। महाप्रभु की वाणी सम्पूर्ण

प्राणी जगत के लिए होने से यथार्थ मे सर्वोदय वाणी है अर्थात् वह सबका हित एव कल्याण करने मे समर्थ है। उस वाणी से कल्याण एव हित तभी हो सकता है, जब मानव एकाग्रता के साथ उसे श्रवण कर जीवन मे रमाने का प्रयास करे।

आज के युग मे कुछ विचित्र सा परिलक्षित हो रहा है। आज के वहुत से लोग वीतराग वाणी की ओर ध्यान कम देकर अपूर्ण व्यक्तियो की वाणी सुनने मे ज्यादा आकर्पित हो रहे है। लेकिन सज्जनो ! यह निश्चित है कि अपनी मन-कल्पित धारणा कहने वाले व्यक्ति की अपूर्ण वाणी से कभी भी पूर्ण शाति मिल नही सकती। आज के व्यक्ति उनके उपदेश को सुनकर वाहरी विपयो मे ही भटकते जा रहे है, उसी का परिणाम यह आ रहा है कि वे सब कुछ भौतिक साधन पाने के बाद भी शाश्वत शाति की अनुभूति नही कर पा रहे है। इसका एक ही कारण है कि अपूर्ण व्यक्ति की वाणी को सुनकर आज के लोगो की दृष्टि अधिकाशतया बाहरी बनी हुयी है। लेकिन वह महत्त्वपूर्ण नही है। जिस प्रकार घडी का बाहरी काटा चलता हुआ नजर आ रहा है। उस घडी के भीतर की मशीन उसे चलाती है। यदि वह मशीन बन्द हो जाए तो बाहरी काटा चल नही सकता। बाहरी काटे को चलाने के लिए भीतर की मशीन की अनिवार्य आवश्यकता है। आम को खाने वाला यदि ऊपर से ही उसके छिलके को खावे तो वह खाने वाला उसके वास्तविक आनन्द को नही ले सकता, उसके लिए आम के भीतर के रस को चूसने की आवश्यकता है। उसी प्रकार शरीर की वाहरी क्रियाए हो रही हैं, उसके लिए शरीर के भीतर मे एक मशीन काम कर है। उसका सचालक चैतन्य देव आत्मा है। यदि आत्मा अन्दर नही हो तो शरीर की कोई भी क्रिया नही हो सकती। अत शारीरिक क्रियाओ को करने के लिए आत्मा अनिवार्य एव महत्त्वपूर्ण है। आत्मा का रस बाहर से चूसने से नही, भीतर से प्राप्त होता है, वैसे ही वास्तविक आनन्द की अनुभूति बाहर की शारीरिक साधना से नही, आत्मिक साधना से प्राप्त होगी।

जब व्यक्ति आन्तरिक जीवन को विकसित कर लेता है, तब वह यहा वेठा-बैठा सम्पूर्ण विश्व को आँखे बन्द करके देख सकता है। आचाराग सूत्र मे कहा है—"आयतचक्खू लोग विपस्सी।" भीतरी चक्षु से सम्पूर्ण लोक को देखा जा सकता है। पर आज का व्यक्ति, भीतर से नही, बाहर से, बाहरी दृष्टि से पुरुषार्थ कर रहा है। राकेट, हवाई जहाज आदि अनेक आविष्कार कर रहा है, पर उससे वह स्थायी शान्ति नही पा सकता। स्थायी शाति पाने के लिए बाहरी अग महत्त्वपूर्ण नही है, उसके लिए भीतरी अग, भीतरी यत्र महत्त्वपूर्ण है। जिसे व्यवस्थित चलाने के लिए महापुरुषो ने वर्ष भर में आठ दिवस महत्त्वपूर्ण वतलाये है। जहा व्यक्ति बाहरी चीजो को पाने मे, धन कमाने मे, मकान बनाने मे, पिक्चर देखने मे, भोग विलास मे पूरा वर्ष खत्म कर देता है। ऐसा व्यक्ति

कभी स्थायी शाति पा नही सकता। स्थायी शाति के लिए कम से कम इन आठ दिनो मे तो भीतर के यत्र को व्यवस्थित चलाने के लिए आत्मिक साधना करना आवश्यक है। इन आठ दिनो मे अधिक से अधिक बाहरी तत्त्वो मे हटकर, विषय आकर्षण से हटकर जो निरन्तर आत्मिक साधना मे लग जाता है तो वह आठ दिनो मे भी अपनी आन्तरिक शुद्धि विशेप रूप से करने मे समर्थ हो सकता है। योग को लेकर भी जहाँ अष्ट दिवसीय शिविर लगता है, तो वहा भी पूर्ण सादगी, मौन आदि रखवाया जाता है तो फिर यहा तो योग साधना नही अपितु आत्मा की चरम एव प्रकर्ष साधना के लिए आठ दिवसो का प्रावधान रखा गया है। ये आठ रोज अन्तर की साधना के दिन है। इन आठ रोज मे भव्यात्माएँ सासारिक प्रपचो से हटकर साधु जीवन की तरह सवर साधना मे रहते हुए, मौन एव ध्यान की साधना के साथ भीतर मे प्रवेश करने का प्रयास करे। इन दिनो मे यह ध्यान रखना चाहिये कि किसी भी प्रकार की हँसी अथवा मजाक न हो, राग-द्वेप न पनपे। सघर्ष न हो। बाहरी विभावो मे न उलझकर आन्तरिक जीवन को विशुद्ध बनाने का प्रयास किया जाए। समीक्षण ध्यान मे प्रवेश करने का पुरुपार्थ किया जाए। जो व्यक्ति इस प्रकार पुरुपार्थ करता है तो एक दिन वह परम साधना को पा लेता है।

इस प्रकार की परम प्रकर्ष साधना के प्रकर्प का वर्णन अभी-अभी ज्ञान मुनिजी ने आपको अन्तगड सूत्र के माध्यम से सुनाया। जिसमे आपने सुना कि किस प्रकार वे राजकुमार जिनके पास भौतिक सुख-सुविधाओ की कोई कमी नही थी पर उन्होने महाप्रभु के उपदेश को सुनकर शाश्वत शाति को पाने के लिए भौतिक सुख-सुविधाओ को छोडकर आध्यात्मिक साधना मे प्रवेश कर लिया और सयमी जीवन को स्वीकार करके साधना पथ पर आगे बढ गए। लेकिन आज क्या हो रहा है ? आज साधना तो कम, भौतिकता का आकर्पण ज्यादा बढ रहा है, जिससे स्थायी शाति मिल नही सकती।

प्राचीन युग मे तो अध्ययन करने के लिए भी व्यक्ति २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य के पालन के साथ माता-पिता को छोडकर गुरु के पास रहते थे। उसी प्रकार आन्तरिक साधना के लिए भी सम्पूर्ण निस्पृहता आवश्यक है। एक बार उद्दालक ऋषि के पास एक शिष्य शिखिध्वज आ गया। उसने साधना पथ पर आगे बढने के लिए ऋषि से निवेदन किया तो उन्होने एक साल उसे मत्र दीक्षा देकर सादगी, ब्रह्मचर्य आदि के साथ रहने के लिए कहा। शिखिध्वज साल भर तक वैसे ही रहा। उसके बाद दूसरी बार उन्होने उस शिष्य को अग्नि दीक्षा देने से पहले उसकी योग्यता को देखने के लिये अपने मत्र के माध्यम से पारस-मणि उपस्थित की और जो पास मे बैठे अर्थार्थी लोग थे, उन्हे लोहा लाने के लिये कहा। जब वे लेकर आए तो उन्होने सारे लोहे को सोना बना दिया। यह देखकर वह जिज्ञासु शिखिध्वज सोचने लगा कि गुरु तो बहुत चमत्कारी है।

इनसे और कुछ नही, अगर पारस मणि ही प्राप्त हो जाय तो मै वहुत कुछ जनता का उपकार कर सकता हूँ। उसने उद्दालक ऋषि से निवेदन किया—यह मणि मुझे दे दीजिये। तब गुरु ने सोचा अभी तक एक वर्ष साधना करने पर भी इसकी दृष्टि बाहरी तत्त्वो मे ही उलझी हुई है। अत इसे आन्तरिक साधना कराने के लिये पहले इसकी योग्यता देखना आवश्यक है।

उद्दालक ऋषि उसकी परीक्षा करने के लिये उसे अपने साथ मे लेकर एक गॉव मे एक घर पर पहुँचे। उस घर के भाई को कहा—हम एक रात रहना चाहते हैं। मेरे पास पारस मणि है। मैं तुम्हारा सारा लोहा सोना बना सकता हूँ। पर एक शर्त है कि तुम अपनी जवान कन्या को एक रात के लिये हमारे पास रख दो तो हम सोना बना सकते है। एक बार तो वह हिचकिचाया, लेकिन फिर वह तैयार हो गया। उसने अपनी कन्या उद्दालक ऋषि के पास भेजदी। उद्दालक ऋषि ने उस कन्या को कहा कि तुम्हारे पिता तो सम्पत्ति मे उलझ गये पर तुम्हारे मे तो सत्व होना चाहिये। तुम यहा क्यो आई ? लडकी शरमा गई। ऋषि ने शुभाशीर्वाद देकर उसे वहा से विदा कर दिया। समीपस्थ शिष्य ने देखा—अरे ! पारस मणि के साथ यह जवान कन्या भी मिलने वाली थी, लेकिन ऋषि ने जब उसे रवाना कर दिया तो वह उदास हो गया। ऋषि वहा से आगे बढे और एक सेठ के यहा पहुँचे। उसे कहा कि हम तुम्हारे यहा एक रात रहना चाहते है, तुम एक घण्टे मे तुम्हारे पास जितना लोहा है, उतना ले आवो, मैं उसे सोना बना दूँगा। पर बाहर से नही लाना है। सेठ ने हा तो भर दी। पर नौकरो को आस-पास दौडाकर बाहर से भी नीति-अनीति से लोहा इकट्ठा करवा लिया। गुरुजी ने सेठ को समझाया कि तुमने अन्याय किया है, यह उपयुक्त नही है।

ऋषि वहा से आगे बढकर एक सम्राट के पास पहुँचे। और उसे कहा कि तुम्हारा सारा लोहा सोना बना सकता हूँ पर उसके लिये एक बालक की बलि देनी होगी। सम्राट आनन-फानन मे एक बच्चे को पकडकर उसकी बलि देने को तैयार हो गया। तब ऋषि ने समझाया—अरे ! तुम प्रजापालक होकर सोने के पीछे एक अबोध बच्चे की बलि देने के लिये तैयार हो गये। क्या यही प्रजावत्सलता है ? सम्राट वह होता है जो निर्दोष बच्चे के लिये अपना भण्डार खाली कर दे पर उसे बचाए। सम्राट को समझाकर ऋषि आगे बढ गये और एक ब्राह्मण के पास पहुँचे। उसे कहा कि तुम्हारा सारा लोहा सोना बना सकता हूँ पर तुम्हारे जितने शास्त्र है मेरे नाम पर करने होगे। वह ब्राह्मण तैयार हो गया। देखिये वधुओ ! "सुवर्ण-मय-पात्रेण सत्यस्य पिहित मुखम्" सोने के पात्र से सत्य का मुख ढका जा सकता है। ये सब समझाते हुए ऋषि अपने आश्रम मे पहुँचे एव अपने शिष्य को समझाया—देखा ! एक पारस मणि के पीछे कितना अनर्थ हो सकता है। यह मणि कभी भी शाश्वत शाति देने वाली नही है। शाति

के लिए अन्तरग जीवन मे प्रवेश करना होगा। भौतिकता से हटकर आध्यात्मिक साधना मे प्रवेश करना होगा। जबकि आज तो उल्टा ही लग रहा है।

इन पर्यु षण के दिनो मे भी कितने पौषध आदि हो रहे है। इसका भी सर्वेक्षण करिये। जब मैं बहुत वर्षो पहले उदयपुर वर्षावास मे था, तो वहा लगभग ७०० पौषध भाइयो मे स्थानीय हुए थे। तो यहाँ घाटकोपर मे ५,००० स्थानीय घर बताते है तो कितनेक पौषध होते है। इस ओर ध्यान देना आवश्यक है। पौषध की साधना भी आत्मा की साधना है। भौतिकता से हटते हुए आध्यात्मिकता की साधना है। अत आप घाटकोपरवासियो को भी इस ओर विशेष ध्यान देना है।

महाव्रतधारी साधु तो भौतिकता के प्रपचो से सर्वथा हटकर अध्यात्म की साधना मे लगे हुए है। ऐसे साधक भी अगर भौतिकता के प्रपचो मे उलझ जाए तो अध्यात्म की परिपूर्ण साधना नही कर सकेगे। उस शिष्य को तो उद्दालक ऋषि मिल गये जिससे वह पुन सजग हो गया था। पर ऐसे उद्दालक ऋषि उद्‌बोधन देने वाले विरल ही प्राप्त होते है। आप विचार करिये कि जब ५ महाव्रत धारी साधु आपके घर आते है तो आपको उन्हे आहार बहराने के लिए कितना ध्यान रखना होता है। लिलोतरी का स्पर्श न हो, अग्नि का स्पर्श न हो, कच्चे पानी का स्पर्श न हो, ताली न बजाए, ऊपर से कोई वस्तु गिर न जाए—आदि-आदि अनेक नियम होते है। उनमे से यदि एक भी नियम का उल्लघन हो जाए तो फिर क्या साधु आहार लेगे ? नही। तो बधुओ ! विचार करने की बात है कि जब छोटा-सा एक नियम भी टूट जाय, तो आप साधु को आहार नही दे सकते, तो फिर अग्नि की हिसा करते हुए प्रतिक्रमण करे, व्याख्यान दे, परमात्मा की साधना करे, आत्मा की आलोचना करे तो आत्मिक शुद्धि होगी ? कभी नही। क्योकि अग्नि दीर्घ लोक शस्त्र है। इससे चलने वाला कोई भी शस्त्र क्यो न हो, वह बहुत घातक है। महा-हिसा करने वाला है, अत आत्म साधक को अध्यात्म साधना करने वाले को तो उससे परहेज ही रखना चाहिये।

आप एक तरफ तो सभी प्राणियो से "खामेमि सव्वे जीवा" के माध्यम से क्षमा याचना करे और उसी समय अग्नि-विद्युत् के माध्यम से छ काय के जीवो की हिंसा करे तो क्या यह सच्ची क्षमा याचना होगी ? जैसे—एक व्यक्ति किसी को बिजली के हटर से मार रहा है, निरन्तर मार रहा है और दूसरी ओर क्षमायाचना करे तो क्या वह उसे माफ कर देगा ? बल्कि यो कहेगा कि यह कैसा ढोग है ? एक तरफ तो मुझे मार रहा है और दूसरी तरफ माफी माँग रहा है। अगर माफी ही माँगनी है तो पहले हटर मारना बद कर। तो बधुओ ! जो व्यक्ति एक तरफ तो प्रतिक्रमण करता है। सभी प्राणियो को, सभी जीवो

की रक्षा के लिये उपदेश देता है और उसी समय अनन्त जीवो के प्राण हरने वाले विद्युत के साधनो का उपयोग करता है तो यह कैसी क्षमा याचना होगी ? सिर्फ बाहरी प्रक्रिया मात्र ही रह जायगी। अत आप लोगो को इन पर्युषण के दिनो मे इस विषय मे विशेष ध्यान रखना चाहिये।

वर्तमान का युग क्रान्ति का युग है। आपके खून मे क्रान्ति करने का जोश है तो मै कहता हूँ कि क्रान्ति करिये। पर क्रान्ति कैसी होनी चाहिये। पहले इसे समझ लीजिये। महात्मा गाधी ने जो क्रान्ति की वह अहिसा से एव मर्यादित रहकर की थी। जिसका व्यापक प्रभाव पडा था। वैसी ही क्रान्ति व्रतो की सुरक्षा के लिए हो न कि उसे तोडने के लिए। जो साधु वीतराग सिद्धान्तानुसार पाँच महाव्रत का पालन नही कर रहे है, तो उन्हे पालन करवाने के लिये क्रान्ति की जाय। यही सच्ची क्रान्ति होगी। किन्तु आधुनिकता के नाम से साधुओ को यदि व्रतो से अलग किया जाय, उसे लाउडस्पोकर, माइक्रोफोन मे बोलने के लिये, प्लेन मे यात्रा करने लिए, मर्यादाओ को तोडने के लिए प्रेरित किया गया तो यह सच्ची क्रान्ति नही होगी। आप घाटकोपरवासियो को समझना है और क्रान्ति को सही रूप मे घटित करना है। क्रान्तदृष्टा आचार्य श्री जवाहर की यह चातुर्मास भूमि रही है। अत आपको तो इस विपय मे विशेप ध्यान रखना चाहिये। साधुओ को व्रतो से नीचे गिराकर क्रान्ति न हो अपितु उन्हे व्रतो मे सुरक्षित रखने के लिये क्रान्ति की जाय। महान् क्रियोद्धारक आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म सा ने ऐसी ही सच्ची क्रान्ति, सयम का दृढता के साथ पालन करके, कर दिखायी थी। उसी का परिणाम है कि आज तक उनकी शासन परम्परा अबाध गति से चली आ रही है।

पर्युषण के दिन आपको यह सब कुछ उपदेश दे रहे हैं एव जीवन मे उतारने के लिए प्रेरित कर रहे है। आज के मेरे कई भाई यह सोच बैठते हैं कि जैन दर्शन मे बहुत सी बाते बतलायी हैं, पर ध्यान योग से सम्बन्धित बाते नही मिलती है। लेकिन मैं यह स्पष्ट कह देता हूँ कि जिनवाणी मे ध्यान योग से सम्बन्धित जितनी गम्भीर एव सरस विवेचना है शायद ही, वैसी तलस्पर्शी, आत्म-सम्बद्ध विवेचना आपको दूसरी जगह मिल पायेगी। पर आज के लोगो की दृष्टि तो बाहर की ओर लगी हुई है। अपने भीतर क्या है—इसे देखने के लिये वे प्रयास ही नही करते। ऐसी स्थिति मे अपने वश परम्परागत धर्म मे आने वाली विशिष्ट ध्यान-साधना की ओर उनका ध्यान ही नही जा पा रहा है। उन बाहरी प्रयोगो से कभी भी शाति नही मिलने वाली है।

प्रभु महावीर के साधको का जीवन ध्यान योग का एक विशिष्ट आदर्श है। क्योकि वीतराग अनुयायी साधक की प्रत्येक क्रिया सहजिक ध्यान योग के साथ होती है। जो उसके स्वय के जीवन को सवारने के साथ अन्यो पर भी

विशिष्ट प्रभाव डालने वाली होती है। ऐसे साधको के जीवन मे प्रेरणा लेनी चाहिये। उन्हे कभी भी नीचे गिराने का प्रयास नही करना चाहिये, जैसे एक नगर के चेयरमैन को मारना, एक दृष्टि से पूरे नगर को मारना कहा जा सकता है, एक राष्ट्र के प्रेसिडेन्ट को मारना पूरे राष्ट्र को मारना भी कहा जा सकता है, वैसे ही एक साधु को मारना। मारने से तात्पर्य उसे साधु जीवन से नीचे गिराना है, साधु को अपने व्रतो मे गिराने वाला पूरे विश्व का घातक कहलाता है। क्योकि साधु ने पूरे विश्व के जीवो की हिंसा का त्याग कर अहिंसा का पालन करने का व्रत ले रखा है। ऐसी स्थिति मे उसके व्रतो को तुडवाना जीवो की हिंसा करवाना है। अत ऐसी हिंसा आप से न हो जाये इसका विशेष ध्यान रखे। साधु का अगर एक भी महाव्रत टूट जाता है तो उसके सभी महाव्रत टूट जाते है। साधु के महाव्रत अखण्डित रत्न की तरह होते है, उसका एक भी टुकडा टूट जाने पर वह पूरा काम का नही रहता। वैसे ही साधु के महाव्रत भी है। जो सघ प्रमुख वज्जू भाई यहा बैठे है, उनका भी एक लेख मुझे देखने को मिला है। उन्होने भी लगभग कुछ ऐसा ही लिखा था कि जो साधु इन हिंसात्मक साधनो को काम मे लेता है, वह फिर वन्दनीय कैसे हो सकता है ? भव्यात्माओ ! आप यहा कर्म धोने के लिये आते है, कर्म बांधने के लिये नही। अत यहा आकर ऐसा कोई काम नही करना चाहिये कि जिससे कर्मो का बधन हो। छोटी से छोटी प्रवृत्ति भी आपकी अहिंसा से अनुप्रेरित होकर होनी चाहिये ताकि धर्म स्थान पर रहकर आप विशेष रूप से आत्म-शुद्धि कर सके। यहाँ आकर भी प्रतिक्रमण आदि करने मे हिंसाकारी साधनो को काम मे लेते है तो फिर उस पाप को कहा धोएँगे ? ऐसे कार्यो से श्रमण सस्कृति की सुरक्षा नही होने वाली है। प्रतिक्रमण न सुनाई दे तो दो, तीन, पाँच, दस विभाग करके अलग-अलग प्रतिक्रमण कर सकते है पर सुनने के लिये हिंसाकारी साधनो को कभी काम मे नही लेना चाहिये और न ही ऐसे हिंसाकारी साधनो मे बोलने के लिए साधु को प्रेरित करना चाहिए। इन हिंसाकारी साधनो से श्रमण सस्कृति की सुरक्षा नही होने वाली है। भगवान् महावीर के सिद्धान्त अनुरूप श्रद्धान नही हो सकेगा। हिंसाकारी साधन मे जहाँ कही बोला भी जा रहा हो तो उसे सामायिक मे सुनना भी मर्यादा मे नही आता है। आप लोगो को इस ओर विशेष ख्याल करना है। पर्युषण के दिनो मे आप विशेष रूप से त्याग-प्रत्याख्यान लेकर चले, जीवन को साधनामय बनावे।

आप भले ही मुझे मारवाडी साधु समझे, राजस्थानी समझे या अमुक सम्प्रदाय से आबद्ध समझे। पर मै तो आप सबको अपनी आत्मा के तुल्य समझता हूँ। प्रभु महावीर के सिद्धान्तानुसार तो कोई भी प्रान्तीयता भेद होता नही है। उन्होने तो पच-महाव्रतधारी को, सुसाधु को सार्वभौम और विश्व का बताया है चाहे वह कही का भी क्यो न हो। अत प्रान्तीयता भेद तो मन मे

होना ही नही चाहिये। ऐसा प्रान्तीय भेद लेकर चलने वाले वीतराग वाणी के प्रतिकूल आचरण से कभी मिथ्यात्व की अवस्था मे भी आ जाते है। प्रान्तीयता आदि भेद रखना यह सब बाहरी दृष्टि का परिणाम है। जब तक दृष्टि बाहर ही रहेगी तब तक भीतरी ज्ञान हो ही नही सकता। भीतरी ज्ञान पाने के लिये "आयतचक्खु लोगविपस्सी" की तरह चलने का प्रयास करे।

आन्तरिक चक्षु को उद्घाटित करने के लिए आपके सामने इन दिनो मे अन्तगड सूत्र के माध्यम से महापुरुषो का वर्णन आ रहा है। आप इसे ध्यान से सुनने का प्रयास करे ताकि उनका आदर्श भी आपको समझ मे आ सके। इन दिनो मे तो सभी को यहा दया पालकर सामायिक का भव्य प्रसग उपस्थित करना चाहिये। देखिये, साधुमार्गी सघ के अध्यक्ष चुन्नीलालजी मेहता आए है, पर सामायिक नही की है।[1] अरे! मैं इनको क्या कहूँ? आप जो दूर बैठने वाले खुले मुँह बैठे है, उन सभी को मेरा कहना है कि आप सभी सामायिक करके साधना मे आगे बढे। सामायिक का भव्य प्रसग उपस्थित करे ताकि आने वाले जैनेतर भाई-बहिनो पर प्रभु महावीर के शासन का एक अनूठा प्रभाव पड सके उपाश्रय मे आते है, प्रवचन सुनते है तो सामायिक करके सुने तो दुहरा लाभ हो सकता है। मैं तो अपने कर्त्तव्य पालन की दृष्टि से कह देता हू पर करना या नही करना यह आपके ऊपर निर्भर है। आप भी अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए सर्वागीण विकास की ओर बढने का प्रयास करे।

टाइम आपका ग्यारह के लगभग आ चुका है। अब मैं विशेष नही बोलता हुआ यही सकेत देता हूँ कि जैसे घडी अन्दर की मशीन से चलती है अत उसकी अन्दर की मशीन को ठीक रखना पडता है, वैसे ही आपका शरीर भीतरी चैतन्य देव की शक्ति से चल रहा है। अत चैतन्य देव के गुणो को सुरक्षित रखने का प्रयास करना आवश्यक है, उसके लिये यह सुन्दर अवसर आ गया है। आप भीतर मे झाकें, उसे स्वच्छ बनाने के लिये इन आठ दिनो मे आध्यात्मिक साधना मे गति करे।

मोटा उपाश्रय,   १३-८-८५
घाटकोपर, बम्बई   मगलवार

१—मेहताजी गुरुदेव का सकेत पाकर अगले दिन से सामायिक मे बैठ गये।

४५

विचारों को परिष्कृत करें

[पर्युषण पर्व—द्वितीय दिवस]

वीतराग देव की देशना की विवेचना का प्रसग पर्युषण के माध्यम से घाटकोपर मे चल रहा है। तीर्थंकर महाप्रभु ने भव्यो के कल्याण हेतु जिन बातो को उपयोगी समझा, उसका वर्णन कर दिया है। फिलहाल उन सभी शास्त्रो का वर्तमान मे उल्लेख करने का प्रसग नही है। किन्तु जो अन्तगडदशाङ्ग सूत्र है, उसमे भी इतना सार भरा है कि वह व्यक्ति के प्रत्येक व्यावहारिक जीवन पर सुन्दर ढग से प्रकाश डालता है।

शास्त्र श्रवण के माध्यम से अपनी आत्मा को पवित्र बनाने के लिये मन को अपने अडर-वश मे करना होगा। जिस प्रकार कार का ड्राइवर कार को, मालिक की आज्ञा के अनुसार चलाता है उसी प्रकार इस शरीर रूपी कार का मालिक यदि आत्मा है तो उसका ड्राइवर मन है। मन को आत्मा के स्वामित्व मे चलना होता है। यदि आत्मा अपने स्वामित्व को न समझे और मन को वश मे नही रखती है तो वह मन स्वच्छद रूप से भागता हुआ, एक्सीडेंट की तरह उस आत्मा को भव-परपरा के अधकूप मे पटक देता है।

आत्मा को, शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने के लिए मन को समझना एव उसे आत्मा के तन्त्र मे करना आवश्यक है। कई लोग यह शिकायत करते है कि मन हमारे वश मे नही रहता है। लेकिन वे आत्मा एव मन के ही स्वरूप को नही समझ पा रहे है। इसलिये मन उनके तन्त्र मे नही चल रहा है। अन्तगड सूत्र के माध्यम से मन को वश मे करने की बात भी स्पष्ट हो जाती है। आप विद्वद्वर्य मुनि श्री से अब तक अन्तगड सूत्र गत कई महापुरुषो का वर्णन श्रवण कर चुके है। लेकिन श्रवण करने के साथ ही उस पर चिन्तन-मनन करना आवश्यक है। जब तक चिन्तन-मनन की स्थिति नही बनती है, तब तक शास्त्र का नवनीत नही पाया जा सकता, और बिना नवनीत के आत्म पुष्टि नही होती। अभी आपने शास्त्र के माध्यम से देवकी महारानी के विषय मे भी सुना। देवकी महारानी किस प्रकार से धर्मनिष्ठा और कर्तव्यनिष्ठा को लेकर चल रही है। यह शास्त्रीय वर्णन से स्पष्ट हो जाता है। ऐसे गुणो के कारण ही देवकी महारानी का वर्णन प्रसगवश शास्त्र मे आया है। इस वर्णन से प्रत्येक महिला को अपनी कर्तव्यनिष्ठा एव धर्मनिष्ठा को समझना चाहिये। जब तक व्यक्ति कर्तव्य का पालन समुचित रूप से नही कर पाता है, तब तक वह धर्म का पालन भी नही कर पाता। धर्म

के पालन के लिए कर्तव्य का पालन पहले आवश्यक है। जब व्यक्ति सही ढग से कर्तव्य का पालन करता है तो उसके मन मे उठने वाली अनुचित बाते एव स्वच्छन्दता आपेक्षित रूप से शान्त हो जाती है उनकी उपशान्ति के बाद धर्माचरण मे मन तन्मय बन जाता है। यदि घर मे सघर्ष करके व्यक्ति यहाँ आया है तो उसमे कर्तव्यनिष्ठा नही है। ऐसा व्यक्ति क्यो न यहाँ सामायिक करके बैठ जाय, पर उसका मन धर्म मे नही लग सकता। अत कर्तव्यनिष्ठा को समझना आवश्यक है।

कर्तव्यो के पालन मे महिलाओ की तरह पुरुषो को भी अपनी कर्तव्यनिष्ठा की ओर ध्यान देना आवश्यक है। यह कर्तव्यनिष्ठा आज के सिनेमा घरो मे, टेलीविजन मे या बाह्यादि माध्यम से मिलने वाली नही है। उसके लिए वीतराग महापुरुषो की वाणी का श्रवण एव अध्ययन आवश्यक है। उसी के माध्यम से अपनी कर्तव्यनिष्ठा एव धर्मनिष्ठा का बोध प्राप्त कर सकते है। जीवन को शातिमय एव सुखमय बना सकते है। आज तो कुछ विपरीत सा ही देखने को मिलता है और फिर भौतिकता से रगीन इस बम्बई नगरी का तो कहना ही क्या ? जहाँ न मालूम कितने सिनेमा घर होगे ? अब तो घर-घर भी सिनेमा घर बन रहे है। **वीडियो** मशीन के माध्यम से घर बैठे किसी भी प्रकार के पिक्चर की **कैसेट** लगाकर सिनेमा देख लिया जाता है। आज का व्यक्ति विलासिता मे कितना अधिक डूब रहा है। यह तो बम्बई नगरी के लोगो का सर्वेक्षण किया जाय तो स्पष्ट हो सकता है। बन्धुओ ! इसलिए इस भौतिकता मे निमग्न होने से आज के भौतिकवादो शाश्वत शाति का अनुभव नही पा रहे है। जब तक व्यक्ति भौतिकता की चार-दीवारी मे ही भटकता रहेगा, तब तक वह अध्यात्म की दिशा मे आगे नही बढ सकता। चार दीवारी का तात्पर्य है—जन्म लेना, खेलना-कूदना, कुछ पढ लेना, विवाह कर लेना, पैसा कमा लेना आदि बातो की ओर व्यक्ति का अधिकाश लक्ष्य होता है। ऐसी चार दीवारी मे भटकने वाले पुरुष या नारी जीवन को परिष्कृत नही कर सकते। जब तक पुरुष एव नारी का जीवन विशुद्ध नही होगा, तब तक उनकी सतति का जीवन भी शुद्ध नही हो सकता। टकी मे यदि जहर मिला है तो नल से भी विष मिश्रित ही पानी आएगा। ठीक इसी प्रकार जैसा माता-पिताओ का जीवन होगा, उसका प्रभाव सतान पर अवश्य पडेगा। माता-पिता के विचारो का प्रभाव भी सतति पर अवश्य पडता है। अभी आप मुनि श्री के द्वारा फॉरेन की घटना सुन गए कि गर्भाधान के समय उस बहिन के मन मे हब्सी का चित्र आ जाने मात्र से उसका प्रभाव पडा कि बच्चा हब्सी हो गया। जब बच्चे पर भी ऐसा प्रभाव पड सकता है तो फिर उन विचारो का स्वय की आत्मा पर कैसा प्रभाव पडता होगा, यह विचार करने की बात है। इसीलिए शास्त्रकारो ने विचारो का प्रभाव बहुत ही स्पष्ट रूप से बतलाया है कि बच्चे के जीवन को और अपने आपके जीवन को

परिष्कृत एव शान्तिमय बनाना है तो विचारो का परिष्कार अत्यन्त आवश्यक है।

बन्धुओ! वैसे मै गत दिन से हिन्दी मे ही बोल रहा हूँ। क्योंकि कुछ हिन्दी के अभ्यासी भाई भी उपस्थित है और दूसरी बात मुझे यहा के लोगो ने हिन्दी मे बोलने के लिए सकेत किया था, उनका भी कहना है कि यहाँ के घाटकोपर निवासी हिन्दी मे प्राय समझ लेते है। इन सब बातो को ध्यान मे रखते हुए मैं हिन्दी मे ही आपको समझाने का प्रयास कर रहा हूँ। यदि आपको कुछ भी वाक्य समझ मे नही आवे तो आप स्पष्ट रूप से पूछ सकते हैं। तो बन्धुओ! मैं आपको समझा रहा था कि कर्तव्यनिष्ठा एव धर्मनिष्ठा को जीवन मे उतारने के लिए विचारो का परिष्कार आवश्यक है। यदि अपनी सतति को सुधारना है, उसे नैतिक एव चरित्रवान बनाना है तो महिलाएँ बहुत ही सुन्दर ढग से उन्हे बना सकती है। लेकिन माताओ को अपने कर्तव्यो को समझना आवश्यक है और विचारो मे परिष्कार लाना आवश्यक है।

देवकी महारानी ने यद्यपि बच्चो को जन्म ही दिया था, पालन नही किया था तथापि गर्भावस्था मे भी उसके विचार इतने सयमित रहते थे कि बच्चे पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पडा था। वैदिक साहित्य मे मदालसा महारानी का वर्णन आता है कि मदालसा महारानी ने अपनी इच्छानुसार पुत्रो को शिक्षा देती हुई उन्हे आध्यात्मिक पथ पर बढाकर महिलाओ के समक्ष एक ज्वलन्त आदर्श उपस्थित कर दिया। मदालसा अपने बच्चे का जब पालन करके हालरिया देती थी, तब भी यही भावना एव शब्दो का उच्चारण करती थी—

> "सिद्धोसि, बुद्धोसि, निरजनोसि, ससार माया परिवर्जितोसि
> ससार स्वप्न तज मोह निंद्रा, मदालसा वाक्य मुवाच पुत्र! ॥"

हे पुत्र! तुम आत्मा के मौलिक स्वरूप से सिद्ध हो, बुद्ध हो, मुक्त हो, निरजन हो, ससार माया से परिवर्जित हो। अत हे पुत्र! ससार को स्वप्नमय समझ कर उसे छोडते हुए आत्म साधना मे रमण करो। ये मदालसा के वाक्य है। ये गहरे सस्कार पुत्रो पर पडते और वे आगे बढते ही दीक्षित हो जाते। यह देखकर सम्राट ने कहा—मदालसा तुम यह क्या कर रही हो, मेरा राज्य कौन सम्भालेगा? तब मदालसा ने कहा कि अबकी बार जो पुत्र होगा, वह आपका राज्य भी सम्भालेगा और बाद मे सयम लेकर आत्म कल्याण भी कर लेगा और हुआ भी वैसा ही। मदालसा की तरह, शास्त्रो मे धारिणी का वर्णन भी आता है। उस प्रसग से कहा कि गर्भावस्था मे महिला को विकारी विचार नही करने चाहिये। अधिक तीखा, कडवादि भी नही खाना चाहिए, क्योकि इससे गर्भस्थ जीव पर विशेष प्रभाव पडता है। इन सब बातो से यह स्पष्ट हो जाता है कि

बच्चे पर माता के विचार, उच्चारण एव आचरण का कितना प्रभाव पडता है ?

वर्तमान युग को देखते हुए यह विषय गहरा विचारणीय वन चुका है। आज कई माता-पिताओ का जीवन किस विलासिता मे व्यतीत हो रहा है। राग, द्वेष, मद, मोह की परिणतिया कितनी तेजी से बढ रही है। वे लोग कितने रागान्ध हो रहे है। लेकिन यह नही सोच पा रहे है कि इसका कितना भयकर घातक प्रभाव सामने आ रहा है। आज बच्चा जन्म लेने के साथ ही भौतिकता मे डूबा नजर आता है, कुछ बडा होने के साथ गलत एव विकारी प्रवृत्तियो मे घिरा परिलक्षित होता है। माता-पिताओ का अपमान कर देता है। उनकी बात को नही मानता है। इन सबका मूल कारण है, माता पिताओ के दूषित विचार एव दूषित आचरण। जब तक माता-पिता के जीवन मे परिष्कार नही आएगा, तब तक पारिवारिक जीवन सात्विक नही बन सकता। महिलाओ के जीवन मे यदि कर्तव्यनिष्ठा आ जाती है तो वे परिवार के जीवन को सुधार सकती है। इन माताओ को कभी कुम्भकार और प्रजापति की उपमा दी है। यदि ये चाहे तो दुनिया की दुर्नीति को बदल सकती है, अनीति को हटा सकती हैं। ये बहिनें अपने कर्तव्यो के अनुसार चले तो बडे-बडे ऑफिसरो के दिमाग भी ठीक कर सकती है। इसके लिए मैं आपको एक उदाहरण दे देता हूँ।

एक बहुत बडे वकील थे, जिनकी प्रतिभा बहुत तीक्ष्ण थी। मुकदमो मे किस प्रकार दाव पेच करके अपने पक्ष को जिताना वे अच्छी तरह जानते थे। गलत केस भी उनके हाथों आ जाता तो वे उसे भी अपने बुद्धिवल के द्वारा न्यायालय मे सही प्रमाणित कर देते। एक बार की घटना है कि उनके पास एक ऐसा केस आया कि एक भाई को सामने वाले व्यक्ति को पचास हजार रुपये देने थे और वह देने की स्थिति मे नही था, सामने वाले ने उस पर केस (दावा) कर दिया, उस व्यक्ति ने भी अपने पक्ष को रखने के लिए इन वकील सा को अपना वकील बना लिया। वकील सा यह अच्छी तरह जानते थे कि जिसका केस मैंने लिया है, उसे सामने वाले व्यक्ति को पचास हजार रुपये देने है, किन्तु केस जब वकील सा ने अपने हाथ मे लिया तो ऐसे झूठे केस को भी जिताने के लिए, लगाने लगे अपनी बुद्धि की दौड। आखिर बुद्धि ने कमाल दिखाया। एक के बाद एक तर्क कोर्ट मे पेश करने लगे। आखिर उन्होने अपने पक्ष को जिता ही दिया। जिताया ही नही अपितु जिसको उसे पचास हजार रुपये देने थे, उसे देने की बात दूर रही, उससे पचास हजार रुपये लेने निकलवा दिये। देखिये आज के कोर्ट का न्याय। जहाँ दूध का दूध और पानी का पानी होना चाहिये, वहाँ ऐसे वकीलो के परिणामस्वरूप आज कैसे अन्धकारमय निर्णय सामने आते हैं, जहाँ दुःख का मारा व्यक्ति अपना न्याय लेने के लिए न्यायालय मे आये और उसकी ऐसी स्थिति वने तो उसके दिल पर क्या वीतती है ? आज तो कई सुज्ञ व्यक्ति अपनी

हानि सहन कर लेते है, किन्तु कोर्ट मे लडने नही जाते । वकील साहब तो केस जीत लेने के कारण बहुत प्रसन्न हो रहे थे, मन ही मन फूले नही समा रहे थे । जीत की खुशी मे उन्मत्त होते हुए वे घर पर पहुँचे । भोजन करने के लिए बैठे ही थे कि उनकी धर्मपत्नी भोजन परोस रही थी, इतने मे ही जिस पक्ष को उन्होने जिताया था उस पक्ष का व्यक्ति अत्यन्त खुश होता हुआ वहाँ आ पहुँचा और दस हजार रुपये के नोट वकील साहब को लेने के लिए आग्रह करने लगा । वकील सा समझ गये, मैने इसके पक्ष को जिताया, उसी के फलस्वरूप यह दस हजार रुपये देने का आग्रह कर रहा है, लेकिन मेरे इस बुद्धि के चमत्कार को मेरी पत्नी कैसे जानेगी ? मैं अपने मुँह से कहूँ, इसकी अपेक्षा इसके मुँह से ही कहलाऊँ तो ज्यादा अच्छा होगा । यह सोच कर वकील सा. तिरछी नजर से देखते हुए बोले "यह रुपये किस बात के है ?" इस पर वह व्यक्ति हाथ जोडकर विनम्रता के साथ बोला—वकील सा यह रुपये आपके बुद्धिबल के चमत्कार के परिणाम है । आपने कोर्ट मे वह चमत्कार दिखाया कि जिससे मेरा असत्य पक्ष भी सही साबित हो गया । मुझे जो सामने वाले व्यक्ति के पचास हजार रुपये देने थे, उसके बदले आपने पचास हजार रुपये और दिलवाए, इस प्रकार मुझे एक लाख रुपये की आमदनी करवादी । इतने रुपए तो मैं नही दे सकता, किन्तु आपकी फीस के दस हजार रुपए दे रहा हूँ ।

वकील सा सोच रहे थे कि इस व्यक्ति की बात सुनकर मेरी पत्नी बहुत खुश होगी और कहेगी कि बहुत अच्छा किया आपने, मै आपकी बुद्धि की दाद देती हूँ, अब मेरे बहुत जेवर और पोशाक बन जाएगे, अपने ही विचारो मे खोए वकील सा ने ज्योही अपनी धर्मपत्नी की ओर देखा तो उनके विचारो पर कुठाराघात हो गया । उनकी सारी भावनाओ पर पानी फिर गया । पत्नी के खुश होने की बात तो दूर रही । उसकी आँखो से धर-धर आँसू आ रहे थे ।

वकील सा. की तो सारी प्रसन्नता ही कही गायब हो गई । वे सहमते हुए पत्नी से बोले— अरे, तुम रो क्यो रही हो ? लो ये दस हजार रुपए मै तुम्हे देता हूँ, इससे तुम जो चाहो सो बनवा लेना । इसके अतिरिक्त भी जो तुम्हारी इच्छा होगी सो भी पूरी कर दू गा, लेकिन तुम रोती क्यो हो ?

पत्नी का रोना इसलिए तो था नही कि उसे रुपए चाहिए, उसकी आत्मा तो इसलिए कराह रही थी कि अहो ! कितना घोर अन्याय हो रहा है । जिस कोर्ट से न्याय की अपेक्षा रखी जाती है, उसी कोर्ट मे यह घोरतम अन्याय और वह भी मेरे पति द्वारा, तुच्छ रुपयो के लिए । वह बोल उठी पति से । मुझे नही चाहिए ऐसा रुपया और न ही मुझे ऐसी कोई भी फैशनेबल साडी या जेवर ही चाहिए । मैं एक पोशाक से भी अपनी गुजर कर सकती हूँ । किन्तु मुझे अनीति का एक पैसा भी नही चाहिए । ईमानदारी का तकाजा था कि आप इस व्यक्ति

से पचास हजार रुपए सामने वाले को दिलवा कर सही इन्साफ करवाते। लेकिन आपने पचास हजार रुपए उसे दिलवाने की बात तो दूर रही बल्कि पचास हजार रुपए उससे और निकलवा लिए, क्या आपने सोचा कि जिसके एक लाख का घाटा हुआ उसका कितना कलेजा टूटा होगा ? कलम और बुद्धि से होने वाली कितनी क्रूर हिंसा है यहा। ऐसे कृत्यो से भारी कर्मो का बन्धन होता है।

मैं आपकी धर्मपत्नी और आप मेरे पति है। अत मेरे पति ऐसे हिंसाकारी कार्यो से उपरत होकर ऊपर उठे। न्याय और नीति से वित्तोपार्जन करे। जिससे यह जीवन भी सुखी बने और पर जीवन भी सुखमय बन सके। अत. मेरा तो आपसे यही निवेदन है कि आप इस प्रकार के अनीतिपूर्ण कार्यो को छोडें। ऐसे धन की अपेक्षा सीधा और सात्विक जीवन जीना बहुत उत्तम है।

पत्नी की मानवीय भावना और आध्यात्मिक जीवन का प्रभाव वकील साहब पर भी गहरा पडा। वे भी सोचने लगे—जब मेरी पत्नी भी अनीतिपूर्ण धन को नही चाहती है तो फिर इसे रखकर क्या करना है ?

वकील सा. ने उस भाई से कहा—यह रुपए तुम वापस ले जाओ। मेरी पत्नी इस प्रकार के अनीतिपूर्ण धन को रखना बिल्कुल पसन्द नही करती। तुम्हे भी जो पचास हजार रुपए आए हैं, उन्हे तो वापस सामने वाले व्यक्ति को देने ही पडेंगे।

देखिये ! बहिन की धार्मिक भावना—समीक्षण दृष्टि के अभ्यास ने क्या चमत्कार दिखाया।

देखिए बन्धुओ ! एक नारी का जीवन। वकील सा की धर्मपत्नी ने किस प्रकार वकील सा. का जीवन बदल दिया। नारी मे वह शक्ति है कि जो पारिवारिक जीवन मे अभूतपूर्व परिवर्तन ला सकती है, लेकिन यदि नारी ही विलासिता मे फसी हुई है तो वह दूसरे के जीवन को कैसे बदल सकती है ? आज तो पति को नीति की शिक्षा देने की बात तो दूर रही। वे तो यही सोचती है कि पति नीति से कमाये या अनीति से कमाये पर उसे तो गहने चाहिए, फैशनेबल साडी चाहिए, इम्पोर्टेड गाडी चाहिए, सुन्दर बाडी चाहिए, न मालूम क्या-क्या माग होती हैं, उनकी ये तो आप ही जान सकते है। ऐसी नारियाँ न अपना हित कर सकती हैं, न परिवार का हित कर सकती है। ऐसी बहिनो को अन्तगड सूत्र गत देवकी महारानी के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए। सबसे पहले वह अपने जीवन को सुधारे और फिर परिवार के जीवन को। बहनो मे यदि जोश आ जाय तो वह भाइयो को नीतिमय बना सकती है। उन्हे सामायिक, प्रतिक्रमणादि मे लगा सकती है। क्योकि आज देखा जाता है कि पुरुष लोग औरो की बात मानें या न माने पर धर्मपत्नी की बात तो उन्हे (प्राय) माननी ही पड़ती है।

नारी शक्ति अगर केन्द्रित होकर सही दिशा मे आगे बढे तो व्यक्ति-व्यक्ति को बदलती हुई सारी दुनिया को बदल सकती है। शास्त्रो मे देवकी महारानी का वर्णन आता है कि वह मुनिराजो को किस प्रकार भक्ति भाव से वन्दना करती है और उन्हे प्रतिलाभिन करती है। यहाँ पर भी भाई-बहिनो को शिक्षा लेनी चाहिए कि अगर घर मे अशनादिक प्रासुक नही है तो वे सत-मुनिराजो को कैसे प्रतिलाभित करेंगे ? बतलाइए आपकी यह बम्बई नगरी बडी है या द्वारिका नगरी ? जन आवाज है कि द्वारिका नगरी। तो देखिये वहाँ के लोगो मे, महारानी आदि सभी मे कितना विवेक था। आप सभी मे भी ऐसे विवेक का भव्य प्रसग उपस्थित होना चाहिए। वैसे घाटकोपर-वासियो मे कइयो मे विवेक की स्थिति परिलक्षित होती है। घरो मे भी सुलभता से धोवन पानी आदि मिल जाता है। अभी जब सुबह मैं जगल से आ रहा था तब एक बहिन कह रही थी कि मेरे यहाँ धोवन पानी भी है, पधारिये।

बन्धुओ ! यह तो विवेक है, सत मुनिराज व्याख्यान के पश्चात घरो मे से सहज सुलभ प्रासुक मिलने वाला धोवन पानी लेकर आते है। धोवन पानी तो घर-घर सहज रूप से बनता है, विवेक रखने वाला चाहिए। केवल राख का पानी ही आवश्यक नही है। चावल का पानी, दाल का धोया हुआ पानी, कठौती का धोया पानी, दाख का धोया पानी भी साधु के उपयोग मे आ सकता है। यहा पर सत मुनिराज ऐसा पानी भी लाते है। यहाँ सत नौ एव महासतियाँजी बाहर से आने वाली पन्द्रह है तथापि आहार पानी घरो मे सहज प्रासुक मिल जाता है। वैसे भी घाटकोपर मे पाच हजार घर बतलाते है। व्याख्यान उठने के बाद सत-सती आहार पानी लेने के लिए दूर-दूर जाते है और घरो से प्रासुक आहार-पानी लाते हैं। गोचरी कभी-कभी एक या डेढ बजे भी आती है।

भीड भाड की दृष्टि से भी देखा जाय तो, यद्यपि घाटकोपर बम्बई का एक अग है तथापि घाटकोपर मे जितनी भीड भाड नही दिखती है, उससे ज्यादा भीड शोरगुल जयपुर, उदयपुर जैसे शहरो मे देखने को मिलती है। जगल की दृष्टि से भी पूरी सुविधा है। जब मैं पूर्व मे आया था तब भी यहाँ रहा था। उस समय ही मैने यहाँ जगल देख लिया था, प्रासुक जगह मिल जाती है। परठने-परठाने के लिए भी थोडी दूरी पर स्थान मिल जाता है। साधु मर्यादा मे दोष लगे, ऐसा किंचित् भी कारण परिलक्षित नही होता। उपाश्रय की कल्पनीय-अकल्पनीय विधि जब आपको बतलाई गई तो आप सुज्ञो ने उसे भी कल्पनीय बना दिया। बोरीवली मे भी जगलादि की पूरी सुविधा थी ही और यहाँ पर भी है। मैं बम्बई के कई उपनगरो मे भी गया, वहाँ भी बाहर जगल जाने की सुविधाएँ है। बालकेश्वर मे तो पास मे थोडी दूरी पर ही जगल है। वैसे ही अन्यान्य उपनगरो मे भी जगल जाने को स्थान मिल गया था। पानी आदि भी घरो मे गवेपणा करने पर एषणीय मिल जाता है।

कई उपनगरो मे साधु जीवन के पूर्ण पालन की स्थिति नही होने से वहाँ मैं नही गया। माटुगा मे मैंने सुना था कि वहाँ जगल का स्थान नही है, तो मेरी जाने की भावना कम हो गई थी क्योकि जहॉ सयम का पालन सुरक्षित रूप से न हो वहाँ साधु को नही जाना चाहिए। **दूसरो को लाभ देने के पहले स्वयं के जीवन को सुरक्षित रखना आवश्यक है।** इधर माटुगा के लोग अति आग्रह कर रहे थे तो मैं एक दिन के लिए वहॉ जाने का विचार करके पहुँचा और वहॉ जगल की गवेषणा की तो थोडी ही दूरी पर प्रासुक जगल मिल गया। मैंने इस बात का जिक्र जिन लोगो के समक्ष किया तो उन्हे भी आश्चर्य हुआ कि यहा कहा जगल है ? हमने तो अब तक देखा ही नही ? मनसुखभाई और मासुखभाई तो बोले—हम भी आपके साथ चलकर जगल देख लेते है ताकि पौषध मे हम भी वहॉ जा सके। वे भी साथ चले और उन्होने भी जगल देखा तो आश्चर्यचकित हो गये। वैसे ही अधेरी आदि क्षेत्रो मे भी जगलादि की सुविधाएँ है। कही-कही उपाश्रयो मे अकल्पनीय स्थिति नजर आई तो मैंने वहॉ के प्रमुखो को सूचित किया कि हमे यहाँ नही कल्पता है तो उन्होने तुरन्त कल्पनीय स्थिति बनाई। कान्दीवली, मलाड आदि अनेक स्थलो पर ऐसा हुआ भी है।

इन सब बातो को देखते हुए यह सुस्पष्ट हो जाता है कि बम्बई मे आकर यदि साधु चुस्त सयम का पालन करना चाहता है तो वह कर सकता है और यदि वही ढीला-शिथिल हो जाय तो उसका क्या उपाय है ? उसका दोष इसे नही दिया जा सकता। मैं तो वैसे भी यहा इलाज के लिए आया था और डॉक्टर को दिखलाने के बाद यहाँ से जाने की सोच रहा था पर घाटकोपर-वासियो के आग्रह से एव यहा साधु मर्यादा मे कोई दोष नही लगेगा ऐसी आपने खातिरी भी करवाई थी और कहा था कि हम आपके व्याख्यान मे चदा चिट्ठा भी इकट्ठा नही करेगे। जिनवाणी के कल्पानुसार आप जैसा फरमा रहे हैं, वैसा ही करेगे। इस प्रकार आपके द्वारा कहने पर ही यहा चातुर्मास का प्रसग उपस्थित हुआ है। और आप देख ही रहे हैं, सत सतीवर्ग किस प्रकार की सयमीय मर्यादाओ को विशुद्धता के साथ लेकर चल रहे हैं।

मै सौराष्ट्र मे भी अनेक गावो-शहरो मे घूमा, वहा पर भी एक बार तो प्रासुक पानी लाने के लिए अनेक कठिनाइया सामने आई, लेकिन सत धैर्यता के साथ आगे बढते गए। जगह-जगह गृहस्थो को प्रासुक पानी का स्वरूप समझाया तो फिर वहॉ भी प्रासुक पानी सहज सुलभ हो गया, यह तो सतो का विवेक होना चाहिये। बिना आलस्य करते हुए वे अगर गवेषणा करते है तो प्रासुक आहार, पानी, जगल का स्थान प्राप्त हो सकता है। तो मैं बतला रहा था कि देवकी महारानी के द्वार पर जब प्रथम सिंघाडा पहुँचा तो उसने उन्हे अत्यन्त भाव-भक्ति के साथ प्रतिलाभित किया। इसी प्रकार दूसरे और तीसरे सिंघाडे को भी प्रतिलाभित किया। फिर उसके मन मे जो जिज्ञासा उठी, उसका समाधान पाने हेतु उन्हे निवेदन किया और जिज्ञासा का समाधान पाया।

यहा पर भी भव्यात्माओ ! विचार करिये कि जिसके प्रति देवकी के मन मे जिज्ञासा उठी, वह उन्ही से समाधान चाह रही है। ऐसा नही कि मन मे उठी शका को मन मे ही रखकर इधर-उधर फैलाते हुए, वातावरण दूपित करे। आज के बहुत से भाई ऐसे भी है, जो कई प्रकार की गलत शकाए मन मे करके बैठे रहते है। जिसके प्रति शका है उससे तो पूछते नही और बात का बतगड बनाते रहते है। ऐसे व्यक्ति आत्म-कल्याण कैसे कर सकते है ? सामने कुछ भी न कहकर पीठ पीछे किसी की निन्दा या अन्यथा कथन करने वाला सच्चा धार्मिक नही हो सकता ।

मैं तो स्पष्ट रूप से आह्वान करता हूँ कि आप मेरे या इस शासन मे चलने वाले किसी भी साधु-साध्वी मे किसी भी प्रकार का दोप देखे तो खुले रूप मे कहे, मैं उससे नाराज नही होऊगा, बल्कि और अधिक खुश होऊगा। यदि साधु-साध्वी मे दोष होगा तो उन्हे प्रायश्चित देकर शुद्धिकरण कर दिया जाएगा और यदि नही होगा तो आपकी भ्रान्ति का स्पष्टीकरण हो जाएगा। आप अपने मन मे कोई बात नही रखे। साफ-साफ बतलाइये। देवकी महारानी की तरह समाधान ले लीजिये। जो व्यक्ति समाधान नही लेता है तो वह भ्रान्ति मे ही अपने विचारो को दूषित करता हुआ, अमूल्य जीवन को सार्थक नही कर पाता। इसके लिए एक उदाहरण है।

एक गाँव मे कुछ सत मुनिराज आ रहे थे, उनके सामने कई श्रावक अगवानी करने हेतु जा रहे थे। उन श्रावको ने, सामने आने वाले एक किसान से पूछा कि मुँह पर कपडा बाधने वाले महाराज को क्या तुमने देखा है ? तो वह बोला—हाँ साहब देखा है, वे नदी मे बैठे पानी पी रहे थे।

जब श्रावको ने यह सुना तो वे शकाशील हो गए, अरे, साधु होकर नदी का कच्चा पानी पीते है, नही वे साधु नही हो सकते। गए थे अगवानी करने, पर बिना साधुओ की अगवानी किए, सभी अपने-अपने घर या स्थानक चले गये। मुनिराज सभी वैसे ही उपाश्रय मे पहुँच गए तो वहा देखा कि श्रावको का व्यवहार बहुत रूखा-सूखा नजर आ रहा है, क्या बात है ? इनमे क्या शका है ? आखिर खोज की, पूछा तो एक श्रावक ने सारी बात बतला दी।

मुनिराज, समझ गए, उन्होने उस किसान को बुलाकर पूछा—भाई ! तुमने हमे देखा ? तो वह बोला—हाँ साहब देखा। कहाँ देखा, तो वह बोला नदी मे आप पानी पी रहे थे तब देखा। यह सुनकर श्रावक बोल उठे कि सुन लीजिये, यह साफ बतला रहा है। आप नदी मे पानी पी रहे थे। इस पर भी मुनिराज उत्तेजित नही हुए और बोले कि भाई-बताओ हम पानी किससे पी रहे थे। तब वह बोला - ओ महाराज ! आपके पास जो लकडो का बर्तन है ना। उसमे जो पानी था वही पी रहे थे, तो महाराज बोले—नदी का तो पानी नही पी रहे थे ?

तो वह बोला—महाराज, आप कैसी बात करते है। नदी मे तो एक बून्द भी पानी नही है, वह तो सूखी है। यह सुन सभी श्रावको का स्पष्टीकरण हो गया और वे पूर्ववत् श्रद्धा भक्ति करने लगे।

बन्धुओ, यह तो एक रूपक है। इससे शिक्षा लेना है कि आप किसी भी प्रकार की शका मन मे न रखे, विचारो को दूषित न बनावे।

इन परम पवित्र दिवसो मे सभी शकाओ का समाधान पाकर नि शक बने। जिसके प्रति शका हो, उसी से पूछले, अन्य जगह निन्दा करके कर्मो को न बाधे। इस दिव्य सूत्र से प्रेरणा मिल रही है, उसे ग्रहण करे।

"सशयात्मा विनश्यति"

जो व्यक्ति सशय रखता है, उसका समाधान नही करता है तो नीतिकार भी कहते है कि उस आत्मा का कल्याण नही होता। जो भी आत्मा कर्तव्यनिष्ठ बनती हुई, अपनी भ्रान्तियो को हटाकर, विचारो को परिष्कृत करती हुई आगे बढेगी तो उसका कल्याण होगा।

मोटा उपाश्रय, १४-८-८५
घाटकोपर, बम्बई बुधवार

• □ •

४६ स्वतंत्रता : ऊपरी नहीं, वास्तविक हो

(पर्युषण पर्व—तृतीय दिवस)

अनत आत्मिक शक्ति से सम्पन्न तीर्थंकर देवो ने भव्यजनो के लिये जो उपदेश दिया है, उसे एक अपेक्षा से अनिवर्चनीय भी कहा जा सकता है। जिसका निर्वचन-विवेचन नही किया जा सकता है, क्योकि विवेचन अधूरी वस्तु का होता है, किन्तु वीतराग देव की वाणी अधूरी नही अपितु परिपूर्ण है। भव्यो को समझाने के लिए उस भाषा मे विस्तार से समझाना और बात है, पर वीतराग वाणी को अधूरी समझकर उसका विवेचन करना उपयुक्त नही है। जो आत्मा सच्ची जिज्ञासा भावना से जिनवाणी को सुनती है, वह निश्चय ही उसे जीवन मे उतारने मे भी समर्थ हो जाती है। ऐसी आत्मा का रूप परमात्म रूप मे अभिव्यक्त हो जाता है। अत सबसे पहले अपने आप मे सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न करनी चाहिये। सच्ची भूख लगने पर किया गया भोजन जिस प्रकार पाचक होता है, उसी प्रकार सच्ची जिज्ञासा के साथ ग्रहण किया गया सम्यक्ज्ञान आचरण के साथ आत्मा को तुष्टि देनेवाला होता है। जब तक व्यक्ति के मस्तिष्क मे वैभाविक विषय एव मोह ममत्व का रग भरा रहेगा, तब तक शाति की सच्ची जिज्ञासा भी उत्पन्न नही हो सकेगी। सच्ची शाति को जीवन मे प्रवेश कराने के लिए सबसे पहले मन-मस्तिष्क मे भरी बाहरी बातो को हटाना होगा। जिस प्रकार चिन्तन करने के लिये व्यक्ति सोचता है कि बाहरी कोलाहल का शात होना आवश्यक है, वैसे ही आत्मशाति पाने के लिए अन्तरग मे राग-द्वेष का कोलाहल शांत होना आवश्यक है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति मटको को पानी पर एकदम उल्टी करके उसमे पानी भरना चाहे तो क्या उसमे पानी प्रवेश हो सकेगा ? आपको शायद इसका पूर्ण अनुभव नही होगा, लेकिन यह स्पष्ट है कि मटकी का उल्टा मुँह करके, पानी मे एकदम डुबा देने पर भी पानी की एक बूँद भी उसमे प्रवेश नही कर पाती। यद्यपि चर्मचक्षुओ से कुछ भी नही दिखता है, मटकी खाली दिखती है, फिर भी उसमे हवा भरी होती है। जब मटकी तिरछी हो जाती है, तब डबडब की आवाज के साथ पानी अदर प्रवेश करने लग जाता है, ज्यो-ज्यो हवा बाहर निकलती है, त्यो-त्यो पानी अन्दर प्रवेश करता है। इसी प्रकार आपने ग्लूकोज की बॉटल को डॉक्टर के द्वारा चढाते हुए भी देखा होगा। जब तक उस बॉटल मे डॉक्टर हवा जाने का रास्ता नही कर देता, तब तक ग्लूकोज शरीर मे प्रवेश नही करता है। इन सब बातो से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब तक

दूसरे तत्त्व भीतर भरे हैं, तब तक अन्य तत्त्वो का उसमे प्रवेश नही हो सकता। जब तक आत्मा मे विभाव के तत्त्व भी रहेगे तब तक सच्ची शाति को तो वहाँ अवस्थान ही नहीं मिलता है। उसे अवस्थान दिलाने के लिये पूर्व से भरे हुए विकृत वैभाविक तत्त्वो को बाहर निकालना आवश्यक है।

आज का पन्द्रह अगस्त का यह दिवस भारतीय स्वतत्रता का प्रतीक दिवस भी है। आज के रोज भारत ने अग्रेजियत-परतत्रता से हटकर सवैधानिक रूप से वर्षो पूर्व स्वतत्रता प्राप्त करली थी। और आज तक सवैधानिक ढग से भारत स्वतत्र रूप से चला आ रहा है, पर विचार यह करना है कि स्वतत्रता क्या वास्तविक रूप से जीवन मे आई है या फिर कागजी कार्यवाही की स्वतत्रता ही आई है, और वैसे परतत्रता का आचरण चल रहा है, क्या कहूँ जरा अपने मे और इर्द-गिर्द देखने की कोशिश करिये। मानव स्वतत्रता के स्थान पर कितना अधिक परतत्रता मे जकडता चला जा रहा है। बाहरी फेसिलिटी को देखिये—खान-पान, रहन-सहन को देखिये, आपको पाश्चात्य सस्कृति जकडी हुई नजर आयेगी। आज के व्यक्ति भारतीय सभ्यता को छोडकर पाश्चात्य सस्कृति को अधिक से अधिक अपनाने मे उत्साहित हो रहे है। ऐसी परतत्रता मे व्यक्ति कभी भी सच्ची स्वतत्रता को प्राप्त नही कर सकता है। बाहरी स्वतत्रता के साथ आचार एव व्यवहार मे भी स्वतत्रता आना आवश्यक है। सामान्य जनता की बात तो जाने दीजिये, राष्ट्र के नेताओ के जीवन मे भी वास्तविक रूप से स्वतत्रता देखने को कम मिलती है। **जो मकान बाहर से स्वच्छ एवं चाक् चक्य दिखने वाला हो पर अन्दर से भयंकर दुर्गन्ध से भरा हो तो ऐसे मकान को कोई भी सभ्य व्यक्ति पसन्द नहीं करेगा। इसी प्रकार केवल बाहरी कागजी स्वतंत्रता तो आ जाय पर भीतरी स्वतंत्रता न आवे तो वह वास्तविक स्वतंत्रता नहीं होगी।**

आज के दिन स्कूल-कॉलेज तथा बडे-बडे प्रतिष्ठान एव राष्ट्रीय स्तर पर स्वतत्रता का प्रतीक राष्ट्रीय ध्वज फहरा दिया जाता है, किन्तु इस ध्वजा से प्रेरणा बहुत कम ली जाती है। हर वर्ष पन्द्रह अगस्त आती है और चली जाती है, हर वर्ष झडे फहराये जाते हैं, पर जीवन को परिमार्जिल करने का झडा बहुत कम फहराया जाता है। **आज के लोगो के हाथ मे झंडा नही है केवल डडा ही रह गया है, वह डडे को ही लेकर चल रहे हैं। वास्तविक आदर्श को तो भूलते चले जा रहे हैं।**

सच्ची आजादी पाने के लिये स्वप्न जरूर देखे जाते है, पर व्यावहारिक स्तर पर कुछ भी काम नहीवत हो पाता है। आज लोगो का जीवन किस प्रकार विलासिता मे डूबता चला जा रहा है। स्वार्थ की भावनाएँ कितनी अधिक घर कर गई है। वह अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये राष्ट्र से भी विद्रोह करने के लिये

तैयार हो जाता है। देश मे कितनी हिंसा एव विद्रोह की भावना भडक उठी है। यह तो आप देख ही रहे है। क्या यह सच्चे भारतीय का कर्त्तव्य है, क्या इसे सच्ची स्वतन्त्रता कहेगे ? सच्ची आजादी लेकर चलनेवाला, कभी भी भाई-भाई के साथ सघर्ष नही करता है, पिता-पुत्र के साथ सघर्ष नही होता है। वह देश के समस्त व्यक्तियो को अपने समान समझकर चलनेवाला होता है।

राष्ट्र की रक्षा के लिये अपने स्वार्थों को तिलाजलि देने मे जरा भी हिचक नही होती है। उसे अपनी रक्षा नही राष्ट्र का रक्षा का ध्यान ज्यादा होता है। इसके लिये मैं जापान का एक उदाहरण देता हूँ।

एक हिन्दुस्थानी व्यक्ति जापान मे पहुँचा। रेल मे बैठकर जा रहा था। तब उसे फलो की आवश्यकता थी। वह सब जगह फिर गया परन्तु कही पर भी फल नही मिले। अब उसके धैर्य का धागा कितनी जल्दी टूटता है। अब उसके धैर्य का धागा टूट गया। देखिये आर्यदेश वालो के धैर्य का धागा कितनी जल्दी टूटता है। आपेसे बाहर होकर कहने लगा कि यह कैसा निकम्मा देश है, जगली देश है कि जहाँ पर फल फ्रूट भी नही मिलते हैं। यह बात किसी व्यक्ति को लेकर नही कही परन्तु वह सामान्य रूप से बडबडा रहा था। उसी रेल मे जापान का ही साधारण-सा मजदूर था। परन्तु उसके मन मे देश के प्रति गौरव था। उसने सुनकर सोचा कि मेरे देश की निन्दा नही होनी चाहिये। जिसको अपने देश की निन्दा का ख्याल रहता है, तो वह अपनी निन्दा का, देश की, समाज की निन्दा का ख्याल रखता है। उस गरीब जापानी को अपने राष्ट्र का गौरव रखना था। वह झट से भागा हुआ गया। उसके घर मे जो खाने के लिए फल रखे थे, वे सारे उठाकर ले आया, और हिन्दुस्थानी महाशय के सामने रख दिये। फलो को खाने के बाद हँसता हुआ महाशय पैसे देने लगा। उसने कहा—मुझे पैसे नही चाहिये, तो पूछा कि क्यो नही चाहिये ? तब उसने कहा कि आप हमारे देश मे आये है तो हमारे देश की निन्दा मत कीजिए, बस यही अपेक्षा है।

सुज्ञ बन्धुओ ! विचार करिये उस जापानी के मन मे अपने देश के प्रति कितनी निष्ठा थी। वह अपने देश की जरा भी निंदा नही सुनना चाहता था। क्या ऐसा देशप्रेम, राष्ट्रप्रेम है भारतवासियो मे ? जरा अपने-अपने घट मे विचार करिये। आप सोच रहे होगे कि म० सा० आप तो साधु है। धर्म की बाते करिये। राष्ट्र की बाते राजनेता करते रहेगे। बन्धुओ ! ऐसी बात नही है। धार्मिकता मे चलनेवाले के लिए राष्ट्र की सुव्यवस्था सहायक होती है। स्थानाङ्ग सूत्र मे ग्रामधर्म आदि दस भेदो मे से एक भेद राष्ट्र धर्म भी आया है। यदि राष्ट्र मे समुचित व्यवस्था नही होगी तो धर्म की साधना व्यवस्थित रूप मे नही की जा सकती है। अत राष्ट्र की सम्यक् सुरक्षा की ओर सयम साधक को मर्यादित रूप से ध्यान देना आवश्यक हो जाता है।

मैं तो अपनी मर्यादा मे रहता हुआ कर्तव्य की दृष्टि से सकेत कर देता हूँ। उसका अनुपालन करना या न करना, यह आप लोगो के ऊपर है। वर्तमान युग में तो राष्ट्र की सुरक्षा की बात एक तरफ रखकर अधिकाश राष्ट्रनेता कुर्सी के पीछे दौड रहे है। उन्हे कुर्सी चाहिये जिसके लिए वे लाखो रुपये इलेक्शन मे अपना प्रचार-प्रसार करने मे खर्च कर देगे, अनेको जनहित की घोषणाएँ करके पब्लिक को वोट देने के लिए विश्वास मे ले लेगे, लेकिन कुर्सी पर आकर जनहित की वे सभी बातो पर प्रायः गजनिमिलिका ही कर देते है। ऐसे व्यक्ति वास्तविक रूप से राष्ट्रप्रेमी नही कहे जा सकते। नही वे यथार्थ मे स्वतत्रता प्राप्त ही माने जा सकते हैं। ऐसे लोगो के कारण देश मे विकृतिया फैल रही है। राष्ट्र नेता ही नही व्यापारिक वर्ग भी राष्ट्र प्रेम को भूलकर अधिकांश रूप से अपने ही स्वार्थ की पूर्ति मे लगा हुआ है। मैं किस-किस की बात कहूँ—आप स्वय ऊपर से नीचे तक सर्वेक्षण कर जाइये तो आपको ज्ञात होगा कि इस स्वतत्रता प्राप्त देश के निवासियो का राष्ट्र के प्रति कितनाक प्रेम है भी या नही ? जब तक देश के प्रति देशवासियो की निष्ठा जागृत नही होगी, तब तक देश का समुचित उत्थान नही हो सकता। इसके लिये आज के रोज प्रत्येक व्यक्ति को देश के प्रति अपने-अपने कर्तव्यो को समझकर दश की वास्तविक स्वतत्रता एव नैतिक सुरक्षा के लिये आगे आने के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। मै राष्ट्र की बात क्या कहूँ, परम पावन आध्यात्मिक जीवन मे भी वर्तमान मे अनेक कूटनीतियाँ फैलती हुई परिलक्षित हो रही है। साधना पथ पर बढने वाले नि स्वार्थ निस्पृह कहे जाने वाले साधको के मन मे भी स्वार्थ, स्व का प्रदर्शन, मोह, ईर्ष्या, राग-द्वेष की भावनाएँ बनती जा रही है। इस परिवार के बीच चलनेवाला साधक कभी भी अपनी आत्मा को कर्मो के बधन से स्वतत्र नही कर सकता। हमारी आत्मा भी कर्मो से पराधीन बनी हुई है। जब तक वह कर्मों के बन्धन को तोडने का प्रयास नही करेगी, तब तक वह शाश्वत शाति की प्राप्ति नही कर सकती। सूत्रकृताङ्ग सूत्र मे महाप्रभु ने कहा है।

"बधण तिउट्टिज्जा" हे भव्य साधक ! बधन को समझकर उसे तोडने का प्रयास करो।

स्वतत्रता के इस दिवस को प्रतीक बनाकर भी अध्यात्म साधक को, आत्मा को स्वतत्र वनाने का प्रयास करना चाहिये ।

अन्तगडदशाङ्ग सूत्र के माध्यम से आपके सामने ऐसी एक नही, अनेक घटनाएँ उभरकर सामने आ रही है, जिन घटनाओ मे उन महापुरुषो का वर्णन आ रहा है, जिन्होने कि ससार के स्वरूप को समझकर जन्म-जन्म से कर्मो की जकडी भटकती हुई आत्मा को साधना पथ पर लगातार सशोधित-परिष्कृत कर परिपूर्णत स्वतत्रता प्राप्त की थी। जिस स्वतत्रता को पाने के वाद उनकी आत्मा

कभी भी बधन मे नही जकड सकती । अनन्त सुख मे तल्लीन हो जाती है । ऐसी ही स्वतत्रता पाने के लिए भव्यात्माओ को प्रयत्नशील बन जाना चाहिये ।

अन्तगड सूत्र के माध्यम से अभी विद्वान मुनि [श्री ज्ञानमुनि जी] से आपने गजसुकुमाल एव श्रीकृष्ण के जीवन के विषय मे श्रवण किया । प्रतिवर्ष की अपेक्षा आपको इस वर्ष अन्तगड सुनने मे समझने मे कुछ तफावत लगी होगी । आपने सुना गजसुकुमाल कुमार को, श्रीकृष्ण अपना सारा राज्य देने के लिए तैयार हो गये । कितना अपने छोटे भाई के प्रति श्रीकृष्ण का स्नेह था, यह तो इस घटनाक्रम से स्पष्ट हो जाता है । क्या आज के भाइयो मे अपने भाइयो के प्रति इतना प्रेम है । क्या वे अपने भाई के सुख-दु.ख मे सहायक बनते है । यह तो दूर रहा अगर भाई भोला या नासमझ है तो उसे पिता की सपत्ति से वचित किया जाता है, ऐसा भी देखने को मिलता है कि एक भाई तो भूखा मर रहा है और दूसरा भाई ऐश कर रहा है ।

बन्धुओ ! जब जीवन मे भाई-भाई के प्रति भी प्रेम-स्नेह की भावना उत्पन्न नही होगी तो विश्व के सभी प्राणियो के प्रति आत्मीय भावना की उत्पत्ति की सभावना ही नही की जा सकेगी । आत्मशुद्धि के इस पावन प्रसग पर सभी के प्रति आत्मीयता भाव जागृत करना आवश्यक है । आज तो कई व्यक्ति ऐसे भी देखने को मिलते है कि वे धर्मस्थान पर भी अभिमान को छोडकर नही अपितु लेकर आते है । ऐसे व्यक्तियो के यहाँ पर भी बैठने के लिए कुर्सियाँ चाहिये । उनके अभिमान पर किसी भी प्रकार की ठेस नही लगनी चाहिये । परन्तु ऐसे विचारो के व्यक्ति यहाँ आकर के भी अपने जीवन का सशोधन नही कर पाते बल्कि और अधिक से अधिक कर्मो का बन्धन कर लेते है । ऐसे व्यक्ति को अभिमान छोडकर सच्चा जिज्ञासु बनना चाहिये । जब तक व्यक्ति अभिमान मे भरा रहता है, अपने प्रदर्शन मे लगा रहता है, तब तक वह व्यक्ति सच्ची आत्मशुद्धि नही कर सकता न ही परमात्मा का साक्षात्कार कर पाता है ।

मुस्लिम मजहब मे एक घटना आती है कि हुसैन नाम का सम्राट प्रतिवर्ष मक्का मदीना की यात्रा करने के लिए जाया करता था, वह अपने साथ बहुत-सी धन सपत्ति, वाहनादि भी लेकर जाता था । उसका जाने का मुख्य उद्देश्य यह रहता था कि लोग उसके ऐश्वर्य को देखकर उसकी प्रशसा करें । लेकिन एक गरीब असहाय बहिन राबिया भी प्रतिवर्ष मक्का मदीना की यात्रा करती थी, लेकिन उसकी यात्रा सभी प्रकार के प्रदर्शन से दूर, केवल अल्लाह की भक्ति से अनुप्रेरित होकर होती थी । राबिया किसी भी वाहन मे न बैठकर पैदल ही यात्रा करती थी ।

एक समय की बात बतलाई जाती है कि राबिया जब मक्का मदीना की यात्रा पर थी, तब उसे खुदा के दर्शन हुए, खुदा उससे बडे प्रेम से बात कर रहे

मैं तो अपनी मर्यादा मे रहता हुआ कर्तव्य की दृष्टि से सकेत कर देता हूँ। उसका अनुपालन करना या न करना, यह आप लोगो के ऊपर है। वर्तमान युग मे तो राष्ट्र की सुरक्षा की बात एक तरफ रखकर अधिकाश राष्ट्रनेता कुर्सी के पीछे दौड रहे हैं। उन्हे कुर्सी चाहिये जिसके लिए वे लाखो रुपये इलेक्शन मे अपना प्रचार-प्रसार करने मे खर्च कर देगे, अनेको जनहित की घोषणाएँ करके पब्लिक को वोट देने के लिए विश्वास मे ले लेगे, लेकिन कुर्सी पर आकर जनहित की वे सभी बातो पर प्राय गजनिमिलिका ही कर देते है। ऐसे व्यक्ति वास्तविक रूप से राष्ट्रप्रेमी नही कहे जा सकते। नही वे यथार्थ मे स्वतत्रता प्राप्त ही माने जा सकते है। ऐसे लोगो के कारण देश मे विकृतिया फैल रही है। राष्ट्र नेता ही नही व्यापारिक वर्ग भी राष्ट्र प्रेम को भूलकर अधिकाश रूप से अपने ही स्वार्थ की पूर्ति मे लगा हुआ है। मैं किस-किस की बात कहूँ—आप स्वय ऊपर से नीचे तक सर्वेक्षण कर जाइये तो आपको ज्ञात होगा कि इस स्वतत्रता प्राप्त देश के निवासियो का राष्ट्र के प्रति कितनाक प्रेम है भी या नही ? जब तक देश के प्रति देशवासियो की निष्ठा जागृत नही होगी, तब तक देश का समुचित उत्थान नही हो सकता। इसके लिये आज के रोज प्रत्येक व्यक्ति को देश के प्रति अपने-अपने कर्तव्यो को समझकर दश की वास्तविक स्वतत्रता एव नैतिक सुरक्षा के लिये आगे आने के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। मैं राष्ट्र की बात क्या कहूँ, परम पावन आध्यात्मिक जीवन मे भी वर्तमान मे अनेक कूटनीतियाँ फैलती हुई परिलक्षित हो रही हैं। साधना पथ पर बढने वाले नि स्वार्थ निस्पृह कहे जाने वाले साधको के मन मे भी स्वार्थ, स्व का प्रदर्शन, मोह, ईर्ष्या, राग-द्वेष की भावनाएँ बनती जा रही हैं। इस परिवार के बीच चलनेवाला साधक कभी भी अपनी आत्मा को कर्मो के बधन से स्वतत्र नही कर सकता। हमारी आत्मा भी कर्मों से पराधीन बनी हुई है। जब तक वह कर्मो के बन्धन को तोडने का प्रयास नही करेगी, तब तक वह शाश्वत शाति की प्राप्ति नही कर सकती। सूत्रकृताङ्ग सूत्र मे महाप्रभु ने कहा है।

"बधण तिउट्टिज्जा" हे भव्य साधक ! बधन को समझकर उसे तोडने का प्रयास करो।

स्वतत्रता के इस दिवस को प्रतीक बनाकर भी अध्यात्म साधक को, आत्मा को स्वतत्र बनाने का प्रयास करना चाहिये।

अन्तगड़दशाङ्ग सूत्र के माध्यम से आपके सामने ऐसी एक नही, अनेक घटनाएँ उभरकर सामने आ रही हैं, जिन घटनाओ मे उन महापुरुषो का वर्णन आ रहा है, जिन्होंने कि ससार के स्वरूप को समझकर जन्म-जन्म से कर्मो की जकडी भटकती हुई आत्मा को साधना पथ पर लगातार सशोधित-परिष्कृत कर परि-पूर्णत. स्वतंत्रता प्राप्त की थी। जिस स्वतत्रता को पाने के बाद उनकी आत्मा

कभी भी बधन मे नही जकड सकती। अनन्त सुख मे तल्लीन हो जाती है। ऐसी ही स्वतन्त्रता पाने के लिए भव्यात्माओ को प्रयत्नशील वन जाना चाहिये।

अन्तगड सूत्र के माध्यम से अभी विद्वान मुनि [श्री ज्ञानमुनि जी] मे आपने गजसुकुमाल एव श्रीकृष्ण के जीवन के विषय मे श्रवण किया। प्रतिवर्ष की अपेक्षा आपको इस वर्ष अन्तगड सुनने मे समझने मे कुछ तफावत लगी होगी। आपने सुना गजसुकुमाल कुमार को, श्रीकृष्ण अपना सारा राज्य देने के लिए तैयार हो गये। कितना अपने छोटे भाई के प्रति श्रीकृष्ण का स्नेह था, यह तो इस घटनाक्रम से स्पष्ट हो जाता है। क्या आज के भाइयो मे अपने भाइयो के प्रति इतना प्रेम है। क्या वे अपने भाई के सुख-दु ख मे सहायक वनते है। यह तो दूर रहा अगर भाई भोला या नासमझ है तो उसे पिता की सपत्ति से वचित किया जाता है, ऐसा भी देखने को मिलता है कि एक भाई तो भूखा मर रहा है और दूसरा भाई ऐश कर रहा है।

बन्धुओ! जब जीवन मे भाई-भाई के प्रति भी प्रेम-स्नेह की भावना उत्पन्न नही होगी तो विश्व के सभी प्राणियो के प्रति आत्मीय भावना की उत्पत्ति की सभावना ही नही की जा सकेगी। आत्मशुद्धि के इस पावन प्रसग पर सभी के प्रति आत्मीयता भाव जागृत करना आवश्यक है। आज तो कई व्यक्ति ऐसे भी देखने को मिलते है कि वे धर्मस्थान पर भी अभिमान को छोडकर नही अपितु लेकर आते है। ऐसे व्यक्तियो के यहाँ पर भी बैठने के लिए कुर्सियाँ चाहिये। उनके अभिमान पर किसी भी प्रकार की ठेस नही लगनी चाहिये। परन्तु ऐसे विचारो के व्यक्ति यहाँ आकर के भी अपने जीवन का सशोधन नही कर पाते बल्कि और अधिक से अधिक कर्मो का बन्धन कर लेते है। ऐसे व्यक्ति को अभिमान छोडकर सच्चा जिज्ञासु बनना चाहिये। जब तक व्यक्ति अभिमान मे भरा रहता है, अपने प्रदर्शन मे लगा रहता है, तब तक वह व्यक्ति सच्ची आत्मशुद्धि नही कर सकता न ही परमात्मा का साक्षात्कार कर पाता है।

मुस्लिम मजहब मे एक घटना आती है कि हुसैन नाम का सम्राट प्रतिवष मक्का मदीना की यात्रा करने के लिए जाया करता था, वह अपने साथ बहुत-सी धन सपत्ति, वाहनादि भी लेकर जाता था। उसका जाने का मुख्य उद्देश्य यह रहता था कि लोग उसके ऐश्वर्य को देखकर उसकी प्रशसा करे। लेकिन एक गरीब असहाय बहिन राबिया भी प्रतिवर्ष मक्का मदीना की यात्रा करती थी, लेकिन उसकी यात्रा सभी प्रकार के प्रदर्शन से दूर, केवल अल्लाह की भक्ति से अनुप्रेरित होकर होती थी। राबिया किसी भी वाहन मे न बैठकर पैदल ही यात्रा करती थी।

एक समय की बात बतलाई जाती है कि राबिया जब मक्का मदीना की यात्रा पर थी, तब उसे खुदा के दर्शन हुए, खुदा उससे बडे प्रेम से बात कर रहे

थे, ठीक उसी समय सम्राट हुसैन भी पीछे चला आया। उसने देखा कि खुदा राबिया से बात कर रहे है। तो वह कहने लगा कि आप इस गरीब को दर्शन दे देते है, लेकिन मैं जो आपके प्रतिवर्ष दर्शन करने के लिए हजारो रुपये खर्च करके आता हूँ, मुझे तो आप दर्शन नही देते, तब कहते है कि खुदा ने कहा कि तुम यहाँ शुद्ध मन से भक्ति से अनुप्रेरित होकर नही आते हो, बल्कि अपना प्रदर्शन करने के लिये आते हो, अत तुम्हे कैसे दर्शन दे सकता हूँ ?

सज्जनो! घटना चाहे किसी भी रूप मे घटित हुई हो या नही हुई हो, पर इससे यह शिक्षा जरूर मिलती है कि आप लोग धर्मस्थान मे धर्म करने के लिए आते है या अपने अभिमान का प्रदर्शन करने के लिये आते है ? यदि यहाँ आकर भी आपके मन मे यह भावना रह जाती है कि मै इतना पैसे वाला हूँ, सघ प्रमुख हूँ, राजकीय अधिकारी हूँ या और कुछ भावना लेकर यहाँ आते है, और आपको बैठने के लिए भी कुर्सी चाहिये। ऐसी भावना लेकर चलने वाले की फिर किस प्रकार आत्म-शुद्धि हो सकती है ? उसमे परमात्मा की अभिव्यक्ति कैसे हो सकती है ? इस रूप मे तो आप एक बार नही अनेक बार जन्म-जन्म तक भी धर्मस्थान पर आते रहे, साधना भी करे तो भी आत्म-शुद्धि नही मिलने वाली है।

सच्ची साधना मे प्रवेश करने के लिये सबसे पहले मस्तिष्क से अभिमान, क्रोध आदि वैभाविक वृत्तियो को निकालना आवश्यक है। जब तक 'वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना नही बनेगी। तब तक साधना सही माने मे सफल नही हो सकती। कई मेरे भाई गौ-रक्षा की बात भी करते हैं, तो मेरा भी कहना यही रहता है कि गौ-रक्षा होनी ही चाहिये, पर इसके साथ गौ से भी बढकर मानव की रक्षा की ओर ध्यान देना आवश्यक है। आज मानवो की क्या हालत हो रही है, जरा इस ओर भी ध्यान दीजिये। दूर की बाते तो जाने दो, आपके बबई शहर मे भी देख लीजिये कि कुछ लोगो के अलावा बहुल भाग झोपडपट्टी मे, दुर्गंध मे श्वास लेता हुआ जी रहा है। कही-कही तो खाने के लिए रोटी और पहनने के लिये वस्त्र भी उनके पास नही है। अगर वास्तविक आजादी मे जीना चाहते हो तो जरा इस ओर ध्यान देना आपका अपना कर्तव्य हो जाता है। केवल मुँह से स्वतत्रता के गीत गा लेने से या झडा फहरा देने से स्वतत्रता का सही रूप नही आ सकता। इसके लिये वस्तुत मानवीय प्रेम जागृत करना होगा।

अभी सघ प्रमुख वजूभाई दीक्षाओ की विनती कर गए। आप देख रहे हैं कि यह शासन किस प्रकार विकास कर रहा है। अभी आपने वैराग्यवती बहिन प्रिया एव अन्य बहिनो के भावो को सुना। इनके मन मे कितनी तमन्ना है सयम जीवन स्वीकार करने की। इस शासन के विकास मे वीतराग देव की साधना के साथ पूर्वाचार्यो के तप-सयम का ही प्रभाव मूल मे है। आत्मिक बधन को तोडने के लिये सयम की स्वतत्रता को अपनाना आवश्यक है।

बन्धुओ ! हॉल के बाहर शोरगुल बहुत हो रहा है । क्या धर्मस्थान मे आकर इतनी सभ्यता शिष्टता नही रह पाती कि शाति से श्रवण करे । कहाँ चर्च मे क्रिश्चियन लोग शाति से श्रवण करते है और कहाँ आप लोगो की स्थिति सुनने को मिलती है तो बडा आश्चर्य होता है । जरा आप अपनी इस वृत्ति को सुधारने का प्रयत्न करे ।

बम्बई की इस बाहरी ट्रेफिक से भी बढकर भीतरी मन की ट्रेफिक है । भीतरी शोरगुल, बाहर से भी तेज है, उसे शात करने के लिये कर्मो से हटकर अन्तगड सूत्र मे वर्णित महापुरुषो की तरह स्वतत्रता के राही बनेगे तो निश्चित ही आत्म-कल्याण होगा ।

मोटा उपाश्रय, १५-८-८५
घाटकोपर, बम्बई वृहस्पतिवार

४७ सम्यक्त्वी का आचार कैसा हो ?

(पर्युषण पर्व—पचम दिवस)

पर्युषण के दिनो मे जिन-जिन महापुरुषो का व सतीवर्ग का वर्णन आपके समक्ष आ रहा है, वह सब जीवन के लिये अत्यधिक प्रेरणादायी है। वर्तमान का मनुष्य जीवन किसी की प्रेरणा पाकर आगे बढ सकता है। वैसे आत्मा को उद्‌बोधन स्वत —परत दोनो प्रकार मिलता है। 'तत्त्वार्थ सूत्र' मे कहा है — "तन्नीसर्गादधिगमाद्वा" स्वभाविकतौर से जीवन की अन्तर स्फुरणा से भी प्रकट होता है, और किसी का उपदेश सुनकर भी आत्मजागरण होता है। अन्तर्जगत् की स्थिति को लेकर जब मनुष्य चलता है, तो वह स्वय के जीवन का ज्ञान प्राप्त करता है। ऐसा प्रसग बहुत कम मिलता है। दूसरो के उपदेश से उद्‌बोधन पाने वालो आत्मा भी अपने जीवन मे वहुत कुछ ग्रहण कर लेती है। जब वह उसके अन्तर मे रम जाता है तो उसके आत्म ज्ञान का प्रकाश प्रगटीकरण मे आ जाता है।

अन्तगड सूत्र मे जो वर्णन आता है, उससे सुखद प्रेरणा मिलती है एव कई प्रश्नो का समाधान भी मिलता है। जहाँ कृष्ण वासुदेव के तेले का वर्णन सुना। वे अट्ठम करके बैठे, तीसरे दिन देव को बुलाया और देव उपस्थित हुआ। यहाँ सहज ही यह प्रश्न उपस्थित होता है कि सम्यक् दृष्टि आत्मा किसी देव की चाह नही करती, उन्हे नही बुलाती, उनकी मिन्नत नही करती, उसे बुलाने का प्रयत्न नही करती, फिर कृष्ण वासुदेव ने तेला करके देव को क्यो बुलाया ? यदि बुलाया तो क्या उनके सम्यक्त्व मे कोई दोष नही लगा ? जहाँ वर्णन आता है कि कृष्ण वासुदेव क्षायिक सम्यक्त्वी थे। तो उस सम्यक्त्व मे यह दोष कैसा ? दोष आया तो फिर उन्हे क्षायिक सम्यक्त्व कैसे आई ?

शास्त्रकारो ने जो वर्णन किया वह सही है। वे पक्के सम्यक्त्व दृष्टि थे। उनके रग-रग मे अणु-अणु मे सुदेव, सुगुरु और सुधर्म के प्रति दृढ आस्था थी, उसमे वे जरा भी मोच नही आने देते, पर घरेलू कार्यो मे कभी-कभी अन्य व्यक्ति की सहायता भी लेते थे। जहाँ कही भी सघर्ष करने का प्रसग आता है, युद्ध छिडता तो राजा-महाराजाओ की सहायता लेकर आततायियो को हराया भी जाता है तो क्या सम्यक्‌दृष्टि सासारिक कार्यो मे अन्य किसी की मदद नही ले सकते या ले सकते हैं ? जहाँ मनुष्य की शक्ति से काम न होता हो तो वहाँ वह देव की सहायता भी लेता है। कृष्ण वासुदेव ने देव को बुलाया, पर वह मोक्षमार्ग

की आराधना के लिये नही बुलाया था, वरन् आर्त भाव पाती हुई माता को आश्वासन देने के लिये। माता को ठीक तरह विश्वास दिलाने के लिये ही अट्ठम (तेला) किया था, वह तप आत्म शुद्धि के लिये नही किया गया था। जब वे तेले की तपस्या मे बैठे तो एकाग्रतापूर्वक अपनी भावना देव तक पहुँचाई, देव का आसन चलायमान हुआ और देव आया। आप सोचते होगे कि आज के भाई-बहिन भी तेला व लम्बी-लम्बी तपश्चर्या करते है फिर भी देव क्यो नही आते ? इस विषय मे कई मनुष्यो की जिज्ञासा होती है।

बन्धुओ ! याद रखिये कि उन्होने देव को बुलाने मे मनगुप्ति को साधा था, मन का अवधान किया था, उसमे मन की एकाग्रता बनी, जो मन गुप्ति को साध लेता है उसको इच्छित फल की प्राप्ति हो जाती है। आज के साधक तपस्या करते जरूर है पर ये शरीर को ही साधते है, मन को नही। मन उनका एकाग्र नही रह पाता। तपस्या चल रही है, सोचेगे अब पारणे पर मुझे क्या-क्या पदार्थ ग्रहण करना, मुझे उकाली चाहिये या अमुक वस्तु चाहिये। इस प्रकार की ये सारी कल्पनाये कई तपस्या करने वालो की चलती है तो समझना चाहिये अभी तक मन गुप्ति सधी हुई नही है, साधना सफल नही हुई। आज मनोविज्ञान की दृष्टि से मनोविज्ञान के विज्ञाता भी अपने विलपावर से इतनी शक्ति बना लेते है कि मात्र सकल्प से दूर पडी लोहे की छड को भी मोड देते है, ये शक्तिया आज अन्य-अन्य देशो मे कई भाई-बहिन अपने-अपने जीवन मे प्रगट कर रहे हैं, पर खेद है आज हिन्दुस्थान मे रहने वाले भाई इस तथ्य को नही समझ पा रहे हैं, बाहरी पदार्थो मे ही उनका मन चचल बन रहा है।

कृष्ण वासुदेव मन से एकाग्र थे। वे ऊपर से तीन खड का राज्य सम्भालते थे पर मन से एकाग्र थे। मन की एकाग्रता को आत्मा के सम्मुख रखकर चलते थे, उठते थे, बैठते थे, भोजन-शयन आदि करते थे। उनकी इन सारी क्रियाओ मे मन की साधना विपरीत नही होती थी। उन्होने आज के भाई-बहिन की तरह साधना नही की। आज देव को तो बुलाना दूर रहा पर जहाँ नमस्कार महामत्र का जाप करते हैं, वहाँ भी धूप-दीप आदि लगाते हैं। ये सम्यक्दृष्टि का लक्षण नही है, सम्यक्दृष्टि जीव धर्मस्थान मे सावद्य वस्तुओ का प्रयोग नही करते हैं। जहाँ सावद्य क्रिया होती है, वहाँ मन की साधना नही बनती। कृष्ण महाराज ने देव को बुलाने के लिये तेला किया, वह शास्त्रीय मर्यादानुसार किया था। धूप-दीप आदि प्रक्रिया नही की, क्योकि ये सावद्य प्रक्रिया हैं। जहाँ छोटे-छोटे जीवो की विराधना होती है वहाँ मन की साधना नही होती। छोटे से छोटे प्राणी की आह, उनकी दुराशीष, उनका उपमर्दन मन को शान्त नहीं रहने देता। अरिष्टनेमि के पास जाते समय भी श्रीकृष्ण जब घर से निकलते तब चतुरगी सेना साथ लेकर जाते थे पर समवसरण मे प्रवेश करते समय, व्याख्यान स्थल पहुँचते समय सचित्त वस्तुओ का त्याग कर देते थे। फूलो की मालादि उतार देते थे। अपने पास एक

इलायची का डोडा भी होता तो उसको भी अलग रख देते थे। समवसरण मे जाने के पहले वे उत्तरासन लगाते थे, वे जानते थे कि यह भगवान् का परिपूर्ण अहिंसक समवशरण है, जहाँ एकेन्द्रिय जीव का भी उपमर्दन न हो, छोटे से छोटे प्राणी की हिंसा न हो। इतनी निष्ठा उनमे थी। उसी निष्ठा के साथ बैठते थे। आज के भाई चाहते है कि हम भी गृहस्थाश्रम मे रहकर देव को बुलावे, पर उनकी विधि की ओर ध्यान नही देते, यह शरीर की शक्ति नही, मन की शक्ति है। आपको विचार करना चाहिये। भगवान् की आज्ञा की आराधना किस प्रकार की जाय। भगवान् साक्षात् नही है तो क्या, उनका ज्ञान तो साक्षात् है।

आत्मशुद्धि का माध्यम है—धर्मस्थान। अत धर्मस्थान मे प्रवेश करते ही आपको विचारना चाहिये कि हमारे पास फूलो की माला तो नही है, बहिने सोचे—हमारी चोटी मे फूलो की वेणी तो नही है आदि पाँच अभिगम का आपको पूर्ण रूपेण ख्याल रखना चाहिये। हम जा रहे है, जहाँ मन की साधना करने के लिये तो खुले मुँह न बोले। मेरे भाई ये बातें सुन लेते है पर ख्याल नही रखते। कपडा पास मे है पर मुँह पर लगाने का कष्ट नही करेंगे। कई भाई महाराज की साता पूछने जाते है तो कभी खुले मुँह से बोलकर उन पर थूक गिराकर महाराज की अशातना भी कर देते है। सतो पर थूक गिराना भी असभ्यता का सूचक है। सकेत देने पर भी मेरे कई भाई ख्याल नही देते। कृष्ण महाराज पाच अभिगम का ख्याल कर जाते थे। आप भी सोचे कि महाराज अहिंसक है तो उन सतो के पास जाने की मर्यादा क्या है ? उनका पालन करे।

सत पूर्ण ब्रह्मचारी होते है। अत बहिनो को उनके स्थान पर सूर्योदय के पूर्व और सूर्योदय के पश्चात नही आना चाहिये, और जो नियत समय है, उसी समय मे भाई की साक्षी मे बैठना चाहिये। व्याख्यान समाप्ति के बाद सतीवर्ग के स्थान पर बहिनो को चले जाना चाहिये। कदाचित् सामायिक नही आई हो तो थोडी देर बैठ भी गये तो बहिनो को यहाँ सोना कतई नही चाहिये। यह धर्म साधना का स्थान है। यहाँ तो जागृति लेने आये है। जब बेसमय मे रहना और बैठना भी नही तो सोना तो चाहिये ही नही। धर्म स्थान मे तो निर्वद्य प्रवृत्ति करने का प्रसग है।

जो ज्येष्ठ पुरुष है वे चाहे राष्ट्र के नेता हो चाहे सघपति हो, सघ अध्यक्ष हो, प्रमुख हो, वो जो जो करेंगे उसका अनुकरण जनता करेगी। कृष्ण वासुदेव जानते थे कि मैं सम्यक्दृष्टि भाव मे मजबूत हूँ। पौषधशाला मे न जाकर अन्य स्थानो मे जाकर अन्यथा करूँगा तो भी समकित मे दोष नही लगने दूँगा। पर वैसा न कर पौषधशाला मे गये। कृष्ण ने सांसारिक कार्य की दृष्टि से देव को बुलाया था न कि आध्यात्मिक दृष्टि से। पौषधशाला मे एकेन्द्रिय जीव की भी हिंसा नही की। अपने हाथ से प्रमार्जन किया। नौकर-चाकर बहुत थे पर

उन्होने सोचा ये अविवेकपूर्वक पूजेगे इसी दृष्टि से स्वय अपने हाथ से पूजा। आसन भी कैसा ? गादी-तकिये नही लिये। कुश का आसन बिछाया और पर्यंकासन से बैठे। उनकी मनगुप्ति की साधना इतनी तीव्र थी कि मन का सप्रेषण देव तक पहुँचा दिया। देव तक मन की गति पहुँचाने के लिये तीन दिन और तीन रात लगे। सम्यक्त्वियो को इनसे प्रेरणा लेनी चाहिये।

आज के वैज्ञानिको ने एक ऐसे ग्रह की खोज की है कि जिसे वे आर्टस-विमान कहते है। और यह भी कल्पना की है कि ऐसे ग्रह से यदि टेलीफोन मे सम्पर्क स्थापित किया जाय तो वहाँ तक सम्बन्ध होने मे ३५ प्रकाशवर्ष जाने मे और ३५ प्रकाशवर्ष आने मे लगते है। प्रकाशवर्ष का तात्पर्य है एक सूर्य किरण एक सेकण्ड मे १ लाख ८६ हजार मील गति करती है। उस गति से चलते हुए ३५ वर्ष तक जाने पर उस आर्टस से सम्बन्ध जोडा जा सकता है। उससे भी देवता का विमान दूर है, उससे सम्बन्ध जोडने मे तीन दिन तीन रात तो लग जाते है।

कृष्ण वासुदेव ने ऐसा कोई यत्र नही लिया पर मन के फोन की एक धारा लगाई, जो देव तक पहुँच गया। कृष्ण वासुदेव सासारिक कार्य के लिये देव को बुलाने हेतु अन्य कोई कार्य करते तो जनता भी गैर रास्ते पर चली जाती। इसी प्रकार समाज व मुखिया की प्रवृत्ति भी ऐसी हो कि पीछे की सतति गलत रास्ते पर न जाये। इस प्रकार का ध्यान प्रत्येक भव्य को रखना चाहिये।

मिथ्यात्व कब लगता है, जब ससार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग और मोक्ष के मार्ग को ससार का मार्ग समझे तब, देव को बुलाना उन्होने ससार का मार्ग समझा, मोक्ष का मार्ग नही। अत उन्हे सम्यक्त्व मे कोई दोष नही लगा। कृष्ण वासुदेव तो तीन खड के अधिपति ही थे, पर जो चक्रवर्ती छः खड के अधिपति होते हैं वे भी इन छ खडो को साधने के लिये तेले की आराधना की तैयारी करते है। कुथुनाथ, शातिनाथ, अरहनाथादि भी चक्रवर्ती पद को प्राप्त करने के लिये तेले के तप की आराधना मे लगते थे। पर उन्होने भी सावद्य ढग से तेले नही किये थे। चक्रवर्ती पद की साधना सासारिक कार्य की थी। फिर भी सम्यक्त्व मे दोष लगाने की दृष्टि नही थी। अत सम्यक्त्व क्या है और मिथ्यात्व क्या है ? इस विषय को गहनता से समझना चाहिये। कृष्ण वासुदेव के समक्ष जब देव प्रकट हुआ तो उन्होने यही पूछा कि मेरे भाई होगा या नही ? देवो मे इतना सामर्थ्य नही कि वे किसी को पुत्र दे सके, वे भविष्य मे होने वाले को अपने ज्ञान मे देखकर बतला सकते है। उन्होने अपने उपयोग मे देखकर यही कहा कि आपके भाई तो होगा, पर अल्प वय मे ही सयम लेकर ससार से मुक्त हो जायेगा। कृष्णजी ने सारी जानकारी प्राप्त करली और देवकी को भी दे दी। वे यह जानते थे कि मेरा भाई भगवान् की

वाणी सुनकर साधु बन जायेगा, फिर भी वे उन्हे भगवान् के पास ले गये। उनका मोह कितना हल्का था, उन्हे समवशरण से उठाकर नही लाये बल्कि अपूर्व वात्सल्य दिखाकर दीक्षा की तैयारी करने लगे। आगे क्या कुछ घटना हुई, अतगड सूत्र के माध्यम से आपने सुना होगा, दीक्षा की दलाली से तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन कर लिया, पर आज तो एक टूटी-फूटी हडिया मे भी मोह ममत्व की स्थिति नही छोडी जा सकती किन्तु कृष्ण महाराज सच्चे सम्यक्दृष्टि थे। उन्होने प्राणो से भी प्यारे नयनो के तारे राजकुमारो, कुमारियाँ एव रानियो को दीक्षा की अनुमति देने मे जरा भी सकोच नही किया, पर आपकी प्राण प्यारी कदाचित् दीक्षा लेने की भावना रखती हो तो आप क्या कुछ करेंगे ? आज जीवन पर कितना मोह, कितना ममत्व है ? मासखमण करके शरीर कृश कर लेंगे पर मन नही सधेगा।

मैं योग साधना की बात पूर्व मे कह गया था। जीवन मे योग की साधना सही तरीके से की जाय तो जीवन मे सम्यक्दृष्टि भाव की साधना भी कर सकता है, जो गहरे ममत्व मे पड जाता है, वह सम्यक्दृष्टि भाव से गिर जाता है। उसके विकास का मार्ग रुक जाता है। मन की साधना यदि दृढ सकल्प के साथ की जाय तो सारी दुनिया को हिलाया जा सकता है, पर सच्चा साधक अपने चमत्कार से दुनिया को हिलाने की भावना नही रखता, उसकी साधना तो आत्मा को उजागर बनाने मे ही रहती है।

बन्धुओ ! यह सारा विषय इन आठ दिनो मे ग्रहण करना है, जीवन की आलोचना करनी है। धर्मस्थान मे कभी भी सावद्य प्रवृत्ति नही करेंगे तो ही अपने मन की साधना का प्रसग उपस्थित कर सकेंगे। यदि इस विषय मे किसी को भी शका-विशका हो तो शास्त्रीय प्रमाण सहित वीतराग देव की आज्ञा के अनुसार शका का समाधान खुले दिल से ले सकते है। मेरा तो यही कहना है कि आप वीतरागदेव की आज्ञानुसार चलेंगे तो आप अपने जीवन मे जरूर चार चाद लगा सकते हैं।

मोटा उपाश्रय,
घाटकोपर, बम्बई

१७-८-८५
शनिवार

४८

आत्मा को हल्की बनावें

(पर्युषण पर्व—षष्ठ दिवस)

उपशान्ति के केन्द्र, परम शाति के समुद्र, अनत सुख के दरिया एव अनत शक्ति सम्पन्न वीतराग देव, जिनकी बदौलत आज भव्यजन अपने कषायो को शमित कर जीवन के अमृत कु भ को, अमृत घट को भरने का प्रयास करते है। ऐसा सयोग जिन आत्माओ को मिलता है, वे आत्माएँ इस जीवन मे रहती हुई स्वय धन्य बनती है और स्वय के पास आने वाले अन्य प्राणियो को भी शाति का सदेश देती है। आज जो अशाति का दौरदौरा चल रहा है, प्राय करके चारो तरफ आत्मा को अशाति का अनुभव होता है। यह अशाति आयी कहाँ से और किसने पैदा की ? यह अशाति बाहर से नही आती। अशाति पैदा करने वाली स्वय यह आत्मा इस शरीर मे रहती हुई ऐसे कुछ कर्म उपार्जन करती है, जिनके ऐसे परिणाम सामने आते है, जिससे उस समय वह स्वय अशान्त बन जाती है। जिस वक्त भग, दारू आदि मादक द्रव्य पीता है, उस समय उसे कुछ भी ज्ञात नही होता। पर जब भग का नशा तीव्र हो जाता है, उस समय वह कैसा दु ख का अनुभव करता है, यह वही जान सकता है। ये मादक द्रव्य मनुष्य को बेभान बनाने वाले है। जो मादक द्रव्यो को पीने की कोशिश नही करता है, वह मादक द्रव्यो के प्रभाव से प्रभावित नही होता। कभी कुतूहलवश या कभी भद्रिक प्राणी अन्यो के कहने मे आकर ऐसा नशीला पदार्थ ग्रहण कर लेते है तो वे स्वय अशाति के झूले मे झूलते हैं और परिवार के भी घातक बन जाते हैं। ऐसी बहुतेरी घटनाएँ सामने आती है।

मेवाड (राजस्थान) मे गगापुर नामक गाँव मे होली के दिनो मे महेश्वरी समाज की एक बहन रास्ते पर चल रही थी। कुछ उद्दड युवको की टोली ने जाती हुई बहन को कहा कि—लो ठडाई पी लो। वह जान नही पाई, उस ठडाई मे भग मिली हुई थी, उसे ऐसा नशा आया कि कुछ भी भान नही रहा, वह बेभान हो गई। जब उसका सात वर्षीय बच्चा खेलता हुआ उसके पास आया, तो कुछ भान तो था नही, एक लोहे की कील उठाई और पत्थर लेकर उस बच्चे के माथे पर ठोक दी।

अब देखिये अशाति पैदा किसने की ? उत्तर होगा उस बहिन ने। वैसे ही यह चैतन्य देव अनादि काल से स्वय कर्मो से भारी बनकर दु खी होता हुआ चला आ रहा है। जहाँ आत्मा हल्की होती है तो ऊर्ध्वगामी बनती है या तिर्छे लोक

मे भी रहती है, पर क्रूर कर्मो के अर्जन से इतनी भारी बन जाती है कि तिर्छे लोक को छोडकर पाताल लोक मे पहुँच जाती है। वहाँ उसे कोई अन्य नही ले जाता पर स्वय कृत कर्मों से भारी बनकर नीचे जाती है।

भगवती सूत्र के श० १२ उ० दूसरे मे वर्णन आता है कि भगवान् महावीर के समय कई साधक आये उनमे एक जयन्ती नाम की श्राविका भी आई। उस श्राविका ने भगवान से प्रश्न किया—यह आत्मा, यह चैतन्य देव अच्छा है। आपके कथनानुसार ऊपर उठना इसका स्वभाव है फिर यह नीचे कैसे जाता है ?

"कहण भते ! जीवा गुरुयत्त हव्वमागच्छन्ति ? जयति ! पाणाइवाएण जाव मिच्छादसण सल्लेण। एव खलु जीवा गुरुयत्त, हव्वमागच्छन्ति ॥"

उस श्राविका के प्रश्न से जान सकते हैं कि उस समय ऐसी-ऐसी श्राविकाएँ भी होती थी जो गूढ ज्ञान को लेकर तात्विक प्रश्न करती थी। वह श्राविका प्रभु से प्रश्न करती है, प्रभु उसे उत्तर देते है कि हे श्राविके ! आत्मा का स्वभाव हल्का है जिससे यह ऊपर जाती है पर कर्मो के भार से भारी बनकर नीचे जाती है। प्रभु ने आत्मा के भारी होने के कारण प्राणातिपातादि १८ पाप बताये हैं, इनके कर्म बधन से आत्मा भारी बनती है, और यह भारीपन आत्मा को अध· पतन की ओर ढकेल देता है।

भगवान् ने तुम्बी का रूपक देकर समझाया कि जैसे—तुम्बी को पानी मे डाला जाय तो ऊपरी सतह पर तैरती है पर जब कोई व्यक्ति उस पर मिट्टी का लेप लगातार सात या आठ बार लगाते जाय और उस तुम्बी को मिट्टी के लेप से भारी बना दिया जाय, उसे फिर पानी के सतह पर रख दी जाय तो वह तुम्बी पानी की सतह पर टिकेगी नही, नीचे चली जायेगी। वैसे ही हे जयतो ! यह आत्मा प्रतिक्षण-प्रतिपल कर्मो का लेप अपने पर लगाती है। आगे प्रश्न किया गया है—भगवन् ! यह किन-किन निमित्तो से, किन-किन कारणो से यह कर्मो का लेप लगाती है ? महाप्रभु ने उसके लिये प्राणातिपात आदि पापो को कारण बताया।

आचाराग सूत्र मे महाप्रभु ने बतलाया है कि हे पुरुष ! तू वही है, जिनको तू मारना चाहता है, क्योकि दूसरी आत्मा मरेगी या नही पर पहले तू स्वय मरेगा, तेरा घात होगा। यदि तू अधिक जिंदा रहना चाहता है तो पहले प्राणी मात्र को अभय दे, शाति दे फिर तुम्हे अभय मिलेगा।

बधुओ ! आप सोचेंगे कि दूसरे को मारने से पहले वह स्वय कैसे मारा जायेगा ? मनोविज्ञान की दृष्टि से चिंतन करे कि जो व्यक्ति दूसरे के मकान को गिराना चाहता है तो गिराने का नक्शा पहले अपने मन मे बनाता है तो अपने ही मस्तिष्क मे नाश के सस्कार पैदा करता है। एक व्यक्ति सोचता है कि मैं

बारूद इकट्ठा करके पडौसी के मकान को तहस-नहस कर डालूँ, यह सोचकर पहले अपने घर मे बारूद इकट्ठा कर लिया और कभी जरा-सी असावधानी से उसमे कही से आग की छोटी-सी चिनगारी लग गयी तो किसका घर नष्ट होगा ? पहले स्वय का । वैसे ही यह आत्मा दूसरो का घात करने से पहले स्वय का घात करती है । उसके पहले कर्म बध जाते है ।

एक साथ आत्मा सात तथा आठ कर्मो को बाँधती है । वे आठ कर्म कौन-कौन से हैं ? ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गौत्र और अतराय कर्म ।

ज्ञान प्राप्त करने वालो को अतराय देने से ज्ञानावरणीय कर्म का बध होता है । इसी तरह आगे के कर्म दर्शनावरणीय आदि के कारण भी जानने चाहिये ।

मनुष्य के शारीरिक रोगो की अपेक्षा मानसिक रोग ज्यादा है । प्रभु महावीर ने इसका बहुत सुन्दर प्रतिपादन किया है । आज का विज्ञान भी धीरे-धीरे इस ओर बढ रहा है ।

वैज्ञानिक आज इस बात को महसूस कर रहे है कि जितना जो व्यक्ति अपने आप मे कलुषित होता है, वह हिसा का ऐसा रोग पैदा करता है, जो आगे चलकर कैंसर का रूप भी धारण कर लेता है ।

कैंसर के रोग का आज इलाज क्यो नही हो पा रहा है ? कैसे हो ? जब तक हिसा के या दूसरो को सताने के विचार चलते रहते है तो मस्तिष्क के जो ग्लैड्स है, जो ग्रन्थियाँ है उनमे पॉयजन पैदा हो जाता है तब कैंसर का रोग उत्पन्न हो जाता है ।

जहाँ मनुष्य किसी को सताता है, चोरी करता है तब उसे खुद को चैन नही पड़ती ।

फोरेन मे एक ऐसा प्रसग आया कि—गिरजाघर पहुँचकर साधक मौन साधना करते है, वहाँ ऊपर से सुई के गिरने की आवाज तो आ जाय पर मनुष्य के कोलाहल की आवाज न आय । ऐसी स्थिति सुनने को मिल रही है ।

ऐसे स्थल पर एक बहन पहुँची तब उसके शरीर मे खुजली चलने लगी, वह सोचने लगी कि जहाँ धर्म स्थान है, शाति का स्थान है वहाँ आते ही मुझे हमेशा अशाति हो जाती है । ऐसा क्यो ? कारण ढूँढने पर भी कुछ न मिला तो पोप ने एक मनोवैज्ञानिक डॉक्टर से कहा—इस बहन के शरीर मे क्या रोग है, तपास करो । धर्म स्थान मे आती है तो खुजली आती है और यहाँ से जाती है तो ठीक हो जाती है ।

आज भी कइयो की स्थिति भी ऐसी ही है कि नवकार मन्त्र की माला फेरते है तो हाथ धूजने लगते है। मेरे कई भद्रिक भाई कहते है कि म० सा० ! हम धर्म स्थान मे आते है तो हमारा मन नही लगता।

बधुओ ! मैं तो साधु ठहरा। साधु मर्यादा मे उत्तर दे देता हूँ।

मैं फोरेन की बात कर रहा था कि डॉक्टर ने हर तरह से उस महिला के शरीर की तपास की, सब कुछ स्थिति ठीक होते हुए भी निदान नही कर पाया तो डॉक्टर ने उस महिला से कहा कि—तुम्हे शारीरिक नही, मानसिक रोग है। इसका इलाज तुम स्वय कर सकती हो। तुम्हे कौनसा मानसिक रोग है, इसका तुझे पता नही है , पर मैं कहता हूँ कि जिस ऑफिस मे तुम सर्विस करती हो तो वहाँ का वह अफसर तुम पर विश्वास करके सारा कारोबार तुम पर छोड देता है पर तूमने उसके साथ कोई धोखा-धडी तो नही की ? तो वह महिला बोली—कुछ नही की। चिकित्सक ने कहा—तुम अपने मन की बात जब तक मेरे सामने नही रख दोगी तब तक तुम्हारी बीमारी नही जायेगी। मै तुम्हारी गुप्त बात किसी को नही कहूँगा। तब वह कुछ आश्वस्त हुई और सारी अदर की बात रखदी। बतलाया कि—मैं मेरे मालिक की दुकान से माल चुरा लेती हूँ, पैसा इकट्ठा भी कर लेती हूँ। कभी ऐसी भावना भी जगती है कि—इस मालिक को मैं ऐसा पदार्थ खिला दूँ, जिससे इसके शरीर मे खुजली-२ हो जाय। जिससे यह ऑफिस मे न आ पावे। तब डॉक्टर ने कहा—यह प्रकारान्तर से हिसा तुम्हारे जीवन मे खुजली पैदा करनेवाली है। तुम यदि अपनी खुजली मिटाना चाहती हो तो नि सकोच अपने मालिक के पास जाकर आलोचना कर दो। उसके दिल मे यह बात जम तो नही रही थी। पर विचार करने लगी कि - डॉक्टर जाकर कह देगा तो ठीक नही होगा, वह स्वय गयी और एकान्त मे अपने मालिक से कहने लगी—मैंने आपके साथ अनीति की, धोखाधडी की, मैं ऊपर से नही जान पाई पर भीतर से अनुभव कर रही हूँ अत मेरी इस बीमारी को मिटाने के लिये आप मुझे माफ कर दें और आपका सारा धन जो मेरे बगले पर सुरक्षित पडा है, ले आवे। मालिक भी गभीर था, कहने लगा कि गलती मेरी है, मैंने तुम्हारी आजीविका के लिये बराबर व्यवस्था नही की पर अब तुम प्रण करो कि अब भविष्य मे ऐसी गलती कभी नही करोगी। उसने अपनी गलती स्वीकार करली और भविष्य मे ऐसी गलती नही करने की प्रतिज्ञा ली। वह मालिक कहने लगा अब तुम शुद्ध-विशुद्ध हो।

गलती करना बुरा है, पर उस गलती को गलती समझकर उसे निकालने की जो चेष्टा करता है, उसका जीवन सुधर जाता है और जो नही करता है, उसकी मानसिक स्थिति खराब होने के साथ-साथ वह अल्प समय मे ही परलोक को प्रयाण कर जाता है, उसका परलोक भी विगड जाता है।

बधुओ ! यह तो आधुनिक युग का थोडा-सा उदाहरण दिया है पर प्रभु कह रहे है कि हे जयती ! जो अपने दु ख को दु ख रूप नही समझता है, अन्य को सताता है वह अपने मन मे क्रूरता ले आता है, उसके मन की स्थिति डावा-डोल बन जाती है । प्राणातिपात आदि अठारह पापो मे परिग्रह पाँचवाँ पाप है । हिसा और परिग्रह विचित्र ढग का पाप है, जो मानसिक रोग, कंसर आदि मारी बीमारियो की जड है ।

आज मानव अशात है, आखिर ये बीमारी है क्या ? इसका पता नही लगा पाता । पता लगाना है तो वीतराग देव के सिद्धान्तो की छाया मे आना होगा । इन बीमारियो से मुक्त होना है, तो इस आत्मा को १८ पापो के त्याग करने होगे । इन्हे करने से ही आत्मा हल्की बन सकेगी । इनको हटाने के लिये पर्युषण के दिन चल रहे है, आज छठा दिन होने से तेले का घर है । देखिये इस घर के दिवस मे गभीरता से प्रत्येक भव्य को चितन करना है । मानसिक रोग की निवृत्ति के लिये तपाराधन के साथ वीतराग के सिद्धान्तो को, नजदीक से श्रवण करे, नजदीक से सम्पर्क साधे, नजदीक के सप्रेषण से अपने जीवन को आगे बढाएँ ।

फोन मे न बोलने वाला व्यक्ति बीच मे किसी का माध्यम रखता है तो वह बात नही कर पाता है । आप अपने आपको हल्के बनाना चाहते है तो इतने हल्के बन जाइये कि इन दिनो मे ३ करण ३ योग से छ काय की हिंसा का त्याग करे । वैसे ही १८ पापो का त्याग करके सवत्सरी महापर्व की आराधना करने का प्रयास करें । शोरगुल से रहित होकर अपने पापो का प्रतिक्रमण करे । सवत्सरी के दिन सूर्यास्त के समय से मौनपूर्वक आप शुद्धिकरण करिये और उस शुद्धिकरण मे यदि कोई हिंसात्मक माध्यम आयेगा तो आप पूरा शुद्धिकरण नही कर पायेंगे ।

भगवान् महावीर का सिद्धान्त अहिंसा परमोधर्म का है । जो अहिंसा परमोधर्म की छाया मे आता है वह अपने जीवन को पावन बनाता है । आज व्यक्ति हिसा के अलावा बात भी नही करना चाहता, उसकी व्यवहार-पद्धति हिंसा मूलक हो गई है ।

शाति चाहते है तो पहले अन्य प्राणियो को शाति दें ।

एक व्यक्ति घबराता हुआ एक भाई के पास आकर कहने लगा कि मुझे शाति दो । उसने कहा तुम्हे शाति दूसरे से नही स्वय से मिलेगी । तुम्हारे भीतर मे शाति का खजाना भरा पडा है, उसे तुम दूसरो को देने लग जाओगे तो तुम्हारी शाति बढती जायेगी और कजूस बने रहे तो शाति कभी नही मिल सकेगी ।

१२ महीने अहिसा का पालन करो तो वहुत ही श्रेष्ठ बात है। रोज नही तो पर्व, पक्खी, अष्टमी के दिन और इतना न वन सके तो सवत्सरी को तो हिसा का त्याग करे। उस दिन भी यदि हिसा करते है तो स्वय की आत्मा को तो भारी बनाते ही हो पर वीतराग देव की भी आशातना करते हो। आप जैनी हो या नही ? इसका थर्मामीटर अपने आप मे लगाओ कि जैनत्व आपमे है या नही ? जैनी का कर्तव्य है कि सबसे पहले महापाप का त्याग करे और बाद मे अपने जीवन को बनाने के लिये धार्मिक की दृष्टि से अष्ट कर्मो से लिप्त वनने से दूर रहे। भगवान् ने नरक-गमन के ४ कारण बताये—महारभी, महापरिग्रही, पचेन्द्रिय की घात करने से और मद्य-मॉस का आहार करने से। इन चार कारणो मे दो कारण तो मुख्य रूप से अण्डाहार मे आ जाते है। क्योकि अण्डा पचेन्द्रिय जीव है। उसको खाने वाला पहले उसका हनन करता है तो पचेन्द्रिय जीव की हिसा का प्रसग बनता है। फिर उसको खाता है तो मासाहार का प्रसग बनता है। इस प्रकार एक अण्डे का आहार करने मे नरक गमन के दो हेतु बन जाते है।

अत आर्य सस्कृति के उपासको को तो कभी भी अडे का सेवन नही करना चाहिये। सामान्य अवस्था की बात तो दूर रही भयानक रोग भी आ जाय, मारणान्तिक कष्ट की स्थिति हो, तथाकथित डॉ० का परामर्श भी हो कि अडे खाने से ठीक हो जायेगा तथापि आर्य पुरुषो को मासाहार से दूर रहना चाहिये।

मनुष्य का खाना मास व अडा नही है, पर जिसमे जैनत्व के सस्कार नही है, वे अण्डा आदि का सेवन कर लेते है। आज तो स्कूली शिक्षाओ मे अडे को निरामिष समझकर अडाहार करने की शिक्षा दी जाती है, जिनको बचपन से जैनत्व के सस्कार नही मिले, जिन्होने वीतराग देव के सिद्धान्तो को सही रूप मे नही समझा, स्व-पर के साध्य को नही समझा वे ऐसा करते है पर मैं आपके समक्ष एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण रखता हूँ, जिसमे जेनत्व के सस्कार बचपन से ही भरे पड़े थे।

भोपाल के भाई भीमसिंहजी जो यहाँ आये हुए हैं। ये जज भी रह चुके है। ये जब कॉलेज मे पढते थे, तब का प्रसग है कि—सभी विद्यार्थियो ने मिल-कर एक बार टी पार्टी के लिये कहा कि सभी अपने घर से टिफिन लेकर आये। भाई भीमसिंहजी भी विद्यार्थी के रूप मे थे, अत वे भी अपना टिफिन लेकर पहुँचे। सभी विद्यार्थीगण भोजन का समय होने पर अपना-अपना टिफिन खोलकर भोजन करने बैठे तो भाई भीमसिंहजी से अन्यो के टिफिन मे अडे देखकर रहा न गया। अत बोले कि तुम महापाप का खाना खाते हो यह ठीक नही। तब वे साथी अडे को निरामिष बताकर श्री भीमसिंहजी से भी खाने का आग्रह करने लगे,

तो उन्होने मुखिया को कहा कि ये विद्यार्थी मुझ जवरन अण्डा खिलाना चाहते है तो शिक्षक ने उनकी इस बात पर गौर नही किया, अपितु विद्यार्थियो का समर्थन करते हुए कहा—अण्डा मास नही है अत खाने मे कोई ऐतराज नही है।

जिनमे जैनत्व के सस्कार नही है, वे चाहे किसी भी ऊँची पोस्ट पर क्यो न हों, उनके विचार ऐसे ही होते है। जव अध्यापक ने यह कह दिया तव विद्यार्थी भी खाने के लिए आग्रह करने लगे। किन्तु जैनत्व के सस्कारो मे पक्के भीमसिहजी ने इधर-उधर अपने भागने का रास्ता देखा, अन्य कोई दूसरा रास्ता नही मिला तो दीवार लाघकर भागते हुए घर आ गए, पर अडा नही खाया।

बधुओ! देखिये वीतराग देव के सिद्धान्तो की कितनी गहरी व दृढ निष्ठा होनी चाहिये। वास्तव मे अडा मासाहार है या निरामिष है, इसकी चर्चा मैं कई बार कह चुका हूँ।[1]

गाँधीजी ने भी इसे माँस के रूप मे माना है। माँस खाने वाले रोग से ग्रस्त बन रहे हैं। आज के वैज्ञानिक अण्डे के विषय मे दलीले दे रहे है। आप मुझसे पूछे। मैं आपको यथोचित एक-एक प्रश्न का समाधान दूँगा व बताऊँगा कि अण्डा निरामिष नही सामिष है। जरा विचार करे कि पशु का माँस, मुर्गी का अण्डा आपके स्वास्थ्य के साथ तालमेल खाता है क्या? आप किस शका में पडे है। आप कोई भी तर्क रखे मै युक्ति युक्त उत्तर दूँगा। इस बात को आप अनुभव मे ले सकते हैं। आज जैन समाज के बच्चे-बच्चे मे यह घृणा हो जानी चाहिए कि यह ग्राह्य नही, हानिकारक व पापकारी है। डॉ० की स्थिति से समझें कि एक इजेक्शन भी बिना उबले पानी से धोये एक दूसरे के नही लगाया जा सकता है तो फिर दूसरे पशु-पक्षियो का माँस कैसे खाया जा सकता है?

आज मानव अपने जीवन की स्थिति को शाति के क्षणो मे देखे कि हम क्या कर रहे है। अगर महापाप का त्याग नही किया तो आपमे जैनत्व कहाँ रहा? आप विचार करें और अपनी स्थिति से आगे बढें। अगर आत्मशुद्धि करनी है, भगवान् के वचनों का भोजन करना है, यदि आपको सच्ची भूख है, सच्ची जिज्ञासा है और वर्तमान जीवन शातिपूर्वक जीना है तो जो आप सुनें उसे जीवन मे उतारें।

जितनी अधिक हिसक कार्यो से आप लोग निवृत्ति लेंगे, उतनी मात्रा में जीवन में शाति आएगी। धार्मिक कार्यो मे तो हिसक साधनो का प्रयोग होना ही नही चाहिये।

---

१ 'अहिंसक देश मे घोर हिंसा—अण्डा शाकाहारी नहीं है' इस नाम से मेरे द्वारा सपादित आचार्य प्रवर की एक पुस्तक अलग से प्रकाशित हो चुकी है। —सपादक

चाहे आपको सुनाई दे या न दे पर प्रतिक्रमण, सामायिक आदि मे हिंसक साधनो का प्रयोग कभी नही करना चाहिये । मौनपूर्वक शाति के साथ सुनने पर आवाज दूर तक सुनाई देती है । प्राणातिपातादि पाप आपकी आत्मा को डुबोने वाले है । धार्मिकता के बहाने धर्मकरणी को बेचने का प्रसग उपस्थित किया तो धर्म को कौडी मे बेच देंगे । अत धर्म के साथ किसी भी फल की कामना नही रखनी चाहिये ।

वर्तमान जीवन को समझे । शाति कही बाहर नही स्वय के भीतर है । ठडे दिमाग से, गहराई से चिंतन करे, अपने आप की शाति को अपने अन्दर खोजे और छोटे से छोटे प्राणी को अभय दे । अर्जुन माली ने जो पाप कर्म किया, उनकी आलोचना कैसे की ? परिणामस्वरूप छ महिने मे ही अपने कर्मो को खपाकर, शुद्ध बनकर भगवान् महावीर से पहले सिद्ध अवस्था मे विराज गये । इन सब आदर्शो को सामने रखकर पूर्ण अहिंसक साधना के साथ जीवन जीने का प्रयास करेंगे तो इस जीवन मे भी परम शाति की अनुभूति हो सकेगी · ।

मोटा उपाश्रय, १८–८–८५
घाटकोपर, बम्बई रविवार

४६

प्रतिस्रोतगामी बनें

[पर्युषण पर्व—सप्तम दिवस]

इस पचमकाल मे जिन-जिन परिस्थितियो मे ससार चल रहा है। जिस भौतिक वायु मण्डल मे मानव के सस्कार भौतिकता की ओर चले जा रहे है। इसी रफ्तार मे यदि मानव की गति चलती रही तो इस प्रकार के सस्कारो का कही भी अन्त नही आ सकेगा। क्योकि जो जड तत्त्व है, वे परिवर्तनशील है। आत्मा से भिन्न जो तत्त्व है, उसे भौतिक तत्त्व कहा जाता है जड कहा जाता है। जड की परिधि मे अर्थात् जड के परिवर्तनशील सस्कारो के साथ जीवन के सस्कार परिवर्तित होते रहे तो ऐसा व्यक्ति स्वभाव की अभिव्यक्ति नही कर सकता। इसके लिए वीतराग वाणी की ओर ध्यान देना आवश्यक है। अमर सुख को वरने वाले महापुरुष ही अमरवाणी की अभिव्यक्ति करते है। वह अमरवाणी अजर-अमर बनाने वाली होती है।

तीर्थंकर देवो ने अनत-अनत करुणा करके जो उपदेश दिया, उसे गणधरो ने ग्रहण किया और गणधरो के बाद सुधर्मास्वामी जो गणधर थे, वे तीर्थंकर देवो के उत्तराधिकारी हुए, आचार्य पद पर सुशोभित हुए, उन्होने तीर्थंकर देवो की वाणी रूप अखूट खजाने को गुरु-शिष्य के वाचनाश्रम से सुरक्षित रखा। उसी परम्परा से आज भी जीवन को अजरामर बनाने वाली वाणो उपलब्ध हो रही है। जो अन्तगड सूत्र के माध्यम से पर्युषण के दिनो मे अधिकाधिक सुनने को मिलती है। अतकृत अर्थात् अन्त कर दिया कर्मो का जिसने, ऐसी आत्मा का वर्णन होने से अन्तगड सूत्र है।

भौतिक सत्ता-सपत्ति का प्रवाह जन साधारण को मोहित करने वाला बनता है, पर उस प्रवाह मे भी जिन आत्माओ ने अपने अभौतिक जीवन को समझा और विषय-कषाय से विपरीत दिशा मे गमन किया, प्रतिस्रोतगामी बने, वे जीवन के अन्त मे सदा-सदा के लिए अजरामर बन गये। नदी का प्रवाह जिस तरफ बहता है, उस तरफ उसी दिशा मे बहता हुआ कोई पुरुष चलता है, वह भले ही सैकडो कोस दूर चला जाय और समझे कि मैं इस अपार नदी के प्रवाह मे तैरता हुआ इतनी दूर चला गया, मैंने उत्क्राति की है। यह बात वह स्वय कह सकता है, किन्तु समझदार पुरुष उसकी प्रगति को प्रगति नही मानते। वे तटस्थ भाव से चिन्तन करते है कि जिधर पानी का प्रवाह बह रहा है उस दिशा मे गमन करने मे कोई कठिनाई नही आती, पानी का वेग उसकी सहायता ही करता

चाहे आपको सुनाई दे या न दे पर प्रतिक्रमण, सामायिक आदि मे हिसक साधनो का प्रयोग कभी नही करना चाहिये। मौनपूर्वक शाति के साथ सुनने पर आवाज दूर तक सुनाई देती है। प्राणातिपातादि पाप आपकी आत्मा को डुवोने वाले है। धार्मिकता के बहाने धर्मकरणी को वेचने का प्रसग उपस्थित किया तो धर्म को कौडी मे बेच देगे। अत धर्म के साथ किसी भी फल की कामना नही रखनी चाहिये।

वर्तमान जीवन को समझे। शाति कही वाहर नही स्वय के भीतर है। ठडे दिमाग से, गहराई से चितन करे, अपने आप की शाति को अपने अन्दर खोजे और छोटे से छोटे प्राणी को अभय दे। अर्जुन माली ने जो पाप कर्म किया, उनकी आलोचना कैसे की ? परिणामस्वरूप छ महिने मे ही अपने कर्मो को खपाकर, शुद्ध बनकर भगवान् महावीर से पहले सिद्ध अवस्था मे विराज गये। इन सब आदर्शो को सामने रखकर पूर्ण अहिसक साधना के साथ जीवन जीने का प्रयास करेगे तो इस जीवन मे भी परम शाति की अनुभूति हो सकेगी ।

मोटा उपाश्रय, १८—८—८५
घाटकोपर, बम्बई रविवार

कुछ आवाज आयी पर एक स्वर नही मिला । एवता मुनि ने वहते नीर मे नाव तिराई, कवि का आशय है । यह घटना तैरने की वात उभार रही है । एवता, छोटी वय का राजकुमार । शास्त्रीय दृष्टि से आठ वर्ष से कुछ अधिक उम्र का था । इसके विषय मे कुछ आचार्यो का मतभेद है । कोई कहता है कि छ: वर्ष का ही था, पर यह बात शास्त्रीय दृष्टि से मेल नही खाती है । क्योंकि छ. वर्ष की अवस्था मे तो सयम लेने का भी निषेध है । अत आठ वर्ष झाझेरी अवस्था आगमानुकूल है । किसी-किसी वालक की प्रतिभा बचपन मे भी विशिष्ट होती है । एवताकुमार बचपन मे ही विशिष्ट प्रतिभा के धनी थे । हो सकता है । आज के युग मे छोटे बच्चे को लेकर चर्चाएँ होती है कि छोटी वय के बच्चे आध्यात्मिक जीवन को क्या समझ सकते है । जिनके शरीर के अवयव विकसित नही हुए, तब शरीर के अवयवो का विज्ञान हुए बिना आध्यात्मिक जीवन का विकास कैसे होगा ? इन प्रश्नो के विषय मे कुछ अनुभूति के साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से चिंतन करना है । शरीर के अवयव दो तरह के होते है । स्थूल और सूक्ष्म । स्थूल शरीर के अवयव जागृत हो या न हो, पर सूक्ष्म ज्ञान शक्ति का माध्यम जो बुद्धि है, वह यदि अधिक सक्रिय बनती है तो उसमे समझने की बहुत बडी शक्ति-क्षमता आ जाती है । इस विषय को आज के वैज्ञानिको ने भी अछूता नही छोडा है । वैज्ञानिक केवल भौतिकता की ही खोज कर रहे है । यह बहुलता का कथन है ।

वैज्ञानिक स्थूल तत्त्वो के साथ-साथ अवयवो का भी प्रयोग कर रहे है । शरीर की स्थिति का अवलोकन व परीक्षण भी कर रहे है । आज के युग मे एलोपैथिक तथ्य सामने आ रहे है किन्तु ये सिद्धान्त स्थूल दृष्टि का परीक्षण करने वाले हैं । इससे विपरीत ज्ञान का माध्यम जो बुद्धि है । उस बुद्धि का परीक्षण भी वैज्ञानिक कर रहे है । शरीर मे तापमान को थर्मामीटर से देखते है, वैसे ही अमुक इन्सान की बुद्धि किस तरह की है । यह देखने के लिए वैज्ञानिको ने खोज की है—इन्सान दो तरह से (शारीरिक व बौद्धिक दृष्टि से) प्रौढ बनता है ।

शारीरिक दृष्टि से प्रौढ बना व्यक्ति सबकी दृष्टि मे आयेगा कि वह ४५ या ५० वर्ष का हो गया । यह सबकी दृष्टि मे है, पर बौद्धिक दृष्टि से वह व्यक्ति कितने वर्ष का है, इसका थर्मामीटर वैज्ञानिको ने निकाला है, वह थर्मामीटर व्यक्ति से किये जाने वाले प्रश्न की स्थिति से है । एक आयु की दृष्टि से दस वर्ष का बच्चा है, एक आयु की दृष्टि से पचास वर्ष का व्यक्ति है । दोनो को एक समान प्रश्न दिया, उस प्रश्न का समाधान पचास वर्ष का व्यक्ति नही दे पाया और दस वर्ष के बच्चे ने समीचिनता से दे दिया तो वह आयु की दृष्टि से दस वर्ष का है, पर बौद्धिक दृष्टि से पचास वर्ष का है । जो उत्तर नही दे पाया वह आयु की दृष्टि से पचास वर्ष का है पर बौद्धिक दृष्टि से दस वर्ष का ही है । अतः वैज्ञानिक दृष्टि से सिद्ध होता है कि बच्चे की बुद्धि प्रौढ-वृद्ध से भी अधिक विकसित हो सकती है । एवताकुमार की बुद्धि भी अत्यन्त विकसित थी, इसी का

है। इसमे एक मुर्दा कलेवर भी वहते हुए पानी के प्रवाह मे सैकडो मील जा सकता है। इतने मात्र से उस मुर्दे कलेवर को कोई विशेषता नही होती। घास का तृण भी उसमे वह सकता है, इसमे उस तिनके की विशेपता नही है। विशेषता उसमे है कि पानी का प्रवाह पश्चिम मे जा रहा है तो उसके विपरीत पुरुप पूर्व की ओर जावे तो उसे प्रतिस्रोतगामी कह सकते है। इसी प्रकार यह ससार के पाँच इन्द्रियो के विषय का प्रवाह [काम, क्रोध, मद, मत्सर, तृष्णा] नदी के प्रवाह की तरह वह रहा है। मनुष्य ने जन्म लिया, मानवोचित कला सिखी, विज्ञान की विधि प्राप्त की, दुनिया मे वीर भी कहलाया, लेकिन विषय-कपाय के प्रवाह मे ही वहता रहा और फिर कहे कि मैने वहुत प्रगति की तो ज्ञानीजन इसे प्रगति नही मानते। प्रगति उसमे है, जहा काम, क्रोध, विषय, कपाय जिस तरह मनुष्य को बहाते हैं, उससे विपरीत होकर जो आगे बढते है, वे ही सच्ची शक्ति अर्जित करते है। अन्तगड सूत्र मे उन्ही वीर आत्माओ का वर्णन किया गया है। जहा प्रौढ अवस्था मे रहने वाला व्यक्ति इस विषय को समझ कर आगे बढे, उसकी तो विशेषता है ही पर जिसने अभी तरुणाई की देहली पर पाँव भी नही रखा है, उसके पहले ही ससार के विषयो को समझ कर जो प्रतिस्रोतगामी बन गया, तो ऐसी महान् आत्मा का जीवन प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे तेज फेंकने वाला होता है, प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरणा देने वाला होता है।

एवताकुमार की घटना अतगड सूत्र की तरह भगवती सूत्र मे भी आयी है। ऐसे मुनि का वर्णन जहाँ अतगड सूत्र का वाचन होता है वहाँ तो न्यूनाधिक रूप मे श्रवण करने मे आ ही गया होगा। कविता की कडियो मे भी उनके जीवन का प्रसग आता है। कडियो का माध्यम है कठ। उन कडियो का उच्चारण करने मे कदाचित स्वर मे अवरुद्धता होने से कमी आ सकती है, तब स्वर जितना चाहिये उतना अच्छा नही होता। आप सभी श्रोतागण कडी से परिचित होने से आप उस कडी का एक स्वर के साथ उच्चारण करने का प्रयत्न करेंगे, पर विधि के साथ अविधि से नही। यह वीतराग वाणी का श्रवण यत्नापूर्वक करने का है, तो कविता की कडियो का उच्चारण भी यत्नापूर्वक करे। यत्ना का तात्पर्य खुले मुँह न बोले। उच्चारण यह स्वर है, स्वर मे भी वडी शक्ति होती है।

स्वर विज्ञान अपना अलग स्वतत्र महत्त्व रखता है। इससे अन्तर की सुषुप्त शक्ति जागती है। सारे मस्तिष्क मे एक ध्वनि तरग पैदा होती है, और उससे आन्तरिक योग की स्थिति प्राप्त हो सकती है। उस स्वर को आप बोलकर इस वायु मण्डल मे व्याप्त कर सकते है। महापुरुषो के जीवन की कडियो का उच्चारण करना, वाणी को, वाचा को पवित्र करना है। साथ ही मन का योग उसके साथ जुडेगा तो मन भी पवित्र होगा और आत्मा की भी शुद्धि होगी। तो स्वर मिलाइये—

एवता मुनिवर, नाव तिराई वहता नीर मे .

कुछ आवाज आयी पर एक स्वर नही मिला। एवता मुनि ने वहते नीर मे नाव तिराई, कवि का आशय है। यह घटना तैरने की वात उभार रही है। एवता, छोटी वय का राजकुमार। शास्त्रीय दृष्टि से आठ वर्ष से कुछ अधिक उम्र का था। इसके विषय मे कुछ आचार्यो का मतभेद है। कोई कहता है कि छ वर्ष का ही था, पर यह बात शास्त्रीय दृष्टि से मेल नही खाती है। क्योकि छ वर्ष की अवस्था मे तो सयम लेने का भी निषेध है। अत आठ वर्ष झाझेरी अवस्था आगमानुकूल है। किसी-किसी बालक की प्रतिभा बचपन मे भी विशिष्ट होती है। एवताकुमार बचपन मे ही विशिष्ट प्रतिभा के धनी थे। हो सकता है। आज के युग मे छोटे वच्चे को लेकर चर्चाएँ होती है कि छोटी वय के वच्चे आध्यात्मिक जीवन को क्या समझ सकते है। जिनके शरीर के अवयव विकसित नही हुए, तब शरीर के अवयवो का विज्ञान हुए विना आध्यात्मिक जीवन का विकास कैसे होगा ? इन प्रश्नो के विषय मे कुछ अनुभूति के साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से चिंतन करना है। शरीर के अवयव दो तरह के होते है। स्थूल और सूक्ष्म। स्थूल शरीर के अवयव जागृत हो या न हो, पर सूक्ष्म ज्ञान शक्ति का माध्यम जो बुद्धि है, वह यदि अधिक सक्रिय बनती है तो उसमे समझने की बहुत बडी शक्ति-क्षमता आ जाती है। इस विषय को आज के वैज्ञानिको ने भी अछूता नही छोडा है। वैज्ञानिक केवल भौतिकता की ही खोज कर रहे है। यह बहुलता का कथन है।

वैज्ञानिक स्थूल तत्त्वो के साथ-साथ अवयवो का भी प्रयोग कर रहे है। शरीर की स्थिति का अवलोकन व परीक्षण भी कर रहे है। आज के युग मे एलोपैथिक तथ्य सामने आ रहे है किन्तु ये सिद्धान्त स्थूल दृष्टि का परीक्षण करने वाले है। इससे विपरीत ज्ञान का माध्यम जो बुद्धि है। उस बुद्धि का परीक्षण भी वैज्ञानिक कर रहे है। शरीर मे तापमान को थर्मामीटर से देखते है, वैसे ही अमुक इन्सान की बुद्धि किस तरह की है। यह देखने के लिए वैज्ञानिको ने खोज की है—इन्सान दो तरह से (शारीरिक व बौद्धिक दृष्टि से) प्रौढ बनता है।

शारीरिक दृष्टि से प्रौढ बना व्यक्ति सबकी दृष्टि मे आयेगा कि वह ४५ या ५० वर्ष का हो गया। यह सबकी दृष्टि मे है, पर बौद्धिक दृष्टि से वह व्यक्ति कितने वर्ष का है, इसका थर्मामीटर वैज्ञानिको ने निकाला है, वह थर्मा-मीटर व्यक्ति से किये जाने वाले प्रश्न की स्थिति से है। एक आयु की दृष्टि से दस वर्ष का बच्चा है, एक आयु की दृष्टि से पचास वर्ष का व्यक्ति है। दोनो को एक समान प्रश्न दिया, उस प्रश्न का समाधान पचास वर्ष का व्यक्ति नही दे पाया और दस वर्ष के बच्चे ने समीचिनता से दे दिया तो वह आयु की दृष्टि से दस वर्ष का है, पर बौद्धिक दृष्टि से पचास वर्ष का है। जो उत्तर नही दे पाया वह आयु की दृष्टि से पचास वर्ष का है पर बौद्धिक दृष्टि से दस वर्ष का ही है। अतः वैज्ञानिक दृष्टि से सिद्ध होता है कि वच्चे की बुद्धि प्रौढ-वृद्ध से भी अधिक विक-सित हो सकती है। एवंताकुमार की बुद्धि भी अत्यन्त विकसित थी, इसी का

परिणाम था कि उसके माता-पिता उसकी बातो का रहस्य समझ नही पाये, जो उसने बहुत ही स्पष्ट रूप से बतलाया था। जिसने बाहरी रूप से ही नाव नही तिराई अपितु उस बच्चे ने तो अपनी आत्मा को इस भवसागर से तिराकर मुक्ति तक पहुँचा दिया था। महाप्रभु का ज्ञान असीम होता है। उन्होने एवताकुमार की बुद्धि को परख लिया था।

गौतम स्वामी जब भिक्षार्थ जा रहे थे, जहाँ बच्चे खेल रहे थे वही एवताकुमार भी खेल रहा था। उसने मुनि के हाथ मे काष्ठ के पात्र, ओघा, मुखवस्त्रिका व सादी वेषभूषा देखी तो उस बालक का मन खेलते-खेलते सहसा मुनि की ओर आकर्षित हो गया। जहाँ बच्चे खेल खेलने मे ऐसे रम जाते हैं कि प्राय सब कुछ भूल जाते है, पर बुद्धि की विशिष्टता रखने वाला ऐसा नही करता। रगीनता मे डूबे तो आश्चर्य की बात नही पर साधारण वेष की ओर ध्यान जाना विरलो का काम है। साधु-जीवन, साधारण वेषभूषा है, बाहरी चाक चक्यता नही, सजा-सवरा शरीर नही। ऐसे प्रसग पर गौतम स्वामी के गरिमामय जीवन को समझने की, परखने की क्षमता बडे-बडे बुद्धिशाली व्यक्तियो मे भी नही आती। वेष को देखकर तो सभी कह देते हैं कि यह जैन साधु है। परन्तु इनके जीवन से क्या कुछ भाषित हो रहा है? कौन क्या महापुरुष है? ऐसी क्षमता मिलना असम्भव है, लेकिन उस मैदान मे यह एवता राजकुमार खेल रहा था। खेलते-खेलते उसकी दृष्टि गौतमस्वामी की तरफ गयी। और वह खेल को छोडकर भागते हुए गौतमस्वामी के पास आया और पूछा आप कौन हैं और किस लिए घर-घर घूम रहे है? देखिये पूछने की क्षमता, अपने आप की ऊर्जा से तथा इन्सान मे महापुरुषो को पहचानने की क्षमता उस बच्चे मे थी। उसकी पहचान केवल पोशाक तक ही सीमित नही थी। उसने उनके साधुत्व जीवन को समझा था और फिर निडरतापूर्वक उनकी अगुली पकडकर घर ले आया, आहार से प्रतिलाभित करने के लिए। माता भी भावना भाने वाली श्राविका थी, पर उस वक्त पुत्र की प्रतिक्षा मे थी कि उसे आहार पानी करा दिया जाय। माता का कितना ममत्व रहता है कि बच्चा जरा भी भूखा नही रहे। बच्चे के साथ गौतमस्वामी को देखकर माँ ने कहा कि अरे तू कैसी तिरण-तारण की जहाज घर ले आया, माता की प्रफुल्लता का पार नही रहा। परिपूर्ण शुद्धि के साथ गौतम अणगार को असण, पाण, खाइम और साइम सतो के योग्य चार प्रकार का निर्दोष आहार बहराया।

बन्धुओ! जब गौतम भिक्षा के लिए गए वहाँ माता ने बच्चे का उत्साह बढाया और गौतम स्वामी जब महावीर स्वामी के पास जाने लगे तो वह उनके साथ हो गया। उस समय माता ने बालक को यह नही कहा कि अरे थोडासा नाश्ता तो कर जा पर उसने यही सोचा कि धन्य है मेरी कुक्षी से जन्म लेने वाला बच्चा कितना प्रतिभाशाली है। गौतमस्वामी के साथ जाते हुए बच्चे को रोका

नही, जाने दिया । वह श्रमण भगवान् महावीर के पास गया, दर्शन किया, देशना सुनी, आकर माता से कहा— माताजी मैंने प्रभु के दर्शन किये । माता कहती है, बेटा, तेरे नेत्र पवित्र हो गए, तुम धन्य हो गये । कुमार कहने लगा—माँ मैंने प्रभु की अमृतोपम वाणी का पान किया । माँ ने कहा—बेटा तेरे कान पवित्र हो गये, वीतराग वाणी का श्रवण करना बडा दुर्लभ है । माँ मुझे प्रभु की वाणी अच्छी लगी । बेटा ! तुम्हारा जीवन अच्छा बना, तुम्हारा हृदय निर्मल बन गया । कुमार कहने लगा—माँ ! मैं प्रभु की वाणी को हृदय तक ही नही रखना चाहता । उसे क्रियान्वित भी करना चाहता हूँ । अर्थात् मै घर-बार छोडकर अनगार बनना चाहता हूँ । यह सुनकर माँ पहले तो मुस्कराई और कहने लगी—

वह कवि की कडियो मे— तू काई जाणे साधुपणा ने बाल अवस्था थारी, उत्तर दीधो एसो कु वरजी, मात कहे बलिहारीजी एवता मुनिवर' ' हे लाल तू साधुपने को क्या समझता है, तेरी अवस्था अभी छोटी है । साधुपना कोई बच्चो का खेल नही, यह अति दुष्कर है । तो बालक एवता ने कहा - मैने प्रभु से, ससार की असारता को जान लिया है । "ज चेव जाणामि, त चेव नो जाणामि" आदि इन सबका उत्तर सुनकर भी माँ ने उसे समझाने का प्रयास किया, किन्तु कुमार अपने दृढ सकल्प पर अटल और अविचल रहा, उसे प्रलोभन दिया गया, उसे राज सिहासन पर भी आसीन किया गया अर्थात् एक दिन का राज्य दिया, अनुशासन की पालना करना बताया, अनुशासन जीवन की विशिष्ट शक्ति होती है । **जो अनुशासन पालन करता है, वही अनुशासन दे सकता है ।** राजा बन जाने पर भी कुमार ने यही सोचा कि मैं तो अपने जीवन को पवित्र बनाना चाहता हूँ । वीतराग सस्कृति को पाकर मेरे जीवन को उज्ज्वल करना चाहता हूँ । देखिये । सारा राज्य का स्वामी बन जाने पर भी उस बच्चे ने क्या कहा कि— मेरी आज्ञा है कि श्री भडार से तीन लाख सोनैया निकालकर शीघ्र ही सयम के उपकरण मगवाइये और मेरी दीक्षा विधि सम्पन्न करवाइये । इस प्रकार की दृढता देखकर दीक्षा की तैयारी की गई । एवताकुमार ने उत्कृष्ट वैराग्य से दीक्षा अगीकार की । दीक्षा लेने के बाद जब वे सतो के साथ निपटने गये । काष्ठ पात्र था, बचपन और लडकपन तो था ही, बाल भाव से काष्ठ पात्र को जो वर्षा का पानी बह रहा था, उस बहते हुए पानी मे तिरा दिया और कहने लगे—"मेरी नाव तिरे, मेरी नाव तिरे ।" अन्य साथी स्थविरो ने उसे ऐसा नही करने को कहा तो बाल मुनि ने पुन ऐसा नही करने का आश्वासन दिया, किन्तु अन्य साधु उस बात की मन मे शका लेकर प्रभु के समीप पहुँचे और शका का निवारण किया । प्रभु ने फरमाया—यह चरम शरीरी है । तुम इसकी हिलना-निन्दा मत करो । स्थविरो ने प्रभु के वचनो को शिरोधार्य किया । एवता मुनि ने सयम की उत्कृष्ट साधना की और जिस कार्य के लिए प्रव्रजित हुए थे, उसे सिद्ध कर लिया । न केवल उन्होने वर्षा के बहते नीर मे नाव तिराई अपितु ससार के दुष्कर प्रवाह से आत्मा की नौका सदा-सदा के लिए पार करली । प्रकरण का विस्तार शास्त्र के

माध्यम से आ गया है। मैने उसे अपनी भापा मे प्रस्तुत किया है। इस प्रकरण से आज सभी को प्रेरणा लेने का प्रसग है। बचपन मे जो सस्कार दिये जाते है वे विशिष्ट रूप से उभर कर सामने आते है। कहा भी है—

"यन्नवे भाजने लग्नः सस्कारो नान्यथा भवेत।" जो नवीन भाजन मे सस्कार एक बार लग जाते है, वे अन्यथा नही जाते। एवताकुमार के जीवन मे जो सस्कार एक बार जम गये, वे उन्हे मुक्ति मे ले जाने वाले सिद्ध हुए। अत बच्चो को सस्कारित करने के लिए आज के माता-पिता को विशेष ध्यान रखना चाहिये।

एक भाई ने गामा पहलवान से पूछा कि क्या आपके साथ देवीय चमत्कार हुआ, जिससे कि आपमे इतनी शक्ति आ गयी, तो उसने कहा कि नही। यह तो पुरुषार्थ पर निर्भर है। आज भी आप मुझे एक पाँच वर्ष के दुबले-पतले बच्चे को सौप दो—मैं दूसरा गामा तैयार कर दूँगा। यह सब सस्कार की बात है। वैदिक सस्कृति मे भी सप्तऋषि का वर्णन आता है, ध्रुवकुमार का वर्णन आता है, वे भी छोटी वय मे ही विषयो से मुडकर प्रतिस्रोतगामी बन गये थे।

बन्धुओ! यह सस्कृति वीतराग देव की है। इस वीतराग देव की श्रमण सस्कृति को हर दृष्टि से सुरक्षित रखना है। इस श्रमण सस्कृति से बढकर भौतिक तत्त्व धार्मिक दृष्टि से कोई भी जीवन मे नही आना चाहिये। सत-सती का जीवन कैसा हो? उनके अग-प्रत्यग से वीतरागता कैसे टपकती हो, इन सबका विवेक श्रावक-श्राविका-सत-सतीवर्ग को रखना चाहिये। यह सस्कृति साधारण मानव की नही, वीतराग देव की ही है। वीतराग ने जो कष्ट सहकर जो सस्कृति दी, उस अपूर्व सस्कृति का सेपल-नमूना किसके पास है? सामायिक, २४ घटे का पौषध और प्रतिक्रमण उस सस्कृति का नमूना है। आप सुज्ञ हैं, पर मैं समझता हूँ कि इस सामायिक की सस्कृति मे भी वीतराग देव की सस्कृति का नमूना समाया हुआ है। घर्म होते हुए भी जहाँ उसमे हजारो प्रकार की औषधियाँ मिलाई जा सकती हैं। वीतराग देव की सस्कृति का नमूना पूर्णरूपेण ग्रहण नही कर सकते हो तो थोडा-थोडा ग्रहण करे। इस नमूने को चखने के लिए ये आठ दिन आ गये है और जा भी रहे हैं। इन आठ दिनो मे इस सस्कृति के नमूने को अपने जीवन मे ले।

यह घाटकोपर का सघ बहुत बडा सघ है। यहाँ जो कुछ स्थिति थी वह मेरे ध्यान मे आयी। भावना बहुत है पर सेपल-नमूना लेने की स्थिति कम नजर आती है। पाँच हजार घरो की सख्या मे पाँच हजार पौषध भी हो जाय तो मैं समझूँ कि आप इस सस्कृति के नमूने को लेकर चले। प्रत्येक भव्य का ख्याल रखना है कि यह कोई एरगेर नथुफेर की सस्कृति नही है। मैं सब देखता हूँ। सघ अपनी स्थिति को लेकर चलता है, कई जिम्मेदारियाँ होती है, वे कार्य भी

महत्त्वपूर्ण होते है। उन्हे झुठलाया नही जाता, पर उन सभी कार्यो मे महत्त्वपूर्ण वीतराग देव की सस्कृति के नमूने का कार्य है। आपको मालूम ही है कि मगध सम्राट श्रेणिक को पूणिया की सामायिक खरीदने के लिए कहा गया था, और जब वह सामायिक खरीदने गया तो पूणिया श्रावक ने भगवान से ही उसका मूल्य जानने की बात कही तो प्रभु ने कहा कि बावन डूगरी सोना तो उसकी मात्र दलाली के लिए भी पर्याप्त नही है। श्रमण सस्कृति का नमूना जो सामायिक है, उसका मूल्याकन नही किया जा सकता। अत ऐसी सस्कृति की सुरक्षा हर हालत मे होनी चाहिये।

आज परीक्षण करना है कि इन पॉच इन्द्रियो के विषय मे आप अनुस्रोत गामी बने हुए हैं या प्रतिस्रोतगामी ? मै आपको क्या कहूँ ? मै जिस वेश मे हूँ उसी वेश मे रहने वाले मेरे यह भ्राता प्रतिस्रोतगामी न बन अनुस्रोतगामी बन कर अपने कार्य को क्रान्तिकारी मान रहे है। बन्धुओ ! यह क्रान्ति नही भ्रान्ति है। मैं तो यही कहूँगा कि प्रत्येक मानव विषयो से प्रतिस्रोतगामी बने। इस श्रमण सस्कृति को महत्त्वपूर्ण समझकर चले। मैं तो अपनी अन्तरात्मा से सबको यही परामर्श दूँगा कि आप विषयो से विरक्त होकर ऊपर उठने का प्रयत्न करे। यदि अधिक न हो सके तो कम से कम कल के दिन तो अधिक से अधिक सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध करे। विषयो से प्रतिस्रोतगामी से जितनी भी बाते सामने आए आप उनमे मुस्तेदी चाल से आगे बढे। वीतराग देव की वाणी के साथ अन्तगड सूत्र के माध्यम से आप अपने जीवन मे आयु की अपेक्षा बुद्धि के थर्मामीटर को तेज बनायगे तो वस्तु स्वरूप समझ मे आयेगा और उसी वस्तु स्वरूप को समझकर आगे बढेगे तो आपका जीवन मगलमय बनेगा। इन्ही भावनाओ के साथ।

मोटा उपाश्रय,
घाटकोपर, बम्बई

१९-८-८५
सोमवार

□□□

५० माफी मांगो और माफी दो

(संवत्सरी)
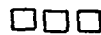
वीतराग वाणी के पिपासु भव्यजनो के लिये आज का प्रसग वीतराग वाणी को हृदयगम करने का प्रसग है, अतर चेतना मे व्यवस्थित करने का प्रसग है। वीतराग देव का ज्ञान सीमित नही, सीमातीत है, आकाश का जैसे कही ओर छोर दृष्टिगत नही होता है, वैसे ही वीतराग देव के ज्ञान का भी ओर छोर नही है, ऐसे वीतराग देव के ज्ञान को हृदय मे भरने के लिये प्रत्येक मुमुक्षु को स्वय का हृदय विशाल बनाना है। जब तक मनुष्य का दिल सकुचित रहेगा, उसमे वीतरागवाणी का उपदेश समा नही सकता। उसको अन्तर मे समाहित करने के लिये प्रत्येक भाई और बहिन को सवत्सरी के प्रसग से दिल को बडा बनाना है। मनुष्य जीवन की सार्थकता आत्मा को पवित्र बनाने मे है। अत-आत्मा को पवित्र बनाने का मार्ग प्रशस्त करने के लिये सवत्सरी का पुनीत प्रसग उपस्थित है। चातुर्मास प्रारम्भ से ४९-५०वे दिन सवत्सरी की आराधना तीर्थंकर देवो ने बतायी है। तीर्थंकर देव महावीर स्वामी ने भी सवत्सरी मनायी, ऐसा समवायाग सूत्र के मूल पाठ मे कहा है—

"समणे भगव महावीरे वासाण सवीसइराए मासे वइक्कते।
सत्तरिएहिं राइदिएहिं सेसेति वासावास पज्जोसवेइ।।"

श्रमण भगवान् महावीर ने वर्षावास का एक माह और २० दिन बीतने पर तथा ७० दिन अवशेष रहने पर पर्युषण कल्प अर्थात् सवत्सरी पर्व की आराधना की। चातुर्मास का प्रारम्भ आषाढ शुक्ला पक्खी से होता है। इस आगम के मूल पाठ से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सर्वज्ञ प्रभु महावीर ने और उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकरो ने भी इस पर्व का आराधन किया था इससे इस पर्व की सनातनता और महत्ता सिद्ध होती है।

यह विषय जरा समझने का है कि चातुर्मास बैठने के बाद एक माह और २० रात्रि व्यतीत होने पर ही सवत्सरी पर्व क्यो मनाया जाता है? इस विषय का विवेचन भव्य-जनो को यथा-समय समझ लेना चाहिये। समय की स्थिति से शोरगुल मे इस बात को भले ही कोई न सुने, पर जिन भाइयो के शब्द-कर्ण-गोचर हो रहे हैं, वे शाति के साथ इस विषय का चिंतन-मनन करने की कोशिश करे। यह पर्व आध्यात्मिक दृष्टिकोण से तो महत्त्वपूर्ण है ही, समग्र सृष्टि से भी

युगान्तरकारी है। आरो के प्रसग से भी आप समझ सकते है। जैन सिद्धान्तानुसार एक काल चक्र के १२ आरक है। इसके दो विभाग है—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी, जिस समय मे मनुष्य आदि प्राणियो की शरीर की ऊँचाई-चौडाई तथा शक्ति मे तथा जमीन आदि पदार्थो के रस-कस मे उत्तरोत्तर उत्कर्ष होता जाता है, वह काल उत्सर्पिणी कहलाता है और जिस समय मे इसका क्रमिक ह्रास होता है, वह काल अवसर्पिणी कहलाता है। वर्तमान मे अवसर्पिणी काल का पचम आरक चल रहा है। यह २१ हजार वर्ष तक चलेगा। इसकी समाप्ति पर छठा दु खम-दु.खम आरा लगेगा। वह ह्रास की पराकाष्ठा का काल होगा। उसमे धर्म, कर्म, राज्य व्यवस्था आदि का लोप हो जाएगा। प्रकृति मे भयकर उथल-पुथल होगी। गाँव, नगर आदि उजड जाएँगे। यह आरा लगते ही प्रथम सप्ताह मे भयकर प्रलयकारी वायु चलेगी जो अधिकाश वस्तियो को उजाड देगी। एक सप्ताह तक प्रलयकर असह्य सर्दी पडेगी। एक सप्ताह तक खारे जल की मूसलाधार वर्षा होगी। वह जल इतना खारा व तीक्ष्ण होगा कि जीवधारियो एव वनस्पतियो के शरीर जलने लगेगे। इसके पश्चात् सात दिन तक विष वृष्टि होगी। सात दिन तक धूलि की वर्षा होगी। सात दिन तक धूम वृष्टि होगी। इस तरह सात सप्ताह तक प्रलयकारी दृश्य रहेगा। ५०वे दिन शाति होगी। इसी तरह जब उत्सर्पिणी काल प्रारम्भ होगा। तब उसके प्रथम आरे मे भी छठे आरे की तरह यही स्थिति मानवो के जीवन की होगी।

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति मे उत्सर्पिणी काल के प्रथम आरे का प्रारम्भ बतलाते हुए लिखा है कि श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को वालावकरण और अभीच नक्षत्र मे अनत गुण द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की वृद्धि के साथ प्रथम आरा प्रारम्भ हुआ। इक्कीस हजार वर्ष मे उस "दु खम-दु खम" नामक प्रथम आरे के समाप्त होने पर अनत गुण वृद्धि को लिये हुए श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से ही "दु खम" नामक द्वितीय आरा प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ मे पुष्करावर्त्त नामक महामेघ सात अहो रात्रि पर्यन्त गर्जना के साथ निरन्तर बरसता रहा। इस महान् वर्षा के फलस्वरूप तप्त लोहे के समान जलती हुई पृथ्वी शीतल हो गई। इसके बाद सात दिनो तक क्षीर नामक महामेघ अविराम-गति से वरसा, जिससे भूमि के अशुभ वर्ण, गध, रस, स्पर्श उपशात होकर शुभ रूप मे बदल गए। तत्पश्चात् सात दिनो तक आकाश निर्मल रहा। बाद मे घृत नामक महामेघ सात दिन तक निरतर बरसता रहा, जिससे भूमि का अशुभ रस शुभ हुआ। तत्पश्चात् अमृत नामक मेघ के सात दिनो तक लगातार बरसने से वनस्पति के अकुर प्रस्फुटित हुए। बाद मे पुन सात दिन तक आकाश स्वच्छ रहा, तत्पश्चात् सात दिन पर्यन्त रस नामक मेघ की निरतर वर्षा होने से वनस्पति मे तीक्ष्ण, कटुक, काषायिक, अम्ल एव मधुर रूप—पाँचो प्रकार के रस के साथ शक्तिदायक तत्त्वो का सचार हुआ और इस तरह धान्य, वनस्पति फल-फूल आदि

मानव के भोग योग्य बन गए। इस प्रकार दूसरे आरे के प्रारम्भ से ५०वे दिन आकाश के स्वच्छ होने पर विलो मे रहने वाले मानव जव वाहर निकले और भूमि को हरी-भरी देखी, तरुगणो को फूल फलो से लदे हुए देखे तो वे हर्ष विभोर हो गए। इस तरह यह प्रसग चातुर्मास प्रारम्भ से ४६वे, ५०वे दिन के लगभग प्राप्त होता है। आषाढी पूर्णिमा के बाद का यह ४६वा, ५०वा दिन ज्ञानियो की दृष्टि मे विशेष महत्त्व का विदित हुआ और आत्म-शुद्धि के लिये सवत्सरी पर्व की आराधना चतुर्विध सघ के लिये निर्देशित हुई। इसी आराधना को गणधरो एव बाद के आचार्यो ने उपयुक्त समझा तथा आराधना करते आए। तदनुसार निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के क्रान्तिकारी महान् क्रियोद्धारक पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म सा से लेकर आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा तक आराधना होती रही। आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा की उपस्थिति मे ही अजमेर वृहत् साधु सम्मेलन वि स. १६६० मे भी एतद् विषयक लम्बी चर्चाओ के पश्चात् यही निर्णय रहा कि चातुर्मास के प्रारम्भ से ४६वे, ५०वे दिन सवत्सरी पर्व की आराधना की जाए। तदनुसार आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा पश्चात् भी पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म सा की सम्प्रदाय सहित भारत की प्राय सभी स्थानकवासी बाईस सम्प्रदाये (ऐतिहासिक-दृष्टि से साधुमार्गी परम्परा) आराधना करती रही। अजमेर सम्मेलन के समय एतद्विषयक निर्णय मे सम्मिलित एकाध सम्प्रदाय बाद मे ४६वे, ५०वे दिन के अनुरूप आराधना करने मे सक्षम नही हो पाई।

वृहत् साधु सम्मेलन सादडी मे भी उक्त नियम की पुष्टि करते हुए सगठन की दृष्टि से अल्प सख्यको को मिलाने हेतु अत्यधिक बहुल पक्ष ने परिवर्तन कर भादवा की सवत्सरी रखी, पर यह कहा गया कि "आगे गुजरात, सौराष्ट्र आदि को सम्मिलित करते वक्त यदि सवत्सरी की आराधना मे फेरफार करना पडे, यानि ४६वे, ५०वे दिन को करने का प्रसग आवे तो अल्प सख्यक सहित समग्र सत-सती वर्ग को ४६वे, ५०वे दिन सवत्सरी करने मे तत्पर रहना चाहिये।" आदि आशय के भावो को व्यक्त करते हुए सवत्सरी का परिवर्तन हुआ। सवत्सरी से एक सप्ताह पूर्व इस पर्युषण पर्व का प्रारम्भ होता है। पर्युषण पर्व के अतिम दिन साधना परिपूर्ण हो, इस दृष्टि से पूर्व के सात दिन साधना के अभ्यास के लिये पूर्वाचार्यो ने नियत किये है। इसे अष्टान्हिक पर्व भी कहते है।

उक्त सैद्धान्तिक विवेचन से ज्ञात होता है कि यह सवत्सरी का दिवस शान्ति का पर्व है। सकल सृष्टि की दृष्टि से भी यह शाति का दिन है और आध्यात्मिक दृष्टि से भी यह शाति का ही दिन है। अत इस दिन को शाति के पर्व के रूप मे मनाना है। केवलज्ञानियो के ज्ञान मे क्या स्थिति किस रूप

मे रही हुई है, यह छद्मस्थ अपूर्ण व्यक्ति नही जान सकता। लेकिन सवत्सरी पर्व को चातुर्मास लगने के ५०वे दिन मनाने का विधान व्यावहारिक दृष्टि से भी उपयोगी प्रतीत होता है, क्योकि तब तक प्राय गृहस्थ लोग अपने-अपने कार्यो से निवृत्त हो जाते है, जिससे साधना मे विशेष प्रगति कर सके। जो व्यक्ति सवत्सरी के रोज अपनी आत्मा के राग-द्वेप, विपय-कपाय के कलिमल को निकालकर उसे समत्वानुरजित कर लेता है तो उसकी आत्मा मे शाति का अमृतमय निर्झर फूट पडता है। कपायो को, मनमुटाव को घोकर आत्मा को सरल बनाने पर ही यह स्थिति बन सकती है।

सवत्सरी पर्व मानव के लिये ही नही सम्पूर्ण प्राणी जगत् के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि तिर्यच मे बहुत से प्राणी तथा देव-नारकी इसे नही मना सकते, लेकिन जो मानव अन्तर्मुखी बन इस दिन साधना मे लगकर सबको अभयदान दे देते हैं तो उनके द्वारा होने वाली उन जीवो की मानसिक, वाचिक और कायिक हिसा रुक जाती है अर्थात् उनका सरक्षण हो जाता है।

यह आत्मा आज से नही, कल से नही, इस जन्म से, पर जन्म से नही, पर अनतानत जन्मो से अपने स्वभाव को भूलकर विभाव मे जकडी, कर्मो के परतत्र हो, जीती चली आ रही है। उसे स्वभाव मे लाने के लिये, कर्मो को तोडने के लिये इस पर्व का सही ढग से ज्ञान प्राप्त कर आचरण मे सम्यक् मोड लाना होगा। जिस प्रकार मनुष्य कैदखाने मे खाना-पीना मिलने पर भी सुखी नही रह सकता, क्योकि वहाँ स्वतत्रता नही है। उसी प्रकार जब तक आत्मा कर्मो से स्वतत्र नही हो जाती, तब तक ससार भी उसके लिये कैदखाना है, ऐसे ससार मे वह भौतिक ऐश्वर्य कितना ही प्राप्त कर ले, पर शाश्वत सुख की अवस्था प्राप्त नही कर सकती। जो विषय कषायो से विरक्त होती है वही आत्मा सदा-सदा के लिये शाश्वत शाति को वर सकती है। वह शाति "कषाय मुक्ति किल मुक्तिरेव" से ही होती है। अर्थात् जिन आत्माओ की कषाय से मुक्ति हो गयी है, क्रोध, मान, माया, लोभ कम पड गये हैं अथवा सर्वथा नष्ट हो गये हैं। वह आत्मा सारे ससार के बधनो को तोडकर सदा-सदा के लिये स्वतन्त्र-स्वावलम्बी हो जाती है, सदा-सदा के लिये आजाद हो जाती है—"कषाय मुक्ति किल मुक्तिरेव" के स्थान पर यह कहा जा सकता है कि—"मोह मुक्ति किल मुक्तिरेव" अर्थात् जहाँ आत्मा का मोह बधन टूटता है, वहाँ मुक्ति होती है और मोह नही टूटता है तो मुक्ति नहो होती है। कषाय मुक्ति की सूक्ति भी मोह मुक्ति से जुडी है। सवत्सरी के प्रसग से भव्य जन उपस्थित हुए हैं। हिन्दुस्तान मे और विदेशो मे भी विभिन्न स्थानो पर सवत्सरी की आराधना की जा रही है और की जाती है।

आज एक प्रश्न स्वाभाविक रूप से प्रकट होता है कि जब सवत्सरी

आध्यात्मिक साधना का प्रतीक है और आत्मा के मौलिक स्वरूप मे कोई अन्तर नही है, तो सभी साधक एक ही रोज इस पर्व को क्यो नही मनाते ? शास्त्रीय दृष्टि से विचार करे तो यह स्पष्ट है कि सवत्सरी पर्व मनाने के लिये आगमो मे कही पर भी सावन-भादव मास का कोई उल्लेख नही है। वहाँ तो स्पष्ट बतलाया है कि चातुर्मास प्रारम्भ से पचासवें दिन सवत्सरी मनाई जाए, ताकि सतर दिन अवशेष रह सके। जो व्यक्ति इस सिद्धान्त को न मानकर भादव मास मे सवत्सरी मनाने का आग्रह रखते है, उनके सिद्धान्त पक्ष मे दोनो तरफ से खडित होने का प्रसग आ जाता है। जब श्रावण मास दो आ जाते है, तब भादव मास मे सवत्सरी मनाने वाले का पहला सिद्धान्त-पक्ष, जो कि सवत्सरी को ५०वें दिन मनाने का है, वह टूट जाता है। क्योकि दो श्रावण होने से पचासवे दिन सवत्सरी न आकर, तीस दिन वढ जाने से लगभग अस्सीवे दिन सवत्सरी आती है और जब दो आसोज आ जाते है, तब भाद्रपद मे सवत्सरी मानने वाले वर्ग का दूसरा सिद्धान्त पक्ष, जो ७० दिन अवशेष रहने का है। वह निभ नही पाता है। क्योकि आसोज के दो होने से चातुर्मास के ७० के स्थान पर १०० दिन अवशेष रह जाते है। अत दोनो सिद्धान्त पक्ष खण्डित हो जाते है। पर जो वर्ग, महीने कोई भी बढे-घटे, पर जो पचासवे दिन सवत्सरी मनाकर चलते है, उनके यह नियम तो बराबर निभता ही है। अत दोनो नियम न टूटकर एक नियम सुरक्षित रहता है। इस विषय मे अजमेर साधु सम्मेलन मे भी विचार-विनिमय हुआ था।

आज जैनागमो मे गणित सुरक्षित नही रहने पर ही यह विवाद की स्थिति बन रही है। क्योकि चातुर्मास बिठाने-उठाने के सब कार्य लगभग व्यावहारिक पचाग से किये जाते हैं। उसी से ही विवाद की स्थिति सामने आ रही है। जहाँ सवत्सरी पर्व कषायो का शमन करने का विशिष्ट पर्व है, वहाँ कषाय बढने का प्रसग आ जाता है। जैनो का सवत्सरी पर्व तो कम-से-कम एक होना ही चाहिये। इसे एक करने मे किसी का कुछ नही जाता। आवश्यकता है अपनी-अपनी पकड छोडने की, जब तक अपनी-अपनी पकड रहेगी, एकता आ नही सकती। और तो और ! जब परिवार मे भी कोई एक पारिवारिक सदस्य अपनी पकड लेकर चलता है तो उनमे भी एकता नही रह पाती, तो सामाजिक स्तर पर एकता कैसे रह सकती है। अत- सवत्सरी पर्व को तो सभी को एक रूप मे मनाने का प्रयास करना चाहिये।

इस आशय के भावो से सवत्सरी के विषय मे सादडी-सम्मेलन मे कुछ उल्लेख हुआ। उसके बाद भीनासर प्रतिनिधि मण्डल बनाया गया, सबसे सम्पर्क साधने के लिये, पर फिर दो श्रावण आ गये। तब गुजरात और सौराष्ट्र के मुनियो व श्रावको ने मिलकर सोचा कि जो सर्वानुमति का मार्ग १९९०

का हमारे सामने पडा है, उसमे उथल-पुथल करने को आवश्यकता नही। फिर भो कइयो ने दूसरे श्रावण मे सवत्सरी मनायी। सवत्सरी के सम्बन्ध मे मैंने और आचार्य श्री हस्तीमलजी म सा ने सयुक्त निवेदन दिया ही है, उसका भाव यह है कि यदि सारी जैन समाज एक होकर कोई भी तिथि निश्चित करके बतला दे तो हम उस तिथि को विना हिचक के सवत्सरी मनाने के लिये तैयार है। वास्तव मे भीतर का दुराग्रह नही छूटेगा, तव तक आत्म शुद्धि कैसे हो सकती है?[1] आत्म शुद्धि के लिये अनाग्रह भाव से विचार करना होगा।

मैने भारत महा मण्डल के सदस्यो के सामने जोधपुर मे एव अन्यो के सामने भी यह सुझाव रखा था कि जैसे विक्रम सम्वत् अपनाया है वैसे ही शक सम्वत् अपना ले, तो ये सारी दुविधाये समाप्त हो सकती हैं। उन्होने इस सुझाव को सुनकर प्रशसित अवश्य किया, पर आगे कार्यक्रम नही वनाया, मै तो अपनी मर्यादा मे कह देता हूँ। क्या करना, कैसे करना—यह श्रावकों का दायित्व है।

सज्जनो! विचार करिये, सवत्सरी महापर्व वर्ष मे एक दिन आता है। अगर वह भी सही ढग से नही मनाया तो जो समय एक वार वीत गया, वह फिर से नही आने वाला है। एक ज्योतिषी का उदाहरण है। एक ज्योतिषी ने ज्योतिषी-विद्या का गहन अध्ययन किया। पर उसकी धर्मपत्नी प्रतिदिन उससे झगडा करती हुई कहती रहती कि तुम तो पोथियाँ पढते रहते हो, कमाई तो कुछ करते ही नही। ज्योतिषि ने कहा—'मैं ऐसा मुहूर्त निकालूँगा, जव ज्वार से मोती बन जायेगे।" पत्नी को उस पर विश्वास नही था, अत वह कहने लगी कि तुम तो केवल गप्पे हाकना जानते हो, करते-कराते कुछन ही। क्या ज्वार के भी कभी मोती बन सकते है? सयोग से आकाश मे नक्षत्रो के योग का वैसा प्रसग आया। उस पडित ने गणित द्वारा समय का निर्धारण किया। उसने अपनी पत्नी से कहा कि देखो! अब मैं साधना करता हूँ, तुम ज्वार लेकर वैठना और चूल्हे पर गर्म पानी का बर्तन चढा देना। जिस समय मैं "हूँ" कहूँ, उसी क्षण ज्वार के दाने गर्म जल के वर्तन मे डाल देना। थोडी ही देर मे ज्वार के मोतो बन जायंगे। पत्नी को उसकी वात पर विश्वास तो नही था, फिर भी

---

१. कई भाई ऐसी भी प्रक्रिया करने वाले मिलते है कि "नानालालजी ने कहा कि सारी जैन समाज एक होकर सवत्सरी पर्व की तिथि निश्चित कर दे, तो मैं भी उसी दिन मना लूँगा पर ऐसा होने वाला नही है। अत उनका कहने मे क्या जाता है?" ऐसा कहने वाले भाइयो से मेरा यही सुझाव है कि वे प्रतिक्रिया न कर खुद भी ऐसा अनाग्रह भाव अपना ले तो फिर सवत्सरी की एकता मे दूरी कहाँ? लेकिन वे अपना आग्रह तो छोडना नही चाहते और जो छोडते हैं, उनकी प्रतिक्रिया करना जानते हैं। यह आत्म पवित्रता मे सहायक नही है।

—सम्पादक

वह कहने लगी कि घर मे एक समय का खाना भी नही है, ज्वार कहाँ से लाऊँ ? पडित ने कहा—पडोस मे सेठानी रहती है, उससे उधार ले आओ। पत्नी पडोसन के पास गयी और बोली कि—"सेठानीजी ! मुझे दस सेर ज्वार उधार दे दीजिये", सेठानी ने सहज भाव से पूछ लिया—"क्यो बाई ! ऐसी क्या आवश्यकता पड गयी, जो ज्वार उधार माग रही हो ?" उस पडित की पत्नी ने कहा—"मेरे पति कहते है कि ऐसा मुहूर्त आने वाला है जब ज्वार को चूल्हे पर चढे हुए गर्म पानी के बर्तन मे डाल देने पर वह मोती रूप मे बदल जायेगी।" सेठानी को उस विद्वान् ज्योतिषि पर विश्वास था, वह मन ही मन प्रसन्न हुई और उसने २० सेर ज्वार दे दी।

सेठानी ने सोचा—नक्षत्रो का योग तो आकाश मे होगा। पडितजी के घर मे नही। अतः यदि ऐसा योग आने वाला है तो जैसे पडितजी के घर मे आयेगा, वैसा ही मेरे घर मे भी आएगा। उनके यहाँ उस समय मे ज्वार के मोती बन सकते है, तो मेरे घर क्यो नही बनेगे ? उसने शीघ्र सीगडी तैयार करके गर्म पानी का बर्तन उस पर रख दिया। बीस सेर ज्वार पास मे रखकर दीवार के पास बैठ गयी। उसके कान दीवार पर लगे हुए थे। उधर उस विद्वान् की पत्नी भी पानी उबालकर ज्वार पास मे लेकर बैठ गयी। विद्वान् ने आराधना शुरू की। जैसे ही उसने "हूँ" कहा, सेठानी ने तो ज्वार पानी मे डाल दी। किन्तु उस विद्वान् की पत्नी ने "हूँ" शब्द सुनकर कहा—"क्या मैं ज्वार डाल दूँ ?"

समय बहुत सूक्ष्म होता है। वह शुभ योग निकल गया, पडित ने माथा धूना। उसने कहा—मैंने पहले ही समझा दिया था कि हूँ कहते ही ज्वार डाल देना। पूछने की क्या आवश्यकता थी ? इस मूर्खा ने सुअवसर गवा दिया, उसकी पत्नी ने वह योग निकल जाने पर ज्वार पानी मे डाली तो वह घूघरी बन गयी। उसने क्रोधित होकर कहा—यह क्या हुआ ? यह ज्वार तो घूघरी बन गयी। बडे चले थे ज्वार से मोती बनाने। अब मैं पडोसन को २० सेर ज्वार कहाँ से लाकर दूँगी ? उसको इतना क्रोध आया कि उसने वह बर्तन लाकर पति के सामने पटक दिया और सारी घूघरी बिखर गयी। पतिदेव माथे पर हाथ रखकर चिन्तन करने लगे कि मैंने मुहूर्त्त निकाला, किन्तु इसने साधा नही और अब मुझे दोष दे रही है। उधर पडोसन सेठानी ने बर्तन का ढक्कन खोला तो उसमे मोती के दाने चमक रहे थे। उसने कमरे मे उडेल दिया तो कमरा प्रकाश से जगमगा उठा। २० सेर ज्वार मोती के रूप मे परिणत हो गयी। सेठानी ने सोचा—पडित की पत्नी ने अज्ञानता वश समय नही साधा और अब उन्हे दोष दे रही है। उनकी कृपा से मुझे यह अनहोना लाभ मिल रहा है। अत अब मुझे इसमे से कुछ मोती पडितजी को भेट करना चाहिये,

तभी उस दोष की निवृत्ति होगी। इधर पत्नी वडवडा रही थी, पडितजी चिंतन कर रहे थे, इतने मे ही पडोसिन सेठानी पडितजी के घर आई और उनके सामने मोती के दाने रखे और वोली—पडितजी ! यह आपकी अन्तर दृष्टि एव आपकी कृपा का परिणाम है। आपके वताये हुए मुहूर्त को आपकी पत्नी से मैंने जाना और (आपके इशारे पर) आपके वताये हुए मुहूर्त पर मैंने ज्वार पानी मे डाल दी जिसके ये मोती बन गये। उसके उपलक्ष्य मे यह तुच्छ भेंट आपको समर्पित करने आयी हूँ। यह सुनकर विद्वान् पडित को अपनी विद्या पर और अधिक विश्वास हुआ। वह अपनी पत्नी से वोला, तुमने मुहूर्त चुका दिया। पडोसिन सेठानी ने मुहूर्त साध लिया तो वह निहाल हो गई। यह सुन-कर पत्नी के नेत्र खुले और वह रोने लगी, अपनी अज्ञान दशा पर पश्चाताप करती हुई पडितजी के पैरो मे गिरकर कहने लगी, एक वार और वही मुहूर्त ले आओ। पडितजी ने कहा ऐसा दुर्लभ सयोग वार-वार नही आया करता, जो उसका लाभ उठा लेता है वह निहाल हो जाता है और जो उसे गवा देता है, वह रोता रह जाता है।

बन्धुओ ! यह तो एक रूपक है, इसको पहचानिये। इस रूपक से प्रत्येक भव्यजनो को चिंतन करना चाहिये कि एक ज्योतिषी के मुहूर्त पर आज दुनिया इतनी विश्वास करती है तो ये ज्योतिषी बडे या वीतराग देव वडे। सर्वज्ञ सर्व-दर्शी वीतराग देव ने अपने केवलालोक मे देखकर आत्म-शुद्धि का पर्व निर्धारित किया। इस मुहूर्त मे शोरगुल नही करते हुए अन्तर की शुद्धि को परिमार्जित कर जवारी के मोती बनाने के तुल्य इस आत्मा को परमात्मा बनाने का प्रयत्न करना चाहिये पर बनावे किस विधि से ? चारित्र की गरिमा के साथ ध्यान साधना, मौन साधना, अतर की पवित्रता नही सधे, तब तक सवत्सरी पर्व का यह मुहूर्त नही सध सकता। भगवान् के समय साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका इस मुहूर्त को साधते थे और अपने जीवन मे चिंतामणि, सूर्यकान्तमणि रत्न से भी बढकर सवत्सरी को समझते हुए साधना मे लग जाते थे।

महाप्रभु महावीर की योग पद्धति जनता मे तो थी ही पर शासकीय स्तर पर जो सम्राट् होते थे, उनमे भी कई राज्य मे ही आसक्त नही होते थे, वे भी सर्वोपरि आध्यात्मिक धर्म को जीवन मे स्थान देते थे। जनता से ऊँचे पोस्ट पर रहते हुए भी कैसी आध्यात्मिक साधना करते थे। इसका भी उल्लेख ज्ञानीजनो ने किया है। उस उल्लेख का प्रसग आज की स्थिति से मैं यदा-कदा कर देता हूँ। आज के युग मे कॉलेजो की शिक्षा है, डिग्रियाँ प्राप्त है, अक्षरीय ज्ञान की स्थिति वढी चढी है। कमी है तो आज आध्यात्मिक जीवन की है। आज के चिंतक वाह्य दृष्टि को लेकर अधिक चलते हैं। अन्तर प्रवेश नही कर पाते। इसलिए शाति का अनुभव नही कर पाते। वे सोचते हैं कि हमने तो अमुक-

अमुक डिग्री हासिल करली । अब इस प्रकार सीधी-साधी पोशाक मे साधना करना अर्थात् सामायिक की पोशाक, मुँहपत्ती लगाकर चुपचाप मौन साधना करना तो हमारे पोजीशन के विपरीत-खिलाफ है । ऐसे कई महानुभाव अपने जीवन मे "जवारी के मोती" बनाने से वचित रह जाते है । पर विचार करिये डॉ राधा कृष्णन, जाकिर हुसैनादि भी राष्ट्रपति पद पर आसीन होते हुए भी धर्म को नही भूले । वे एक घटे के लिये भी प्रतिदिन जैसी उनकी मान्यता थी, उसके अनुसार नित्यनियम करते थे । मेरे बधुगण क्या सोच रहे है ? यह जीवन तो गया सो गया और अशाति भरकर आगे के जीवन को भी क्यो बेकार करना चाहते है ? यदि जो जीवन जवारी का मोती बनाने का है, उसे भी ऐसे ही गमावेगे तो फिर शाति कहाँ मिलने वाली है ?

राजनैतिक स्थल पर रहने वाले सम्राट् उदायन अपने पोजीशन को, अपने मान-सम्मान को मुख्यता नही देते थे, वे वीतराग धर्म को मुख्यता देते थे । वे धर्मनीति के साथ राजकीय नीति का पालन करते थे । चद्रप्रद्योतन ने कुटिलता-पूर्वक उदायन महाराज की एक दासी स्वर्ण गुटिका का अपहरण कर अपनी रानी बनाना चाहा । उदायन महाराज को जब मालूम हुआ तो उन्होने विचार किया कि मैं धर्म नीति के साथ राजकीय नीति का भी व्यवहार कर रहा हूँ । वे मेरे बराबर के सम्राट् है । वे चाहते तो मै हर्षपूर्वक दासी भेट कर देता । पर यह चोरी का कार्य मानव के लिए कलक है तो फिर राजा के लिये तो कहना ही क्या ? मैं अनीति का प्रतिकार नही करूँगा तो वीतराग धर्म के प्रति दुनिया की उपेक्षा होगी कि वीतराग का धर्म दुनिया को कायरता सिखाता है । वीत-राग देव के सिद्धान्त इतने व्यापक व विशाल है कि उन्हे एक झोपडी मे रहने वाला मजदूर भी अपना सकता है ।

श्रावक होते हुए भी अन्याय के प्रतिकार के लिये उन्होने युद्ध करना उचित समझा । उदायन ने उज्जयिनी पर आक्रमण कर दिया । उन्होने केवल चण्डप्रद्योत को हराया ही नही अपितु उसे बदी भी बना लिया । जब वे वापस अपने राज्य की ओर सेना एव बदियो को लेकर लौट रहे थे तो मार्ग मे सवत्सरी महापर्व का अवसर आ गया । ख्याल आया कि ससार का कारोबार तो चलता ही रहता है पर मुझे आध्यात्मिक पर्व को नही भूलना है । युद्ध सामग्री बाहरी राजनीति के साथ वे आत्मा की नीति को नही भूलते थे । युद्ध मे जाते समय अन्य युद्ध की सामग्रियो के साथ आत्मा को पोषण देने वाली सामायिक, पौषधादि के उपकरण भी अपने साथ रखते थे । रास्ते मे दशपुर जिसे आज मदसौर कहते है, वहाँ तक पहुँचे और ज्ञात हुआ कि समग्र विश्व के प्राणियो को, छोटी सी छोटी आत्मा के लिए हितकारी सवत्सरी पर्व आ गया है । अत सबसे वैर-विरोध मिटाना-खमत खामणा करना है, वह सवत्सरी पर्व पर ही हो सकता है । सेनापति को आदेश दिया—सैन्य विहार स्थगित कर दिया

जाय और यही पर पडाव डाल दिया जाय । वहाँ पौषध शाला के योग्य मकान नही है । अत एक सफेद वस्त्र का टेट लगाया जाय । क्योकि १८ पापो से निवृत्त हो पूर्व के पापो की आलोचना व प्रायश्चित के लिए आज प्रतिपूर्ण पौषध करने का प्रसग है । जो वास्तव मे १८ पापो से अपने दिल को साफ कर लेता है, उसी का जीवन ऊँचा उठता है और वही वीतराग देव का सच्चा अनुयायी है । यही सोचकर महाराज उदायन ने अपनी साधना मे वैठने के पूर्व की तैयारी की और अनीति का प्रतिकार करने के लिये यदि चद्रप्रद्योतन के साथ सग्राम किया, तथापि उसके साथ घृणा का व्यवहार नही किया, यहाँ तक कि जब भोजन करते थे तब भी स्वय की थाली मे एक साथ वैठकर भोजन करते थे । सवत्सरी के प्रसग से वे सोचने लगे कि आरम्भ–समारम्भ आदि १८ पापो का त्याग करना है ।

मनुष्य के प्राणो को सुरक्षित रखने के लिए भोजन आवश्यक है किन्तु इस भोजन को बनाने के लिए षट्कायिक जीवो की हिसा करनी पडती है, पर पौषध व्रत मे इस आरम्भ–समारम्भ का त्याग होता है । मै पेट को खुराक नही देना चाहता । आज वीतराग देव की परम सस्कृति का दिन है, यदि खाने-पीने राग-रग, मौज-शौक मे पड जाता हूँ तो यह शुभ मुहूर्त चला जाता है । दुनिया भर की हिसा का कार्य मै आज के प्रसग से नही करना चाहता । १८ पापो मे बडा पाप हिंसा का है पर वैसे मिथ्या दर्शन कहा जाता है । जो १८ पापो से लिप्त अपने हृदय को खाली करता है वही सच्चा सम्यक्दृष्टि है । आज सवत्सरी के प्रसग से आपको सोचना है कि इस २४ घटो की साधु-साधना मे बैठकर अपनी आत्म-आलोचना करके प्रतिपूर्ण पौषध करना है, पर वे सम्राट् ये नही भूले की मेरे आश्रित चद्रप्रद्योतन है । इसके भोजन का बदोवस्त करना है ।

आज आपको भी चिंतन करना है कि घर मे रोगी है या वृद्ध है, वे पौषध नही कर सकते । पुत्र पौषध करना चाहता है तो वह यह सोचे कि पहले मैं माता-पिता का बदोवस्त तथा उनकी व्यवस्था करके पौषध करूँ । उन वृद्ध माता-पिता या जिनको कोई खिलाने वाला नही है उनकी बिना व्यवस्था किये पौषध करता है तो मूल व्रत मे दोष लगता है । जो गर्भवती बहिन हो या बच्चा स्तनपान करता हो, उसे भी तपश्चर्या का विशेष विवेक रखना चाहिये । वे ब्रह्मचर्य का पालन भी कर सकती है पर जिससे इसका पालन न हो तो कम-से-कम पचेन्द्रिय प्राणी की घात होती हो ऐसा प्रयास तो न करे ।

महाराज उदायन सोचते है कि आत्मीयता के नाते ये मेरे भाई है । मैं वीतराग की आज्ञा मे २४ घटो के लिये समर्पित होऊँगा । उस समय मुझे कुछ भी मत पूछना और जब मैं पौषध पालकर पूर्व की स्थिति मे आ जाऊँ तब

आपके साथ पूर्ववत् व्यवहार करूँगा। चद्रप्रद्योतन शका करने लगे कि ये पौषध का वहाना करके २४ घटे आहार–पानी का त्याग कर रहे है। पर हो सकता है मुझे मारने की दृष्टि से आज कही भोजन मे पोइजन मिला दिया गया तो मेरा तो जीवन ही समाप्त हो जाएँगा। उसने भी ऊपरी दिल से, चाहता तो नही था पर किसी से पूछा कि ये पौषध क्या होता है ? ये वीतराग की वाते चद्रप्रद्योतन ने सुनी कि मैने अनैतिकता से दासी चुराई, मेरे मस्तक पर जो चिह्न है, यह मरण से भी अधिक है। ये साथी समझा रहे है कि महाराज के साथ कोई पौषध मे लगते है तो उसके जीवन मे चार चाद लग सकते है। चद्रप्रद्योतन ने कहा—महाराज ! आज आप वीतराग देव की परम पावन सस्कृति मे रहते हुए २४ घटे के लिए पौषध कर रहे है तो मैं भी आपके साथ पौषध करना चाहता हूँ। उदायन सम्राट् ने कहा—अवश्य करिये। शत्रु और मित्र के एक होने का प्रसग है तो चलो मेरे साथ पौपध कर सकते हो।

बन्धुओ ! पहले के श्रावको का आचार देखिये। अपने साथ ही अन्यो के लिए धार्मिक साधनो को रखकर चलते थे। वे जानते थे कि सभी भाई–वहिन सामायिक का समान साथ नही लाते पर सामायिक या पौषध की भावना रखते है। तो मेरा सामान उनके भी काम आ सकता है। इसलिए महाराज ने एक्स्ट्रा उपकरण रख रखे थे। वे मगवाये और उस चद्रप्रद्योतन को दे दिये।

बन्धुओ ! आप ये सासारिक पोषाक तो २४ घटे रखते है, १ घटे के लिये भी इस पोषाक को नही उतारते है तो आपकी इस बाहरी पोषाक का भी प्रभाव पडता है। सामायिकादि मे दर्जी के सिले हुए कपडे न रहे। इन्हे उतार-कर अलग रख देना चाहिये। सारे मोह ममत्व का त्याग करके बैठना चाहिये। सामायिक पौषध की विधि के अनुसार चद्रप्रद्योतन ने भी उतार दिया और महाराज की देखादेख पौषध की आराधना की। ये सवत्सरी पर्व की आराधना कैसे, क्या हो ? इसका ज्ञान नही करेंगे तो ऐसे हर साल सवत्सरी आती है और जाती है, वैसे यह भी चली जायेगी।

"खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमतु मे।
मित्ती मे सव्व भूएसु, वेर मज्झ न केणई ॥"

ये वीतराग देव के वाक्य कब चरितार्थ होगे, जब कि पौषध व्रत मे किसी भी जीव की हिसा का उपमर्दन नही करेंगे, तो ही सच्चे अर्थो मे क्षमा याचना होगी। 'कषाय-मुक्ति किल मुक्तिरेव' की स्थिति से किससे क्षमा याचना करेंगे ? सबसे पहले महाराज से क्षमा कर लेंगे, पर सच्ची क्षमा किससे करनी है कि जिनके साथ मन मुटाव हुआ है। जिनके कलेजे मे चोट पहुँचायी है उनसे क्षमा याचना करके उनके हृदय को ठारना चाहिये। शास्त्रकार फरमाते है—

"जे उवसमइ तस्स होई आराहणा ।
जे नो उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा ।।"

चाहे साधु हो या श्रावक, जो कषायो को, क्लेशो को उपशमाता है वही आराधक है, जो नही उपशमता वह आराधक नही है । यहाँ तक कि जो जिदगी भर नही खमाता है, तो मिथ्यात्व मे चला जाता है ।

"उवसम-सार खलु सामण्ण ।"

सयम चाहे सर्व सयम हो अथवा देश सयम हो, सयम का सार उपशम है, वैर-विरोध, क्लेश-कषायो का उपशमन करना ही सयम है । आज के इस महान् पर्व का एक मात्र दिव्य सदेश है उपशम ! स्वय शात बनिये और दूसरो को भी शाति दीजिये । मैत्री भाव को स्थापित करिये ।

"खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमतु मे ।
मित्ती मे सव्व भूएसु, वेर मज्झ न केणइ ।।"

आत्मा के अन्दर से यही नाद प्रकट होना चाहिये कि मै सब जीवो को क्षमा प्रदान करता हूँ और सब जीव मुझे क्षमा प्रदान करे । ससार के किसी भी प्राणी के साथ मेरा वैर नही है, प्राणी मात्र के साथ मेरी मैत्री रहे । यह अन्तर्नाद जब आत्मा से स्फुरित होता है, वाणी द्वारा प्रकट होता है, आचरण मे आता है तो आत्मा निर्मल हो जाती है, शल्य रहित हो जाती है और कर्मभार से हल्की होकर परम शाति का अनुभव करती है । उदायन महाराज कहने लगे—मैं वीतराग देव की सस्कृति मे हूँ । मै भी आपके साथ वीतराग देव की आज्ञा मे समर्पित होकर क्षमा का आदान-प्रदान करता हूँ । उन्होने क्षमा का आदान-प्रदान किया, पर चद्रप्रद्योतन कहने लगे कि एक बात काटे की तरह चुभ रही है । मेरे मस्तक पर यह दासीपति का पट जब तक रहेगा, तब तक मानसिक रोग बना रहेगा । उदायन ने कहा कि अभी मै वीतराग के शासन मे समर्पित हूँ, अत इस पर्चे को हटाना ये पौषध सामायिक व्रत मे नही किया जाता, अभी तो खमतखामणा करलो, जब मैं गृहस्थ पर्याय अर्थात् पौषध पारलूँ तब सारा कार्य हो जायेगा । सावत्सरिक प्रतिक्रमण के बाद जब क्षमा याचना का प्रसग आया तो उदायन महाराज ने चद्रप्रद्योतन से हार्दिक क्षमायाचना की । वे अपराधी को क्षमा करने के लिए तत्पर थे बशर्ते कि अपराधी अपना अपराध स्वीकार करले । चद्रप्रद्योतन ने इसे छुटकारे का अवसर मानकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया । उदायन महाराज ने सवत्सरी का पौषध पूर्ण होने पर उसे न केवल क्षमादान ही किया, अपितु उसका राज्य भी लौटा दिया । इतना ही नही जिसके लिये उन्हे सग्राम करना पडा वह स्वर्ण गुटिका दासी भी उसे उपहार रूप में दे दी । इसे कहते हैं वास्तविक क्षमा ।

आत्म शुद्धि का भव्य प्रसग आज सभी के सामने उपस्थित है। मैं अति सक्षिप्त मे यह सार कह गया हूँ। समय की अधिकता से मैं आपके अन्य कार्यक्रम मे हस्तक्षेप नही करता। जो आत्मार्थी होते है वे चुपचाप होकर साधना मे तन्मय हो जाते है। घाटकोपर सघ की पद्धति से कई महानुभावो के दिल मे विचार भेद हो सकता है पर मनोभेद न हो अर्थात् मेरी मूछ ऊँची रहे यह अतर की ऐंठ रहेगी तो आत्म-शुद्धि नही हो पायेगी। ससार का झगडा तो ससार के साथ है पर बातो का झगडा न मिटा सकते हो तो वह मुझे बहरादो। मैं भी एक भिक्षुक हूँ। कार्यकर्ताओ मे कोई मन मुटाव हो तो मैं यहाँ बैठा-बैठा ही भिक्षा माग लेता हूँ। भिक्षुक होने के नाते मैं भी आपसे भिक्षा मागता हूँ। वैसे तो सत अपनी स्थिति से आप लोगो के घरो मे से यथासमय-यथावसर भिक्षा लाते ही है पर आपके पास जो राग-द्वेष, वैर-विरोध की ग्र थियाँ है, कषायो का कर्दम है, ये सारी बाते मेरी झोली मे डालकर उदायन महाराज की प्रक्रिया को अपना कर अपना शुद्धिकरण करे। सध्या के प्रतिक्रमण मे षट्कायिक जीवो की विराधना न हो, इसके लिए (माईक आदि) का उपयोग किसी साधक को नही करना चाहिये। यह निर्णय सारी बम्बई मे लागू हो। क्योकि माईकादि का प्रयोग वीतराग देव की सस्कृति को घात पहुँचाने वाला है। उनको जान ले और जानकारी न हो तो कम से कम सस्कृति को नीचे तो न गिराये। अन्यथा स्वय का जीवन तो बिगडेगा ही पर अनत तीर्थकरो की अशातना का प्रसग भी उपस्थित हो जायेगा। जहाँ एक जीव की अशातना के लिए माफी मागते है तो वीतराग देव की अशातना की माफी कैसे माग सकेंगे? मैं नही चाहता कि छोटी से छोटी आत्मा को चोट पहुँचाऊँ पर प्रतिक्रमण के बाद खमतखामणा का प्रसग तो आता ही है। पर मैं षट्कायिक जीवो के साथ, वीतराग सस्कृति के साथ मेरे द्वारा वीतराग देव की, सिद्धान्त के प्रतिकूल एक इन्च के अनन्त वे भाग भी कुछ प्रतिपादन हुआ हो तो मैं तीर्थंकर देवो की और पूर्व के महापुरुषो ने जो यह जीवन दिया उन सबकी अशातना मेरे द्वारा हो गई हो तो मैं खमतखामणा कर लेता हूँ और साथ ही चतुर्विध सघ से भी आत्मा की पवित्रता के साथ खमतखामणा करके अपने विषय को समाप्त करता हूँ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२०-८-८५
मगलवार

५१ तप से सिंचित करो जीवन को

धर्म-स्थान मे मानव समुदाय के उपस्थित होने का उद्देश्य रहा हुआ है। कारण स्पष्ट है। स्थान बहुतेरे होते है, लेकिन धर्म-स्थान की विशेषता रही हुई है कि वे वहाँ पहुँच कर जिनेश्वर की भक्ति कर सकते है, प्रभु की सेवा कर सकते है और वास्तविक जीवन को सुखी व समृद्धिशाली वना सकते हैं। चतुर व्यक्ति इसी उद्देश्य को लेकर धर्म-स्थान मे पहुँचते है। प्रभु भक्ति, प्रार्थना, उनकी सेवा बाहरी सेवा नही है। पिता की पुत्र जैसे सेवा करता है, वैसी सेवा नही है। वह सेवा आन्तरिक जीवन से विशेष फलित होती है। वह अन्तर मे झाकता है। अन्तर जीवन मे प्रवेश पाता है, बहुत गहराई मे चला जाता है तो प्रभु की सेवा उसे वहाँ प्राप्त होती है।

ज्ञानीजनो ने प्रभु को अन्तरयामी कहा है। वे अन्तर की बात को जान सकते हैं। स्वय अन्तर मे परमात्म शक्ति रहते हुए भी यह शरीर, ५ इद्रियाँ उस परमात्मा को जान नही पाती। मानव अपनी आदत के अनुसार प्रवृत्ति करता है, उसी मे अपनी जिन्दगी को समाप्त कर देता है। यदि उसे यह विज्ञान हो जाय कि मैं ५ इन्द्रियाँ और मन से जो कार्य कर रहा हूँ उसमे मेरी ममता अहमता जुडी है, तब तक अन्यान्य उपलब्धियाँ नही पा सकता। साथ ही तब तक शरीर मे रहे हुए अन्तर ज्ञानी प्रभु को भी पा नही सकता। इस अहता और ममता को छोडकर ५ इन्द्रिय और मन को परमात्म भक्ति मे लगाऊँ तो मेरे अन्तर मे परमात्मा प्रकट हो सकेगे। ऐसी भावना उसे आगे बढा सकती है। ऐसी दृढ आस्था वस्तुत तत्वज्ञानी मे ही उत्पन्न हो सकती है। जो तत्व-ज्ञानी नही है, वे अपने आचार और व्यवहार को अन्य स्थल पर समर्पित करके चलते है। जहाँ समर्पित करना चाहिए वहाँ नही करते है। एक तत्वज्ञानी साधक गगा तट पर मस्ती के साथ भ्रमण कर रहे थे, वहाँ देखा — कुछ मुमुक्षु गगा तट पर झुक कर पानी भरते हैं और सूर्य की तरफ मुँह करके पानी उडेलते हैं और सोचते हैं कि हमने सूर्य को अर्पण दी। उस तत्वज्ञानी ने भक्तजनो की यह स्थिति देखी तो पूछने लगा आप यह क्या कर रहे है तो उन्होने कहा—हम सूर्य को पानी दे रहे है, अर्चना कर रहे हैं। यह सुनकर वह साधक गगा मे झुक कर पानी भर कर पश्चिम की ओर मुँह करके पानी उडेलने लगा। भक्तो ने देखा और सोचा यह क्या कर रहा है। पूर्व की ओर पानी समर्पित करना तो भक्तो

का काम है पर यह तो पश्चिम की ओर पानी समर्पित कर रहा है। ऐसा देख उनसे रहा नहीं गया और आश्चर्यान्वित हो उस साधक के पास जाकर कहा कि आप साधक है, भगवत् भक्ति के लिए निकले है। पर यह उल्टी प्रक्रिया कैसे अपनाई ? सीधी प्रक्रिया तो हम कर रहे हैं, यह उल्टी प्रक्रिया तुम कैसे अपना रहे हो ? उसने कहा—भाई ! तुम सूर्य को पानी अर्पित कर रहे हो, पर मै मेरे देश को पानी अर्पित कर रहा हूँ, मेरा देश पश्चिम की तरफ है। वहाँ पानी की कमी है, फसले सूख रही है। गगा मे बहुत पानी है इसलिए उस ओर देखकर गगा का थोडा पानी दे रहा हूँ जिससे वह वहाँ तक पहुँच जाय और फसल अच्छी हो। यह सुनकर वे ठहाका मारकर हसने लगे कि क्या तुम तत्वज्ञानी हो और तत्वज्ञान का यही परिणाम है। कहाँ तुम्हारा देश, कहाँ फसलें और कहाँ पानी अर्पित कर रहे हो ? तुम्हारा पानी क्या तुम्हारे खेत तक पहुँच जाएगा ? इस तरह तुम क्या सोचकर क्या कर रहे हो ? तब साधक ने बडी गम्भीरता के साथ उत्तर दिया कि यदि आपका पानी सूर्य तक पहुँच सकता है तो निश्चित ही यह पानी भी मेरे देश मे, मेरे खेतो तक पहुँच सकता है। भक्त चिन्तन करने लगे कि वास्तव मे कहाँ सूर्य और कहाँ हम ? हमने अपनी कृत्रिम सन्तुष्टि के लिए पानी को उधर उडेल दिया। यह बात सही है। जब हमारा पानी सूर्य तक नही पहुँच सकता तो, उनका पानी खेतो तक कैसे पहुँच सकेगा ?

बन्धुओ, कहने का मतलब यह है कि कुछ भी प्रक्रिया करो, इन्द्रियो का व्यापार करो कि शरीर की शक्ति कही भी लगाओ पर काम वही करो जहाँ आवश्यकता हो। भगवान् की भक्ति करना है, सेवा शुश्रुषा करना है तो भगवान् कहाँ हैं, कहाँ उनकी भक्ति है यह जानो। जहाँ रोग है, इलाज उसी का होगा। रोग तो है मस्तिष्क का, इलाज हो रहा है शरीर का तो कैसे रोग शान्त होगा ?

आप शान्ति पाना चाहते है और क्रिया भी करते है पर तत्वज्ञानी के अभाव मे सारी प्रक्रियाएँ जिस स्थान पर होनी चाहिये उस स्थान पर न होकर अन्य स्थान पर हो रही है। उन मुमुक्षुओ की जिज्ञासा बढी और पूछने लगे कि हमे वह उपाय बताओ ? साधक ने उसे समझाया कि तुम को यदि भगवान् पाना है, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र व समस्त विश्व से सितारे पाने है तो जब तक आँखे फाडकर देखते रहोगे तब तक पा नही सकोगे, यदि पाना है तो केवल एक भगवान् को पा लो, उन्हे पाने के बाद फिर ये सब कुछ प्राप्त हो जायेगे, वास्तव मे भगवत् भक्ति करनी है तो अपने अन्दर की अनादिकालीन वृत्तियो को देखना होगा और उन्हे देखकर उन अशुभ प्रवृत्तियो को बदलो और सद् चित् आनन्द रूप आत्मा को जगाओ। उसी मे सच्ची भक्ति है। इसीलिए कवि ने कहा—

ढाल तलवार नी सोहली-दोहली ।
चदहवा जिण-तणी चरण सेवा ।।

तलवार की धार पर चलना कठिन है, कदाचित् कोई बाजीगर तलवार की धार पर चल सके और देव वैक्रिय लब्धि से चल सकते है पर तत्वज्ञान की दृष्टि से परमात्मा की उपासना करना उस धार से भी तीक्ष्ण है। उस पर तो विरले व्यक्ति ही चल सकते है। सबसे पहले ५ इन्द्रियो के विषयो से विरक्त होना पडता है किन्तु मानव दृश्य पदार्थों को देखकर उसे ही सब कुछ मान रहा है पर आवश्यकता है भीतर मे जो चैतन्य देव है, उसे जगाने के लिए महाप्रभु द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक प्रक्रिया अपनाने की। वैज्ञानिक प्रक्रिया के कुछेक आदर्श इतनी लम्बी तपस्या के रूप मे सामने आ रहे है। अजनाजी के ३० उपवास हैं और पहले पुष्प मुनिजी ने ४४ किये। वैसे ही अन्य-अन्य तपस्याएँ भी चल रही हैं। अन्न-पानी का त्याग क्या है? इससे प्रभु भक्ति की स्थिति कैसे क्या सघ सकती है? श्रद्धा भक्ति से किसी बात को मान लेना एक बात है, और तत्व ज्ञान से समझ लेना दूसरी बात है। आज विज्ञान का युग है। आप उस तरीके से सोचे कि हमे अपना प्रयत्न अन्तर की ओर करना है। अहमता और ममता के हेतु जो बाधक तत्व हैं उनको जब तक नही तोडा जाएगा तब तक अह नही हटेगा। वह अन्तर मे झाक भी नही सकेगा। इन्सान सोचता है अन्न छोड दूँगा तो मैं दुर्बल हो जाऊँगा, कमजोर हो जाऊँगा, रूप विद्रूप हो जायेगा। इस भावना से वह तपस्या कर नही पाता। कई भाई तो उपवास मे भी इस प्रकार की ही कल्पना करते है। जब शरीर पर, इन्द्रियो पर ममत्व है, अहता का पोषण है तो इन सबल किलो को तोड़े बिना मनुष्य भीतर मे प्रवेश नही कर सकता। इसके लिये शक्ति के अनुसार तपस्या भी करनी चाहिए। तपश्चर्या से जीवन मे बहुत कुछ उपलब्धि हो सकती है, वह इस जीवन के बाद मिलेगी इस बात को गौण करिये। बाद मे तो मिलेगी ही, वर्तमान मे भी मिलती है। वर्तमान मे व्यक्ति जिन अशांत परिस्थितियो मे जी रहे है। वह अशाति भी समाप्त हो सकती है इस तप के माध्यम से, बशर्ते कि तप की जो विधि है उस विधि से तप किया जाय। आप व्यापारी है। कई बार ऐसी समस्या आ जाती है उसका हल खोज नही पाते। व्यापार मे उलझ जाते हैं, इसी प्रकार विद्यार्थी स्वय अध्ययन कर रहा है पर गणित के सवाल को सुलझा नही पाता। इनमे अनेक कारणो के साथ अधिक खान-पान मे आने वाली विकृति भी एक कारण बन जाती है। इसी प्रकार अन्य भी कई मानव सोच नही पाते। कारण स्पष्ट है कि यह शरीर है और शरीर को दी जाने वाली खुराक कुछ अधिक खाने मे आ जाय तो सोचने की क्षमता कम पड जाती है। अन्दर की प्रक्रिया जो चलती है वह सीमित है। और वह अपनी शक्ति अनुसार कार्य करती है। मनुष्य खाने का इतना आदी है कि भूख हो या न हो तो भी खाना तो खाना ही है। यह एक प्रवृत्ति सी बन गयी है। ज्यादा खाने से पहले का भोजन पच नही पाता है और नया ऊपर से डाल दिया जाता है तो अन्दर की शक्ति उसे इधर-उधर डालना चाहती है तो उस समय वात, पित्त, कफ, ये तीन रोग उत्पन्न होते है। वात का

प्रकोप हो जाता है तो मनुष्य का मस्तिप्क घूमने लगता है, पित्त का प्रकोप वढता है तो तेजाब बढ जाता है । जिससे पेट मे जलन होती है । कफ का प्रकोप वढता है तो श्लेषम बढ जाता है ।

आयुर्वेद की दृष्टि से बता रहा हूँ कि जब शरीर मे रोग वढ जाते है तो स्वय के भीतर मे जो अन्तरयामी है उसका भी मनुष्य शाति से चिन्तन नही कर पाता । वह यदि एक रोज का उपवास कर लेता है तो सारी बीमारी नप्ट हो जाती है । जहाँ वडी-वडी मशीनो को भी आठ रोज मे एक रोज छुट्टी देने का प्रसग सुना है पर मानव की मशीन ऐसी है कि उसे एक रोज की भी छुट्टी नही दी जाती है । मस्तिष्क को भी छुट्टी नही देते है । आप छुट्टी के दिन भी अन्य-अन्य काम मे दिमाग को दौडायेगे । वधुओ ! इस पाचन क्रिया पर कितना अन्याय और अत्याचार करते हैं । ऊपर से कहते हैं बाहर की हिसा नही करते हैं, उससे बचते हैं और बचने का उपदेश देते हैं पर कही स्वय की घात तो नही कर रहे है ?

जहाँ मैं थादला के पहाडी एरिया मे विचरण कर रहा था वहाँ भीलो को मामा कहकर बुलाया जाता है । एक काग्रेसी नेता मेरे पास आया । बोला कि आप हिंसा-अहिंसा आदि की बात करते हैं पर भारत की अन्न समस्या कैसे हल होगी ? अहिंसा से तो होगी नही ।

आपका दिमाग । आज शरीर भले ही भारतीय सस्कृति का हो पर मन पाश्चात्य सस्कृति की ओर जा रहा है । मैंने उससे पूछा कि भारत की जनसख्या कितनी है ? उस समय साठ करोड के लगभग जनता थी । तब मैंने कहा—एक समय मे एक व्यक्ति औसतन कितना खाना खाता है । एक किलो खाता है, उस नेता ने कहा । मैंने कहा—जब साठ करोड जनता है तो उसमे से पचास करोड जनता सप्ताह मे एक रोज उपवास रखे तो कितना अन्न बच सकता है ? बारह महिनो का हिसाब लगाओ । यह आपकी गणित का विषय है । आप हिसाव करिये । इतना अन्न अभावग्रस्त लोगो के काम आ सकता है । जहाँ मनुष्य को भूख नही है तो भी ज्यादा खाता है तो पाचन क्रिया तो बिगडती है और अनेक व्याधियाँ पैदा हो जाती हैं । चूर्ण, नमकीन, भुजिया की कहाँ इस शरीर को आवश्यकता है पर वह जीह्वा के वशीभूत होकर इन चरखी-फरखी चीजो को खाता जाता है । फिर रोग पैदा होता है तब डॉक्टर की शरण मे जाता है और कभी-कभी अपने जीवन को नष्ट भी कर देता है । यदि सादी-सीदी सात्विक भोजन की स्थिति रखे तो कितनी क्या व्यवस्था सुधर सकती है । अन्न के अभाव मे जितने नही मरते हैं उतने ज्यादा खाने से मरते है । भगवान महावीर ने तप का स्वरूप वताया पर आज अधिकाश रूटिन तरीके से तप करते है । तप का जो अध्यात्मिक अर्थ वताया, उसे समझने की आवश्यकता है । आज विदेशी लोग

भी उपवास चिकित्सा मे उत्साह ले रहे है और प्राकृतिक चिकित्सक आज इस उपवास चिकित्सा से रोगो को नष्ट करने मे कामयाब हो रहे है। उदयपुर मे प्राकृतिक चिकित्सक ने बताया कि एक व्यक्ति रोज इजेक्शन खाता था। इजेक्शन से सारा शरीर बीध गया, डॉक्टर की तरफ से उत्तर मिल गया कि अब तुम्हारा कोई इलाज नही होगा, वैद्य ने भी जवाब दे दिया। तब वह प्राकृतिक चिकित्सा की स्थिति मे पहुँचा तो चिकित्सक ने कहा कि उपवास करना पडेगा, रोज एनिमा मे गर्म पानी से सफाई की जाती थी। रोगी ने कहा—कुछ भी नही निकलता है फिर उपवास क्यो करवाया जाता है ? परन्तु ३०वे दिन उसके शरीर से इतना गन्दा मल निकला कि आसपास के लोगो को भी दुर्गन्ध आने लगी। इस प्रकार ४०वें दिन तक यह प्रक्रिया करवाई गयी।

आयुर्वेदिक उपचार मे कायाकल्प का सिद्धान्त है। भगवान महावीर ने और अन्य-अन्य महर्षियो ने तप का बहुत महत्त्व बताया है। केवल अनशन ही तप नही बताया, ध्यान, मौन साधना भी तप बतलाया है। ये सारी प्रक्रियाएँ अन्तर तक ले जाने वाली है। अन्तर्चेतना मे प्रवेश कराने वाली, अन्तर बुद्धि को निर्मल बनाने वाली हैं। एक समय का प्रसग है। एक प्रतिष्ठित परिवार के सेठ के इकलौते पुत्र की शादी कर दी गई। सयोग से पुत्र का स्वर्गवास हो गया। घर मे दो सदस्य ही रह गये—श्वसुर और बहू। सेठ ने सोचा मेरे अन्तर की शुद्धि तप के द्वारा ही हो सकती है। और मैं तप का सेवन करूँगा तो बहू भी करेगी, ताकि इसका जीवन भी अच्छा रह सकेगा। सेठ ने आभ्यन्तर तप की स्थिति से पुत्र-वधू से कहा कि ये बढिया भोजन, बढिया दृश्य, मनोरम गायन मुझे गमता नही है अत मुझे तो अन्तरयामी की तरफ जाना है इसलिए मेरे लिए सीधा-सादा भोजन तैयार करना और तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा करो। बहू ने विचार किया कि ऐसा कैसे हो सकता है, उसने भी सादा भोजन, सादी वेशभूषा मे रहना शुरू कर दिया। सादा जीवन जीने लगी। "इच्छानिरोधो तप" इच्छाओ का निरोध-सशोधन करना भी तप है। कुछ दिवस अनन्तर बहू के पीहर से आमन्त्रण आया कि तुम्हे बहुत वर्ष हो गये हैं, यहाँ आये को। भाई का विवाह है, तुम आ जाओ। माता-पिता का ममत्व बडा अजीब का होता है पर उस बहू मे एक विशेषता थी कि श्वसुर को बिना पूछे कार्य नही करती। पत्र ले जाकर श्वसुर को दिया। श्वसुर ने देखा और सोचा कि पिता ने इसे जन्म दिया पर जीवन की सर्जना नही की। कर्मो की विडम्बना विचित्र है। पुत्र चला गया। उसे वैधव्य जीवन मे आना पडा पर इसे विवाह मे जाने से कैसे रोका जाय ? ५ इन्द्रियो की विषय विकार की स्थिति ऐसे प्रसगो मे अधिक उपस्थित होती है, पनपती है। सेठ ने कहा—तुम वहाँ जाकर क्या करोगी ? उसने कहा— मै तो जाऊँगी। सेठ ने छुट्टी दे दी। वह पीहर पहुँची। सादी सीधी पोशाक देखकर माँ कहने लगी कि अरे ! तेरा शरीर कितना दुर्बल हो गया, कितनी कृश हो गयी, कैसा कजूस है

तेरा श्वसुर जो पहनने को अच्छे वस्त्र और खाने को अच्छा भोजन भी नही देता है। उसके सभी सादे सीधे वस्त्र उतरवाकर उसे अच्छे नये वस्त्रा भूपणो मे सुसज्जित कर दिया। जो कुछ उसकी अन्तर्यामी की ओर मुडने की भावना थी, उस पर पर्दा पड गया। १५ दिनो मे तो कुछ का कुछ हो गया। जव वह ससुराल आई और अच्छा भोजन तैयार कर सेठ के सामने रखा तो सेठ ने कहा कि मेरा जवान लडका चला गया। उसके अभाव मे मैं तो ऐसा भोजन नही करूँगा। तुम करलो।

उसके पीहर रह जाने से सारी वृत्तियो में तामसिक वृत्तियाँ आ गई थी। वह सोचने लगी कि मुझे तो पुनर्विवाह करना है। उसने अपनी भावना श्वसुर के सामने रखी। देखिये ! सेठ बडे मनोवैज्ञानिक थे। कहा कि मैं तो वृद्ध हो गया। मेरे घर की, परिवार की, प्रतिष्ठा बढाने वाला कोई हो, ऐसा विचार मै कई दिनो से कर रहा था। पर तुम्हारी तरफ से कुछ भी सकेत नही मिला। तुम चिन्ता मत करो, आराम से खाओ-पीओ, मै तुम्हारे योग्य वर तलाश करता हूँ। दूसरे दिन सेठ दिन भर साधना मे लग गये। सेठ ने भोजन नही किया तो बहू ने सोचा कि अहो ! मेरे श्वसुर कितने दयालु है। मेरे वर की खोज मे खाना भी नही खाया। २४ घण्टे तक सेठ ने भोजन नही किया तो उसने भी नही किया। दूसरे रोज पारणे की सामग्री तैयार की और श्वसुर से पारणे के लिए कहा तो सेठ ने कहा—नही मैंने तो जो प्रण किया है, जब तक उसकी पूर्ति नही होगी मैं तब तक भोजन नही करूँगा। आज मैंने एक लिस्ट उतारी है योग्य लडको की और खोज करने पर पता चला कि कोई इन्द्रियलोलुपी है तो कोई चरित्रहीन है। मेरे कुल के योग्य एक भी लडका नही मिला, अत मैं भोजन नही करूँगा।

बेला हो गया। इधर वह भी सोचती है कि वर मिलेगा जब मिलेगा मैं अभी तो इन गहनो के भार से हल्की हो जाऊँ और ये सुन्दर वस्त्र भी उतार दूँ क्योकि तपस्या मे यह भी भारभूत लगते है। जब वर आयेगा तब इन सबको पुन धारण कर लूँगी। तीसरे दिन पारणे की तैयारी कर श्वसुर से कहने लगी। अब तो आप पारणा करिये। तब सेठ ने कहा – बेटी अभी कमी रह गयी है, आधा काम तो हो गया है, थोडी खोज और करनी है, खोज जारी है। तुम तो पारणा कर लो। कार्य पूर्ण होने पर मैं भी कर लूँगा। तब वह सोचने लगी कि पिताजी मेरे लिए ३ दिन से भूखे हैं तो मैं कैसे भोजन कर लूँ ? तीसरी रात होने पर विचारो मे शुद्धता आई, बुद्धि मे निर्मलता आई। क्या मैं पशु तुल्य जीवन बीता रही हूँ ? हाय मेरा जीवन पशु तुल्य बन गया। मेरे पतिदेव चले गये पर मुझे एक निष्ठ होकर रहना चाहिए। अब मुझे अपने भगवान को ही अपना पति मानकर चलना चाहिए। मैं इन विषयो मे इतनी आसक्त बन गयी कि मैने अपने पिता तुल्य श्वसुर के सामने पुनर्विवाह की वात रख दी। चौथे दिन सादा भोजन बना कर श्वसुर को पारणा के लिए कहती है तो श्वसुर कहते हैं कि अभी

थोडा काम बाकी है वह पूरा होने दो । तब वह कहती है कि आप जिस वर की तलाश कर रहे थे वह वर मुझे मिल गया है । अब आप पधारिये । आप तो पधारिये वर मिल गया । मै पीहर गई वहाँ वासना मे भटक गई, मुझे इन्द्रियो का विषय वहाँ देखने को नही मिलता तो ऐसी भावना नही आती । अब मुझे किसी पुरुष की आवश्यकता नही, अब तो मुझे इच्छित वस्तु मिल गयी ।

बन्धुओ ! जहाँ रस का त्याग करते है, प्रतिसलीनता तप की स्थिति बनती है और परमात्मा से अन्तरसूत्र जोड लेते है तो सभी विकार शान्त हो जाते है और एक दिन परमात्मा के दर्शन हो जाते है । आत्म शुद्धि और परमात्मा का साक्षात्कार करने का पावन मार्ग तप है । आज इसका प्रसग चल रहा है । शास्त्रीजी ने जब प्रधानमन्त्री थे देश को यह नारा दिया कि सप्ताह मे एक दिन उपवास करना चाहिए । आपको याद हो या न हो पर मुझे याद है, शास्त्रीय बात की पुष्टि के लिए याद रखनी है । बन्धुओ ! इसका कितना महत्त्व है । अभी तो मैं इतना ही कहना चाह रहा हूँ कि श्रावण मास के प्रसग पर तपश्चर्या हुई और हो रही है । विदुषी शासन प्रभाविका श्री इन्द्रकुँवरजी म० सा० ने भी ११ उपवास किये थे । परम विदुषी इन्द्रकुँवरजी म० सा० भी कैसे शासन की सेवा कर रही है । महासती श्री अजनाश्री जी म० सा० आदि की ऐसी तपस्या मे भाई-बहिन क्या अपनी भागीदारी डालेगे । ध्यान रखिये इस तपस्या के पावन प्रसग से अधिक न बन सके तो . . . इन्द्रियो पर काबू लाकर मोह, ममत्व, अहकार तीनो को हटाने का प्रयास करे तो आप धीरे-धीरे अन्तर्यामी की ओर बढेगे और उनका दर्शन तप की वास्तविक पराकाष्ठा पर पहुँचने से ही हो सकता है । जो १२ विध तप द्वारा इस तलवार की धार पर चलता है तो उसका जीवन इस लोक-परलोक के सुखो का वरण कर सकता है । जैसे पश्चिम मे पानी उडेलने से खेत तक पानी नही पहुँच सकता उसी प्रकार परमात्मा को देखने के लिए आकाश मे आँखे फाड-फाडकर देखने से परमात्मा नही मिल सकते है । परमात्मा को पाने के लिए भीतर मे दृष्टि डालिये, मोह, ममत्व, अह के किले तोडने का रास्ता है तप । उसके माध्यम से भीतर मे प्रवेश कर चलेगे तो एक न एक दिन आपका जीवन मगलमय अवस्था को भी प्राप्त कर पायेगा । इसी भावना के साथ ... .

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर, बम्बई

२५–८–८५
रविवार

५२ सेवा कैसे की जाय ?

वीतराग देव की परम पाविनी, अतर जीवन को प्रक्षालन करने वाली यह जिनवाणी भव्यजनो के कल्याणार्थ जो उपदेश दे रही है, उस उपदेश को जीवन मे जो मनुष्य उतारता है, वह वास्तव मे वीतराग देव की सेवा करता है। आज के युग मे सेवा की बात ज्यादा प्रचलित-प्रसरित है। सेवा की बात बहुत होती है, पर सेवा किसकी करनी, किस तरह करनी, उसका स्वरूप क्या है, सेवा से क्या होता है ? इन सारी बातो की जानकारी वीतराग वाणी के श्रवण से हो सकती है। बारह प्रकार के तपो मे वैयावच्च भी तप है जो सेवा का ही एक पर्यायवाची शब्द है।

सेवा की बात आध्यात्मिक कवि भी कहते है कि प्रभु की सेवा करनी है। तब प्रश्न सहज ही सामने आयेगा प्रभु है कहाँ ? प्रभु सामने देखने को मिले तो ही उनकी सेवा की जाय। जो प्रत्यक्ष नही है उनकी सेवा किस तरह करे ? जिस मनुष्य के सम्पर्क मे दूसरे मनुष्य आवे और उसे कोई तकलीफ हो तो सेवा का कार्य वह अपने हाथ मे ले सकता है। वृद्ध, रोगी, बुजुर्ग माता-पिता की सेवा का कर्तव्य पुत्र का होता है, और यदि वह पुत्र सेवा न करे तो वह उनके कर्तव्य से गिरता है। शास्त्रकारो ने माता-पिता का ऋण बहुत माना है और यह भी बताया कि अपने वृद्ध रोगी माता-पिता की किस तरह सेवा करने से वह उऋण हो सकता है। हाथ-पैर दबाने से माता-पिता का ऋण नही उतरता है, पर उन्हे भव-भवान्तर मे सुखदायी धर्म मे लगाने से उस ऋण से उऋण होया जा सकता है। आज कई मनुष्य वृद्ध , रोगी आदि की सेवा करते है। उन्हे नहलाना-धुलाना, भोजन कराना, औषधी देना आदि कार्य करके सोचे कि बस सेवा हो गयी, मैं उऋण हो गया, यह भी सेवा जरूर है, पर ऐसी सेवा तो एक नौकर अनुचर भी कर सकता है। सेवा का विषय गहन है। ऐसी सेवा परिपूर्ण नही है। धर्म सघ मे साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध सघ की सेवा किस तरह करनी ? इसे भी जानना आवश्यक है। इन चार तीर्थो मे जो श्रावक-श्राविका है। धर्म की दृष्टि से श्राविका अन्य श्राविका की सेवा कर सकती है। कई श्राविकाएँ पर्व के दिनो मे पौषध लेकर बैठती है और उस समय उसे कोई रोग हो जाय तो अन्य पौषध वाली श्राविका उनकी हाथ-पैरादि दबाने की सेवा कर सकती है। यहाँ गृहस्थ का नाता नही है। सवर पौषध मे रहने वाले श्रावक

का नियम अलग है। पौषध मे रहने वाली श्राविका की सेवा पौषध वाली श्राविका कर सकती है। पर जो खुली है, खुली का तात्पर्य जो सवर, सामायिक या पौषधादि मे नही है। वह उसके पैर दबावे या अन्य सेवा करे तो वह कर तो सकती है, पर पौषध मे रहने वाली बहन सोचे कि मैं खुली बहन की सेवा न लूँ। यदि इस तरह की सेवा लेने का प्रसग आता है तो थोडा-सा साधना मे फर्क पडता है। जैसे श्राविका की बात है वैसे ही श्रावक सबधी जानना चाहिये। कल्पना करिये जैसे—एक श्रावक को पौषध मे रहते हुए तकलीफ हो गई तो अन्य पौषध वाला श्रावक आकर सेवा करे, यदि वह दूसरा श्रावक पौषध मे सेवा न करे और सोचे कि यह बीमार है, चिल्ला रहा है, चिल्लाने दो, मैं क्यो सेवा करूँ तो वह अपने कर्तव्य से गिरता है। जैसे—श्रावक-श्राविका की बात है वैसे ही साधु-साध्वी की बात है। साध्वी समाज जो साध्वी पर्याय मे रहकर पॉच समिति, तीन गुप्ति की आराधना करके चल रही है, उसे कोई तकलीफ हो जाय तो साध्वी की सेवा साध्वी ही कर सकती है। वह गृहस्थ से सेवा नही करवा सकती। क्योकि गृहस्थ महाव्रतधारी नही है, वे केवल प्रासुक औषधि आदि की दलाली कर जैन भाई की दुकान बता सकते है, साथ मे जा सकते है। पर कोई ऐसी बीमारी है या जैन की कोई दुकान नही है और गृहस्थ के घर भी औषधि स्वाभाविक रूप से नही मिल रही है, तो वह गृहस्थ कह सकता है कि ज्ञान, दर्शन व चारित्र की आराधना मे सहायक यह शरीर है। इसकी परिपालना मे भगवान् महावीर ने छ कारण से आहार लेना, छ. कारण से आहार छोडने का विधान बताया है। आपके अभी सथारा की स्थिति नही है, रोगोत्पत्ति है, बाजार की लाई हुई औषध ले ले। क्योकि कदाचित् वह आर्तध्यान की स्थिति मे चला जाय तो उसे अगले भव की आयु बध हो जाय तो अगला भव भी बिगड जाता है, अत बाजार से दवाई लाकर भी दे सकता है, पर साधु स्वस्थ होने पर उसका प्रायश्चित ले लें। इस प्रकार सेवा के स्वरूप को समझने की आवश्यकता है। जहॉ तक शरीर से ज्ञान, दर्शन, चारित्र की वृद्धि हो, तब तक शरीर की रक्षा करना भी आवश्यक है। परन्तु जब श्रावक-श्राविका अपनी सीमा मे रहते हुए साधु साध्वी को सीमा मे रखकर सेवा करते है तो वास्तव मे वीतराग देव की आज्ञा का पालन करते है। जो सेवा साधु साध्वी को लेने की नही है और वे लेते है तो सयमी जीवन मे दोष का प्रसग उपस्थित करते हैं। अगर वह दवा दोषयुक्त है, खरीदी है तो श्रावक भी स्पष्ट कह दे, ताकि प्रायश्चित लेकर साधु शुद्धिकरण कर सके। स्थानाग सूत्र के तृतीय ठाणे मे बताया कि जीव हिंसा करके, झूठ बोलकर गृहस्थ आहार औषधि आदि देता है तो अगले जन्म मे अल्पायु बाँधता है। पुण्यवानी तो बँधेगी पर आयु अल्प बधेगी। जैसे—उच्च कुल मे जन्म तो ले लिया पर छ वर्ष या दो वर्ष के बाद ही मर गया। अनेषणीय आहार देता है तो अगले जन्म की अल्पायु बधती है। भगवान् की बताई विधि के अनुसार यदि साधु-साध्वी ने आपको शास्त्रीय दृष्टि से पूछ लिया और आप पर विश्वास

कर उस चीज को ग्रहण की और आप झूठ बोल गये तब वे तो अपनी स्थिति से निर्दोष रहेगे पर श्रावक के अल्पायु का वध हो जायेगा ।

उदाहरण के रूप मे एक साधु गृहस्थ के यहाँ गया, उसने अपनी अन्तरात्मा को नही ठगा । शास्त्रीय विधि से गवेषणा करता हुआ अंतिम विधि जो गृहस्थ को झूठ बोलने का त्याग करवाकर पूछने की है, वह भी पूरी कर लेता है । फिर भी गृहस्थ दुगुना झूठ बोलता है तो वह गृहस्थ अल्पायु बाँधता है । वहाँ केवली भगवान् विराजते हो तो अपने ज्ञान मे देख लेते है कि ये वस्तु-औषधी, आहार, पानी साधु-साध्वी वीतराग देव की बताई विधि से परिपूर्ण गवेषणा कर ग्रहण कर रहे है और इस गृहस्थ ने ठगकर इन्हे दोषयुक्त औषधि या आहार बहराया तो इनके लिए तो निर्दोष है । मै तो नही लूँगा पर साथ ही वे साधु को ना नही करते । क्योकि उस साधु के पास श्रुत अर्थात् शास्त्रीय ज्ञान है और इसने शास्त्रीय ज्ञान से गवेषणा करली, पर मैं अपने ज्ञान से दोषयुक्त कह दूँगा तो आगे के साधु शकाशील होकर सयम नही पाल सकेंगे ।

बधुओ ! मैं सेवा की बात बोल रहा हूँ । सेवा की स्थिति से वीतराग देव के सिद्धान्तो को समझना जरूरी है । कई लोग झूठ बोलकर, साधु को धोखा देकर कितना पाप उपार्जन कर लेते है । गृहस्थ को गृहस्थ के सामने भी झूठ नही बोलना है तो साधु-साध्वी के सामने तो झूठ बोलना ही नही चाहिये । आप यदि अगले जन्म की अल्पायु का बध न करना चाहे तो भगवान् की विधि के अनुसार चले । आज भाई-बहिन कहते है कि महाराज ! आपके साधु, साधु की और साध्वी, साध्वी की तो आपस मे एक दूसरे की सेवा करते है, पर थोडी हम भी कर दे तो क्या हर्ज है ? तो साधु उससे सेवा नही करा सकता । किसी भी प्रकार से शरीर का स्पर्श करके अन्य सेवा नही करा सकता । इसी प्रकार जैसे—यह पाटा है, कई भाई भावुकतावश कह देते है कि महाराज ! हम पाटा बिछा देते हैं । भावना अच्छी है पर गृहस्थ को साधु का पाटा नही उठाना चाहिये । वहाँ सेवा का काम यह कर सकते है कि सहायता के लिये दूसरे साधुओ को बुलाकर ला सकते है । पर गृहस्थ द्वारा सेवा करते-करते कभी अन्य अनेक दोषो की उद्भावना भी हो जाती है । यदि कोई गृहस्थ साधु के हाथ-पैर दबावे या बहिन साध्वी के दबावे तो यह सेवा करना नही, वरन् उनके जीवन-दोष लगाना है, वीतराग देव की आज्ञा की अवहेलना करना है । कई भाई-बहिन टिफिन लेकर आते हैं कि महाराज कहाँ-कहाँ गोचरी के लिए फिरते रहेगे । इस तरह साधु की मर्यादा का अतिक्रमण करके आप आहार आदि यही (उपाश्रय मे) ले आयेंगे तो वह साधु जीवन के लिये अहितकर हो जायेगा । कवि ने कहा है—

"धार तलवार नी सोयली दोयली, चवदमा जिन तणी चरण सेवा"

तलवार की धार पर चलना कठिन है पर कदाचित् किसी के लिये सरल

भी हो जाय परन्तु प्रभु की चरण सेवा उससे भी कठिन है। यदि सेवा इतनी सस्ती होती तो उसे तलवार की धार के समान कठिन नही कहते। आज जिन भगवान् हमारे समक्ष नही है, पर प्रकारान्तर से जिन भगवान् की सेवा भी हम कर सकते है। उनके तीर्थ की सेवा और सुरक्षा रखना यह भी एक सेवा है।

बधुओ ! रोज-रोज प्रवचन सुनने से शास्त्रीय बातो का कुछ न कुछ रहस्य समझ मे आ सकता है। चितन-मनन करके जो बात समझ मे न आवे, उसे आप पूछ सकते है। मै जो कहता हूँ उसे ही सही न मानले। इस प्रकार सेवा का धर्म सही विधि से अपनायेगे तो आप अधिक साधना कर सकेगे। जहाँ अभी कत्लखाने की बात वज्जू भाई ने कही। लगता है भारत के मानवो का हृदय जो पुष्प की पखुडी के समान था, वहाँ पुष्प की पखुडी तो कुम्हला गयी पर हृदय पत्थर समान हो गया। स्वय की आत्मा तुल्य उस आत्मा का घात करता है, वह तो हिसक है ही पर जो नही करता पर करवाता व अनुमोदता है तो भी वह उस हिसा का भागीदार होता है और इन कत्लखानो से माँस को वृद्धि हो रही है, जिससे आज के युवको के सस्कार भी बिगड रहे है। आज कॉलेज जाने वाले युवक क्या-क्या खाते व पीते है। जो धार्मिक स्थान पर आते है वे तो सत-सती का उपदेश सुनकर जीवन को परिवर्तित कर सकते है। घर-घर मे जाने की स्थिति तो सतो की रहती नही। जो नही आते है, उनके माता-पिता का कर्तव्य है उन्हे यहाँ आने की प्रेरणा दे या घर मे ही अपने बच्चो को सुसस्कार दे। तभी वीत-राग देव की सेवा का प्रसग भव्य तरह से उपस्थित हो सकता है। कत्लखाने की यह दर्दनाक स्थिति जो आज आपके सामने आ रही है। आज के व्यक्ति जो भारतीय सस्कृति मे पले पोषे है, ये कान मे तेल डालकर प्रगाढ निद्रा मे सोये हुए न रहे। जगने का अवसर है, जगना चाहिये।

एक लोटे मे यदि भग पडे तो वहाँ से तो आसानी से हटाई जा सकती है, पर जब सारे कुए, तालाब, समुद्र व टकी मे ही भग पड जाय तो उसके लिये क्या उपाय हो सकता है। इस भारत भूमि मे ऐसा प्रसग उपस्थित हो रहा है। किन्तु सभी भारतीयो को जागृत होकर इन सभी जीवो की रक्षा के लिये प्रयत्न करना चाहिये। यह भी बहुत बडी सेवा है। इस प्रकार सेवा के स्वरूप को समझकर जो विधि के अनुसार सेवा का लाभ लेता है तो वह अपने जीवन को अवश्य आगे बढाता है।

मोटा उपाश्रय,
घाटकोपर (बम्बई)

२७—८—८५
मगलवार

□ □ □